बैंकिंग के सिद्धान्त

और

उनका प्रयोग

लेखक

कान्तानाथ गर्ग, एम० ए०, बी० काम

प्रिन्सिपल चम्पा अग्रवाल कालेज,

मथुरा

प्रकाशक

किताब महल इलाहाबाद,

विषय-सूची

अध्याय १

विषय-प्रवेश

बैंकिंग का विषय वास्तव में अर्थशास्त्र के विषय का ही एक अङ्ग है। किन्तु आज-कल के आर्थिक संगठन में इसका महत्व इतना बढ़ गया है कि हमारे लिये इस पर विशेष ध्यान देना आवश्यक हो गया है। सच बात तो यह है कि किसी देश की औद्योगिक तथा व्यापारिक उन्नति इस समय अधिकांश में उसके बैंकिंग के संगठन की कुशलता पर ही निर्भर है। अतः, हम यहाँ पर इसका अध्ययन पृथक रूप से ही करेंगे।

बैंकिंग का अर्थ

'बैंकिंग' शब्द एक प्रकार से द्रव्य (Money) के व्यवसाय के लिये प्रयोग में आता है। अब, इस द्रव्य के व्यवसाय में विशेषतया निम्नांकित बातें सम्मिलित हैं —(१) द्रव्य का पारस्परिक विनिमय (Exchanging Money), (२) द्रव्य उधार देना (Lending Money), (३) द्रव्य जमा के रूप में लेना (Depositing Money) और (४) द्रव्य एक स्थान से दूसरे स्थानों को भेजना (Remitting Money)।

अधिकांश देशों में उपर्युक्त कार्य उपर्युक्त क्रम से ही आरम्भ हुये हैं। हमारे ही देश में वैदिक काल में, महाजन लोग भिन्न-भिन्न मुद्रायें (coins) बदलने का काम किया करते थे। इसमें एक राज्य की मुद्रायें दूसरे राज्य की मुद्राओं में और एक प्रकार की मुद्रायें दूसरे प्रकार की मुद्राओं में बदली जाती थीं। साथ ही वे अपेक्षित (needy) लोगों को ब्याज पर अथवा ब्याज के बिना ही ऋण भी दिया करते थे। बाद में, शायद मनु के बहुत पहिले वे अपने यहाँ द्रव्य जमा के रूप में भी लेने लग गये थे और अन्त में उसे एक स्थान से दूसरे स्थानों को भेजने भी लगे थे। इङ्गलिस्तान में भी सन् १३४४ में तृतीय एडवर्ड ने अपने यहाँ सोने और चाँदी की मुद्रायें बदलने के लिये कुछ राजकीय म[illegible] जिन्होंने उन

की थी। वे प्रत्येक सौदे में १६ प्रतिशत लाभ लेते थे। साथ ही ये यहां की मुद्रायें अन्य देशों की मुद्राओं के साथ भी बदल देते थे। इनके लिये उनके यहां विनिमय की दरों की एक तालिका लटकी रहती थी जिसके अनुसार ही उन्हें विनिमय करना पड़ता था। उनके विनिमय के लाभ में राजा का भी एक भाग रहता था। रोम पर [illegible] के समय में उधार देने की भी पद्धति चालू हो चुकी थी। [illegible] कि [illegible] यहूदी और लम्बार्ड्स ये मुख्य ऋणदाता (Money-lenders) थे। समय ने और जब इन्हें देश के बाहर निकाल दिया गया तब उनका स्थान वहां के सर्राफों (Goldsmiths) ने ले लिया। इनका काम अवश्य ही सन् १६४० के बाद ही बढ़ा। उस समय तक जनता अपना द्रव्य राजकोष में ही जमा करती थी, किन्तु उस वर्ष प्रथम चार्ल्स ने उनका स्वत्वहरण की आज्ञा निकाल दी। इसमें सन्देह नहीं कि यह आज्ञा बाद में वापस ले ली गई थी, किन्तु इससे राजकीय मर्यादा भङ्ग हो गई और लोग अपना द्रव्य राजकोष में जमा करने की अपेक्षा सर्राफों के यहां जमा करना अधिक पसन्द करने लगे। द्रव्य पहिले तो एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजने के लिये मनुष्य काम में लाये जाते थे, किन्तु बाद में यह विनिमय बिलों द्वारा होने लगा, जिन्हें पहिले तो केवल व्यापारी वर्ग ही खरीदा और बेचा करते थे, किन्तु बाद में महाजन वर्ग (Bankers) भी खरीदने और बेचने लगे। आधुनिक काल में बैंकिंग के अन्दर यह सभी काम सम्मिलित हैं और कुछ और भी जिनका अध्ययन हम उचित स्थान पर करेंगे।

बैंकिंग की उत्पत्ति

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि बैंकिंग का काम किसी न किसी रूप में भारतवर्ष में ही बहुत ही प्राचीन काल से होता आ रहा है। फ्रान्सीसी लेखक रेवलएट का कहना है कि चेक और बैंक नोट बेबीलोनिया में ईसा के ६०० वर्ष पूर्व भी प्रचलित थे। किन्तु बैंकिंग शब्द का प्रयोग पहिले-पहल शायद इटली में ही मध्य काल में वेनिस के बैंक की स्थापना के साथ ही हुआ था। इस समय उस देश में बहुत से गण राज्य (city states) थे, जो आपस में लड़ा करते थे। सन् ११७१ में ऐसा हुआ कि वेनिस का राज्य अपने पड़ोसी राज्यों के साथ युद्ध में फँसे रहने के कारण एक बड़े आर्थिक संकट में पड़ गया। जब परिषद् (Grand

Council) के सामने और कोई चारा न रहा तब उसने प्रत्येक नागरिक से उसकी सम्पत्ति का एक प्रतिशत अनिवार्य ऋण के रूप मे माँगा। इस पर पाँच प्रतिशत वार्षिक व्याज भी रखा गया। ऋण-दाताओं को व्याज देने और ऋण पत्रो की लेवा-वेची का प्रबन्ध करने के लिये कमिश्नरो की भी नियुक्ति की गई। इटालियन भाषा मे ऐसे ऋण के लिए 'मोन्टे' (Monte) नामक एक शब्द है। 'मौन्टे' के हिन्दी अर्थ पहाड है। वास्तव मे इस ऋण से जो द्रव्य एकत्रित हो गया था वह पहाड की ही तरह दिखाई पड़ता था। 'मौन्टे' के लिये ज्वाइन्ट स्टाक फण्ड (Joint Stock Fund) भी प्रयोग मे आता था। ज्वाइन्ट स्टाक फण्ड के हिन्दी अर्थ हैं सम्मिलित पूँजी कोष। वास्तव मे ऋण की रकम सम्मिलित पूँजी तो थी ही। इस समय इटली के एक बहुत बडे भाग पर जर्मनी का अधिकार था। अत, वहाँ पर 'मोन्टे' का जर्मनी पर्यायवाची शब्द बैंक (Banck) भी प्रयोग म आने लगा। धीरे-धीरे इटली वाले इसे बैंको (Banco), फ्रान्स वाले बैंके (Banke) और अन्त मे अङ्गरेज बैंक (Bank) कहने लगे। वेनब्रिग के लेखो से, जिनम उसने वेनिस के सरकारी ऋणो का वेनिस के तीन बैंको (Bankes) से सकेत किया है, यह पता लगता है कि अङ्गरेज लेखक सत्रहवीं शताब्दी मे भी बैंके (Banke) शब्द का ही प्रयोग करते थे। ऐसे बैंक बाद मे इटली के अन्य नगरो मे भी स्थापित हो गये थे। इनमे मिलन का बैंक, फ्लारेन्स का बैंक और जेनोआ का सेन्ट जार्ज बैंक, इत्यादि थे। क्रामवेल के समय इगलिस्तान मे भी उपर्युक्त परिस्थितिया मे ही एक बैंक की स्थापना करने के लिये एक प्रस्ताव किया गया था, किन्तु जैसा हमे अगले अध्याय के अध्ययन से पता चलेगा, यह सन् १६६४ के पहिले सफलीभूत नहीं हो सका। इस वर्ष ऐसी ही परिस्थितियो मे जिन्होने वहाँ की सरकार को ऋण दिया था उन सबो का एक बैंक "बैंक आफ इगलैण्ड" के नाम से बना और उसे सरकार से एक वार्षिक आय दी जाने लगी।

इस शब्द की उत्पत्ति एक अन्य तरह से भी अनुमानित की जाती है। इसके अनुसार ऐसा कहा जाता है कि इस शब्द की उत्पत्ति 'बैंक' शब्द से है जिसका अर्थ एक ऐसी बैञ्च है जिस पर इटली के महाजन अपने सामने भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्राये यह दिखलाने के लिए रखते थे कि वे उन

व्यवसाय करते हैं। किन्तु मकलियड अपनी पुस्तक 'बैंकिंग के सिद्धान्त और उनके प्रयोग' (Banking Theory and Practice) में इस विचार का बुरी तरह से खण्डन करता है। उसका कहना है कि यह उत्पत्ति बिल्कुल भ्रमोत्पादक है। यदि ऐसा था तो यह महाजन मध्यकाल में बन्चियरी (Bencheiri) क्यों नहीं कहे गये ? उसने अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिये अन्य कई लेखकों द्वारा दिये गये प्रमाण भी दिये हैं। अन्त में वह कहता है कि यह विद्वान् लेखक बहुत ही ठीक कहते हैं। बैंक का वास्तविक अर्थ एक ढेर अथवा पहाड़ है और यह शब्द बहुत से लोगों द्वारा एकत्रित किये गये एक सम्मिलित कोष का द्योतक है।

बैंकिंग की परिभाषा

बैंक अथवा बैंकर शब्द की अनेक परिभाषायें* होते हुये भी विचित्रता तो इस बात की है कि आज तक उसकी कोई ऐसी सन्तोषजनक परिभाषा नहीं बनी है जो सर्वमान्य हो। इसका एक

*Definitions by eminent authorities on the subject —

(1) The word bank expresses the business which consists in effecting on account of others receipts and payments, buying and selling either money of gold and silver or letters of exchange and drafts, public securities and shares in industrial enterprises—in a word—all the obligations whose creation has resulted from the use of credit on the part of states and societies and individuals—*Gaulter*

(2) No one and nobody corporate and otherwise can be a banker who does not (*i*) take deposit accounts, (*ii*) take current accounts, (*iii*) issue and pay cheques drawn upon himself (*iv*) collect cheques crossed and uncrossed for his customers—and it might be said that even if all the above functions are performed by a person or body corporate, he or it may not be a banker or bank unless he fulfils the following conditions (*i*) banking is his or its known occupation, (*ii*) he or it must profess to be a banker or bank and the public take him or it as such, (*iii*) has an intention of earning by so doing, (*iv*) this business is not subsidiary—*John Pagel*

मात्र कारण यही है कि बैंकिंग मे अनेक प्रकार के कार्य सम्मिलित हैं, जिससे उन सब का एक परिभाषा के अन्तर्गत लाना असम्भव सा है। अधिकाश देशों मे तो यह विधानत निर्धारित ढङ्ग से ही किया जाता है जिससे इसके वैधानिक अर्थ मे लेश मात्र भी सन्देह नहीं रह जाता है। किन्तु जितने लोग अथवा जितनी संस्थाये यह काम करती हैं वे सब विधान की पकड मे नही आतीं। हमारे ही देश मे बैंकिंग कम्पनी की एक परिभाषा सन् १९३६ के कम्पनी विधान की २७७ वी धारा में दी गई थी किन्तु रिजर्व बैंक आफ् इंडिया ने इस बात की अनेक शिकायते की थी कि बहुत से बैंक उस धारा के अन्तर्गत दिये हुए काम न करने के कारण उन्हें अपने सम्बन्ध मे, जो सूचनाये उसे देनी चाहिये, नहीं देते थे। यही कारण था कि सन् १९४२ में उक्त धारा में निम्न आशय का एक संशोधन जोड़ा गया था—'यदि कोई कम्पनी अपने नाम के साथ बैंक अथवा बैंकिंग शब्द प्रयोग करती है तो चाहे उसके यहाँ चालू खातों में द्रव्य जमा किया जाता हो अथवा नहीं वह बैंकिङ्ग कम्पनी समझी जायगी।' संयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे बैंकों को संघ सरकार से अथवा किसी स्टेट सरकार से एक अधिकार-पत्र प्राप्त करना पड़ता है साथ ही उनके कार्य भली भाँति बता दिये गये हैं और उन्हे उनको विधानतः निर्धारित ढङ्ग पर करने के लिये बाध्य किया जाता है। स्थान-स्थान पर ऐसे निरीक्षक नियुक्त हैं जो उनकी

---

(3) A banker or bank is a person, firm or company, having a place of business where credits are opened by the deposit or collection of money or currency subject to be paid or remitted upon draft, cheque or order or where money is advanced or loaned on stocks, bonds, bullion and bills of exchange and promissory notes are received for discount and sale—*Findlay Shirras*

(4) Bank is an establishment which makes to individuals such advances of money or other means of payment as may be required and safely made and to which individuals entrust money or means of payment when not required by them for use—*Kinley*

(5) A banker is one who, in the ordinary course of his business, honours cheque drawn upon him by persons from and for whom he receives money on current account—*Dr H L Hart.*

क मानी जा सकती है। किन्तु अन्य देशो मे विशेपतया यूरोपीय शों मे, जहॉ चेकों का इतना चलन नहीं है, कोई अन्य काम कर यह परिभापा बनानी पड़ेगी। फ्रासीसी लेखक बैङ्क शब्द की अपनी रिभापाओ मे बिलो पर अथवा अन्य प्रकार से ऋण देने पर अधिक महत्व ते हैं।

एक अन्य बात भी है जिसे कभी भी नही भूलना चाहिये और वह यह कि बैङ्क बिलों पर अथवा अन्य प्रकार से केवल उतना ही ऋण देने की क्षमता नही रखते जितना उनके यहाँ जमा होता है। सत्य तो यह है कि वह ऋणदाताओं और ऋण लेनेवालो के बीच मे केवल मध्यस्थ ही नही हैं और यदि कोई परिभाषा ऐसा बताती है तो वह सन्तोपजनक नहीं ठहर सकती है। लन्दन के सर्राफो ने जो इगलेण्ड के सर्वप्रथम महाजन (Bankers) थे अपनी उन्नति के प्रारम्भ ही म यह बात समझ ली थी कि उनके यहाँ जितना द्रव्य जमा किया जाता है उससे कई गुना अधिक वह ऋण दे सकते हैं। वास्तव में यही बैंकिङ्ग के व्यवसाय की विशेपता है, यद्यपि बहुत बडे बडे लेखक भी कभी-कभी यह बात भूल जाते ह। वे जितना द्रव्य जमा हो उससे अधिक ऋण देने के सर्वथा विरुद्ध रहे है। वेनिस, एम्सटर्डम और हैम्बर्ग के बैंक उनमे जमा किए गये द्रव्य की सीमा के अन्दर ही अपने नोट निकालते थे। मिल ने लिखा है कि नोटो का चलन राष्ट्र के लिये हितकर है, किन्तु उन्हे जमा की हुई रकम से अधिक रकम मे निकालना एक प्रकार की ठगी है। वास्तव मे यदि आज कल का बैंकिग का सिद्धान्त देखा जाय तो वह यही है और यदि मिल की बात मानी जाय तो ठग और ठगी सभी जगह प्रचलित है। बैंकिङ्ग की सफलता तो उपलब्ध साधनो को कई गुना बढा देने पर ही निर्भर है। इस सम्बन्ध की सारी स्थिति केवल इसी वाक्य से स्पष्ट हो जाती है कि दूसरो का द्रव्य और महाजनों की बुद्धि (The Bankers' brain and others' money) यही बैंकिङ्ग का व्यवसाय है।

अभी यहाँ पर कुछ अन्य भ्रमोत्पादक विचारो का स्पष्टीकरण करना भी आवश्यक है। प्रथम तो यह है कि ऋण देने का काम बैंकिङ्ग का मुख्य काम अवश्य है किन्तु केवल यही उसके लिये यथेष्ट नही है। अत, हम यह कह सकते हैं कि ऋणदाता केवल ऋणदाता होने पर ही बैंकर नहीं कहे जा सकते हैं। बैङ्कर कहे जाने के लिये यह आवश्यक है कि वे द्रव्य जमा के

रूप में भी लें क्योंकि बैंकिंग व्यवसाय में द्रव्य जमा के रूप में लेना और ऋण देना दोनों सम्मिलित हैं। अकेले एक से बैंकिंग का व्यवसाय पूरा नहीं हो सकता है। दूसरी बात यह है कि साख (Credit) के उत्पादन का, जो बैंकिंग के कार्य का एक मुख्य अंग है, यह अर्थ नहीं है कि उसके लिये नोट चलाने का अधिकार होना आवश्यक है। वास्तव में इसी भ्रमपूर्ण विचार के कारण इंगलैण्ड में सम्मिलित पूँजी की बैंकिंग की बहुत दिनों तक उन्नति नहीं हो सकी। बैंक आफ इंगलैण्ड के अधिकार-पत्र के परिवर्तन के सम्बन्ध में सन् १७०८ में जो विधान बना था उसने उस बैंक को छोड़कर अन्य किसी ऐसे बैंक को, जो छः व्यक्तियों से अधिक को मिलाकर बना हो नोट चलाने का काम करने की मनाही कर दी थी। किन्तु उस समय के लोगों का यह विश्वास था कि नोट चलाने का काम छोड़कर कोई बैंक बैंकिंग का काम कर ही नहीं सकता है। अतः, उपर्युक्त मनाही के कारण उस देश में बहुत दिनों तक सम्मिलित पूँजी के किसी अन्य बैंक की स्थापना हो ही नहीं सकी। हाँ, सन् १८३३ के उस विधान में जो बैंक आफ् इंगलैण्ड के उस वर्ष के अधिकार-पत्र के परिवर्तन के सम्बन्ध में बना था, इस बात के स्पष्टीकरण के बाद कि नोट चलाने का काम छोड़कर भी बैंकिंग का व्यवसाय किया जा सकता है, लन्दन में सम्मिलित पूँजी के बैंक स्थापित किये गये। तब इन्होंने जमा लेने और चेकों पर भुगतान देने के उस काम की उन्नति की जिसकी उन्नति स्वयं का काम करनेवाले सर्राफ महाजन बहुत दिनों से करते आ रहे थे। कहना न होगा कि वहाँ पर चेकों का चलन आजकल नोटों के चलन से भी कहीं अधिक है। लन्दन के बाहर सम्मिलित पूँजी के बैंकों की स्थापना सन् १८२६ ही से आरम्भ हो चुकी। उस वर्ष इस बात की घोषणा की जा चुकी थी कि वे लन्दन से ६५ मील के व्यास क्षेत्र को छोड़कर अन्य किसी भी क्षेत्र में अपने नोट चला सकते हैं।

उपसंहार

उपसंहार में हम यह कह सकते हैं कि बैंकिङ्ग शब्द पहिले-पहिल बारहवीं शताब्दी में ही प्रयोग में आया। हाँ, बैंकिङ्ग का व्यवसाय किसी न किसी रूप में अवश्य ही बहुत ही प्राचीन काल से होता आ रहा था। पहिले-पहिल यह शब्द सम्मिलित कोष का आशय व्यक्त करने के लिये ही प्रयोग में लाया गया था। बाद में द्रव्य जमा करने और

ण देने के काम, जो आधुनिक बैंकिंग के व्यवसाय के मुख्य अङ्ग माने ते हैं, लन्दन के सर्राफ महाजनों द्वारा प्रोत्साहित किये गये। किंतु वे द्रव्य मा करनेवालों और ऋण लेनेवालों के बीच के केवल मध्यस्थ ही नही वरन् जितना द्रव्य जमा के रूप मे पाते थे उतने से कही अधिक द्रव्य ण के रूप मे देते थे। चेकों का प्रयोग भी अवश्य ही उन्हीं ने प्रारम्भ या था किंतु इसकी उन्नति बाद मे लन्दन के सम्मिलित पूँजीवाले बैंको रा ही हुई। बात यह थी कि वे अपने नोट तो चला ही नहीं सकते थे, त., उन्होंने अपनी चेक चलाने के लिये उत्तरोत्तर प्रयत्न किये और वे समें सफल भी हो सके। उस समय से इसने इतना महत्व पा लिया है कि ब तक बैंक शब्द की परिभाषा मे इसके ऊपर जोर नहीं डाला जाता, वह रिभाषा सन्तोषजनक नहीं मानी जाती। किन्तु यह उसकी परिभाषा के लिये सब जगह आवश्यक नही है। यह केवल इगलैण्ड और उन सभी देशों मे बनी हुई परिभाषाओं के लिये आवश्यक है जिनके यहाँ बैंकिंग की उन्नति इगलैण्ड की बैंकिंग की उन्नति के सदृश्य ही हुई है। इससे यह स्पष्ट है कि बैंक शब्द की कोई भी परिभाषा सब देशो के लिये और सब समय के लिये उपयुक्त नहीं हो सकती।

प्रश्न

१ 'बैंक' शब्द के क्या अर्थ है? क्या इससे केवल बैंको के जमा प्राप्त करने और ऋण देने के कार्यो का ही बोध होता है?

२ आपके विचार से 'बैंक' शब्द की क्या उत्पत्ति है? क्या इसकी उत्पत्ति और इसका व्यवसाय दोनो समकालीन है?

३. 'बैंक' शब्द की परिभाषा बताइये। आपकी परिभाषा बनाने के सम्बन्ध की कौन-कौन सी कठिनाइयाँ है?

४. निम्नाङ्कित की आलोचना कीजिये —

(अ) 'ऋणदाता बैंकर नहीं है'। (ब) 'बैंकर ऋणी और ऋणदाता के बीच का मध्यस्थ है।' (स) 'बैंकिंग का व्यवसाय नोट चलाने का अधिकार पाये बिना नही किया जा सकता।' (द) 'बैंक का व्यवसाय केवल द्रव्य को साख पत्रो मे और साख पत्रो को द्रव्य मे परिवर्तित करने का ही है'।

अध्याय २

अंग्रेजी बैंकिंग का इतिहास और उसकी उन्नति

वर्तमान दशा की ओर विशेषकर भारतवर्ष की बैंकिंग के अंग्रेजी बैंकिंग पर निर्भर होने के कारण यह अत्यावश्यक हो गया है कि हम अंग्रेजी बैंकिंग के इतिहास और उसकी उन्नति का अध्ययन थोड़े ही विशेष रूप से करें। अतः इस अध्याय में हम इसी पर ध्यान देंगे।

प्रारम्भ

इंगलैण्ड में आधुनिक बैंकिंग की नींव तो लोम्बार्डी के प्रसिद्ध बैंकरों ने ही सर्वप्रथम उस समय डाली थी जिस समय उन्होंने लन्दन के उस स्थान पर बैंकिंग चलाया था जिसे आज भी हम लोम्बार्ड स्ट्रीट के नाम से पुकारते हैं। हाँ, कुछ काल बाद दूसरे स्थानवाले राजाओं ने दिन-प्रतिदिन उनके कार्यों पर जो बन्धन लगाये थे उनके कारण वे बहुत अधिक दिनों तक नहीं ठहर सके। किन्तु जैसा वाकर ने कहा है लोम्बार्डों ने यद्यपि इंगलिस्तान छोड़ दिया, किन्तु उस व्यापार और बैंकिंग का उत्तराधिकार, जो उन्होंने वहां चालू किया था उस देश को सदा के लिये धनी बनाता रहा। जो हो, आधुनिक बैंकिंग तो इंगलैण्ड में केवल सन् १६४० के बाद ही उस समय प्रारम्भ हुई जब वहां के सर्राफ महाजनों ने पिछले अध्याय में दी हुई परिस्थितियों के कारण जनता का द्रव्य जमा के रूप में लेना प्रारम्भ कर दिया। उसके स्थान में पहिले तो वे ऐसी रसीदें देते थे जिनमें उन्हें माँग पर वापिस देने का वचन दिया रहता था। कहना न होगा कि इस जमा में पाये हुये द्रव्य से वे अनेक प्रकार के लाभ कमाते थे। उस समय की मुद्राओं में उनके हाथ से ढाले जाने के कारण धातु की अवश्य ही कुछ कमी और अधिकता होती थी। बस, ये सर्राफ महाजन इसे खूब समझते थे। अतः, वे जमा में पाये हुये द्रव्य में से वह मुद्रायें छाँटकर निर्यात (Export) करके लाभ उठा लेते थे, जिनमें अधिक धातु होती थी। इसके अतिरिक्त वे उसे ऋण में देकर और व्यापारियों के विनिमय बिल डिस्काउन्ट करके अर्थात् समय से पहिले उनका उस समय का मूल्य देकर ब्याज भी कमाते थे।

उनके साधनो के कारण उनके पास धीरे-धीरे बहुत से धनी ग्राहक भी आने लगे। क्रौमवेल की और अन्य राजाओं की सरकार भी उनसे ऋण लेने लगीं। अत यह व्यवसाय लाभदायक होने के कारण उनमें द्रव्य जमा के रूप मे लेने की प्रतियोगिता बढने लगी, जिससे उन्होने उस पर व्याज देना भी प्रारम्भ कर दिया। धीरे धीरे उनकी रसीदें नोटों की तरह चलने लगी और कुछ समय मे ही वे सुविधाजनक रकमो मे निकाली जाने लगी। सर्राफ महाजन पास बुको का भी प्रयोग करते थे। ये उनके लेजरो से दिन-प्रतिदिन तैयार की जाती थी। द्रव्य जमा करनेवाले जब चाहे तब इन्हें मिलान करने के लिये मँगवा लेते थे और इन्हीं के आधार पर अपने भुगतान के ड्राफ्ट (Draft) दे दिया करते थे। कुछ समय के उपरान्त ये ड्राफ्ट निर्धारित रकमो मे छपने लगे और द्रव्य जमा करनेवालो को उनके भुगतान करने के लिये दिये जाने लगे। वे इन पर हस्ताक्षर करके उन व्यक्तियों को दे देते थे जिन्हे उन्हे भुगतान देना होता था। इस तरह से उन्हे हम आज कल की चेको के प्रतिरूप ही कर सकते हैं। सर्राफ महाजनो द्वारा चलाई गई यह प्रणाली धीरे-धीरे उनके अन्य धनिक पडोसियो द्वारा भी अपनाई जाने लगी। अधिकाश मे ये शराब के अथवा कपडे के ऐसे व्यवसायी थे, जिनका जनता मे यथेष्ट मान था और जो अपनी अच्छी साख के लिये भी कुछ प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। किन्तु उन्होंने चेको का प्रयोग अधिक बढाने का प्रयत्न नही किया। वास्तव मे बैंक आफ इगलण्ड के नोट तो केवल लन्दन मे ही बहुत चालू थे। उस समय उसकी शाखाये लन्दन के बाहर तो थी ही नही, और न रेल इत्यादि साधन ही ऐसे थे कि जिनसे उनके नोट अन्य स्थानो मे प्रचलित हो सकते। अत इन धनी व्यवसायियो के नोट उनके अपने अपने स्थानों मे चलते थे और उन्हे चेको का प्रयोग बढाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। सत्य तो यह है कि पहिले तो लन्दन के सर्राफ महाजनो ने और फिर लन्दन के सम्मिलित पूँजीवाले बैंको ने चेको का प्रयोग खूब बढाया।

बैंक आफ इंगलैण्ड की संस्थापना

इस बात का सकेत तो पहिले अध्याय मे ही किया जा चुका है कि यद्यपि इटली के बैंको की तरह ही इगलैण्ड मे भी एक बैंक की संस्थापना करने का प्रस्ताव तो क्रौमवेल के ही काल मे किया जा चुका था,

किन्तु उसकी सस्थापना केवल सन् १६६४ में ही हो गयी। तृतीय विलियम के सिंहासनारूढ होने पर महासभा (Parliament) के अधिकार बढ गये और उसका राष्ट्रीय आय-व्यय पर भी नियन्त्रण हो गया। इसका सक्षेप में यह फल हुआ कि जो राजकीय मर्यादा पहिले के राजाओं के दुर्व्यवहार के कारण नष्ट हो गई थी वह फिर से स्थापित हो गई। मन्त्रि मण्डल (Ministry) को द्रव्य की अति आवश्यकता थी और जन-सम्मति उसे पूरा करने के पक्ष में थी। इस सब का यह परिणाम हुआ कि विलियम पेटरसन की वह योजना जिसमें कि वह जनता से १२ लाख पाउण्ड एकत्रित करके राज्य को देना चाहता था, सब को बहुत पसन्द आई और बैंक आफ इंगलैण्ड की सस्थापना का बिल महासभा से पास होकर २५ अप्रैल, सन् १६६४ को राजा द्वारा स्वीकृत भी हो गया। विज्ञापन के दस दिनों के अन्दर ही पूरा द्रव्य मिल गया और ऋण-दाताओं की बैंक आफ इंगलैण्ड के नाम से एक सस्था बन गई। इस सस्था को उपर्युक्त ऋण पर सरकार की ओर से ८ प्रतिशत का वार्षिक व्याज और ४००० पाउण्ड प्रतिवर्ष प्रबन्ध के लिये मिलने लगे। इसे १२ लाख पाउण्ड तक के नोट चलाने की भी आज्ञा प्रदान कर दी गई।

प्रतियोगी बैंकों पर नोट चलाने के प्रतिबन्ध और उनका परिणाम

बैंक आफ इगलैण्ड की सफलता महासभा के उदार दल (Whigs) की सफलता थी। अत, जब शक्ति अनुदार दल (Tories) के हाथ में आई तो उसने उसी प्रकार के एक भूमि बैंक (Land Bank) की सस्थापना के लिये प्रस्ताव पास कराया। किन्तु वह सफल नहीं हो सकी। अस्तु बैंक आफ इंगलैण्ड के किसी प्रतियोगी बैंक की पुनर्स्थापना रोकने के लिये उदार दलवालों ने पुन शक्ति प्राप्त करने पर सन् १७०८ में उक्त बैंक के अधिकार-पत्र के परिवर्तन के समय इस आशय का एक विधान बनाया कि जब तक उक्त बैंक आफ इगलैण्ड काम करता रहे, इस बैंक के अतिरिक्त कोई भी ऐसा बैंक जिसमें बैंक जिसमें छ से अधिक व्यक्ति सदस्य हों अपने विनिमय बिल और प्रण-पत्र इगलैण्ड में छ महीने से पहिले माँगने पर द्रव्य देने की शर्त पर न चालू कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि लन्दन में और उसके

समीपवर्ती स्थानो में (उस समय बैंक आफ इगलेएड का आफिस केवल लन्दन मे ही था) नोट चलाने का एक मात्र अधिकार विधानत नही तो क्रियात्मक रूप से ही केवल बैंक आफ इगलैएड ही के हाथ मे रह गया। यह सत्य है कि छः से कम व्यक्तियो के बने हुये बैंक लन्दन में भी अपने नोट चला सकते थे। किन्तु बैंक आफ इगलैएड के नोट राज्य द्वारा भी स्वीकृत हो जाते थे। जिससे वे सर्राफ महाजनो के नोटो की अपेक्षा कहीं अधिक चालू थे। हॉ, लन्दन के बाहर अवश्य उनके नोट चलते थे। बैंक आफ इगलैएड के नोट सन् १८३३ मे विधानत ग्राह्य (Legal Tender) भी बना दिये गये। अत, यह स्पष्ट है कि सर्राफ महाजनो ने पहिले और अन्य सम्मिलित पूँजीवाले बैंको ने सन् १८३३ के बाद जब वे लन्दन से ६५ मील के व्यास क्षेत्र मे नोट न चला सकने के प्रतिबन्ध के साथ वहॉ पर स्थापित हुए, नोटों के स्थान पर चेको का प्रयोग बढाने के निरन्तर प्रयत्न किये। आवागमन के साधनो के उन्नत दशा में न होने के कारण बैंक आफ इगलैएड ने अपना दफ्तर सन् १८२५ तक केवल लन्दन मे ही रक्खा। अत, तब तक उसके नोट लन्दन से बाहर इतने परिमाण मे नही पहुँच सके कि वहॉ के महाजनो के नोट वहॉ पर न चल सके। अत वहॉ के महाजनो ने वहॉ पर चेको के प्रयोग के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया।

प्रतिबन्ध का संशोधन

सन् १८२६ के विधान ने नोट चलानेवाले सम्मिलित पूँजी के बैंको की सस्थापना की इस शर्त पर आज्ञा दे दी कि वे लन्दन मे और वहॉ से ६५ मील के व्यास क्षेत्र के अन्दर कहीं भी न तो अपने आफिस खोले और न नोट चलावे। इसके फलस्वरूप देश मे लन्दन के बाहर महत्वशाली बैंक खुल गये। सन् १८३३ में इन्हें लन्दन मे भी इस शर्त पर अपनी शाखाये खोलने की आज्ञा दे दी गई कि वे वहाँ पर अपने नोट न चलाये। इससे यह बैंक वहॉ भी खुल गये।

बैंक आफ इंगलैंड का सन् १८४४ का विधान

अब हम बैंक आफ इगलैंड के सन् १८४४ के उस विधान की ओर आते हैं जिसका अंग्रेजी बैंकिंग की उन्नति में एक बहुत बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इस विधान के पास होने के पहिले कुछ वर्षों से इंगलिस्तान की बैंकिंग

की अवस्था बहुत ही शोचनीय हो गयी थी। इसने अनेक जोखिमें (Crises) उठानी पड़ रही थीं और एक के बाद दूसरा महाजन अथवा अपना दिवाला निकालता चला जा रहा था जिससे उनके नोट प्रयोग में लानेवाली जनता की निरन्तर हानि हो रही थी। अतः, यह इस विधान के विरुद्ध हो गई थी जिसके कारण अधिकतर बड़ी पूँजीवाले बैंकों की स्थापना को प्रोत्साहन नहीं मिल रहा था। ऊपर लिखा जा चुका है कि सन् १८२६ के विधान के अनुसार लन्दन के बाहर नोट चलानेवाले और सन् १८३३ के विधान के अनुसार स्वयं लन्दन में भी नोट न चलानेवाले सम्मिलित पूँजी के बैंकों की संस्थापना की आज्ञा दी जा चुकी थी। वास्तव में यह [illegible]-वश थी। साथ ही बैंक आफ इंगलैंड को भी सौभाग्यवश बड़े-बड़े प्रान्तीय नगरों में अपनी शाखायें खोलने की और उनके द्वारा चालू करने की सफलता मिल चुकी थी और उसने ग्लाउसेस्टर, मैनचेस्टर तथा स्वानसी में अपनी शाखायें खोल भी ली थीं। इन सब बातों का एक मात्र उद्देश्य स्थानीय महाजनों के नोटों का चलन कम करना था। जो हो, सन् १८४४ के विधान में इसके लिये कुछ अन्त में स्पष्ट धारायें रख दी गईं। जहाँ तक नोटों के नियन्त्रण का प्रश्न था, इस समय दो विचार-धारायें चल रही थीं, (१) करन्सी की विचारधारा (Currency Principle) और (२) बैंकिंग की विचारधारा (Banking Principle) प्रथम के अनुसार केवल उतनी रकम के ही नोट चल सकते थे जितनी के मूल्य का सोना और चाँदी कोष में हो और दूसरे के अनुसार उनका परिमाण उतना हो सकता था जितने की सट्टेबाजी के लिये नहीं वरन् वास्तविक व्यापार के लिये आवश्यकता हो। बैंक आफ इंगलैंड का सन् १८४४ का विधान प्रथम विचारधारा के लोगों की जीत का द्योतक था। उसकी मुख्य-मुख्य धाराएँ निम्न आशय की थीं—

(१) बैंक कुल मिलाकर १४० लाख पाउण्ड के नोट साख पत्रों की जमानत पर चालू कर सकता था। कहना न होगा कि इस १४० लाख पाउण्ड की रकम में १, १०, १५, १०० पाउण्ड तो उस ऋण के ही सम्बन्ध के थे जो बैंक ने समय-समय पर[1] इंगलैंड की सरकार को दिये थे।

[1] बैंक सरकार को बराबर ऋण देती जाती थी। सन् १६९४ के १२ लाख पाउण्ड से बढ़कर इस समय तक यह १, १० १५, १०० पाउण्ड हो गया था।

(२) १४० लाख के मूल्य के उपर्युक्त नोटों के अतिरिक्त बैंक को अन्य नोट चालू करने का तभी अधिकार था जब उनके लिये उनके पास शत-प्रतिशत मूल्य का सोने और चाँदी[२] का सुरक्षित कोष हो। हाँ, चाँदी के कोष का मूल्य किसी समय भी सोने के कोष के मूल्य से चतुर्थांश से अधिक नहीं हो सकता था।

(३) यह विधान पास हो जाने के बाद केवल उन्हीं को[३] नोट चलाने का अधिकार रह गया जो छः मई सन् १८४४ को नोट चला रहे थे।

(४) बैंक आफ इंगलैण्ड को छोड़कर अन्य जो महाजन अथवा बैंक नोट चलाने का अपना उपर्युक्त अधिकार रखना चाहते थे उनके लिये यह आवश्यक कर दिया गया कि वे स्टाम्प कमिश्नर को यह सूचित करें कि २७ अप्रैल सन् १८४४ के पहिले १२ सप्ताहों के बीच में उनके चालू नोटों के मूल्य का क्या औसत[४] था। भविष्य में उसका ४ सप्ताहों का औसत उपर्युक्त औसत से अधिक नहीं हो सकता था।

(५) यदि कोई बैंकर अपने दिवालिया हो जाने के कारण अथवा चौथी धारा भङ्ग करने के कारण नोट चलाने का अपना अधिकार खो देता था तो फिर वह उसे कभी भी नहीं प्राप्त कर सकता था।

(६) यदि कोई बैंकर नोट चलाने का अपना अधिकार खो देता था बैंक आफ इंगलैण्ड उस खोये हुये अधिकार के दो-तिहाई मूल्य के नोट स्वयं अपने साख-पत्रों पर निर्धारित नोटों का परिमाण बढ़ाकर चला[५] सकता था।

(७) नोट चालू करने के अपने एकाधिकार के लिये और उन पर स्टाम्प लगने से मुक्त रहने के लिये बैंक को १,८०,००० पाउण्ड प्रति वर्ष सरकार को देना पड़ने लगा। १४०,००,००० पाउण्ड की रकम के अतिरिक्त अन्य नोट चलाने से बैंक को जो लाभ होता था वह सब भी उसे सरकार को देना पड़ने लगा। इसके लिये बैंक का नोट चलाने का और बैंकिंग के काम करने का ये दो भिन्न-भिन्न विभाग बनाये गये—(१) नोट प्रसार विभाग

---

[२] सन् १८२८ में चाँदी का सुरक्षित कोष ५५ लाख पाउण्ड का था। उस वर्ष से इसकी गणना साख-पत्रों की श्रेणी में की जाने लगी।

[३] उस समय इंगलैण्ड और वेल्स में इनकी संख्या २७९ थी।

[४] सब का औसत मूल्य ८६, ३१, ६४७ पाउण्ड था।

(Issue Department) और (२) बैंकिंग विभाग (Banking Department) इन दोनों विभागों का हिसाब-किताब भी अलग-अलग रखने लगा।

उपर्युक्त धाराओं का एक मात्र उद्देश्य महाजनों और सम्मिलित पूँजी के बैंकों का नोट चालू करने का अधिकार छीन लेना था। किन्तु इसमें बड़ा समय लगा और अन्तिम सफलता सन् १९२१ में फाक्स फाउलर कम्पनी के लायड्स बैंक से एकीकरण हो जाने पर ही मिली। हाँ, नोट करेन्सी अवश्य ही इससे बड़ी उन्नत अवस्था को प्राप्त हो गई।

सम्मिलित पूँजी के बैंकों के महाजनों का शोषण और पारस्परिक एकीकरण

जिस समय बैंक आफ इगलैण्ड का सन् १८४४ का विधान पास हुआ था उस समय इगलैण्ड में निम्न प्रकार के बैंक काम कर रहे थे —

(१) बैंक आफ इगलैंड—इसका मुख्य दफ्तर लन्दन में और दूसरी शाखाएँ प्रान्तीय नगरों में थीं। इसके नोट दिन-प्रतिदिन प्रचलित हो रहे थे।

(२) लन्दन के सराफ महाजन—इनको नोट चलाने का सीमित अधिकार था। किन्तु ये विशेषतः चेक करन्सी प्रोत्साहित कर रहे थे।

(३) लन्दन के सम्मिलित पूँजी के बैंक—इन्हें नोट चलाने का अधिकार नहीं था। हाँ, ये भी चेक करन्सी प्रोत्साहित कर रहे थे।

(४) लन्दन के बाहर के महाजन—इन्हें नोट चलाने का सीमित अधिकार था।

(५) लन्दन के बाहर के सम्मिलित पूँजी के बैंक—इन्हें भी नोट चलाने का सीमित अधिकार था।

कुछ समय तक तो उपर्युक्त सभी महाजन और बैंक काम करते रहे। किन्तु बाद में उनमें एकात्मता का भाव बढ़ा और वे शोषण (Absorp-

---

* इस धारा के अनुसार बैंक आफ इगलैंड के साख-पत्रों पर निर्धारित नोट का परिमाण बराबर बढ़ता गया और अन्त में सन् १९२१ में जब अन्तिम महाजन और बैंक का यह अधिकार छीना गया, यह रकम १,९७,५०,००० पाउण्ड हो गई थी।

-tion) और एकीकरण (Amalgamation) के द्वारा अपनी संख्या तो कम करते गये लेकिन शाखायें फैलाते गये। इस सम्बन्ध की जेम्स डिक की तालिका, जिसे साइक्स ने भी अपनी पुस्तक मे उद्धृत किया है, बड़ी ही रोचक है :

वर्ष	बैंकों की संख्या	दफ़्तरों की संख्या	एक दफ़्तर द्वारा सेवित व्यक्तियो की संख्या
१८८३	३१७	२,३८२	११,३१५
१८६१	२६१	३,२३१	८,६१५
१६०१	१७१	४,८७२	६,६६७
१६११	६६	६,४१३	५,६३०
१६२१	४०	८,०२२	४,७२२

यह अक इगलैण्ड और वेल्स के हैं और इनमे स्काच बैंक तो सम्मिलित हैं किन्तु अन्य विदेशी बैंकों की लन्दन स्थित शाखाये सम्मिलित नहीं हैं। वर्तमान समय मे समस्त देश मे एक दर्जन से अधिक बैंक नहीं हैं।

जिन कारणों से एकाग्रता का भाव बढ़ा उनका सकेत भी साइक्स ने अपनी पुस्तक मे किया है। उसका कथन है कि लन्दन के सम्मिलित पूँजी के बैंकों ने लन्दन के बाहर के महाजनो का शोषण तो लन्दन के बाहर अपनी शाखाये बढ़ाने के उद्देश्य से और सम्मिलित पूँजी के प्रान्तीय बैंकों ने लन्दन के सर्राफ महाजनो का शोषण लन्दन मे अपनी शाखाये खोलने के उद्देश्य से किया। साथ ही बड़े-बड़े बैंकों का पारस्परिक एकीकरण अपने को शक्तिशाली बनाने और पारस्परिक प्रतियोगिता दूर करने के लिये हुआ।

कहीं-कहीं ऐसी शंका की गई थी कि कहीं इस एकाग्रता का परिणाम बैंकिंग के व्यवसाय मे ऐसा एकाधिपत्य उत्पन्न कर देने का न हो कि वह जनता के लिये हानिकर सिद्ध हो। किन्तु ऐसा नहीं हुआ, वरन् इसके विपरीत इसके कार्य-सचालन मे एकरूपता आ गई जिससे बैंकिंग का व्यवसाय एक बहुत ही कुशल ढङ्ग से होने लगा और उससे सुरक्षा बढ़ गई। फिर, इससे एक लाभ और हुआ और वह यह है कि इनकी संख्या बहुत कम होने

के कारण जब कभी भी सारे देश में एक प्रकार की ही नीति पालन करने की आवश्यकता पड़ी तब इन्होंने शीघ्र ही एक नीति परस्पर तय कर ली जिससे जनता बहुत से आर्थिक संकटों का बड़ी ही आसानी से सामना कर सकी।

बैंक आफ इंगलैण्ड का राष्ट्रीयकरण

आजकल लोगों का जो झुकाव समाजवाद की तरफ हो गया है उसके कारण मजदूर दल के इंगलिस्तान में शक्ति ग्रहण करने के समय से ही बैंक आफ इंगलैण्ड के राष्ट्रीयकरण की माँग उत्तरोत्तर बढ़ती गई। अब, १८ फरवरी सन् १९४६ के एक विधान से इसे पूरा किया गया। उक्त विधान में मुख्यतः निम्न बातें दी हुई हैं :—

(१) बैंक के पूँजी पत्र (Capital Stocks) तत्काल ही राज कोष के नाम हस्तान्तरित कर दिये जायँ।

(२) इंगलैण्ड का राजा बैंक के गवर्नर, डिप्टी गवर्नर और अन्य संचालक नियुक्त करे।

(३) राज-कोष के अधिकारी बैंक के गवर्नर के साथ मन्त्रणा करके उसका प्रबन्ध एक संचालक-मण्डल को सौंप दें।

(४) बैंक को इस बात का अधिकार है कि वह राज-कोष के अधिकारियों की इच्छा से किसी भी बैंक से कोई भी सूचना माँग ले और उसे किसी भी प्रकार की आज्ञा दे दे।

हरजाने की योजना के अनुसार बैंक के हिस्सेदारों को उनके १०० पाउण्ड के प्रत्येक हिस्से के लिये ४०० पाउण्ड का एक ३ प्रतिशत वार्षिक ब्याज का ऐसा सरकारी साख-पत्र दिया गया जिसका भुगतान राज-कोष के अधिकारी ५ अप्रैल सन् १९६६ के बाद जब चाहें तब उसका पूरा मूल्य देकर कर सकते हैं।' हिस्सेदारों को इस प्रकार अपने हिस्सों पर वह १२ प्रतिशत ब्याज मिल रहा है जो उन्हें, जिस समय बैंक का राष्ट्रीयकरण हुआ या उसके पिछले २० वर्षों से मिल रहा था। बैंक राज-कोष को उसके स्टाकों पर कोई लाभ नहीं देता। हाँ, उसे उसको उतनी रकम अवश्य देनी पड़ती है जो राज कोष उपर्युक्त सरकारी साख-पत्र पर ब्याज की तौर पर देता है। हिसाब की दृष्टि से तो इस नई व्यवस्था में केवल एक बहुत ही सीधे-सादे लेख का परिवर्तन हुआ है किन्तु वास्तव में बैंक को राज-

कोष के अधिकारियों की इच्छा से, अन्य बैंको से जो किसी प्रकार की भी सूचना माँगने और किसी प्रकार की भी आज्ञा देने का अधिकार मिल गया है वह सरकार द्वारा जब भी वह चाहे तभी किसी भी राजनैतिक अथवा निजी कारणों से दुरुपयोग में लाया जा सकता है। इतना अवश्य है कि इस सम्बन्ध का बिल जब महासभा द्वारा पास किया जा रहा था तब उसमें सुरक्षा के आशय से कुछ संशोधन कर दिये गये थे जिनसे यह स्पष्ट हो गया है कि (अ) बैंकों से पृथक्-पृथक् खातो की स्थिति नहीं पूछी जा सकती, और (ब) कार्यरूप मे यह अधिकार राज कोष के अधिकारियो के कहने से नहीं; बल्कि बैंक जब उचित समझे तभी प्रयोग मे लाया जा सकता है।

प्रश्न

(१) सर्राफ महाजनो के व्यावसायिक कामो का एक संक्षिप्त विवरण दीजिये और यह बताइये कि उन्होने नोटो के चलन की अपेक्षा चेको के चलन पर क्यों अधिक जोर दिया ?

(२) उस परिस्थिति का वर्णन कीजिये जिसमे बैंक आफ इगलैण्ड की संस्थापना हुई थी। इसे लन्दन मे नोट चलाने का एकाधिकार कैसे प्राप्त हो गया ?

(३) बैंक आफ इगलैण्ड का सम्मिलित पूँजी की बैंकिंग का एकाधिकार कब और कैसे छिन गया ?

(४) किन परिस्थितियो मे बैंक आफ इगलैण्ड का सन् १८४४ का विधान बना ? उसकी मुख्य-मुख्य धाराएँ बताइये और यह समझाइये कि उनका क्या प्रभाव पडा ?

(५) सन् १८४४ का विधान पास होने के समय किन-किन प्रकार के बैंक इगलैण्ड मे काम कर रहे थे ? बाद मे उनका क्या हुआ ?

अध्याय ३

बैंकों के भेद

आज-कल के हमारे आर्थिक जीवन के प्रत्येक भाग मे विशिष्टता (Specialisation) की जो लहर दिखाई दे रही है वह बैंकिंग में भी

भली-भाँति व्यक्त है। अत, भिन्न भिन्न व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के बैंक भी खुल गये हैं। किन्तु इसके यह अर्थ नहीं है कि यह विशिष्टता हर जगह पूर्ण रूप से सफल हो गई है और भिन्न भिन्न प्रकार के बैंकों के कार्यों में पूर्ण भिन्नता है। हमें ऐसी अनेक संस्थायें मिलेंगी जो बैंकिंग के साथ साथ व्यापार भी करती हैं और एक प्रकार की बैंकिंग तो दूसरे प्रकार की बैंकिंग के साथ बहुधा ही प्रचलित है।

१ व्यापारिक बैंक (Commercial Banks)

बैंकों में सबसे महत्त्वपूर्ण व्यापारिक बैंक हैं। यहाँ तक कि जब भी हम किसी विशेषण का प्रयोग किये बिना ही 'बैंक' शब्द का प्रयोग करते हैं तब वह व्यापारिक बैंक का ही द्योतक समझा जाता है। इसके अतिरिक्त हम अधिकांश में व्यापारिक बैंकों के ही सम्पर्क में आते हैं। जैसा कि इसके विशेषण से विदित हो जाता है यह बैंक विशेषत व्यापारियों से ही सम्बन्ध रखता है। यह उनकी चालू पूँजी जमा के रूप में धारण करता है और उनके व्यापारिक लेन-देनों के सम्बन्ध की अस्थायी आवश्यकताओं के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करता है। इसके यहाँ जो रकम जमा की जाती है वह माँग पर देय होती है। अत, यह लम्बी अवधि के लिये आर्थिक सहायता नहीं प्रदान कर सकता। इससे इस प्रकार के बैंक का यह नियम रहा है कि वह लम्बी अवधि का ऋण नहीं देता और न आय पर लगाने के लिये पूँजी की ही व्यवस्था करता है। साथ ही यह व्यापार के लिये भी स्थायी तौर पर पूँजी नहीं देता वरन् व्यापार करने में जो कभी-कभी पूँजी की कमी पड़ जाती है अथवा उसमें द्रव्य लगाना पड़ता है उसकी यह व्यवस्था कर देता है। इसे व्यापार के लिये ऋण लेनेवालों और सट्टे के लिये ऋण लेनेवालों के बीच में भी भेद करना पड़ता है। एक व्यापारिक बैंक व्यापार के लिये ऋण लेनेवालों को तो प्रोत्साहन देता है और सट्टे के लिये ऋण लेनेवालों को रोकता है। यह किसी दशा में भी जोखिम नहीं उठा सकता और न अवसरवादी ही हो सकता है। इसके यहाँ द्रव्य जमा करनेवालों का इस पर विश्वास रहता है और वह विश्वास इसे उनकी माँग पूरा करके निबाहना पड़ता है, यहाँ तक कि यदि यह उनकी माँग भी नहीं पूरी कर सकता तो यह समाप्त हो जाता है। किन्तु इसके ऋण देने की क्षमता इसके यहाँ जमा किये हुये द्रव्य तक ही सीमित नहीं रहती। बैंक वास्त

(Credit) उत्पन्न करते हैं। उनके अधिकाश ऋण नकदी मे नहीं भुगवते। यथासम्भव वे उसी प्रकार चेकों द्वारा सकारे (Honour) जाते हैं जिस प्रकार उनके यहाँ के जमा के द्रव्य सकारे जाते हैं। इन्हे अनुभव से यह मालूम हो गया है कि एक तो सब लोगों की माँगे एक ही समय मे नहीं आती और दूसरे जब एक तरफ इनके कोष से द्रव्य दिया जाता है तो दूसरी तरफ वह प्राप्त भी होता रहता है। इन्हे अपने ऊपर की सारी चेकों के लिये भी नकदी नहीं देनी पडती। उनमे से कुछ तो दूसरे बैङ्को द्वारा आती हैं और उन चेको द्वारा सकर जाती हैं जो उन्हे उन्हीं बैङ्को के ऊपर की अपने ग्राहकों से प्राप्त होती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि वह उनके पास जितनी नकदी होती है उससे कहीं अधिक मूल्य का ऋण देने की जोखिम ओड सकते हैं। जहाँ तक यह प्रश्न है कि उनकी नकदी उनके ऋण की कितनी प्रतिशत हो, इसका उत्तर स्पष्ट शब्दों मे नहीं दिया जा सकता। यह प्रत्येक बैङ्क के ग्राहकों की श्रेणी और उसके लागत (Investments) की श्रेणी के ऊपर निर्भर रहता है। कभी-कभी तो यह ऋतु परिवर्तन के साथ साथ भी परिवर्तित होता रहता है। फिर यह जनता के बैंकिंग की आदत बदलने से भी एक बहुत बडे काल मे बदल जाता है। 'तथापि बैङ्कों के प्रत्येक व्यवस्थापक के मस्तिष्क मे उस प्रतिशत का अनुमान अवश्य रहता है जिसे उसे रखना चाहिये और जिसे कम कर देने से उसे जोखिम उठानी पडती है तथा बढा देने से लाभ की क्षति होती है।' जिन कार्यों का विवरण ऊपर दिया जा चुका है उनके अतिरिक्त अन्य कार्य भी व्यापारिक बैङ्क करते हैं। इनका विस्तृत अध्ययन हम उचित स्थान में करेंगे। हाँ, इतना अवश्य है कि ये कार्य हर देश मे समान नहीं हैं, कहीं कुछ हैं तो कहीं कुछ हैं। इनके काम करने के ढङ्गों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। जब अंग्रेजी बैङ्क और विशेषतया लन्दन के बैङ्क लागत का व्यवसाय (Investments Banking) नहीं करते, जर्मन और फ्रान्सीसी बैङ्क ऐसा करते हैं। अंग्रेजी बैङ्क चेकों के प्रयोग पर भी बहुत जोर डालते हैं किन्तु जर्मन और फ्रान्सीसी बैङ्क ऐसा नहीं करते।

५ केन्द्रीय बैंक (Central Banks)

यद्यपि केन्द्रीय बैङ्कों के कार्यों की क्रमिक उन्नति तो बहुत दिनों से होती आ रही थी किन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ तक वे स्पष्ट रूप से प्रकट

नहीं हो पाये थे। प्रत्येक बैंक के व्यवस्थापक उस समय तक अपनी इच्छा के अनुसार ही मनमाने कार्य किया करते थे। बहुत से प्राचीन देशों में तो एक बैंक धीरे-धीरे बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता जा रहा था और विशेषतः नोट चलाने का और सरकार के बैंकिंग के काम करने का एकाधिकार अथवा मुख्य अधिकार प्राप्त करता जा रहा था। ये बैंक प्रारम्भ में केन्द्रीय बैंक न कहे जाकर नोट चलाने वाले बैंक (Bank of issue) अथवा राष्ट्रीय बैंक (National Bank) कहे जाते थे। पर, धीरे-धीरे इनके काम और इनके अधिकार बढ़ते गये तथा इनके साथ 'केन्द्रीय' शब्द एक विशेष अर्थ के साथ प्रयोग में आने लगा। कहना न होगा कि बैंक आफ इङ्गलैण्ड ही शायद ऐसा बैंक था जिसने सबसे पहिले केन्द्रीय बैंकों का काम करना प्रारम्भ कर दिया था। अत, केन्द्रीय बैंकिंग के सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिये इसी की उन्नति का इतिहास सर्वत्र अध्ययन किया जाता है। अस्तु,यही बैंक इङ्गलैण्ड का सम्मिलित पूँजी का सर्वप्रथम बैंक भी था। उन्नीसवीं शताब्दी में भिन्न भिन्न राष्ट्रों ने या तो अपने यहाँ के किसी पुराने बैंक को ही नोट चलाने का एकाधिकार अथवा मुख्य अधिकार दे दिया था या किसी नये बैंक की संस्थापना करके उसे यह अधिकार दे दिया था। हाँ, नई दुनिया के सभी देश और पुरानी दुनिया के भारतवर्ष और चीन अवश्य ही ऐसे बचे थे कि जिनके यहाँ इस शताब्दी के प्रारम्भ तक कोई भी केन्द्रीय बैंक नहीं खुल सका था। यहाँ तक कि आधुनिक काल के सबसे महत्त्वपूर्ण देश अर्थात् संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी सन् १९१४ तक कोई भी केन्द्रीय बैंक नहीं खुल पाया था। इस वर्ष वहाँ पर भिन्न-भिन्न स्थानों के लिये १२ केन्द्रीय बैंक खुले जिन्हें फेडरल रिजर्व बैंक्स (Federal Reserve Banks) कहते हैं। साथ इनके कार्यों के एकीकरण के लिये एक बोर्ड भी बनाया गया जिसे फेडरल रिजर्व बोर्ड (Federal Reserve Board) कहते हैं। केन्द्रीय बैंकों ने प्रथम महायुद्ध के समय और उसके बाद भी अपने-अपने यहाँ के राष्ट्रों को इतना लाभ पहुँचाया और सहायता दी कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक अधिवेशन ने, जिसकी बैठक सन् १९२० में ब्रूसेल्स में हुई थी, सभी राष्ट्रों को अपने यहाँ इन्हें खोलने के लिये मन्त्रणा दी। अत, तब से यूरोप में जो नये राष्ट्र बने उन्होंने और नई और पुरानी दुनिया के उन सभी राष्ट्रों ने, जिनके यहाँ उस समय तक केन्द्रीय बैंक नहीं थे अपने यहाँ उन्हें खोल लिया है। चीन का सेन्ट्रल बैंक और भारतवर्ष का रिजर्व बैंक

क्रमशः सन् १६२८ मे और सन् १६३५ मे स्थापित किये गये थे। वास्तव में बैंकिंग और वाणिज्य की आधुनिक परिस्थितियों के कारण प्रत्येक देश मे चाहे उसके आर्थिक उन्नति की कैसी भी दशा क्यों न हो, इस बात की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है कि वहाँ की नकदी का कोष केन्द्रित रहे और करन्सी और साख के नियन्त्रण पर किसी न किसी प्रकार की राष्ट्र की देख-रेख और यथासम्भव उसका हाथ रहे। केन्द्रीय बैंको के कारण भिन्न-भिन्न देशो के बैंकों के बीच मे पारस्परिक सहयोग और सम्बन्ध की मात्रा भी बढ गई है।

३ विनिमय बैङ्क (Exchange Banks)

विनिमय बैंको का एक मात्र लक्ष्य विदेशी व्यापार को आर्थिक सहायता पहुँचाना और भिन्न-भिन्न देशो के पारस्परिक लेन-देनो का भुगतान करना ही है। उनकी शाखाये सारी दुनिया मे फैली रहती हैं और विशेषतया व्यापारिक देशो मे तो अवश्य ही रहती हैं। शायद यही कारण है कि उन्हे बहुत अधिक पूँजी की भी आवश्यकता पड़ती है। फिर, विनिमय का व्यवसाय कुछ पेचीदा भी है और उसे करने के लिये अनुभव और कार्य-कुशलता की आवश्यकता पडती है। इसमें जोखिम भी यथेष्ट है। हाँ, यह इधर विनिमय मान (Exchange Standards) के चलन से अवश्य कुछ कम हो गई है। इसके पहले स्वर्ण मान (Gold Standard) और रजत मान (Silver Standard) वाले देशों के बीच की विनिमय दरो में बहुत परिवर्तन होते थे और उनके विनिमय के सम्बन्ध एक प्रकार से बहुत ही जोखिम के होते थे। इन सब कारणों से साधारण व्यापारिक बैङ्क यह काम कर ही नहीं सकते थे। अत, इसके लिये एक विशेष प्रकार के बैङ्कों की आवश्यकता पड़ी। ये बैङ्क निर्यात करनेवाले व्यापारियों से उनके विनिमय बिल खरीद लेते हैं और उन पर वसूल हुई रकम आयात करनेवाले व्यापारियों के हाथ बेच देते हैं। अधिकाश निर्यात के लिये निर्यात करनेवाले व्यापारी (Exporters) उनका आयात करनेवाले व्यापारियों (Importers) के ऊपर विनिमय बिल कर देते हैं और फिर उनकी वसूली के लिये न रुककर उन्हे विनिमय बैङ्कों के हाथ या तो बेच देते हैं या डिस्का-उण्ट करा लेते हैं। अब, ये बैङ्क उन्हे या तो उनके भुगतान की तिथि तक अपने पास रखते हैं या उसके पहिले ही विदेशों मे विशेषतः लन्दन

और न्यूयार्क के बाजारों में जहाँ मर्चेन्ट ही उनकी माँग रखते हैं, बेच देते हैं। जिन देशों में उनकी आवश्यकता नहीं होती उनमें उनके प्रतिनिधि होते हैं। अत, वहाँ पर वह उन्हीं के द्वारा काम करते हैं। वे उन पर अपने विनिमय बिल बनाते हैं और जिन्हें उनको भुगतान लेना होता है या उन्हें उन के पक्ष में लिखवाकर ले लेते हैं जिनको उन्हें भुगतान देना होता है। ये बैंक अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के अवशेष भाग का भुगतान सोना, चाँदी और प्रतिभूतियाँ मँगवाकर अथवा भेजकर करते हैं। अत, इस व्यवसाय में इन्हें इनका व्यापार करने का भी अवसर मिल जाता है। ये वायदे के विनिमय (Forward Exchange) का भी क्रय और विक्रय करते हैं जिससे भिन्न भिन्न समय के विनिमय के भावों के बीच का अन्तर बहुत ही कम हो जाता है, और व्यापारियों की विनिमय दरों के परिवर्तन से जो हानि होती है वह भी इनके अपने ऊपर जोखिम ओढ़ लेने के कारण बच जाती है। जहाँ तक इनकी स्वयं की जोखिम का प्रश्न है उसे भी ये विरुद्ध सौदे करके अर्थात् क्रय के लिये विक्रय करके और विक्रय के लिये क्रय करके बचा लेते हैं। भारतवर्ष में तो नहीं किन्तु अन्य देशों में तो विनिमय बैंकों के अतिरिक्त व्यापारी बैंक भी यह व्यवसाय करते हैं। यहाँ पर विनिमय के विदेशी बैंक हैं जो इसे अपनाये हुये हैं।

६ औद्योगिक बैंक (Industrial Banks)

औद्योगिक बैंक कृषि के अतिरिक्त अन्य सभी उद्योग धन्धों की आर्थिक सहायता करते हैं और उन्हें अन्य प्रकार से भी मदद पहुँचाते हैं। व्यापारिक बैंक अपने विशेष उत्तरदायित्व के कारण यह कार्य नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त उनके पास उद्योग-धन्धों का अनुभव रखनेवाले व्यक्ति भी नहीं होते। औद्योगिक बैंकों के पास लम्बी अवधि के लिये जमा की हुई रकम रहती है और साथ ही उनके पास ऐसे अनुभवी व्यक्ति भी रहते हैं जो उद्योग-धन्धों के पेचीदा प्रश्न समझते हैं। वे उन औद्योगिक कम्पनियों के ऊपर जो उनसे सहायता प्राप्त करती हैं उनके यहाँ अपने प्रतिनिधि रखकर अपना नियन्त्रण भी रखते हैं। जब कोई औद्योगिक कम्पनी किसी औद्योगिक बैंकों से अपने हिस्सों और ऋण पत्र जनता के सामने रखने में सहायता माँगती है तब वह बैंक जो पहिला काम करता है वह उसकी योजना समझने तथा उसका विश्लेषण करके उसके भविष्य पर दृष्टि डालने का है। कभी-कभी जब किसी कम्पनी के निकाले हुये सब हिस्से अथवा उनका वह न्यूनतम भाग

जो उसके विवरणपत्र (Prospectus) में दिया गया है जनता द्वारा यथा समय नहीं ले लिया जाता तब यही बैंक उसे स्वयं ले लेते हैं। प्राय: नई कम्पनियों के हिस्सों की बिक्री का ये लोग प्रारम्भ ही से एक प्रकार का बीमा कर देते हैं। ये अपने ग्राहकों को उनकी रकम लगाने के सम्बन्ध में भी सलाह देते हैं और जहाँ तक होता है उन्हें अच्छे लागत के चुनाव में सहायता पहुँचाते हैं। इनसे कारबारियों को भी यह लाभ होता है कि वे हिस्से बेचने के झंझट से मुक्त हो जाते हैं। सत्य तो यह है कि ये इस काम में निपुण होने के कारण हिस्सों और ऋण-पत्र सम्बन्धी विज्ञापन करने और उन्हें बेचने में कारबारियों से कहीं अधिक सफलता प्राप्त कर लेते हैं। जर्मनी, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और जापान, इत्यादि देशों की औद्योगिक उन्नति इन्हीं बैंकों के कारण हो पाई है।

५ कृषि बैंक (Agricultural Banks)

कृषि की अपनी समस्यायें होती हैं। अत:, उसकी आर्थिक सहायता करने के लिये पृथक् बैंक भी होते हैं। इनके दो भेद हैं—(१) एक तो वे जो लम्बी अवधि की आवश्यकताएँ (Long-term needs) पूरी करते हैं और (२) दूसरे वे जो थोड़ी अवधि की आवश्यकताएँ (Short term-needs) पूरी करते हैं। लम्बी अवधि के ऋण-भूमि में स्थायी सुधार करने के लिये, अधिक भूमि खरीदने के लिये और कृषि के अच्छे तरीके और औजार प्रयोग में लाने के लिये जाते हैं। और थोड़ी अवधि के ऋणों का उद्देश्य कृषकों की दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताएँ पूरी करना है। उसमें बीज और खाद खरीदना, अपने खर्च, मजदूरों की मजदूरी, सिंचाई तथा अन्य करों का भुगतान, इत्यादि सभी सम्मिलित हैं। कृषकों के पास जो जमानत (Security) रहती है और जिस अवधि के लिये उन्हें ऋण की आवश्यकता रहती है वह सब ऐसे हैं कि उनकी व्यापारिक बैंक, विनिमय बैंक तथा औद्योगिक बैंक सहायता कर ही नहीं सकते। अत इस काम के लिये भूमि-बन्धक बैंक (Land Mortgage Banks) और सहकारी बैंक (Co,-operative Banks) हैं। भूमि-बन्धक बैंक तो लम्बी अवधि की और सहकारी बैंक थोड़ी अवधि की माँगें पूरी करते हैं।

भूमि-बन्धक बैङ्क—ये बैंक भूमि से चालू साख-पत्र बना लेते हैं। ये शहरी और देहाती दोनों होते हैं। शहरी बैंक मकान, इत्यादि बनाने में सहायता देते हैं। अत, हम लोग यहाँ पर इनका अध्ययन नहीं करेंगे।

देहाती बैंकों की स्वयं की बहुत बड़ी पूँजी होती है। यह इनके हिस्सों अथवा ऋण-पत्रों की बिक्री से प्राप्त होती है। इनके अपनी पूँजी रेहन पर देने के कारण उसके जो भूमि प्राप्त होती है उसकी जमानत पर यह जनता में अपने ऋण-पत्र चालू करते हैं। जब कुछ भूमि की जमानत पर चालू किये इन ऋण-पत्रों से प्राप्त रकम अन्य भूमि के रेहन में लग जाती है तब वही अन्य भूमि फिर नये ऋण-पत्रों की जमानत के लिये काम में आ जाती है और उससे नई पूँजी प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार यह चलता रहता है। ये केवल उत्पादन के लिये ही ऋण देते हैं और जो भूमि इनके यहाँ रेहन की जाती है उसका ये बहुत होशियारी से मूल्य निर्धारित करा लेते हैं। फिर, उस पर ये काफी गुंजाइश (margin) रखकर ऋण देते हैं। इनके ऋण का भुगतान वार्षिक किश्त में होता है और वह एक बहुत लम्बी अवधि में विभाजित कर दिया जाता है। उस पर उचित ब्याज भी लिया जाता है। इनके द्वारा निकाले हुए ऋण-पत्र सुरक्षित होने के कारण बड़े प्रिय होते हैं और जनता में उनकी यथेष्ट माँग होती है। इनमें ट्रस्ट की और बीमे की रकम भी लगाने की आज्ञा दे दी गई है। भूमि और मकान, इत्यादि आसानी से नहीं बिक पाते। इसमें अनेक वैधानिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। किन्तु इनसे जो चालू साख-पत्र निकाले जाते हैं वे आसानी से हस्तान्तरित किये जा सकते हैं वे बाजारों में बिकते भी हैं। अतः, उनके कारण उपर्युक्त कठिनाई दूर हो जाती है। फ्रान्स का क्रेडिट फोन्सियर (Credit Foncier) जिसकी संस्थापना सन् १८५२ में हुई थी भूमि-बन्धक बैंकों का पिता कहा जाता है और वह जर्मनी, स्पेन, आस्ट्रिया, हंगरी और जापान के ऐसे ही बैंकों के साथ-साथ बहुत ही उन्नति कर रहा है। इंगलिस्तान का कृषिक भूमि बन्धक कारपोरेशन भी जो अब से कुछ वर्षों पहिले संस्थापित किया गया था बहुत काम रहा है। हमारे देश में भी ऐसे बैंकों की संख्या बढ़ती जा रही है। किन्तु यह अभी तक सन्तोष जनक नहीं है। वास्तव में इस देश के मुख्यतः कृषक-देश होने के कारण और यहाँ की कृषि की अवस्था पिछड़ी होने के कारण यहाँ पर ऐसे बैंकों की बहुत आवश्यकता है।

सहकारी बैंक—ये बैंक कृषकों के स्वयं के बैंक होते हैं। उनके दूर-दूर फैले रहने के कारण उन्हें थोड़े समय के लिए छोटी छोटी रकम ऋण देना इतनी जोखिम का काम है कि उसे कोई भी आधुनिक बैंक नहीं कर

सकता। इसमे सन्देह नहीं कि इसे करने के लिये महाजन हैं। वास्तव मे उनका जो स्थानीय प्रभाव रहता है और वहाँ के लोगों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है उसके कारण वे इसके लिये बहुत उपयुक्त हैं। किन्तु उनकी शर्तें इतनी कठिन रहती हैं कि वे कृषको के मित्र नही वरन् उनके लिये जोंक के समान हैं। यदि देखा जाय तो इस काम मे जितनी जोखिम है उसके लिये यह उचित ही है। जहाँ तक लम्बी अवधि के ऋण का प्रश्न है उसकी जमानत के लिये तो कृषको की भूमि है किन्तु थोडी अवधि के लिये तो उनके पास उनके हल, बैल तथा झोपडी छोडकर कुछ भी नहीं बचता। अत', उन्हे इस मामले मे स्वावलम्बी होना पडता है और सहकारिता की शरण लेनी पडती है। इसका प्रारम्भ गत शताब्दि मे पहले-पहिल जर्मनी मे हुआ था। वहाँ की कृषि की दयनीय दशा का रैफसिन के ऊपर गहरा प्रभाव पडा और उसने स्थिति सुधारने के लिये सहकारी समितियो की सस्थापना की जो थोड़ी अवधि की आवश्यकताये पूरी करने के लिये धन एकत्रित करने के उनके स्वय के संगठन हैं। अपने सम्मिलित साधन एकत्रित करके अपने वैयक्तिक उत्तरदायित्व के सहारे वे द्रव्य के बाजार से द्रव्य उधार लेते हैं और उसे अपने मे से जिन्हें आवश्यकता पडती है उन्हें कम ब्याज पर देते हैं। ऋण की अदायगी प्राय मासिक किस्तों द्वारा होती है और वह लेने वालों के प्रण-पत्रों की जमानत पर मिलता है। फिर, इन पर कुछ अन्य सहयोगी सदस्यो के हस्ताक्षर कराके इनके द्वारा बाजार से और अधिक ऋण प्राप्त कर लिया जाता है। यह प्रणाली ईमानदारी को पूँजी बनाने की प्रणाली (Capitalisation of Honesty) कही गयी है। इससे वैयक्तिक जमानत एक बहुत बड़ी मात्रा मे बिकने योग्य जमानत मे परिवर्तित हो जाती है। कृषि की थोड़े समय की आर्थिक माँग पूरा होने के साथ-साथ इससे अन्य भी बहुत से लाभ होते हैं। इससे सदस्यों के बीच मे स्वावलम्बन और मितव्ययता का भाव बढ़ता है और उन्हें स्वशासन की कला की शिक्षा भी प्राप्त होती है।

५ सेविंग्स बैंक (Savings Bank)

ये बैङ्क सच पूछा जाय तो बैङ्क नहीं हैं। वास्तव मे ये साधारण स्थिति के लोगों में मितव्ययता का प्रचार करके उनकी थोड़ी-थोड़ी बचत एक-

त्रित करके सुरक्षित रखनेवाले संगठन हैं। इनके ग्राहकों द्वारा जमा की हुई रकम निकाली जानेवाली रकम की अपेक्षा साधारण कहीं अधिक रहती है। अत. इन्हें इस रकम को द्रवित दशा (liquid state) में रखने की भी आवश्यकता नहीं रहती। इसी कारणवश इन्हें व्यापारिक बैंकों के समान अपना धन ऐसे थोड़े समय में वापिस होनेवाले ऋणों में भी लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु यह इतने स्वतन्त्र भी नहीं रहते। इन्हें शासन अपनी पूँजी केवल कुछ सुरक्षित साधनों में ही लगाने के लिये बाध्य करता है। इनमें द्रव्य जमा करने और उनसे निकालने के नियम भी भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न हैं। प्रायः कोई भी इनके यहाँ अपना खाता खोल सकता है। प्रत्येक ग्राहक को एक पासबुक दी जाती है जिसमें बैंक में उसका जो खाता रहता है उसकी प्रतिलिपि होती है। द्रव्य प्राय सप्ताह में केवल एक अथवा दो बार ही निकाला जा सकता है और बड़ी-बड़ी रकम निकालने के लिये पहिले से कुछ समय की सूचना देनी पड़ती है। जितनी रकम इनमें जमा होती है उससे अधिक निकालने की कभी भी आज्ञा नहीं मिलती। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में अनेक प्रकार के सेविंग्स बैंक हैं। इङ्गलिस्तान में डाकघर यह काम करते हैं और हमारे देश में भी ऐसा ही है। किन्तु यहाँ पर व्यापारिक बैंक भी अपने यहाँ ऐसे खाते रखते हैं।

७ निजू बैंक (Private Banks)

उपर्युक्त सभी बैंक आधुनिक काल के बैंक हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे निजू बैंक भी हैं जो व्यापार के साथ-साथ बैंकिंग भी करते हैं। इनके काम करने के ढङ्ग भी बहुत पुराने हैं। इङ्गलिस्तान के ऐसे सर्राफ महाजन तथा अन्य महाजनों के विषय में हम पहिले ही पढ़ आये हैं। हमारे देश में इनकी संख्या आज भी बहुत है। वास्तव में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ यह न पाये जाते हों। प्राय कृषि के सारे धन्धे और देशान्तर्गत व्यापार के एक बहुत बड़े भाग को यही आर्थिक सहायता पहुँचाते हैं। इनके सुधार की आवश्यकता तो अवश्य है किन्तु जैसा कि किसी विद्वान् ने कहा है यह हमारे आर्थिक संगठन के बहुत ही आवश्यक अङ्ग हैं और इनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। साथ ही इन्हें समाप्त कर देने से न केवल भारतवर्ष ही को वरन् समस्त संसार के सभी देशों को एक बहुत

बड़ी क्षति उठानी पड़ेगी। कुछ ऐसे बैंकर आज भी सभी देशो मे पाये जाते हैं।

८ अन्य प्रकार के बैंक (Miscellaneous Banks)

लोगो की विशेष आवश्यकतायें पूरी करने के लिये आधुनिक काल मे स्थान-स्थान पर कुछ अन्य प्रकार के भी बेक खुल गये हैं। उदाहरण के लिये इङ्गलैण्ड और अमेरिका मे लागत लगानेवाले बैंक (Investment Banks) हैं जिनका काम पूँजी को अनेक प्रकार के प्रयोगों मे विभाजित करना है। फिर, अमेरिका मे मजदूर सङ्घो के अपने मजदूर बैंक (Labour Banks) भी हैं जिनमे उनके मजदूर अपनी बचत जमा करते हैं। हमारे ही देश मे कुछ बड़े-बड़े कालिजो मे विद्यार्थियों का द्रव्य जमा रखने के लिये विद्यार्थी बैंक (Student Banks) हैं। लन्दन के सौदागर महाजन (Merchant Bankers) और वहाँ की बिलों पर स्वीकृति देनेवाली सस्थाये (Accepting Houses) एक अन्य प्रकार की ऐसी सस्थाये हैं जो एक विशेष प्रकार का काम करती हैं। आजकल व्यापार साख पर निर्भर है। किन्तु जब कोई व्यापारी विदेशों मे उधार माल बेचाता है तब उसे इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि वह अपने ग्राहकों की आर्थिक स्थिति पर बराबर ध्यान रक्खे। अत., यह काम उपर्युक्त सौदागर महाजनों ने अपने ऊपर ले रक्खा है। उनका सम्बन्ध सभी देशों से रहता है। अतः, वे भिन्न-भिन्न देशो के ऊपर किये गये विनिमय बिलों पर भी उनकी ओर से स्वीकृति दे सकते हैं। कभी-कभी वे इसके लिये विनिमय बैंकों की मंत्रणा भी ले लेते हे। इनके अतिरिक्त लदन में कुछ डिस्काउन्टिग सस्थाये (Discounting Houses) है जो सारे शहर मे ऐसे विनिमय बिलो के तलाश मे रहती हैं जिनका उस समय का मूल्य वह दे देती हैं। उनके साधनों मे उनकी स्वयम् की पूँजी, जनता की उन्हीं शर्तों पर जमा की गई रकम जैसी अन्य बैंको की होती हैं, हाँ, ऊँची दरों पर अवश्य और कभी-कभी बैंकों से सप्ताह भर के लिये अथवा रात्रि भर के लिये (Overnight) लिये हुये ऋण सम्मिलित रहते हैं। बिलो का उस समय का मूल्य प्राप्त करनेवाले लोगो और व्यापारिक बैंको के बीच में वे दलाली का भी काम करते हे। ये सब थोड़े से उदाहरण हैं। ससार में सभी जगह भिन्न-भिन्न प्रकार की आवश्यकताये पूरी करने के लिए अगणित प्रकार की बैंकिग सस्थायें हैं।

प्रश्न

(१) 'बैंकिंग में भी विशिष्टता पाई जाती है, यद्यपि वह अभी पूरी तरह से सफलीभूत नहीं हुई है।' समझाइये।

(२) हमारे देश में अधिकांश में किन-किन तरह के बैंक आते हैं? उनका संक्षिप्त विवरण दीजिये।

अध्याय ४

व्यापारिक बैंकों के काम (Functions)

जैसा कि हम बता ही चुके हैं व्यापारिक बैंकों का प्रारम्भ लोगों का द्रव्य जमा रखने के विचार से केवल उस समय के बाद ही हुआ था जब लन्दन की जनता ने वहाँ के सर्राफ महाजनों के पास अपनी रकम जमा करना प्रारम्भ कर दिया था। उन्हें यह बात समझने में भी अधिक देर नहीं लगी कि यदि वह जमा में पाये हुये द्रव्य वापस करने के समय के पहिले प्राप्त कर सकें तो उसे उधार देकर यह व्यवसाय बहुत ही लाभदायक बनाया जा सकता है। धीरे-धीरे उन्हें यह भी मालूम हो गया कि उनके प्रतिदिन के भुगतानों के लिये उन्हें प्रतिदिन ही यथेष्ठ रकम प्राप्त हो जाती है, अत, इस बात की आवश्यकता भी नहीं है कि उधार दी हुई रकम जमा की हुई रकम की वापिसी के पहिले ही प्राप्त हो जाय। इसमें सन्देह नहीं कि उन्हें ऋण देने में अपनी बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता था और उचित जमानत लेनी पड़ती थी। कभी-कभी उनकी बहुत हानि भी हुई है। उदाहरण के लिये जब चार्ल्स द्वितीय ने अपना लिया हुआ ऋण लौटाने से इन्कार कर दिया था। अब, यह स्पष्ट है कि बैंकिंग के दो मुख्य काम द्रव्य उधार लेना और देना है। बस, हम यहाँ पर इन्हीं का अध्ययन करेंगे। किन्तु आज कल के बैंक इनके अतिरिक्त कुछ अन्य काम भी करते हैं जिससे जनता को सुविधा मिलती है।

इन तमाम कामों का हम चार शीर्षक में अध्ययन कर सकते हैं—

(१) जमा लेना।

(२) ऋण देना।

(३) आढ़त के काम करना।
(४) अन्य कार्य।

जमा लेना (Receiving Deposits)

जमा कई खातों में ली जाती है जिनमें मुख्य तो चालू खाता (Current Account) है, किन्तु अन्य भी कई खाते हैं जैसे स्थायी खाता (Fixed Deposit Account), बचत खाता (Savings Bank Acount), गोलक खाता (Home Safe Account) इत्यादि। पहले-पहल जो जमा प्राप्त होती थीं वह वो स्थायी खातों ही मे होती थीं। किन्तु शीघ्र ही सर्राफ महाजनों ने यह समझ लिया है कि यदि जमा में प्राप्त होनेवाली रकम एक बहुत बड़ी मात्रा में है तो वह इस बात पर निर्भर रहकर कि उसमें से एक बहुत बड़ी रक़म बहुत दिनों तक वापिस नहीं मांगी जायगी वह रकम ऋण मे भी दे सकते हैं। अत, उन्होंने मॉग की वापिसी की शर्त पर भी जमा (Demand Deposits) प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया। इस तरह से चालू खातों की नींव पड़ी जिनमे से जमा करनेवाले अपनी रकम जब चाहे तब प्राप्त कर सकते हैं। इसके बाद चेकों का प्रादुर्भाव हुआ जिससे कि चालू खातों से रुपया निकालने मे बहुत सुविधा पडने लगी। फिर, जब चेकें अच्छा अधिकार देनेवाले पुर्जों (Negotiable Instruments) की तरह जन साधारण में स्वीकृत होने लगी और हाथों-हाथ चलने लगीं तब जमा प्राप्त करनेवाली वैङ्किङ्ग की प्रणाली और भी उन्नति प्राप्त करने लगी। यह अवश्य ही लन्दन से प्रकट हुई है। चालू खातों मे साधारणतया ब्याज नहीं दिया जाता, यहाँ तक कि कभी-कभी यह शर्त भी रहती है कि जमा करनेवाले उसमें से न्यूनतम रकम कभी भी नहीं निकाल सकेंगे। लन्दन में तो इन पर ब्याज न देने का एक चलन ही हो गया है। बेंक इन्हे केवल इसीलिये रखते हैं कि उन्हे एक मुक्त रकम (Free Balance) मिल जाती है। यह रकम उतनी होती है कि जितने का ब्याज खाता रखने के खर्च के बराबर होता है, और यह खर्च भी लेजर के पृष्ठों के चलने और चेकों के प्रयोग की संख्या पर निर्भर रहता है। यदि यह मुक्त रकम नहीं छोड़ी जाती तो फिर बैंक ग्राहकों से एक कमीशन लेता है जैसा कि हमारे देश मे चलन है। यह छमाही लिया जाता है। इसे प्रासंगिक व्यय (Incidental Charges) कहते हैं। हाँ, कुछ ऐसी भी बैङ्क हैं जो ब्याज देते हैं।

इङ्गलिस्तान के अन्य भागों में तो ऐसा ही होता है पर लन्दन में नहीं है। हमारे देश में भी ऐसे बैंक हैं।

स्थायी खातों में वह रकम जमा की जाती है जो अवधि भीतर जाने के पहिले नहीं निकाली जा सकती जिसके लिये वह जमा की गई थी। कभी-कभी यह पहिले ही सूचना देकर भी निकाली जाती है। इन्हें अमेरिका में समय के लिये जमा (Time Deposits) भी कहते हैं। इन्हें ब्याज इस आधार पर दिया जाता है कि जितना अधिक समय होता है उतनी ही अधिक होती है। लन्दन में यह सात दिनों की सूचना पर भी जमा किये जाते हैं किन्तु सात दिनों की सूचना देने के पहिले इन्हें कम से कम एक माह तक अवश्य जमा रखना पड़ता है। इनके ब्याज की दर बैंकों के जमा की दर (Bank Deposit Rate) कही जाती है। भारतवर्ष में ये तीन महीना, छ महीना, नौ महीनों और एक वर्ष के लिये जमा होते हैं। कुछ बैंक एक वर्ष से ऊपर के लिये भी जमा (Time Deposits) प्राप्त करते हैं, किन्तु ऐसा बहुत कम किया जाता है।

कुछ समय के लिये जमा और माँग पर वापिस होने वाली जमा (Demand Deposits) दोनों की रकमें आपस में बदलती भी रहती हैं। जब व्यापार मन्दा हो जाता है तब चालू खातों की रकमें स्थायी खातों में चली जाती हैं और जब व्यापार की तेजी होती है तब इसका उलटा हो जाता है। अच्छी बैंकिंग के अर्थ यह हैं कि जमा अधिकांश में चालू खातों में ही हो। विख्यात बैंकरों ने स्थायी खातों और ब्याज देने दोनों के विरोध में बहुत कुछ कहा है। व्यापारिक बैंक तो व्यापारियों से काम करते हैं जिनके पास स्थायी खातों में रखने के लिये फालतू रकमें नहीं होतीं, उन्हें तो केवल उतनी ही पूँजी रखनी चाहिये जितनी उनके व्यापार के लिये आवश्यक है। अत, इसे उन्हें चालू खातों में ही रखना चाहिये। निर्धारित समय के लिये जमा प्राप्त करने का काम तो लागत वाले बैंकों (Investment Bank) का है। अब, व्यवसाय की छीना-झपटी नहीं होनी चाहिये। किन्तु भारतवर्ष ऐसे देश में जहाँ लागत के बैंक हैं ही नहीं व्यापारिक बैंकों के यह काम करने में कोई हानि नहीं मालूम पड़ती।

कुछ देशों में और विशेषत भारतवर्ष में व्यापारिक बैंक बचत खातों में भी जमा प्राप्त करते हैं सम्पूर्ण जमा की रकम का जो अंश वर्तमान काल में इन खातों में है वह प्रथम युद्ध के पहिले के काल की अपेक्षा कहीं अधिक

है। इसका एक मात्र उद्देश्य थोड़ी आय वाले लोगों में मितव्ययता का प्रचार करना है। आरम्भ में यह काम भी व्यापारिक बैंकों के लिये उपयुक्त नहीं था किन्तु वे इसे बराबर करते आये हैं और इसका महत्व भी इतना बढ़ गया है कि इसे अधिक नहीं तो थोड़ा सा अवश्य इनके विषय में अध्ययन कर लेना चाहिये। इन खातों की रकम एक निर्धारित सीमा के ऊपर नहीं जमा की जाती। इन्हें कोई भी व्यक्ति अपने नाम से अथवा किसी अपने रक्षायत्त नाबालिग के नाम से अथवा किसी ऐसे कमायक के नाम से जिसका वह अभिभावक नियुक्त हुआ हो, खोल सकता है। इसमें जमा तो जब चाहे तब की जा सकती है किन्तु इसमें से निकाला सप्ताह में केवल एक अथवा दो बार ही जा सकता है। कुछ बैंक इनमें चेक के प्रयोग की भी सुविधा देने लगे हैं। कहीं-कहीं यह सुविधा प्राप्त करने के लिये एक न्यूनतम मुक्त रकम रखना भी आवश्यक है। पाँचवीं तारीख के अन्त के बीच में जिस दिन भी न्यूनतम रकम होती है उसी पर पूरे एक मास का ब्याज लगाया जाता है। कहीं कहीं, एक निर्धारित रकम से अधिक रकम निकालने के लिये कुछ दिनों की सूचना की भी आवश्यकता पड़ती है।

गोलक खाता बचत खाते ही की तरह है। इसे हमारे देश के सेन्ट्रल बैंक के अधिकारियों ने चालू किया था। इसका ध्येय बच्चों में भी मितव्ययता की आदत डालना है। जब कोई व्यक्ति यह खाता खोलता है तब उसे एक सुन्दर गोलक दे दिया जाता है जिसे वह अपने घर ले जाता है और जिसमें वह समय-समय पर अपने पैसे डालता रहता है। जब गोलक भर जाता है तब वह उसे बैंक में वापस ले जाता है जहाँ पर उसे खोलकर उसका रुपया उसके खाते में जमा कर लिया जाता है। गोलक के स्थान पर एक सुन्दर घड़ी भी मिलती है जिसमें प्रति दिन एक आना छोड़ने से चाभी भरी जाती है। इस खाते में बचत खाते की ही तरह ब्याज लगाया जाता है।

जमा अन्य खातों में भी प्राप्त की जाती है। निजी खर्च देने के लिये निजू खाते (Private Accounts) खोले जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य विशेष कामों के लिए विशेष खाते खुलते हैं। उदाहरण के लिए बच्चों के विवाह के लिये द्रव्य एकत्रित करने के लक्ष्य से विवाह खाता (Marriage-Account) खोला जाता है।

जमा के भेद (Nature of Deposits)

जमा कई प्रकार से प्राप्त होती है। ग्राहक नकद जमा कर सकते हैं अथवा

नकदी मिलने के अपने अधिकार भी जमा कर सकता है। ये चेक, विनिमय बिल और प्रण-पत्र, इत्यादि हो सकते हैं। बैंक इनका भुगतान प्राप्त करके उसे खाते में जमा कर लेता है। बैंक के ऋण देने से अथवा विनिमय बिल डिसकाउण्ट कर देने से भी उनके जमा प्राप्त हो जाती है। इन्हें सृजित जमा (Created Deposits) कहते हैं। वास्तव में आजकल सृजित जमा की रकम अन्य प्रकार से प्राप्त हुई जमा की रकम से कहीं अधिक होती है। अतः, यह बात सोचना कि बैंक के चिट्ठे (Balance Sheet) में जितना जमा (Deposits) दिखलाया गया है उतना उसे नकद प्राप्त हुआ है, भ्रमपूर्ण है। मॉक्लियड का कहना है कि यह रकम उस रकम की द्योतक नहीं है जो बैंक को उनका व्यवसाय चलाने के लिये प्राप्त हो चुकी है। यह तो यह बतलाती है कि बैंक ने कितना व्यवसाय किया है और उसने कितने का अपना उत्तरदायित्व (Liabilities) खड़ा कर लिया है। अतः, यह जमा की रकम जिन्हें बहुत से लेखक नकद प्राप्त हुई रकम समझते हैं केवल उन साख की द्योतक हैं जो बैंकों ने उस नकद, विनिमय बिलों और ऋण के बदले में उत्पन्न कर ली है जो उसके चिट्ठे में सम्पत्ति और पावने (Assets) की तरफ दिखलाई गई है। जब किसी ग्राहक को थोड़े समय के लिये द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है तब वह बैंकर से या तो ऋण (Loan) लेने अथवा अधिक द्रव्य निकालने—अधिविकर्ष (Overdraft) अथवा नकद साख प्राप्त करने (Cash Credits) अथवा बिल भुनाने (Bill Discounting) की प्रार्थना करता है। बैंकर तो यह जानता है कि द्रव्य रखने के लिये नहीं वरन् भुगतान करने के लिये माँगा जा रहा है। अतः, प्राय वह इस शर्त पर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेता है कि ग्राहक सब रकम नकद न लेकर जब कभी उसे भुगतान करना होगा तब चेक काटेगा। हम जानते हैं कि चेक काटने का यह अधिकार तो नकद जमा करने पर भी मिलता है, अतः, हम यह कह सकते हैं कि इसे चाहे ग्राहक स्वयम् प्राप्त कर ले अथवा बैंक उसे दे दे। जब ग्राहक नकदी जमा करता है तब वह इसे स्वयम् प्राप्त करता है और जब बैंक उसे किसी भी रूप में ऋण देता है तो बैंक उसे इसे देता है। किन्तु बैंक की यह अधिकार देने की शक्ति उसके पास जितनी नकदी होती है उसी के अनुसार सीमित रहती है। अतः, जैसा कीन्स ने कहा है हम भी कह सकते हैं कि ऋण जमा के बच्चे हैं और जमा ऋण के बच्चे हैं [1]।

---

1 Loans are the children of deposits and deposits are the children of loans

किन्तु बहुत से लोग उपर्युक्त बात नहीं समझ पाते हैं और कहते हैं कि बैंक के लेखक (Clerks) जितनी चाहें उतनी साख उत्पन्न कर सकते हैं[2]। यदि उनमें दुर्भाव न हो तो इतनी अधिक साख उत्पन्न हो जाय कि ससार से से दरिद्रता और पसीना बहानेवाली सख्त मेहनत सदा के लिये नष्ट हो जाय। वे यह बात नही सोचते कि[3] यदि बैंकर के पास इतनी शक्ति है तो वह चीज क्यों कम करता है जिससे वह व्यापार करता है और अपनी रोटी कमाता है।

ऋण देना (Granting Loans)

यह तो बतलाया ही जा चुका है कि बैङ्कर प्राय नकद ऋण नहीं देते। अधिकाश मे उनके ग्राहकों के ऋण चेक काटने के अधिकार के रूप में ही होते हैं। इनके कई रूप हें, जैसे साधारण ऋण (Loans and Advances), जमा की गई रकम से अधिक रकम निकालने देना—अधिविकर्ष (Overdrafts), नकद साख (Cash Credits) अथवा विनिमय बिल भुनाना (Bill Discounting) इत्यादि, इत्यादि। बैङ्कर अपनी पूँजी नहीं देते। इसके विषय मे लार्ड ओवरस्टन नाम के एक प्रसिद्ध बैङ्कर ने कहा है "यह मेरी स्वयम् की बुद्धि है और दूसरे का द्रव्य है।" रेकार्डो ने भी इसी अ शय की बात कही थी। उसका कहना था "कोई व्यक्ति तभी बैङ्कर कहला सकता है जब वह दूसरों का द्रव्य उधार देता है।" वास्तव मे बैङ्कों के पास अपना नकद कोष रखने और मृत स्टाक (Dead Stock) खरीदने के बाद अपनी स्वयम् की पूँजी ऋण के रूप मे देने के लिये नही बचती। अत, वह इस काम के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं कर सकते कि दूसरो द्वारा जमा किया हुआ द्रव्य इस काम में लगावे। किन्तु इन्हे उन्हे माँग पर वापिस करना पडता

---

2 Credit is the mere creation of the bank clerk's pen and that but for the malevolence of the wicked banker enough of it could be created to remove poverty and banish toil from the world

3 Why the banker should be so concerned to reduce the volume of the material in which he trades and from which he earns his living it he has the power they think he has ?

है। यदि वे ऐसा नहीं कर पाते हैं तो दिवालिया घोषित कर दिये जाते हैं जिससे उनका काम ही बन्द हो जाता है। पर यह भी सत्य है कि वह केवल इसी सीमा तक ऋण देते हैं। अर्थात् उत्तम करते हैं। इसमें सब में बैंकर की बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है। बैंक व्यवस्थापक की स्थिति वास्तव में बड़ी कठिन है। एक तरफ तो हिस्सेदार उससे अधिकाधिक लाभ कमाने की आशा करते हैं जो जोखिम उठाये बिना हो ही नहीं सकता और दूसरी तरफ उसके व्यवसाय के ऐसा होने के कारण कि जिससे उसे सदा ही सबसे अधिक ध्यान रखना पड़ता है वह अधिकाधिक लाभ भी नहीं उठा सकता। किन्तु यह काम बहुत कठिन नहीं है। आचार्य टासिग (Taussig) कहते हैं "सब बातें देखते हुये व्यापारिक बैंकों का प्रबन्ध बहुत कठिन नहीं है। इसके लिये पूर्व विचार, साधुता नियमपालन तथा व्यवसायियों के अच्छे ज्ञान की आवश्यकता है।"

जहाँ तक ऋण के रूपों का प्रश्न है, साधारण ऋण (Loans and Advances) तो एक तरफ ग्राहकों के नाम छोड़कर (उनके एकाउन्टों को डेबिट करके) और दूसरी ओर उनके चालू खाता में जमा करके (उनके करेन्ट एकाउन्ट को क्रेडिट करके) दे दिया जाता है। यह व्यवसाय बहुत ही लाभप्रद है, क्योंकि इसमें तो बैंकर केवल अपनी साख ही जिसे जनता केवल इसलिये मानती है कि उसका नाम बहुत प्रसिद्ध होता है ऋण के रूप में देता है। यदि वह तनिक-सा भी ध्यान रखता है तो इसमें उसे लेशमात्र भी जोखिम नहीं उठानी पड़ती। बैंक हर प्रकार की जमानत पर ऋण नहीं देते। वे केवल वही जमानत स्वीकार करते हैं जो आसानी से बिक सकती हैं। उनका मूल्य ह्रास भी नहीं होना चाहिये। बार्जे रे ने कहा है कि बैंकों के लिये दोषरहित जमानतें वही हैं जो अन्त में भी सुरक्षित हैं, जिनका भुगतान थोड़ी अवधि के बाद ही एक निश्चित तिथि पर होने को है, जिनमें आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र ही बिक जाने की योग्यता है और जो ह्रास की जोखिम से मुक्त है। कभी-कभी ऋण लेनेवालों की वैयक्तिक जमानत ही ले ली जाती है, अथवा एक संयुक्त प्रणपत्र अथवा दो नामवाला साख पत्र ही ले लिया जाता है। इस ऋण में पूरी रकम पर ब्याज लगाया जाता है।

जमा की हुई रकम से अधिक निकालने—अधिविकर्ष (Overdraft) का अधिकार भी केवल बैंक व्यवस्थापक के पहिले ही तय कर लेने पर प्राप्त हो सकता है। इसे प्राप्त करने के लिये ग्राहकों को उसके पास जाना पड़ता

है अथवा उससे लिखा-पढी करनी पडती है। इसमे यह भी तय हो जाता है कि इस तरह से अधिक से अधिक कितनी रकम निकाली जा सकती है। फिर, जितने दिनों के लिये यह सुविधा दी जाती है वह भी पहिले से ही निश्चित हो जाती है। इतना हो जाने पर बैंकर उस निश्चित रकम तक चेक सरकाता जाता है। साधारण ऋण (Loan) और जमा की हुई रकम से अधिक प्राप्त करने—अधिविकर्ष (Overdraft) मे एक यह भी अन्तर है कि जब कि साधारण ऋण (Loan) मे ग्राहक ऋण की पूरी रकम पर व्याज देता है जमा की हुई रकम से अधिक प्राप्त करने—अधिविकर्ष (Overdraft) मे वह उतनी ही रकम पर व्याज देता है जितनी दिन प्रति दिन उसके नाम पड़ी रहती है। इसके यह अर्थ है कि जमा की हुई रकम से अधिक प्राप्त करने--अधिविकर्ष (Overdraft) मे ग्राहको को साधारण ऋण (Loans) की अपेक्षा कहीं अधिक लाभ होता है। किन्तु बैंक इन पर ऊँचे दर से व्याज लगाकर ऐसा नहीं होने देते। ऋण की तरह यह भी जमानत पर अथवा जमानत के बिना ही प्राप्त हो सकते हैं।

नकद साख (Cash Credit) देने की प्रणाली स्काटलैण्ड मे जहाँ यह पहिले-पहिल चालू हुई थी, बहुत ही प्रिय है। मैक्लियड का कहना है कि वहाँ की उन्नति केवल इसी प्रणाली के कारण हुई है। उसका कथन है कि नाइल नदी ने जो कुछ मिश्र के लिये किया है वही नकद साख (Cash Credit) प्रणाली ने स्काटलैण्ड के लिए किया है, अर्थात् वह उत्पादन बढानेवाली सिद्ध हुई है। लेवी कहता है 'स्काच बैंको ने बहुत से दरिद्र स्काचो को केवल दो घरेलू व्यक्तियो द्वारा लिखे हुए साख पत्रो पर ही नकद साख देकर योग्यता की स्थिति मे ही नहीं वरन् बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थितियो मे पहुँचा दिया है।' हमारे देश मे भी यह प्रणाली व्यापारिक बैंको को बहुत ही प्रिय है। किन्तु वे इसे केवल वैयक्तिक जमानतो पर ही न देकर ऐसे प्रणपत्रो की जमानत पर देते है जिनके पृष्ठ पर हिस्से अथवा अन्य साखपत्र रहते है अथवा रुई, पाट और चावल जैसी वस्तुये होती हैं। यदि माल बैंको के गोदामो मे रख दिया जाता है तो उनके वहाँ पहुँचने पर ऋण दे दिया जाता है और उसकी जैसे-जैसे वापसी होती जाती है वह छुटता जाता है। ऋण देते समय उचित छूट (Margin) रख ली जाती है। इसमे भी जमा की हुई रकम से अधिक निकालने अधिविकर्ष (Overdrafts) की तरह ही जो रकम ऋणी लिये रहता है उसी पर व्याज

लगता है। हाँ, दोनों में एक अन्तर यह है कि जब इसमें ऋणी के नाम का एक नया खाता जिसे उल्टा चालू खाता (Inverse Current Account) कहा जा सकता है, खोला जाता है उसमें वही पुराना चालू खाता चलता रहता है।

बिल भुना करके भी ऋण प्राप्त किया जा सकता है। आधुनिक व्यापार साख पर ही निर्भर है। नकद सौदे तो केवल फुटकर व्यापार में ही होते हैं। उद्योग धन्धों के सम्बन्ध के बहुत से सौदे तो साख पर होते हैं। कच्चे माल के उत्पादक उन्हें माल बनाने वालों के हाथ साख पर ही बेचते हैं। ऐसे ही माल बनाने वाले थोक व्यापारियों के हाथ, थोक व्यापारी फुटकर व्यापारियों को साख पर ही माल बेचते हैं। अब यह आदि से अन्त तक फैला हुआ है और हम यह बात किसी विरोध के बिना कह सकते हैं कि आज का समस्त औद्योगिक संसार साख की जंजीर से जकड़ा हुआ है। यदि यह अपने इस विस्तीर्ण रूप में न फैला होता तो उन्नति का आज कल का इतना बड़ा रूप सम्भव ही न होता। साख ने व्यापार की मशीन की चाल बढ़ा दी है। जब कोई साख का सौदा होता है तो विक्रेता एक विनिमय बिल तैयार करता है जिसमें वह विक्रेता से एक निश्चित अवधि बीत जाने पर उसमें दी रकम देने की माँग करता है। भुगतान का यह तरीका बहुत ही सुविधाजनक है। प्रथम तो इसका भुगतान चेकों द्वारा होने के कारण मुद्राओं और नोटों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरे विनिमय बिलों से भुगतान की तारीख भी निश्चित हो जाती है और यह एक प्रकार के साक्षी का भी काम देते हैं। भुगतान के दिन यदि इसका ऊपरवाला धनी (Drawee) भुगतान नहीं करता तो वह अदालत में यह नहीं कह सकता कि उसके ऊपर ऋण नहीं चाहिये। जिस सौदे के सम्बन्ध में कोई बिल किया जाता है, उस सौदे के विषय में कोई प्रश्न उठ ही नहीं सकता। बिल स्वयं ही ऋण का द्योतक माना जाता है। तीसरे, इसका अधिकारी (Holder) इसे अपने ऋण के भुगतान में हस्तान्तरित (Transfer) कर सकता है। अन्तिम बात यह है कि आवश्यकता पड़ने पर इसके अधिकारी को इसे भुनाने से इसके भुगतान की तारीख के पहिले ही इसकी रकम मिल जाती है। वास्तव में जिन व्यापारियों के पास पूंजी तो कम है किन्तु साख पर काम करना है उनके लिए रकम पाने का यह अच्छा साधन है।

बिल भुगाने का तरीका एक ऐसा तरीका है जिसमे बैंकर कोई अन्य जमानत लिए बिना ही ऋण दे देता है। इस स्थिति मे उसके लिये केवल लिखने वाले धनी (Drawer) और ऊपरवाले धनी (Drawee) दोनों की वैयक्तिक जमानत ही रहती है। कभी-कभी यह बिल पहिले तो भुनाने का काम करने वाली संस्थाओ (Discounting Houses) अथवा बिलो के दलालों (Bill Brokers) से भुना लिया जाता है और फिर वे इसे किसी बैंक से भुनाते हैं। ऐसी अवस्था मे इन मध्यस्थों की एक और जमानत हो जाती है। भारतवर्ष मे सर्राफ अथवा देशी महाजन (Indigenous Bankers) यह मध्यस्थ का काम करते हैं। बिल पर रकम देनेवाला महाजन (Banker) शेष अवधि का व्याज काटकर बिल की रकम उसके अधिकारी के खाते में जमा कर देता है और वह उसमे से चेकों द्वारा धीरे-धीरे निकालता रहता है। बैंक इसे भुगतान की तारीख तक अपने पास रखते हे और अन्त में ऊपर वाले धनी से उनकी रकम प्राप्त कर लेते हैं। ऊपर वाला धनी किसी बिल पर अपनी स्वीकृति देने के समय अपने बैंक को जिसका नाम वह स्वीकृति के साथ-साथ भुगतान देने के स्थान की जगह पर लिख देता है उसका भुगतान करने के लिए सूचित कर देता है।

बिलो पर ऋण देना बैंको के लिये बहुत ही लाभप्रद है—

(१) बिल पर मिलने वाली रकम निश्चित रहती है। वह कभी भी नहीं बदल सकती। इसके विपरीत अन्य जमानती रकमें बदलती रहती हैं। उनके गिर जाने से हानि भी हो सकती है।

(२) बिल की अवधि बीत जाने पर उसका भुगतान मिल जाना पूर्णतया निश्चित हो रहता है। बात यह है कि किसी बिल के खड़े रह जाने पर (Dishonour) उसके ऊपरवाले धनी की बड़ी बदनामी होती है जिसे कोई भी व्यक्ति सहन नहीं कर सकता। फिर, यदि वह उसका भुगतान नहीं करता तो उस पर और जो धनी उत्तरदायी होते हैं वह उसका भुगतान कर देते हैं।

(३) किसी भी बैंक का व्यवस्थापक बिलों पर ऋण देते समय इस बात का ध्यान रख सकता है कि उनमे से कुछ बराबर भुगतान के लिये पकते रहें। इससे उसे बराबर रकम मिलती रहती हैं।

(४) केन्द्रीय बैंक अच्छे बिलों पर फिर से ऋण देने (Rediscounting) के लिये बराबर तयार रहते हैं। इन पर वह अपनी बैंकदर (Bank-rate) से ब्याज लेते हैं।

(५) यदि इनके भुगतान की दर और ब्याज की दर एक ही होती है तो भी इनके ऊपरी-मूल्य (Face-value) पर न कि जितना ऋण दिया गया है उस पर कटौती (Discount) मिलने के कारण बैंकों का लाभ ही होता है। इसके अतिरिक्त इनका यह लाभ ऋण देने के समय ही मिल जाता है और अन्य ऋणों का ब्याज कुछ समय बीतने पर मिलता है। अतः, बैंक इस रकम से भी लाभ उठा सकते हैं।

किन्तु इस व्यवसाय में भी इसे बेपरवाही से करने पर बड़ी जोखिम है। यह बात विशेषतः इसलिये है कि विनिमय बिल दो प्रकार के होते हैं— वास्तविक (Genuine), बनावटी (Non-genuine)। इन दोनों में विभेद करना भी असम्भव सा है। वास्तविक बिल व्यापारिक सौदों के सम्बन्ध में किये जाते हैं। अत, उनके भुगतान की तारीख तक माल बिक जाने की सम्भावना होने से उनका भुगतान तो एक प्रकार से निश्चित सा ही रहता है। किन्तु बनावटी बिल तो केवल उनके धनियों की साख पर ही निर्भर रहते हैं। अत, उनके भुगतान में सन्देह हो सकता है। कभी-कभी ये बिल केवल अपने व्यापारी मित्रों की आर्थिक सहायता करने के विचार से ही स्वीकृत कर लिये जाते हैं, और उनके भुन जाने से लिखनेवाले धनी को द्रव्य तो मिल ही जाता है। लिखनेवाला धनी इसके भुगतान की तारीख के पहिले ऊपरवाले धनी के पास इसकी रकम पहुँचा देने का वायदा कर लेता है। अत, यदि वह ऐसा नहीं करता तो सम्भव है कि ऊपरवाला धनी उसका भुगतान न कर सके। राऊ कहता है कि यदि सहायता के सम्बन्ध के बहुत से बिल हो जायँ और लिखनेवाले तथा ऊपरवाले धनियों की आशायें सफलीभूत न हों तो यह सम्भव है कि ऐसे बिलों का भुगतान न होने के कारण बैंकर की हानि हो जाय। ये बिल साख पर तो निर्भर होते ही हैं और साख का अनुचित प्रयोग कभी भी किया जा सकता है। सहायता के बिल (Accommodation Bills) पतंगी बिल (Kite Bills) भी कहे जाते हैं। आशा पर किये गये बिल (Anticipatory Bills) अर्थ बिल (Financial Bills) भी कहलाते हैं। ये वर्तमान सम्पत्ति के ऊपर नहीं वरन् भविष्य में उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति पर किये जाते हैं। ये अमेरिका में बहुत प्रचलित हैं और कृषकों

को उनके दैनिक व्यय देने के लिये किये जाते हैं। ये भी बैङ्करो के लिये उपयुक्त नही है क्योकि खडी खेती के मूल्य पर निर्भर रहना जोखिम से खाली नहीं है।

आढत के काम (Agency Services)

बैंकर अपने ग्राहकों के लिये अनेक प्रकार के आढत के काम भी किया करते हैं। वे उनके चेकों, बिलो, प्रणपत्रो, व्याजपत्रो, (Coupons), लाभ की बॅटनी के पत्रो (Dividend-warriants), चन्दे (Subscriptions), किराये, आय कर, बीमे के प्रीमियम, इत्यादि की वसूली भुगतान और जमा करते हैं। वे उनकी तरफ से हिस्से-पत्रो, स्टाको, ऋणपत्रो, इत्यादि की स्टाक एक्सचेञ्ज मे और अन्य वस्तुओं की अन्य बाजारो मे लेवा-बेची करते हैं। वास्तव मे वे आढत पाने पर उनके लिये कोई भी काम कर सकते हैं। कभी-कभी तो वे इन्हें आढत लिए बिना ही केवल जमा प्राप्ति की लालच मे ही किया करते हैं। किन्तु वे जब आढत का काम करते हैं तब उनके ऊपर बहुत से महत्वपूर्ण दायित्व आ पड़ते हैं।

अन्य काम (Miscellaneous Services)

अन्य कामो मे बैंकरो द्वारा किये जानेवाले अनेक काम सम्मिलित हैं। वे अपने ग्राहकों की मूल्यवान सम्पत्ति, गहने और जवाहिरात तथा मूल्यवान कागज सुरक्षित रखने (Safe custody) के लिये भी लेते हैं। वे सम्पत्ति देने (Referee) का भी काम करते हैं। जब कोई व्यवसायी किसी अन्य व्यवसायी की आर्थिक स्थिति का पता लगाना चाहता है तब उसे उसके बैंकर का हवाला (Reference) दे दिया जाता है जो उसे उसके विषय मे सारी सूचनाये दे देता है। वे अपने ग्राहको के सम्भावित ग्राहकों की स्थिति का पता भी लगा देते हैं जिससे वे उनकी साख पर काम करने अथवा न करने का निश्चय करते हैं। वे साख-पत्र (Letters of credit) और बैंक ड्राफ्ट भी निकालते हैं। इनके द्वारा रकमे एक स्थान से दूसरे स्थानो को भेजी जाती हैं। किन्तु किसी बैंकर का सबसे महत्वपूर्ण काम तो यह है कि वह अपने ग्राहकों को सच्ची मित्रता और सहनशीलता सिखाता है। बैंकिंग की कार्य-कुशल प्रणाली साख के दर्जे की और समाज की व्यवसायिक सचरित्रता की इतनी उन्नति

रखती है कि वह साधुशीलता, मितव्ययिता, ईमानदारी, सत्यता और योग्यता के निर्माता कहे जाते हैं। किसी राष्ट्र के यहाँ जब सीधी-सादी द्रव्य प्रणाली के स्थान पर पेचीदा साख-प्रणाली चालू हो जाती है तभी हमें इस बात का पता चलता है कि उपर्युक्त गुणों के उसके जनसाधारण में कूट-कूट कर भर जाने से क्या लाभ होता है।

प्रश्न

(१) व्यापारिक बैंकों के कामों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

(२) बैंक किन किन विभिन्न स्थानों से जमा प्राप्त करते हैं? उनमें से प्रत्येक के महत्वपूर्ण लक्षण बताइये।

(३) बैंकों की जमा किन-किन तरीकों से बनती है? साथ ही यह भी बतलाइये कि वह उन्हें कहाँ तक शक्ति प्रदान करती है?

(४) 'साख की उत्पत्ति बैंक के लेखक की लेखनी पर ही निर्भर है।' उपर्युक्त की आलोचना कीजिये।

(५) कीन्स का कथन है "ऋण जमा के बच्चे हैं और जमा ऋण के बच्चे हैं।" इससे आप कहाँ तक सहमत है?"

(६) बैंकों के ऋण देने के सम्बन्ध में लार्ड ओवरस्टन का जो यह कथन है कि यह मेरी बुद्धि है और दूसरों का द्रव्य है, उससे आप कहाँ तक सहमत हैं?

(७) बैंकों के ऋण के जितने रूप हो सकते हैं उनका एक संक्षिप्त विवरण दीजिये। डिस्काउन्ट का व्यवसाय बैंकों को क्यों अधिक प्रिय है?

अध्याय ५

व्यापारिक बैंकों के काम करने की प्रणाली

(Banking Operations)

व्यापारिक बैंकों के काम करने की प्रणाली में निम्न चार बातों का अध्ययन करना पड़ता है —

(१) बैंकों को उनकी कार्यशील पूँजी (Working Capital) कैसे प्राप्त होती है ?

(२) बैंक अपनी कार्य-शील पूँजी का कैसे उपयोग करते हैं ?

(३) बैंक कैसे लाभ कमाते हैं ?

(४) बैंक अपने लाभ का किस प्रकार उपयोग करते हैं ?

बैंकों को उसकी कार्यशील पूँजी कैसे प्राप्त होती है

बैंकों को उनकी कार्यशील पूँजी अनेक ढङ्ग से प्राप्त होती है। प्रथम तो अन्य व्यापारिक संस्थाओं की तरह वह भी अपने हिस्से (Shares) निकालते हैं। किसी बैङ्क के संस्थापक यह निश्चय करते हैं कि उनके बैंक की रजिस्ट्री कितनी पूँजी से होनी चाहिये। सारी पूँजी बराबर-बराबर रकम के कुछ भागों में विभक्त कर दी जाती है, और प्रत्येक भाग एक हिस्सा (Share) कहलाता है। ये हिस्से जनता को क्रय करने के लिये दिये जाते हैं। कभी कभी सब हिस्से प्रारम्भ ही मे जनता के क्रय के लिये नहीं निकाले जाते, वरन् उनमें से कुछ भविष्य में निकालने के लिये रोक लिये जाते हैं। फिर, जितने हिस्से निकाले जाते हैं उन सब को जनता हमेशा ले भी नही लेती है। अब यदि विवरण पत्रिका (Prospectus) मे दी हुई न्यूनतम पूँजी (Minimum-subscription) के हिस्सों के लिये उचित समय के अन्दर जनता के प्रार्थना-पत्र नहीं आ जाते हैं तो उनकी बँटनी (Allotment) नही होती और बैंक भङ्ग कर दिया जाता है। फिर, हिस्सो की पूरी रकम भी न मँगाई जाकर केवल कुछ अशों में ही मँगाई जा सकती है। शेष रकम आवश्यकता पडने पर भविष्य मे मँगाने के लिये छोडी जा सकती है। अन्तिम, यह भी सम्भव है कि सब हिस्सेदार कुछ माँगी हुई रकम न दे पावे। अत, पूँजी के भिन्न-भिन्न रूप हैं और उनके भिन्न-भिन्न नाम भी हैं। जिस पूँजी से बैंक की रजिस्ट्री होती है उसे अधिकृत अथवा रजिस्टर्ड अथवा नामपत्र की पूँजी (Authorised, Registered or Nominal Capital) कहते हैं, निकाली हुई पूँजी प्रसारित पूँजी (Issued Capital), खरीदी हुई पूँजी क्रीत पूँजी (Subscribed-Capital), माँगी हुई पूँजी (Called up Capital) और प्राप्त पूँजी प्रदत्त पूँजी (Paid up Capital) कही जाती हैं। प्राप्त पूँजी और माँगी हुई पूँजी के अन्तर की रकम बाकी

पूँजी (Calls in arrear) कहलाती है। यह अन्तर अधिक दिनों तक नहीं चलता। उचित समय व्यतीत हो जाने पर उन व्यक्तियों के हिस्से जप्त (Forfeit) कर लिये जाते हैं जो उन पर की गई माँग नहीं पाते हैं और उन्हें दूसरों के नाम बेच दिया जाता है। दायित्व (Reserved Liability of the Shareholders) कहा जाता है। वैयक्तिक बैंकरों (Individual Bankers) और साझे के व्यक्तियों का दायित्व तो असीमित रहता है अर्थात् यदि उनके व्यवसाय का ऋण उनके व्यवसाय की पूँजी से नहीं पूरा हो पाता तो उसे उन्हें अपनी निजी पूँजी से पूरा करना पड़ता है। किन्तु सम्मिलित पूँजी के बैंकों के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। उनके हिस्सेदार तो केवल उनकी पूँजी की रकम ही देनी पड़ती है। यदि ध्यान से देखा जाय तो यह ठीक ही है। वैयक्तिक बैंकर और साझी बैंकर अपना व्यवसाय स्वयं चलाते हैं और उसकी नीति निर्धारित करते हैं। अतः, उनका उत्तरदायित्व भी असीमित रह सकता है। किन्तु सब हिस्सेदार तो व्यवसाय देखते नहीं अतः, उनका उत्तरदायित्व सीमित ही रहना चाहिये। सीमित दायित्व का सबसे पहिला विधान सन् १८५५ में इंगलिस्तान में पास किया गया था किन्तु उस समय यह केवल अन्य व्यापारों के लिए था, बैंकिंग के लिये नहीं। अधिकांश लोगों का यह विचार था कि बैंकों की स्थिति ऐसी दायित्वपूर्ण है और उनके पास लोगों की इतनी अधिक जमा रहती है कि उनका दायित्व सीमित नहीं किया जा सकता। सन् १८५७ में बड़े संकट का समय आ गया और उसमें बहुत से बैंक विशेषतः स्काटलैण्ड का पश्चिमी बैंक (Western Bank of Scotland) भी फेल हो गया। अतः यह देखा गया कि धनी लोग बैंकों के हिस्से नहीं खरीदते। उनके अधिकतर हिस्से गरीबों के पास ही रहते हैं। इसलिये धनी लोगों को बैंकों के हिस्से लेने को प्रोत्साहित करने के लिये सन् १८५८ में बैंकों के हिस्सेदारों का दायित्व भी सीमित कर दिया गया। किन्तु बहुत से बैंकों ने यह सोचकर कि कहीं ऐसा करने से उनके ग्राहकों का उनके ऊपर से विश्वास न उठ जाय, ऐसा नहीं किया। लेकिन सन् १८७८ में ग्लासगो शहर के बैंक (City of Glasgow Bank) के फेल हो जाने पर उसके हिस्सेदारों की बहुत क्षति हो जाने के कारण बैंकों के हिस्सेदारों में इतना डर समा गया कि उन्हें दायित्व सीमित करना ही पड़ा। सन् १८७९ में सुरक्षित दायित्व का एक विधान पास किया गया जिसके अनुसार बैंक अपने हिस्सों का पूर्ण मूल (Nominal value) इस शर्त पर बढ़ा सकते थे

कि वह बढा हुआ मूल्य केवल उनके दिवालिया होने पर ही आवश्यकता पडने पर लिया जा सकेगा। बस, यह उनका सुरक्षित दायित्व कहलाया। इसका फल यह हुआ कि जब एक ओर तो हिस्सेदारो का दायित्व सीमित हो गया दूसरी ओर बैंको मे जमा करनेवालो को यह विश्वास हो गया कि यदि वह फेल भी हो जायँगे तो उनकी रकम के भुगतान के लिये कुछ-रकम तो सुरक्षित दायित्व से मिल ही जायगी। तब से यह प्रथा प्रचलित है और बैंक अपने हिस्सेदारों से उनके खरीदे हुये हिस्सों की पूरी रकम नहीं मॉगते। हमारे देश म सीमित दायित्व का सिद्धान्त सन् १८६० मे माना गया था। अत॰, उसके बाद ही यहॉ पर बहुत से बैंक स्थापित हुये। ऊँचे दर्जे के बैंको की प्रसारित पूँजी और क्रीत पूँजी मे कोई अन्तर नही होता। बात यह है कि उनके निकाले हुये सभी हिस्सों के खरीदार मिल जाते हैं। अधिकृत पूँजी और निकाली हुई पूँजी का अन्तर इस बात का द्योतक है कि व्यवसाय बढने पर बैंक की पूँजी भी बढ जायगी। किन्तु इन सब मे सबसे महत्वपूर्ण तो प्राप्त पूँजी ही है। वही तो बैंक की कार्यशील पूँजी का एक विशेष अग है। किन्तु यह अग अन्य अगो की अपेक्षाकृत बहुत ही कम होता है। एक बात और ध्यान देने की है और वह यह है कि हिस्सेदार अपनी पूँजी पर कुछ आय भी चाहते हैं। बैंकों को लाभ तो मिलता ही है, किन्तु उसमे से कुछ तो वे सुरक्षित कोष (Reserve fund) के लिये बचा लेते हैं। हॉ, शेष हिस्सेदारो म लाभ के रूप मे (Dividend) बॉट दिया जाता है। सुरक्षित-कोष अन्त मे हिस्सेदारो का ही होता है। अत, वह भी पूँजी का ही एक अङ्ग माना जाता है। किसी बैंक के सब हिस्से बिक जाने और उनकी पूरी रकम मॅगा लेने के कारण जब व्यवसाय बढने पर उस बैंक की पूँज बढने का कोई तरीका नहीं रह जाता तब इसी तरीके से बराबर उसकी पूँजी बढती रहती है।

कार्यशील पूँजी प्राप्त करने का एक दूसरा और बहुत ही महत्वपूर्ण साधन जमा प्राप्त करने का है। जैसा कि हम पहिले ही देख चुके हैं यह जमा भिन्न-भिन्न रूपो में और भिन्न-भिन्न खातों मे प्राप्त की जाती है। अतः, केवल वही जमा कार्यशील पूँजी बढाती है जो नकदी के रूप मे अथवा ऐसे अधिकारो के रूप मे होती है, जिससे नकदी प्राप्त हो सकती है। विनिमय बिलों पर अथवा अन्य तरह से ऋण देकर जो जमा प्राप्त की जाती है वह कार्यशील पूँजी नहीं बढाती। पहिले प्रकार की जमा प्रत्यक्ष जमा (Direct depo-

sits) और दूसरे प्रकार की जमा अप्रत्यक्ष जमा (Indirect deposits) कहलाते हैं। बैंकर अपने ग्राहकों की वह रकम भी जो उनके पास ग्राहक के काम के सम्बन्ध में आती है, उस समय तक प्रयोग में ला सकते हैं, जिस समय तक वह ग्राहक के काम में नहीं आ जाती। उदाहरण के लिये जब एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने के लिए द्रव्य दिया जाता है तो जब तक वह पानेवाले को नहीं दे दिया जाता तब तक बैंकर उसे प्रयोग में ला सकता है, इत्यादि।

किन्तु बैंक के जमा का व्यवसाय या तो अधिकारों का पारस्परिक विनिमय है[1] या द्रव्य और अधिकार का विनिमय है। जब वह जब द्रव्य पाता है तब वह जमा करनेवाले को अपनी इच्छा पर उसे निकालने का अधिकार देता है। जब उसे विनिमय बिल, चेक, प्रणपत्र, लाभपत्र, ब्याजपत्र इत्यादि उनकी रकम वसूल करने के लिये मिलते हैं तब उसे द्रव्य वसूल करने का अधिकार मिलता है और वह उसके स्थान पर उसे निकालने का अधिकार देता है। जब उसे चन्दा, किराया, आयकर, बीमे का प्रीमियम और दूसरे सामयिक भुगतान मिलते हैं तब वह द्रव्य पाता है और जिनके लिये वह ऐसा करता है उनको इन्हें निकालने का अधिकार देता है। इधर से उधर द्रव्य भेजने में भी वह द्रव्य पाता है और निकालने का अधिकार देता है। जहाँ तक अप्रत्यक्ष जमा का प्रश्न है उसमें तो केवल अधिकारों का ही विनिमय होता है। दूसरे शब्दों में यह साख का व्यवसाय है क्योंकि ग्राहकों और बैंकों के बीच में जितने लेन-देन होते हैं उनमें सब में विश्वास की मात्रा प्रधान होती है। इसके बिना कोई किसी को द्रव्य अथवा उसे पाने का अधिकार सौंप ही नहीं सकता है।

गाऊ के कथन के अनुसार बैंकों का जमा का व्यवसाय बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें वह इधर-उधर पड़ी हुई दस, बीस, पचास और सौ-सौ की छोटी छोटी रकम एकत्रित करता है। अकेले इनमें कोई आर्थिक कुशलता नहीं है, किन्तु जब बैंकर इन्हें प्रयोग में लाते हैं तब यह बड़े से बड़े काम कर डालते हैं। वेजहौट के कथन के अनुसार इंगलिस्तान के द्रव्य बाजार के इतना धनी और महत्वशाली होने का यदि एक मात्र नहीं तो मुख्य कारण यही है कि वहाँ पर द्रव्य की एकाग्रता पाई जाती है। लोगों की रकम जमा करना और

1 "The whole deposit business of a Bank consists in the exchange of rights against rights or rights against money"

उन्हें व्यापारियों और उद्योगपतियों को देना यह बैंकों की समाज के प्रति पहिली सेवा है और इसकी कुशलता इस बात पर निर्भर है कि उन्होंने कितना रकम जमा कर ली है और व्यापार और उद्योग-धन्धों की कितनी माँग पूरी की है। भारतीय बैंक बहुत कुशल नहीं कहे जा सकते क्योंकि न तो उन्होंने यहाँ के सर्वसाधारण की बचत ही प्राप्त करने का प्रयत्न किया है और न वे व्यापार और उद्योग-धन्धों की माँग ही पूरी कर पाते हैं।

बैंक अपने ग्राहकों को उनके जमा के सम्बन्ध में चेक काटने के अधिकार देकर अधिकाधिक क्रय-शक्ति उत्पन्न करते हैं। यह उनकी दूसरी समाज सेवा है। राक के कथन के अनुसार जमा से उत्पन्न होने वाली करन्सी (Deposit currency) अथवा चेक करन्सी अथवा बैंकों का यह द्रव्य चाहे जिस नाम से पुकारा जाय, बहुत ही लोचप्रद (Elastic) है। वास्तव में चेक सम्बन्धी कोई वैधानिक अड़चन न होने से वे सुरक्षा और समाज हित का ध्यान रखते हुये किसी भी रकम तक निकाले जा सकते हैं। अब, यह सुरक्षा और समाज हित क्या है यह तो पहिले ही बताया जा चुका है। इनका उलघन इस सेवा कार्य को अहित में परिणत कर देता है। रक्षा की सीमा पार करने से बैंक फेल हो सकते हैं और समाज हित त्याग देने से इतनी क्रय-शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि उससे वस्तुओं का मूल्य अत्यधिक बढ़ जाने से समाज का अहित होता है। साख उत्पन्न करना हो तो आसान किन्तु उसी के अनुपात में उत्पत्ति बढ़ाना कठिन है।

पूँजी प्राप्त करने का तीसरा साधन <u>नोट चलाना</u> है। किन्तु यह साधन अब अधिकांश बैंकों के लिये उपलब्ध नहीं है। धात्विक-द्रव्य की तरह नोट चलाने का अधिकार सदा से ही राज्याधिकार माना गया है। किन्तु जब धात्विक-द्रव्य निकालने का अधिकार राज्य ने बराबर उपयोग किया है, तब कुछ विशेष हालत छोड़कर नोट चलाने का अधिकार उसने बैंकों ही को सौंप दिया है। यदि कहीं बैंक स्वयं ही अपने नोट चलाते आ रहे थे तो वहाँ राज्य ने पहिले तो उनकी सुरक्षा के लिये कुछ वैधानिक नियम बनाकर उन्हें ऐसा करते रहने की विधानतः आज्ञा दे दी, किन्तु शीघ्र ही उसने यह बात अनुभव की कि इसमें समानता लाने के लिये, अच्छे निरीक्षण के लिये और इससे उत्पन्न हुए लाभ में राज्य का हिस्सा बटाने के लिए इसका या तो किसी एक बैंक को एकाधिकार अथवा शेषाधिकार (Residuary power) देना पड़ेगा। वेरास्मिथ के अनुसार शेषाधिकार वह है जब कई बैंक नोट

चलाते हैं किन्तु उनमें से एक को छोड़कर सब में यह अधिकार सीमित रहता है। वास्तव में एक मुख्य बैंक के ही नोट विशेषतः चालू रहते हैं और उसी पर अधिकांश करन्सी का आधार रहता है। ऐसा ज्ञात है कि यह सन् १८४४ में इंगलैण्ड में हुआ। हालैण्ड में यह सन् १८१४ ही में हो चुका था। फ्रांस में यह सन् १८४८ में, जरमनी में सन् १८७५ में, स्वीडेन में सन् १८९७ में, संयुक्त राष्ट्र में सन् १९१४ में, दक्षिणी अफ्रीका के यूनियन में सन् १९२० में, रोडेशिया में सन् १९२३ में, आस्ट्रेलिया में सन् १९२४ में, चिली में सन् १९२५ में, इटली में सन् १९२६ में, न्यूजीलैण्ड में सन् १९३४ में, और कनाडा में सन् १९३५ में हुआ। भारतवर्ष में बैंकों के पास नोट चलाने की यह शक्ति सन् १८६१ तक रही। उस वर्ष सरकार ने इसे अपने हाथ में ले लिया और सन् १९३५ में यह इस देश के केन्द्रीय बैंक, रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया को हस्तान्तरित कर दी गई।

जब कोई बैंक नोट निकालता है तब वह स्वयं अपनी कार्यशील पूँजी उत्पन्न करता है। पहिले पहिले जो नोट चलाये गये थे वह द्रव्य की रसीदें थीं। साथ ही उन्हें चलाने वालों ने यह भी शीघ्र ही समझ लिया था कि जैसा जमा की रसीदों के सम्बन्ध में है वैसा ही इनके सम्बन्ध में भी है अर्थात् इन सब का भुगतान भी कभी एक साथ नहीं करना पड़ेगा। अतः, वह वास्तविक द्रव्य का एक बड़ा अंश चाहे जिस काम में लावें, उससे उनके नोटों के भुगतान में तनिक भी अड़चन नहीं पड़ेगी। जब तक किसी बैंक की साख मानी जाती थी तब तक उसके नोट नकदी ही समझे जाते थे और विधानतः ग्राह्य द्रव्य (Legal tender money) के सदृश्य ही माने जाते थे। बस, बिल भुनाने में और ऋण देने में भी यही नोट देना प्रारम्भ हो गया और लोग इन्हें सहर्ष लेने भी लगे। बैंकों के लिये भी इस बात में कोई अन्तर नहीं था कि उनके साख की उत्पत्ति नोटों में हो अथवा अप्रत्यक्ष जमा में हो। यदि इनमें कोई अन्तर था तो वह केवल रूप का ही था। किन्तु व्यापारियों की दृष्टि में नोटों की अपेक्षाकृत जमा के अधिक लाभप्रद जँचने के कारण और जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, नोट निकालने पर अधिकाधिक बन्धन लग जाने के कारण जमा बहुत ही महत्व पकड़ती गई यहाँ तक कि उसकी करन्सी संसार के प्रगतिशील देशों में आज नोट करन्सी से कहीं अधिक प्रचलित है। राऊ इन दोनों की सदृश्यता के विषय में जो कहता है उसका यहाँ पर संकेत कर देना भी शायद अनुपयुक्त

न होगा। वह कहता है दोनों का प्रयोग ग्राहकों को ऋण देने में अथवा उनके प्रणपत्रों और बिलों का विनिमय करने मे किया जा सकता है। दोनों ही प्रणपत्रों के रूप मे अथवा ग्राहकों के बिलों के रूप में जनता की सेवा करते हैं। दोनों में ही बैंकों ने बिना नत प्राप्य द्रव्य माँगने का अधिकार रहता है। दोनों ही बैंकों के लिये आय के साधन हैं। बैंकर के लिये दोनों माँग पर पूरा करनेवाले दायित्व हैं। आगे चलकर उसने इनके अन्तर भी बताये हैं—"बैंक नोट जमा की अपेक्षाकृत कहीं अधिक सुरक्षित दायित्व है। अत, बैंक अपनी साख इस रूप मे चलाना अधिक पसन्द करता है। उद्योग-धन्धों मे चाहे जितनी मन्दी क्यों न आ जाय जब तक बैंक जनता का विश्वासपात्र है तब तक उसके नोट चलते ही रहते हैं। जमा को तो उसके ग्राहक किसी समय भी अपना दायित्व पूरा करने के लिये प्रयोग में ला सकते हैं, किन्तु छोटे नोट बहुत दिनों तक चलते रहते हैं और प्राय जमा के रूप मे बैंकों के पास वापस आते हैं। बैंक नोट में चलन-शक्ति चेकों के अपेक्षाकृत कहीं अधिक है। जिस प्रकार चन्द्रमा गरीबों की लालटेन कहा जा सकता है उसी प्रकार बैंक नोट गरीबों की जमा कही जा सकती है। अत, लोगों की वास्तविक माँग पूरा करने के लिये नोट देने मे अधिक कठिनाई नहीं पड़ती।" किन्तु यह सब सैद्धान्तिक है। वास्तव मे साधारण बैंकों के पास तो अब नोट चलाने का अधिकार रह ही नहीं गया है।

बैङ्क अपनी कार्यशील पूँजी का कैसे उपयोग करते हैं

उपर्युक्त विवरण से यह तो स्पष्ट ही हो गया है कि बैंकों की अधिकांश कार्यशील पूँजी माँग पर देय है। हाँ, उनके हिस्सेदारों से प्राप्त पूँजी और उनके लाभ का वह अंश जिसे वह हिस्सेदारों में न बाँटकर सुरक्षित कोष के रूप में रख लेते हैं, अवश्य ही स्थायी होता है। किन्तु बैंकिंग के व्यवसाय का अर्थ पूँजी रख छोड़ना नहीं वरन् उसे चलायमान रखना है। बैंकों को थोड़ा सा नकद कोष रखने के अतिरिक्त शेष सभी ऐसी लागतों में लगा देना चाहिये जो आवश्यकता पड़ने पर उनके खाली हो जानेवाले कोष का स्थान लेने के लिये उपलब्ध हो सकें। थोड़े-थोड़े समय पर प्राय ऐसे अवसर आते रहते हैं कि लोग अधिकाधिक द्रव्य निकाल लेते हैं। कभी-कभी तो इन अवसरों पर ग्राहक ऋण लेने भी आ जाते हैं, जिन्हें पूरा करना भी बैंकों के लिये बहुत ही आवश्यक है। अत, हम अगले पृष्ठों मे यह बात समझाने का

प्रयत्न करेंगे कि बैंक अपनी सम्पत्ति और अपने पावने (Assets) किस रूप में रखते हैं और उनके अनुसार में उन्हें भिन्न भिन्न बातों का ध्यान रखना पड़ता है।

कुशल बैंकर ऐसी व्यापू लागत ढूँढते रहते हैं जो आसानी से वसूल हो जाती हैं, और भुगतान के लिए लगातार परखी रहती हैं। यह आर्थिक स्थितियों का बराबर ध्यान रखते हैं और उन्हीं के अनुसार अपनी लागतों में हेर-फेर करते रहते हैं। मोटे तौर पर इन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) लाभ न देने वाली और (२) लाभ देने वाली। प्रथम में तो उनके नकद कोष और मृत स्टाक और दूसरे में माँग पर वापिस होनेवाली लागत, (Call money) बिलों पर की लागत (Discounts) ऋण (Advances) बाजारू साख-पत्रों पर की लागत (Investments), और बिल स्वीकार करना (Acceptances), इत्यादि सम्मिलित हैं।

पहिले हम नकद कोष लेते हैं,—इसे अङ्गरेजी में टिल मनी (Till money) कहते हैं। इसका अर्थ बैंकों के बक्सों में और केन्द्रीय बैंक में रक्खा हुआ द्रव्य है। इन्हें मिलाकर उनकी रक्षा की प्रथम कतार (First line of defence) बनती है। यह दिवालियापन से बचाती है। संक्षेप में यह पूर्व विधान युक्ति (Precautionary measure) है। बैंकों को यथेष्ट नकद कोष रखने और उसे निरन्तर सुदृढ बनाने का सदा प्रयास करते रहना चाहिये। इसके लिये उन्हें देर से वसूल होनेवाली लागत शीघ्र वसूल होने वाली लागत में परिवर्तित करते रहना चाहिये। जहाँ तक यह प्रश्न है कि नकद कोष और माँग पर देय रकम (Demand liability) का क्या अनुपात रहना चाहिये यह बात जैसा कि पहिले भी कहा जा चुका है, बहुत सी बातों पर निर्भर है और परिवर्तित होती रहती है। यह निम्नांकित हैं —

(१) कहीं कहीं व्यवस्थापक सभाओं (Legislatures) ने कुछ प्रतिशत निश्चित कर दिया है। इससे नवसिखियों को अवश्य सहायता मिलती है और अत्यधिक साहस करने वालों के ऊपर भी प्रतिबन्ध रहता है। किन्तु इसके अतिरिक्त यह कुछ नहीं है। वास्तव में बैंक प्रबन्धकों को विधान के द्वारा बाँधने की अपेक्षाकृत उनकी स्वयं की सच्चाई, बुद्धि और निर्णय

शक्ति पर विश्वास करना अधिक अच्छा है। कोई वैधानिक सीमा निर्धारित कर देने से उनके मस्तिष्क में झूठी सुरक्षा का बोध हो जाता है और वे सोचने लगते हैं कि उन्हें जो कुछ करना था वह उन्होंने कर दिया है। फिर, यह बतलाना भी कठिन है कि यह निर्धारित प्रतिशत क्या होनी चाहिये क्योंकि भिन्न-भिन्न देशों की व्यवस्थापक सभाओं ने जो प्रतिशत निर्धारित किये हैं वे सभी एक दूसरे से बहुत ही भिन्न हैं। उदाहरण के लिये डेनमार्क में यह चालू जमा का १० प्रतिशत है, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न है, अर्जेण्टाइना में यह स्थायी जमा का ८ प्रतिशत और चालू जमा का १६ प्रतिशत है, चिली में यही क्रमश ८ प्रतिशत और २० प्रतिशत है, इक्वेडोर में यह क्रमश. १० प्रतिशत और २५ प्रतिशत और बोलिविया में क्रमश १० प्रतिशत और २० प्रतिशत है। कुछ देशों में इस प्रतिशत में केवल बैंकों में रक्खा हुआ सुरक्षित कोष और कुछ में इसमें यह और केन्द्रीय बैंकों में भी रक्खा हुआ सुरक्षित कोष दोनों सम्मिलित हैं। हमारे देश में रिजर्व बैंक के सदस्य बैंकों (Scheduled Banks) को उक्त बैंक के पास उनकी चालू जमा का ५ प्रतिशत और स्थायी जमा का २ प्रतिशत रखना पड़ता है। उनके स्वय के बक्सों में रक्खे जाने वाले कोष पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इसके विपरीत अन्य बैंकों (Non Scheduled Banks) को उनकी स्थायी जमा का २ प्रतिशत और चालू जमा का ५ प्रतिशत अपने ही बक्सों में रखना पड़ता है।

(२) यह साधारणतः रक्खे जानेवाले प्रतिशत पर भी निर्भर रहता है। यदि किसी स्थान का एक बैंक अधिक प्रतिशत रखता है तो उस स्थान के अन्य बैंकों को भी जनता का विश्वासपात्र बनने के लिये वैसा ही करना पड़ता है। अन्य स्थानों के बैंकों की अपेक्षाकृत इगलैण्ड के बैंक बहुत कम प्रतिशत रखते हैं।

(३) किसी बैंक के नकद कोष का परिमाण उसके प्रत्येक ग्राहक की जमा के औसत के परिमाण पर भी निर्भर रहता है। वास्तव में यह उतना होना चाहिये जितना सबसे अधिक जमा रखनेवाले ग्राहक की माँग पूरा करने के लिये काफी हो।

(४) जिन देशों में अधिकांश भुगतान चेकों द्वारा होते हैं उन देशों में उनकी अपेक्षाकृत कम कोष रखने की आवश्यकता पड़ती है जिनमें अधिकांश भुगतान नकदी में होते हैं।

(५) यदि निकास प्रणाली (Clearing system) प्रचलित है तो बैंकों पर की गई अधिकांश चेकों का भुगतान परस्पर ही हो जाता है। मान लीजिये 'अ' बैंक के ग्राहकों ने 'ब' 'स' 'द' बैंकों के ग्राहकों के भुगतान में 'अ' बैंक के ऊपर के चेक दिये हैं। इसी तरह से 'ब' 'स' और 'द' बैंकों के ग्राहकों ने भी अपने से अन्य बैंकों के ग्राहकों के भुगतान में अपने-अपने बैंकों के चेक दिये हैं। अब, प्रत्येक बैंक के ग्राहकों को अन्य बैंकों के ग्राहकों से उनके अपने-अपने बैंकों के ऊपर के जो चेक प्राप्त हुये होंगे उन्हें वे अपने अपने बैंकों को देंगे। अतः, सभी बैंकों को अन्य बैंकों से पाना और देना भी होगा। अब, यदि निकास प्रणाली है तो इन चेकों का परस्पर भुगतान हो जायगा, नकदी नहीं देनी पड़ेगी। अतः, ऐसी अवस्था में बैंकों को बहुत कम नकद कोष रखना पड़ता है।

(६) जहां पर लोग अपने पास नकदी न रख कर चेकों द्वारा काम करते हैं, वहां पर उसके बराबर चालू रहने से जब बैंक एक तरफ उसे देते हैं दूसरी तरफ उसे पाते भी हैं। अतः, उनका काम कम नकदी रखने पर भी चल जाता है।

(७) यदि किसी बैंक के ग्राहक ऐसे हैं जो कभी कभी बहुत रकम निकालते हैं जैसे बिलों के दलाल, इत्यादि तब उसे इन्हें पूरा करने के लिये काफी नकद कोष रखना पड़ता है।

(८) यदि किसी बैंक की लागत ऐसी है जिसकी वसूली आसानी से हो सकती है तो कम नकदी रखने से भी काम चल सकता है। जिन देशों में द्रव्य बाजार और बिल बाजार बहुत उन्नत दशा में है उनमें उन्हीं में लागत लगाई जाती है। अत, आवश्यकता पड़ने पर उनकी वसूली भी हो सकती है, इंगलैण्ड में बहुत काफी द्रव्य बिलों और स्टाक एक्सचेञ्ज के दलालों को जो अपने ऋणों के लिये बहुत उच्च श्रेणी की देसनदार सिक्योरिटीज गिरवी रख देते हैं और उन्हें तीन से दस दिनों के अन्दर अथवा दूसरे ही दिन वापस करने का वायदा कर लेते हैं, दे दिया जाता है। वास्तव में यह ऋण जो बहुत ही थोड़ी अवधि के लिये अथवा दैनिक ही होते हैं एक तरह से बराबर चालू रहते हैं। इन्हें मॉग पर अथवा लघु-कालीन ऋण (Money at call and short notice or Call money) अथवा रात्रि ऋण (Overnight money) कहते हैं। इनके अतिरिक्त बिल डिस्काउण्ट करने के व्यवसाय में भी जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, बिलों की लागत

आदर्श लगता है। यदि केन्द्रीय बैंक है और आजकल तो सभी जगह केन्द्रीय बैंक हैं तो आवश्यकता पड़ने पर इन्हें उससे भुनाया भी जा सकता है।

(६) अन्तिम, यदि बैंक व्यापारिक क्षेत्र में स्थित हैं तो उन्हें उन बैंकों की अपेक्षाकृत कम नकदी रखनी पड़ती है जो कृषि-क्षेत्र में स्थित हैं। कारण यह है कि जब कृषकों को बारम्बार द्रव्य निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ती, तब व्यापारियों को इसकी आवश्यकता पड़ती है।

जहाँ तक मृत स्टाक ("Dead stock) का प्रश्न है उसमें इमारतें और उनके सम्बन्ध की अन्य चीजें जैसे फर्नीचर, इत्यादि सम्मिलित हैं। बैंकों के लिये अपना व्यवसाय करने के लिये स्थान होना अत्यावश्यक है। किसी बैंक की इमारत काफी बड़ी और भड़कीली होनी चाहिये। वह वास्तव में विज्ञापन का काम देती है। अच्छी इमारतें अच्छे ग्राहक आकर्षित करती हैं। वह ऐसी होनी चाहिये कि जिसमें न तो सेंध लगाई जा सके और न आग लग सके। पुराने और नये रिकार्ड रखने के लिये उसमें विशेष कमरे होने चाहिये। किन्तु इतना होते हुये भी उसमें बहुत अधिक लागत लगा देना उचित नहीं है। शाक के शब्दों में[1] "एक बैंक के लिये ठोस नकदी होना ईंटों और चूने में लागत लगा देने की अपेक्षाकृत कहीं अधिक अच्छा है।" मृत स्टाक का विक्रय कठिन है। एक तो वह आसानी से बिकता ही नहीं और दूसरे उसे बेचने से बैंक की बदनामी भी हो जाती है, इसे तो बैंक फेल हो जाने पर ही बेचा जा सकता है, पहिले नहीं।

अब हम बैंकों की कार्यशील पूँजी के लाभदायक प्रयोगों की ओर आते हैं, उसका एक अंश मृत स्टाक और नकद कोष में फँसा देने के बाद प्रत्येक बैंक प्रबन्धक यह सोचता है कि शेष को वह कैसे लघुकालीन और दीर्घकालीन ऋणों में लगावे। यह स्पष्ट है कि वह काफी रकम केवल लघुकालीन ऋणों में ही लगाना चाहता है। किन्तु ऐसा करने के पहले वह यह करने का प्रयत्न करता है कि जितनी भी रकम सम्भव हो ऐसी लागत में लग जाय जिससे उसे कुछ आय भी मिले और जो काम पड़ने पर उसी समय प्राप्त भी हो सके। कुछ देशों में भाग्यवश यह सम्भव भी है क्योंकि वहाँ पर बिलों और स्टाक एक्सचेंज के दलाल बराबर ऐसा ऋण लेने की ताक में लगे रहते हैं।

---

[1] It is always preferable for a bank to have solid cash in its hands rather than invest it in bricks and mortar

बिलों के दलालों को तो इनकी आवश्यकता इनके क्रय के सम्बन्ध में और स्टाक एक्सचेंज के दलालों को इनकी आवश्यकता पाक्षिक भुगतानों के बीच के दिनों में स्टाक लेने के लिये पड़ती है। ये कन्सोल्स (Consols), सरकारी बाण्ड (Exchequer bonds) और लन्दन कारपोरेशन और नागरिक काउन्सिलों के बाण्ड जो आसानी से बिक जाते हैं और जिन्हें अवश्य कोई व्यक्ति भी कुछ की नीचे ले सकता है, जमानत की तौर पर देते हैं। प्रो० टासिग के कथनानुसार बैंकों की दृष्टि से ये उनके व्यवसाय के बहुत ही सुविधा-पूर्ण अङ्ग हैं। इनसे कभी थोड़ी और कभी बहुत किन्तु हमेशा यथेष्ट आय हो जाती है और साथ ही यदि किसी बैंक को आवश्यकता पड़ती है तो ये नकदी में शीघ्रता से परिवर्तित भी किये जा सकते हैं। ये उस चाहें इनको संकट के समय अथवा किसी अन्य लाभदायक व्यापार में लगाने के लिये उपयोग में ला सकते हैं। फिर जनता के लाभ की दृष्टि से भी ये लाभदायक हैं। कुछ आवश्यक कार्यों के लिये हमेशा थोड़ी और निश्चित अवधि के लिये नकदी की आवश्यकता पड़ती रहती है और उसके लिये यही माँग पर वापिस होने वाले ऋण बहुत ही उपयुक्त साबित होते हैं।" गाऊ के कथन के अनुसार[2] इसमें बैंकर कुछ इसी तरह का असम्भव सा काम करता है कि रोटी बची भी रहती है और खाने के काम में भी आ जाती है। किन्तु ये बुराइयों से बिल्कुल खाली नहीं हैं। इनसे सट्टेबाजी प्रोत्साहित होती है। इसके अतिरिक्त ये साधारण समय के लिये तो अच्छे हैं किन्तु संकट काल के लिये व्यर्थ हैं अर्थात् जम जाते हैं (Become frozen)। ऐसे समय में इनका भुगतान मिलना कठिन हो जाता है और इनमें जो द्रव्य लगा रहता है वह ठीक उसी समय जब उसकी नकदी के रूप में एक बहुत बड़ी आवश्यकता होती है, फँसा रह जाता है। अत, बहुत से बैंकर इनकी अच्छी सम्पत्ति में गणना नहीं करते। लार्ड गाशन ने इनके विरुद्ध कहा है।[3] तथापि ये लन्दन और न्यूयार्क में बहुत प्रचलित हैं। भारतवर्ष में ये प्रथम युद्ध के पहिले तक तो बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और कराची तक में प्रचलित नहीं थे। किन्तु उसके पश्चात् इनका प्रयोग प्रारम्भ हो गया। यहाँ पर इनकी माँग सोने,

2 In the case of Call Money the banker seems to accomplish he impossible feet of 'Having the cake and eating it too'

3 It is not an asset which constitutes a reserve—useful in the general interest of community at large

चाँदी के और स्टाकों के बाजारों में है। यह किसी जमानत के बिना उच्चतम श्रेणी के लोगों को दिया जाता है। ऋण की मन्दी और तेजी पर इनके व्याज की दर निर्धारित रहती है। तेजी की ऋतु में यह बहुत ऊँची दर पर भी नहीं प्राप्त होती और मन्दी की ऋतु में यह ½ प्रतिशत पर मिल जाते है। कुछ दिनों से यह द्रव्य सरकारी खजानो के बिलो (Treasury Bills) में लगा दिया जाता है। यह बैंकों के पारस्परिक ऋण (Inter bank loans) मे भी लगा रहता है।

किन्तु इस प्रकार की लागत तो केवल कुछ रकम लगाने के लिये ही उपयुक्त है। कार्यशील पूँजी का एक बहुत बडा भाग तो अधिक आय पाने के लिये किसी अन्य काम में लगाया जाता है। जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, बैंकर्स की दृष्टि से बिलों की लागत सबसे अच्छी है। यह ऋण व्यापारियों द्वारा लिया जाता है। कभी-कभी बिलों और स्टाकों के दलाल भी इनसे लाभ उठा लेते हैं। हम जानते हैं कि बिल डिस्काउण्टिंग हाउस और बिल के दलालों से भी भुनाये जाते हैं जो आवश्यकता पड़ने पर उन्हें फिर बैंको से भुना लेते हैं। बिलों के दलाल साधारणतया तो उन पर अपनी पूँजी से ही रकम देते हैं, किन्तु कभी-कभी उन्हे बैंकों की भी शरण लेनी पड़ती है। वे उनसे इस आशा पर ऋण ले लेते हैं कि शीघ्र ही जब उनके कुछ बिल पक जायेंगे तब वह उन्हे लौटाल देंगे। बिलों के वास्तविक और झूठे (Genuine and Non Genuine) होने के कारण बैङ्कों को जो कठिनता पड़ती है उसे हम पहिले ही समझ आये हैं किन्तु जो ग्राहक अपने बिल भुनाते हैं उनके ऊपर दृष्टि रखने से यह कठिनता भी दूर हो सकती है। प्रायः, प्रत्येक बैङ्क के पास कुछ ऐसे ग्राहकों के नाम रहते हैं जिनके बिलों पर वे ऋण देने के लिये तैयार रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ग्राहक के नाम के आगे एक रकम लिखी रहती है जिस तक के ही उसके बिलों पर बैंक ऋण देते हैं, और यदि इस बात पर ध्यान रक्खा जाता है तो कोई डर नहीं रहता। बिलो पर ऋण देने के पहिले यह भी देख लेना चाहिये कि वह सब तरह से पूर्ण हैं, अर्थात् वह नियमानुसार लिखे. स्वीकृत किये और बेचान किये गये हैं। उनके लिखने वाले, ऊपर वाले और बेचान करने वाले धनियों की व्यापारिक स्थिति भी पता लगाते रहना चाहिए क्योंकि उनका भुगतान तो इन्हीं के ऊपर निर्भर रहता है। फिर एक ही प्रकार

के सौदों के सम्बन्ध के ही बिलों पर सब रकम नहीं लगा देनी चाहिये क्योंकि इससे उस व्यापार में मन्दी पड़ जाने पर रकम फँसे रह जाने का डर रहता है। अन्तिम बात यह कि किसी बैंक को लगातार चलने वाले बिलों पर ही अपनी रकम लगानी चाहिये जिससे वह धीरे-धीरे मिलती भी रहे। इससे उसके ग्राहकों की माँग बराबर पूरी होती रहेगी।

अब हम मुख्य ऋण की ओर चलते हैं। बाजार में ऋण के अन्तर्गत सब प्रकार के ऋण आ जाते हैं, यहाँ तक कि बिलों पर दिया जाने वाला ऋण भी आ जाता है। किन्तु माँग पर वापिस होने वाले और बिल पर दिये जानेवाले ऋणों को बैंकर मुख्य ऋण के अन्तर्गत नहीं गिनते और व्यवहार में यह ठीक भी है, क्योंकि इन पर लगी हुई रकम तो जब चाहें तब वसूल की जा सकती है। अतः, ऋण तो वही है जो हर समय वापिस न हो सके। ऋण भी तीन प्रकार के हैं। प्रथम तो जमा की हुई रकम से अधिक निकालने की आज्ञा अधिविकर्ष (Overdrafts) के रूप में, दूसरे नकद साख (Cash credit) के रूप में और तीसरे साधारण ऋण (Loans and advances) के रूप में। ये प्रपत्रों की, अन्य जमानतों की तथा वैयक्तिक जमानत की भी बिना पर दिये जाते हैं। सच तो यह है कि इन्हीं की बाहुल्यता पर बैंकों का लाभ निर्भर रहता है। किन्तु सुरक्षा के विचार से यह बहुत उपयुक्त नहीं है, अतः, इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए —

(१) प्रत्येक बैंकर को नकदी का यथेष्ट कोष अपने पास रखना चाहिए। यदि यह अधिक हो जाय तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु कम नहीं होना चाहिए।

(२) जैसा प्राय कहा जाता है उसे अपने सारे अण्डे एक ही टोकरी में नहीं रखने चाहिये। इसके यह अर्थ हैं कि उसे अपनी ऋण देने की सारी रकम एक ही व्यक्ति को नहीं दे देनी चाहिये। जहाँ तक हो वह अधिकाधिक विस्तृत क्षेत्र में बँटी रहनी चाहिए अर्थात् न तो एक व्यक्ति ही हो, न एक तरह का व्यापार ही हो, न एक स्थान हो और न एक प्रकार की जमानत ही हो।

(३) उसे जमानतें भी भली भाँति देख लेनी चाहिये। इस विषय पर राऊ ने जो कुछ कहा है उसे तो हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं। जो भी जमानत ली जाय उसे हर दृष्टि से देख लेना चाहिये। किन्तु जैसा

कि एक अगले अध्याय में बताया जायगा कोई भी जमानत आदर्श जमानत नहीं है। भूमि और मकान का रेहन तो सबसे निकृष्ट है। उसे न तो आसानी से और शीघ्र से बेचा जा सकता है और न तो उसके मूल्य का कोई ठिकाना है।

(४) उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसे व्यापारियों के केवल चालू लेन देन का ही प्रबन्ध करना है। उसे न तो सब तरह के न बिकनेवाले धन द्रव्य के रूप में परिणत करने हैं और न उससे इसकी आशा की जाती है कि वह भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साख ही उत्पन्न करेगा।

(५) उसे अपने पक्ष में सदा यथेष्ट गुंजाइश (Margin) रख लेनी चाहिये। जितनी अधिक मूल्य में घट-बढ होने की सम्भावना हो उतनी ही अधिक यह गुंजाइश रखनी चाहिये।

(६) व्यापारिक बैंकों का उद्देश्य केवल लघुकालीन साख उत्पन्न करना है। अत, यदि वे इस नियम से लेशमात्र भी विचलित हो जाते हैं तो बडी आपत्ति आ जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि यूरोप के बैंक और विशेषतया जर्मन बैंक उद्योग-धंधों में भी रकम फँसा देते हैं, किन्तु उनके यहाँ की जमा और इंगलैंड के तथा अन्य देशों के यहाँ की जमा में जिनकी बैंकिंग इंगलैण्ड की बैंकिंग की तरह की है, एक बडा अन्तर है। अत, इसमें कोई हर्ज नहीं है। प्रत्येक बैंकर को अपने ग्राहक से यह पूछ लेना चाहिये कि उसे कितनी अवधि के लिए ऋण की आवश्यकता है और उसका जो पहिला उत्तर हो वही ठीक समझना चाहिये। प्राय यह देखा गया है कि जब कोई व्यापारी अधिक दिनों के लिये ऋण माँगता है और उसे वह नहीं प्राप्त होता तब वह यह कहकर कि वह बाद में किसी अन्य जगह से ऋण प्राप्त करके बैंक को वापिस कर देगा उसे थोडे समय के लिए ही प्राप्त कर लेता है। ऐसा ऋण कभी भी वापिस नहीं होता। वाल्टर लीफ ने अपनी पुस्तक में ऐसे दो ऋणों के उदाहरण दिये हैं—एक में तो किसी बीमा कम्पनी से रेहन पर ऋण लेने की और दूसरे में नये हिस्से बेचकर ऋण लेने की बात थी, किन्तु यह कुछ भी न हो सका। ऐसे ऋण सदा के लिए चालू रह जाया करते हैं।

(७) ऋणों का बारम्बार का नवीनकरण भी अच्छा नहीं है। ऐसा करने से वे जाम (Freeze) हो जाते हैं। इन्हें खातों का पोषण करना (Nursing of Accounts) कहा जाता है।

(८) ऋण के उद्देश्य का भी पता लगा लेना चाहिये। ऐसा कहा जाता है कि उपभोग के लिए ऋण नहीं देने चाहिए। किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि ऋण कहाँ से वापिस किया जायगा। कभी-कभी लोग ऐसी सम्भावनायें (Prospects) लेकर आते हैं जो पूरी नहीं हो सकतीं। यदि बैंकर इन पर उधार नहीं देता तो उससे न केवल उसी की बल्कि ग्राहकों की भी बचत हो जाती है।

(९) जो जमानतें दी जायँ उनके मूल्य की घटा-बढ़ पर भी बैंकर को दृष्टि रखनी चाहिये। यदि उसमें कमी हो जाय तो उसे अन्य जमानत मँगाकर फौरन पूरा कर लेना चाहिये।

(१०) कम ब्याज की नीति भी बहुत अच्छी नहीं होती। इसमें लोग अत्यधिक उधार ले लेते हैं। किन्तु व्यापार तो केवल पूँजी ही से नहीं चलता है उसके लिए अन्य साधनों की आवश्यकता पड़ती है। अत, उनके न रहने पर जो पूँजी लगाई जाती है वह भी व्यर्थ चली जाती है।

(११) अन्तिम बात यह है कि ऋण माँगनेवाले का चरित्र बहुत अच्छा होना चाहिये। सच तो यह है कि अच्छे चरित्र से बढ़कर कोई दूसरी जमानत नहीं है। जो लोग उधार माँगते हैं उन्हें विश्वासपात्र होना चाहिये क्योंकि विश्वास ही तो साख की एक मुख्य चीज है। अब इस विश्वास के लिए ईमानदारी, गम्भीरता, तत्परता, न्यायपरता और व्यवस्था पालन करने की आदत होना बहुत ही जरूरी है।

जहाँ तक इन ऋणों के रूप का प्रश्न है उन्हें तो हम पहिले ही देख चुके हैं। यह जमानत पर अथवा बिना जमानत भी दिए जा सकते हैं। जहाँ तक भिन्न भिन्न प्रकार की जमानत का प्रश्न है उनका हम आगे चलकर विस्तृत अध्ययन करेंगे। अब रह गये बिना जमानत के ऋण सो वह वैयक्तिक जमानत पर दिए जाते हैं। इसमें ऋण लेने वाले के चरित्र की छानबीन बहुत ही महत्व रखती है। उसकी कुल सम्पत्ति और ऋण वापस करने की क्षमता पर भी ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। प्रत्येक बैंकर के कुछ ऐसे ग्राहक अवश्य होते हैं जो उसके संरक्षक की तरह होते हैं। इन्हें उसे किसी जमानत के बिना भी ऋण देना पड़ता है। उन्हें जब बहुत ही आवश्यकता पड़ती है तभी वह ऋण माँगते हैं। अत, बैंकर उन्हें नाराज नहीं करना चाहते। वास्तव में आवश्यक बातें ध्यान में रखकर ऐसे ऋण देने से बैंकों की कभी हानि नहीं होती।

बैंक अपनी रकम सरकारी, अर्ध-सरकारी, जनहित के लिए बनी हुई सस्थाओं और उद्योग-धंधों सम्बन्धी साख-पत्रों में भी लगाते हैं। यदि सच पूछा जाय तो ऐसा करना उनके लिये उपयुक्त नहीं है। उनका काम तो पूँजी चालू रखना है। उसे फँसा रखना नहीं है। किन्तु वे इस काम मे अपनी रकम केवल इसीलिए लगाते हैं कि वह इसमें से आवश्यकता पड़ने पर आसानी से वसूल हो जाती है। इन पर की वार्षिक आय भी अधिक नहीं होती। वह बिलों पर तथा अन्य प्रकार के ऋणों पर की आय की अपेक्षाकृत बहुत ही कम होती है। हाँ, इन साख-पत्रों की कीमत बढ़ जाने पर अवश्य लाभ हो जाता है, किन्तु यह तो सट्टेबाजी है जो बैंकिंग के व्यवसाय के विरुद्ध है। किन्तु ये स्टाक एक्सचेञ्ज के बाजार मे किसी समय भी बेचे जा सकते हैं। अत, वसूली की दृष्टि से तो यह लागत आदर्श लागत हैं। सरकारी साख-पत्र जिन्हें स्वर्ण साख-पत्र (Gilt-Edged Securities) भी कहते हैं शायद इस दृष्टि से सबसे अच्छे होते हैं। उनके मूल्य का ह्रास भी प्राय. कम होता है। किन्तु बैंक एक ही प्रकार की लागत मे अपनी सारी रकम कभी नहीं लगाते, चाहे वह सरकारी साख-पत्र की हो, चाहे किसी की भी हो। उनकी रकम तो भिन्न-भिन्न प्रकार की लागतों मे लगी रहती है।

एक अन्य प्रकार का ऋण भी होता है जिसे बिलों की स्वीकृति (Acceptance business) का ऋण कहते हैं। हम यह तो पहिले ही देख चुके हैं कि जब विक्रेता क्रेता के ऊपर कोई बिल करता है तब क्रेता उस पर स्वीकृति देता है। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि उसकी साख इतनी व्यापक न हो कि उसके द्वारा स्वीकृत बिल पर हर बैंक ऋण देने के लिये तैयार हो जाय। ऐसी स्थिति मे क्रेता का बैंकर उस पर के बिल पर अपनी स्वीकृति दे देता है। इसमें वह अपने ग्राहक के संकीर्ण साख के स्थान पर अपनी विस्तृत साख दे देता है। इसके लिये वह उससे प्रतिफल (Commission) भी पाता है। यह काम पहिले-पहिल यूरोप के उन बड़े-बड़े व्यापारी महाजनों द्वारा आरम्भ किया गया था जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में नेपोलियन युद्ध के समय इंगलिस्तान द्वारा हालैण्ड के हराये जाने पर एम्सटरडम का जो दौर अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक क्षेत्र मे था उसके समाप्त हो जाने पर लन्दन मे अपनी शाखायें खोल ली थीं। उन्होंने शायद यह बात समझ ली थी कि भविष्य मे ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी ही अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक क्षेत्र मे

इंगलैंड की राजधानी का स्थान लेगी। कुछ बड़ी बड़ी संस्थायें अमेरिकावालों ने भी खोली थीं। यद्यपि ये स्वतन्त्र रूप से अपना काम करने का साहस न करने के कारण स्वयं ऐसा नहीं करते तथापि ये उन्हीं के सदस्य मात्र रहते हैं। संसार के सभी महत्त्वपूर्ण देशों के लोगों से इनके सम्बन्ध हैं जिससे ये इन्हीं स्थानों के लोगों के विषय में जानकारी रखते हैं इससे ये उनके ऊपर लिखे गये बिलों पर स्वीकृति भी दे सकते हैं। इनकी इतनी साख है कि इनके द्वारा स्वीकृत किये गये बिलों पर सभी बैंक ऋण देने के लिये तैयार हो जाते हैं। साथ ही बैंकों ने इस बात का वायदा कर लिया है कि वह इन्हें बिल पकने की तारीख के तीन दिन पहिले उनकी रकम दे देंगे। आवश्यकता पर व्यापारी बदला विनिमय बैंकों की सलाह से भी बिलों पर स्वीकृति देते हैं। प्रथम महायुद्ध के समय से अमेरिकावालों ने भी न्यूयार्क को लन्दन का प्रतियोगी बनाने के बहुत से प्रयत्न किये हैं। अतः, ऐसी संस्थायें अब वहाँ भी यथेष्ट मात्रा में खुल गई हैं। इसके अतिरिक्त यह काम अब बैंकों के हाथ में आ गया है। बात यह थी कि उक्त युद्ध के छिड़ने पर व्यापारी महाजनों को यूरप के शत्रु देशों से जो कुछ पाना था वह नहीं मिल सका। अतः, उनके लिये उनके द्वारा स्वीकृत बिलों का भुगतान करना कठिन हो गया। किन्तु उनकी साख बचाना आवश्यक था। अतः, सरकारी आज्ञा से उन बिलों का भुगतान बैंक आफ इंगलैण्ड ने कर दिया। युद्ध के बाद जब यह रकम वसूल हुई तब बैंक आफ इंगलैण्ड ही को मिली। तब से यह काम बैंक करने लगे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह काम बैंकिंग का एक व्यवसाय माना जाता है। किन्तु भारत के सम्मिलित पूँजी वाले बैंक यह काम नहीं करते। हाँ, यहाँ के सर्राफ अवश्य उन व्यापारियों की हुण्डियाँ खरीद लेते हैं जिन्हें वे जानते हैं। अतः, इससे उन पर उनका दायित्व भी हो जाता है और इसी कारणवश उन पर बैंक भी ऋण दे देते हैं।

बैंक कैसे लाभ कमाते हैं

अब हम इस बात की ओर आते हैं कि व्यापारिक बैंक कैसे लाभ कमाते हैं। हम यह तो देख ही चुके हैं कि वे अपनी कार्यशील पूँजी किन-किन लाभदायक प्रयोगों में लगाते हैं। वास्तव में वही उनकी आय के मुख्य साधन हैं। यहाँ पर हम उन्हें फिर दोहराये देते हैं :—

(१) माँग पर वापिस होनेवाले ऋणों पर का ब्याज।

(२) बिलों पर ऋण देने की कटती (Discount Charges)।

(३) ऋणों पर का व्याज।

(४) साख-पत्रों पर की लागतों पर का व्याज

(५) बिलों पर स्वीकृति देने का प्रतिफल (Commission)

इनके अतिरिक्त प्रासङ्गिक मूल्य (Incidental Charges) की ओर आढत तथा अन्य कार्य करने से जो आय होती है वह भी उनके लाभ मे सम्मिलित है। हम जानते हैं कि बैंक अपने ग्राहकों की चेकों, उनके विनिमय बिलों, ऋण-पत्रों, व्याज के पर्चों (Coupons), बॅटनी पत्रों (Dividend warrants), चन्दे किराये, आयकर और बीमा के प्रीमियम की वसूली और उनका भुगतान भी करते हैं। इनमे से अधिकाश काम तो वे नि शुल्क करते हैं, किन्तु कुछ के लिये उन्हें प्रतिफल भी प्राप्त होता है। जैसे बाहर की चेक वसूल करने तथा हिस्सों, स्टाकों और ऋण-पत्रों का स्टाक एक्सचेञ्जो मे और अन्य सामानों का उनके बाजारो मे क्रय-विक्रय करने के लिय वे दलालों की दलाली के अतिरिक्त अपना प्रतिफल भी लेते हैं। फिर उन्हें धरोहरी (Trustees), सर्वराहकार (Administrators) और साधक (Executors) की हैसियत मे काम करने पर भी उचित प्रतिफल मिलता है। इसी तरह से बहुमूल्य वस्तुओं जैसे जेवरात और जवाहिरात, लेखपत्र, इत्यादि अपने पास रखने (Safe Custody) के लिये भी उन्हे प्रतिफल प्राप्त होता है। यह कार्य सचमुच बहुत ही जोखिमपूर्ण है किन्तु जोखिम लेने के बिना तो कोई काम चल ही नही सकता। इससे उन्हे न केवल यथेष्ट लाभ होता है बल्कि यह उनके व्यवसाय का एक मुख्य अङ्ग भी है। साख-पत्र रखने पर उनके ऊपर उनके व्याज, इत्यादि और उनके पकने पर उन्हें स्वय वसूल करने का उत्तरदायित्व भी रहता है। धन भेजने और विनिमय के व्यवसाय से भी उन्हें विशेष लाभ होता है। भारतवर्ष मे प्राय व्यापारिक बैंकों को धन भेजने से बहुत आय होती है। हॉ, विनिमय का काम वे प्राय नहीं करते क्योंकि वह विदेशी विनिमय बैंकों के हाथ में है।

बैंक अपने लाभ का किस प्रकार उपयोग करते है

लाभ के सब मद ऊपर दिये गये हैं। किन्तु यह सब लाभ हिस्सेदारों के बीच मे विभक्त करने के लिये नहीं रहता। इसमें से वह सब खर्च काट दिये जाते हैं जिन्हें करना प्रत्येक बैंकर के लिये आवश्यक रहता है। ये निम्नाङ्कित है —

(१) स्थायी जमा तथा अन्य खातों पर का ब्याज।

(२) सञ्चालकों और हिसाब निरीक्षकों का शुल्क, कर्मचारियों के वेतन, पेन्शन और प्राविडेन्ट फण्ड का खर्च।

(३) बैंकों के भेजा, इत्यादि के सदस्य शुल्क।

(४) दफ्तर सम्बन्धी खर्च जैसे छपाई, डाक खर्च, विज्ञापन खर्च, स्टेशनरी खर्च, किराया और बीमे के प्रीमियम, इत्यादि।

(५) प्रतिनिधियों का सफर खर्च और उनके तथा अदालतों के शुल्क।

(६) मकानात और माल असबाब की लागत के ह्रास का प्रबन्ध।

(७) अप्राप्य ऋण और बैंक के कर्मचारियों द्वारा किये गये गबन।

(८) आय तथा अन्य कर।

किसी बैंक का पक्का मुनाफा (Net Profit) उसके प्रबन्ध की कुशलता पर ही निर्भर रहता है। बहुधा जमा अधिक ब्याज न देकर वरन ग्राहकों को सुविधायें देकर तथा उनकी अनेक प्रकार की सेवायें करके प्राप्त किये जाते हैं। कम वेतनवाले कर्मचारी रखने से कोई लाभ नहीं होता। उनसे प्रबन्ध की वह कुशलता नहीं प्राप्त होती, जो होनी चाहिये। हमारे देश में कुछ बैंक थोड़े-थोड़े वेतन पर मैनेजर इत्यादि रख लेते हैं जिससे गबन इत्यादि बहुत होता है। अधिक वेतनवाले कर्मचारी प्रायः कम वेतनवाले कर्मचारियों की अपेक्षाकृत सस्ते पड़ते हैं। उन्हें अधिक काम मिल जाता है और वे उसे भली भाँति निबाह भी लेते हैं। बट्टा खाता भी कम हो जाता है और गबन भी नहीं होता। पक्के मुनाफे में से उसके हिस्सेदारों के बीच में एक निश्चित दर से बँटनी करने के उपरान्त कुछ सुरक्षित कोष के लिये भी रख लिया जाता है। यह कभी कभी ऐसे वर्षों में बँटनी की दर बढ़ाने के भी काम आता है जब लाभ कम होता है। किन्तु प्रायः यह दिन प्रतिदिन बढ़ने वाले काम के साथ-साथ दिन प्रतिदिन पूँजी बढ़ाने के उद्देश्य से भी सञ्चित किया जाता है।

प्रश्न

(१) बैंकों की कार्यशील पूँजी कौन-कौन से साधनों द्वारा प्राप्त होती है? उनमें से प्रत्येक का एक संक्षिप्त विवरण दीजिये।

(२) बैंकरों के जमा किस तरह के होते हैं? इस सम्बन्ध में आप सृजित जमा से क्या समझते हैं?

(३) बैंको की पूँजी कितने प्रकार की होती है ? हिस्सेदारो के सुरक्षित दायित्व से आप क्या समझते है ?

(४) 'बैंको की जमा का सारा काम अधिकारों का पारस्परिक परिवतन और उनका द्रव्य के साथ परिवर्तन के अतिरिक्त और कुछ भी नही है'—इसका विश्लेपण कीजिये।

(५) एक बैंकर जमा प्राप्त करके अपने ग्राहको की और समाज की कौन कौन सी सेवायें करता है ? क्या इससे वह समाज की कोई हानि भी कर सकता है ?

(६) 'किसी बैंक को जमा प्राप्ति का कार्य और नोट चलाने के कार्य दोनो एक ही प्रकार के है'—इसका विश्लेषण कीजिये।

(७) कोई बैंक अपनी कार्यशील पूँजी कैसे प्रयोग मे लाता है ? इस सम्बन्ध में मॉग पर वापिस होनेवाले ऋणो से आप क्या समझते है ?

(८) किसी बैंकर को अपने ग्राहको को ऋण देने के समय कौन-सी बातें ध्यान मे रखनी चाहियें ? इसे स्पष्टतया समझाइये।

(९) बैंकरो के स्वीकृति के कार्यों से आप क्या समझते है ? यह कैसे प्रारम्भ हुआ ?

(१०) वे कौन-कौन से तरीके हैं जिनसे बैंकर अपना लाभ कमाते हैं ? क्या वह सभी हिस्सेदारो में विभक्त किया जा सकता है ?

अध्याय ६

केन्द्रीय बैंकिंग (१)

केन्द्रीय बैंकिंग ने एक विशिष्ट व्यवसाय (Specialised Banking) का रूप तो केवल इसी शताब्दी मे ही धारण कर लिया है। इसके पूर्व यूरोप में प्राय सभी देशों में, पूर्व में जापान और जावा में तथा अफ्रीका मे मिश्र और अल्जीरिया में नोट चलानेवाले और सरकारी काम करनेवाले बैंक तो अवश्य स्थापित हो चुके थे, किन्तु जैसा कि तीसरे अध्याय में बताया जा चुका है उन्हें केन्द्रीय बैंकों के कार्यों का कोई स्पष्ट ज्ञान नही था। हाँ, यह व्यवसाय

धीरे धीरे प्रारम्भ [illegible] गया था। [illegible] ने प्रारम्भ किन्तु अन्य सभी बैंक भी [illegible] केन्द्रीय बैंकिंग के कार्य प्रारम्भ करने लग गये थे जो व्यापारिक [illegible] अपना भाग अपने पास रखना, [illegible] अन्य [illegible] और आर्थिक तथा [illegible] उनकी [illegible] और [illegible] समझना इत्यादि, इत्यादि। [illegible] जनता से व्यापार करने का प्रश्न था [illegible] भी भिन्न भिन्न [illegible] भिन्न भिन्न था। [illegible] तरफ तो बैंक ग्राफ इंगलैंड था जिसे [illegible] दिया गया और दूसरी तरफ [illegible] था जो [illegible] छोटे व्यापारियों के साथ भी काम किया करता था। इस शताब्दी में [illegible] नियम और चलन बन गये हैं जिनसे केन्द्रीय बैंकिंग का व्यवसाय शासित हो रहा है और उनका एक विशिष्ट रूप बन गया है। [illegible] कमीशन के सामने बैंक ग्राफ इंगलैंड के शासक (Governor) ने केन्द्रीय बैंकों के कार्यों का उल्लेख कुछ निम्न आशय के शब्दों में किया था —'उन्हें वैधानिक नीति से प्राप्त होनेवाली करेन्सी बाहर निकालनेवाली और [illegible] करनेवाली सरिता का काम करना चाहिये। उन्हें सरकार की सम्पूर्ण नकदी और देश के अन्य बैंकों और उनकी शाखाओं के सुरक्षित कोष अपने पास रखने चाहिये। वह अपनी-अपनी सरकारों के देशान्तर्गत और अन्तर्राष्ट्रीय लेन देन भी उनसे और पूरा करते हैं। उनका यह भी कर्तव्य है कि वे अपने-अपने देश की रुपये की इकाई का मूल्य देश में और बाहर स्थिर रखने के उद्देश्य से अपने अपने यहाँ की करेन्सी और साख का परिमाण आवश्यकता के अनुसार घटाते और बढ़ाते रहें। जब आवश्यकता पड़े तब उन्हें बिलों तथा अन्य उपयुक्त जमानतों की बिना पर आकस्मिक करेन्सी और साखपत्र चालू करने का भी प्रबन्ध करना चाहिये।

एम० एच० डी० काक ने, जिसे केन्द्रीय बैंकिंग के विषय में प्रमाणस्वरूप माना जाता है केन्द्रीय बैंकों के कर्तव्य का कुछ विशेष वर्णन किया है, जिसे यहाँ पर संक्षेप में दिया जाता है —

(१) व्यापार तथा साधारण जनता की आवश्यकतानुसार करेन्सी निकालना। इसके लिये उन्हें नोट चलाने का या तो एकाधिकार अथवा आंशिक अधिकार दे दिया जाता है।

(२) सरकार के साधारण बैंकिंग और आढ़त के काम करना ।

(३) व्यापारिक बैंकों के नकद कोष रखना ।

(४) राष्ट्र का धात्विक कोष रखना ।

(५) व्यापारिक बैंकों, बिल के दलालों तथा अन्य ऐसे ही अर्थ से सम्बन्ध रखनेवाले व्यवसायियों को विनिमय अथवा सरकारी बिलों तथा अन्य उपयुक्त साख-पत्रों के ऊपर ऋण देना ।

(६) जब कहीं से ऋण न मिल सके तब ऋण देने का दायित्व स्वीकार करना ।

(७) बैंको के पारस्परिक लेन-देनों के लिये निकास-गृह (Clearing House का प्रबन्ध, इत्यादि करना ।

(८) व्यापार की आवश्यकता के अनुसार और विशेषत राज्य द्वारा चलाई हुई द्रव्य-प्रणाली स्थिर रखने के उद्देश्य से साख नियन्त्रण करना ।

उसने केन्द्रीय बैंकों का एक अन्य आवश्यक गुण भी बताया था जो यह है कि वे साधारण व्यापारिक बैंकों के व्यवसाय भी न करें अर्थात् न तो वे प्रत्येक व्यक्ति से जमा ही प्राप्त करें और न साधारण लोगो को किसी प्रकार का ऋण दे । किन्तु यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि बहुत से केन्द्रीय बैंक, जैसे फ्रास के बैंक, आस्ट्रेलिया के बैंक, जावा के बैंक, और मिश्र के राष्ट्रीय बैंक यह काम करते हैं । इधर कुछ दिनों से यह स्पष्ट हो गया है कि कुछ परिस्थितियो को छोड़कर जब राष्ट्र के आर्थिक हित के लिये यह आवश्यक प्रतीत हो, केन्द्रीय बैंकों को यह काम नहीं करने चाहिये । अत', उपर्युक्त बैंक भी या तो इन्हे धीरे-धीरे कम कर रहे हैं या किसी विशेष कारणवश करते जा रहे हैं । भारतवर्ष मे और अर्जेन्टाइना में जहाँ क्रमश इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया और अर्जेन्टाइना राष्ट्र का बैंक कुछ केन्द्रीय कामों के साथ-साथ ऐसा करते थे नये केन्द्रीय बैंक स्थापित किये जा चुके हैं और उन पर ऐसा करने की रोक लगा दी गई है ।

अब हम ऊपर दिये हुये सब काम का पृथक् रूप से विस्तृत अध्ययन करेंगे :—

(१) कागजी मुद्रा चलाना—प्राय. सभी जगह यह काम सबसे पहिले केन्द्रीय बैंकों को सौंप दिया गया था । हम यह बात जानते हैं कि बैंक आफ इगलैण्ड इसे अपनी सस्थापना के समय से ही करता आ रहा है । इस विषय के कुछ बड़े-बड़े लेखक इसे केन्द्रीय बैंकों का एक मुख्य काम समझते हैं ।

सभी केन्द्रीय बैंकों के पास आजकल या तो इसका एकाधिकार अथवा शेषाधिकार है। पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि कुछ बड़े-बड़े केन्द्रीय बैंकों को यह अधिकार कब दिये गये थे। जिन केन्द्रीय बैंकों के पास इस समय इसका एकाधिकार है उनके यहाँ के अन्य बैंकों से या तो किसी समय तक कम ही उनके चालू नोटों का भुगतान करने को कह दिया गया था अथवा उन्हें धीरे-धीरे समाप्त करने का आदेश दे दिया गया था। हाँ, कुछ ऐसे केन्द्रीय बैंक भी हैं जिन्हें अन्य बैंकों के चालू नोटों का दायित्व कुछ शर्तों पर अपने ऊपर ही ले लेना पड़ा था। इंगलैंड में जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है सन् १८४४ में निजी बैंकों को अपने चालू नोट जारी रखने का अधिकार तो दे दिया गया था किन्तु एक ऐसी शर्त लगा दी गई थी कि जिससे उनका यह अधिकार धीरे-धीरे समाप्त होता गया। जर्मनी में नोट चलानेवाले अधिकांश बैंकों ने सन् १९३५ के बहुत पहिले ही उनके इस अधिकार पर जो बन्धन लगा दिये गये थे उनके कारण इसे वहाँ के रीश बैंक को हस्तान्तरित कर दिया था और जो बच रहे थे उन्हें भी इस वर्ष अपना यह अधिकार उसे हस्तान्तरित करने को विवश किया गया। आजकल कुछ ही ऐसे केन्द्रीय बैंक बचे हैं जिनके पास इसका एकाधिकार नहीं है और उनमें से भी केवल संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा और चीन ही के केन्द्रीय बैंक मुख्य हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में राष्ट्रीय बैंकों के नोटों का भुगतान तो सन् १९३५-३६ में कर दिया गया था, किन्तु इस समय भी कुछ सरकारी नोट चालू हैं, यद्यपि उनका परिमाण बहुत ही कम है। कनाडा में भी चार्टर्ड बैंकों के नोटों का परिमाण बहुत ही कम है, अधिकांश में तो वहाँ के केन्द्रीय बैंक अर्थात् बैंक आफ कनाडा के ही नोट चालू हैं। हाँ, चीन में अवश्य उन तीनों गैर केन्द्रीय बैंकों के जिन्हें नोट चलाने का अधिकार प्राप्त है सन् १९३८ के मई के अन्त में १२३·३ करोड़ चीनी डालर के नोट चालू थे और इसके विरुद्ध चीन के केन्द्रीय बैंक के केवल ४७·३ करोड़ चीनी डालर के नोट चालू थे। भारतवर्ष में सन् १९४० की जुलाई से यहाँ की सरकार ने भी रिजर्व बैंक के नोटों के साथ-साथ जिसके पास उन्हें चलाने का एकाधिकार प्राप्त है अपने एक-एक रुपये के नोट उसी प्रकार चलाना प्रारम्भ कर दिया है जिस प्रकार ब्रिटिश राजकोष ने प्रथम युद्ध के समय एक-एक पाउण्ड और आधे-आधे पाउण्ड के नोट चलाने प्रारम्भ कर दिये थे।

नोट चलाने का एकाधिकार कई कारणों से केन्द्रीय बैंकिंग के व्यवसाय

का एक मुख्य अंग माना जाता है। पहिली बात तो यह है कि इससे नोट करन्सी में जो आजकल की द्रव्य-प्रणाली में सभी जगह बहुत ही महत्वपूर्ण है साहश्यता आ जाती है। दूसरे, इससे केन्द्रीय बैंकों का एक ऐसा प्रभाव उत्पन्न हो जाता है जिसकी उन्हे सङ्कटकाल में बहुत आवश्यकता पड़ती है। तीसरे, इससे उसे व्यापारिक बैंकों की साख उत्पन्न करने की शक्ति पर नियन्त्रण करने का भी अवसर प्राप्त हो जाता है। जैसा कि आगे चलकर ज्ञात होगा उन्हें साख वृद्धि के लिये या तो अपने यहाॅ का नकद कोष अथवा केन्द्रीय बैंक में अपनी जमा बढानी पडती है। बात यह है कि उन्हें अपने द्वारा उत्पन्न की गई साख का एक निश्चित प्रतिशत इन्हीं मे रखना पडता है। अब यदि केन्द्रीय बैंक यह समझता है कि साख की वृद्धि देश के हित में नहीं है तो वह ऐसे बैंको की सहायता नहीं करता। और यदि वह इसका उल्टा समझता है तो ऐसा करता है। अन्तिम बात यह है कि इससे सरकार को नोटों की सुरक्षा के विचार से उन्हे नियन्त्रित रखने मे भी बड़ी सहूलियत मिलती है। इसके विपरीत यदि यह अधिकार कई बैंकों में बॅटा रहता है तो इसमें उसे कठिनाई पड़ती है।

जहाॅ तक नोटो के नियन्त्रण का प्रश्न है यह कम से कम सात प्रकार से किया जा सकता है। पहिले को अंग्रेजी मे फिक्स्ड फाइड्सियरी इशू सिस्टम (Fixed Fiduciary Issue System) कहते हैं। इसमे एक निश्चित रकम के नोट तो सरकारी साख-पत्रो पर निकाले जाते हैं, किन्तु उसके ऊपर जो नोट रहते हैं, उनके लिये शत प्रतिशत धात्विक कोष रक्खा जाता है। इसमें लोच नहीं है जिससे धात्विक कोष के धातु की बाहरी अथवा भीतरी माॅग के कारण काफी कम हो जाने पर नोटों का परिमाण भी घटाना पड़ता है। फिर, यदि करन्सी की बहुत माॅग हो जाती है तो जब तक उसी मूल्य की धातु न प्राप्त हो जाय तब तक वह बढाई भी नहीं जा सकती। किन्तु इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि यह अच्छी स्थिति में करन्सी का अत्यधिक बढ जाना रोके रहता है। हाॅ, सन् १६२८ से अंग्रेजी प्रणाली में इसमे कुछ लोच आ गया है। इस वर्ष वहाॅ पर इस बात की आज्ञा दे दी गई थी कि कोष की आज्ञा से आवश्यकता पड़ने पर अधिक से अधिक दो वर्षों के लिये निश्चित रकम से ऊपर के नोट भी सरकारी साख पत्रों की बिना पर चालू किये जा सकते हैं। हम ये तो जानते ही हैं कि सरकारी साख-पत्रों की बिना पर नोट चालू करने की जो रकम है वह वहाॅ पर किस तरह से धीरे-धीरे प्रारम्भ

८ १२ लाख पाउण्ड से बढ़कर सन् १९२१ तक १६,७५०,००० पाउण्ड हो गई थी। किन्तु प्रथम युद्ध के समय राजकोष ने एक-एक पाउण्ड और आधे-आधे पाउण्ड के नोट भी चलाये थे। पुनः, सन् १९२८ में इनका दायित्व भी बैंक को हस्तान्तरित कर दिया गया और सरकारी साख-पत्रों की बिना पर चालू करने के नोटों का परिमाण भी २६ करोड़ पाउण्ड कर दिया गया। तब से अब तक का परिमाण बदला जा चुका है[1]। अंग्रेजी प्रणाली जापान और नार्वे ने भी अपनाई है और इसमें थोड़ा-सा परिवर्तन करके तो इसे कई देशों ने अपना लिया है।

दूसरी प्रणाली वह है जिसमें नोटों का परिमाण विधानतः निश्चित कर दिया जाता है (Fixed legal maximum of note-issue) यह सन् १८७० से सन् १९२८ तक फ्रांस में चालू रही। सेलीगमैन का कहना है "यह बहुत ही भद्दी प्रणाली है और द्रव्य के आधुनिक बाजारों की आवश्यकता पूरी करने के लिये बिलकुल ही अनुपयुक्त है। इससे नोट-प्रसार रुका रहने की कोई सम्भावना नहीं रहती क्योंकि महासभा (Parliament) जब चाहती है, तब नोट चालू करने का परिमाण विधानतः बढ़ा देती है।

तीसरी प्रणाली वह है जिसमें नोट सरकारी साख-पत्रों की बिना पर चालू किये जाते हैं और साथ ही बैंक की प्राप्त पूँजी और सुरक्षित कोष से अधिक नहीं हो सकते। यह प्रणाली संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में राष्ट्रीय बैंकों के नोटों के सम्बन्ध में चालू थी। इसमें भी लोच नहीं है। जैसा ब्रगेस ने कहा है इसमें चालू नोटों का परिमाण सदा के लिये निश्चित सा हो जाता है और न तो वह मन्दी में घट सकता है और न तेजी में बढ़ सकता है।

चौथी प्रणाली वह है जिसमें नोटों का एक निश्चित प्रतिशत उदाहरण के लिये २५, ३०, ३३⅓ अथवा ४० प्रतिशत धात्विक कोष में रक्खा जाता है और शेष इस शर्त के साथ कि आवश्यकता पड़ने पर अधिकाधिक ब्याज देकर कुछ समय के लिये इस धात्विक कोष का प्रतिशत कम भी किया जा सकता है सरकारी साख पत्रों और व्यापारिक बिलों में रक्खा जाता है। इसे सन् १८७५ में जर्मनी ने और सन् १९१३ में कुछ संशोधनों के साथ

---

[1] सन् १९४७ के अन्त में नोटों का परिमाण १३६.२ करोड़ पाउण्ड था और स्वर्ण कोष का परिमाण २०.४६ लाख पाउण्ड था।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने तथा प्रथम युद्ध के बाद कुछ अन्य देशों ने अपनाया था। इसमें यह अच्छाई है कि जब एक तरफ तो इसमे लोच है तब दूसरी तरफ इसमें धात्विक कोष न मिलने पर अत्यधिक द्रव्य प्रसार नहीं हो सकता।

पाँचवीं प्रणाली वह है जिसमें चौथी प्रणाली ही की तरह नोटों का कुछ प्रतिशत तो धात्विक कोष में रक्खा जाता है किन्तु शेष के लिये कोई प्रबन्ध नहीं रहता। हाँ, बैंक फेल होने पर उसकी सम्पत्ति पहिले नोटों के और फिर अन्य भुगतानों में लगाई जाती है। इसमे बैंकों के लिये चौथी प्रणाली की अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता रहती है। यह प्रणाली हालैण्ड मे बहुत समय तक चालू थी, और आज-कल दक्षिणी अफ्रीका के संघ मे चालू है।

छठी प्रणाली अनुपातिक जमा प्रणाली (Proportional Deposit Method) है। इसमें नोट चलाने वाले बैंकों को जितने के नोट चालू किये गए हैं उतने का एक विशेष प्रतिशत सरकारी साख-पत्रों अथवा धातु मे केन्द्रीय बैंक में जमा कर देना पड़ता है। यह प्रणाली संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सदस्य बैंकों के नोटों के सम्बन्ध मे चालू है। वहाँ पर उक्त बैंकों को एक निश्चित प्रतिशत सरकारी साख-पत्रों मे लगाना पड़ता है और फिर उन्हें फेडूल रिजर्व बोर्ड के पास जमा कर देना पड़ता है।

सातवीं प्रणाली चौथी प्रणाली की ही संशोधन-मात्र है। इसमें एक निश्चित प्रतिशत तो धातु मे रखनी पड़ती है, और कुछ किसी दूसरे देश के सरकारी साख-पत्रों मे अथवा किसी विदेशी केन्द्रीय बैंक में जमा रखनी पड़ती है। भारतवर्ष में सन् १८६१ से सन् १९२० तक तो प्रथम प्रणाली (Fixed Fiduciary Issue Method) चालू थी और आज-कल यह सातवीं प्रणाली एक विशेष रूप मे चालू है।

अन्त में यह कह देना भी आवश्यक है कि प्राय. सभी राष्ट्रों ने केन्द्रीय बैंकों को नोट चलाने का जो एकाधिकार दे रक्खा है उससे उन्हे जो भारी लाभ होता है उसका उन्होंने बँटवारा करना प्रारम्भ कर दिया है। कहीं-कहीं पर तो नोट चलाने से इन्हें जो लाभ प्राप्त होता है उसका और इनके दूसरे बैंकिंग के कार्यों से जो लाभ प्राप्त होता है उसका अर्थात् दोनों का हिसाब अलग अलग रक्खा जाता है और नोट चलाने से जो लाभ प्राप्त होता है वह पूरा राष्ट्र को दे दिया जाता है। अन्य स्थानों में या तो हिस्सेदारों को पहिले एक निश्चित प्रतिशत की बँटनी देकर शेष सब राष्ट्र का हो जाता है या

[illegible] की मद में बैंक और राष्ट्र का किसी विधान द्वारा निर्धारित तरीके पर बँटवारा होता है। बैंक आफ इंगलैण्ड के राष्ट्रीयकरण के पहिले तो उसके नोट चलाने से उसे जितना लाभ होता था वह सभी सरकार ले लेती थी और भारतवर्ष में रिज़र्व बैंक के राष्ट्रीयकरण के पहिले हिस्सेदारों को केवल ३½ प्रतिशत की [illegible] दी जाने के बाद उसका शेष सारा लाभ [illegible] में चला जाता था।

(२) राज्य के साधारण बैंकिंग आढ़त के कार्य करना और आर्थिक मामलों में सरकार को मन्त्रणा देना पुराने केन्द्रीय बैंक तो यह काम उस समय भी करते थे जिस समय वह पूर्ण रूप से केन्द्रीय बैंक नहीं बन पाये थे, और नये केन्द्रीय बैंकों के तो उस विधान के प्रारम्भ ही में जिसके द्वारा वह संस्थापित हुये हैं, यह दिया हुआ है कि वह यह सब काम करेंगे।

आजकल तो केन्द्रीय बैंक यह काम केवल इस लिए ही नहीं कि यह राज्य के लिए सुविधाजनक और अल्पव्ययी है बल्कि इसलिये भी करते हैं कि इनका देश के द्रव्य बाजारों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है और यदि वह इन्हें न करें तो उनका इन पर नियन्त्रण भी न रह सके। वास्तव में एक केन्द्रीय बैंक उसकी सरकार के जो लेन-देन होते हैं उसका उसके देश के द्रव्य बाजारों पर जो प्रभाव पड़ता है उसे तभी दूर कर सकता है जब वह राज्य के लिये बैंकर, अढ़तिये और मन्त्रणा देने का काम करता हो। केन्द्रीय बैंकों का विनिमय सम्बन्धी दायित्व भी रहता है और सरकार के इनके लेन-देन इतने अधिक रहते हैं कि जब तक यह सब उनके द्वारा न सम्पादित किये जायँ तब तक वह अपना यह उत्तरदायित्व नहीं पूरा कर सकते। केन्द्रीय बैंकों के द्रव्य बाजारों से सीधी तौर पर सम्बन्धित होने के कारण वह सरकार को आर्थिक मामलों में भी सरकार और देश दोनों के हितों के अनुकूल मन्त्रणा दे सकते हैं।

केन्द्रीय बैंक सरकार के बैंकर की हैसियत से अपने यहाँ की भिन्न-भिन्न सरकारों की तरफ से और उनके विभागों की तरफ से पूँजी सम्बन्धी और आय-व्यय सम्बन्धी दोनों ही प्रकार के जमा प्राप्त करते हैं और भुगतान देते हैं। वह राज्य के आय और जनता से उनके लिये ऋण की वसूली की सम्भावना पर उन्हें ऋण भी देते हैं। कोई केन्द्रीय बैंक वास्तव में अपनी सरकार को स्थायी (Permanent) ऋण नहीं देता। हाँ, कुछ केन्द्रीय बैंक अवश्य अपनी सरकार को स्थायी ऋण देने के विचार से ही संस्थापित किये गये थे। किन्तु बाद में उन्हें भी और अधिक ऐसे ऋण देने के लिये

मना कर दिया गया। हम जानते हैं कि बैंक आफ इंगलैण्ड की संस्थापना वहाँ की सरकार को उसकी प्रारम्भ की १२ लाख पाउण्ड की सारी पूँजी देने के लिये ही हुई थी और बाद में भी धीरे-धीरे उसने उसे इतना ऋण दिया कि वह सब मिलाकर सन् १८०० तक १४,६८६,००० पाउण्ड हो गया। किन्तु फिर सन् १८३३ में इसे घटाकर ११,०१५,००० पाउण्ड कर दिया गया जो सन् १९२८ तक रहा। इसके बाद भी इस रकम में कई बार परिवर्तन किये जा चुके हैं। बैंक आफ फ्रांस ने भी सन् १८५७ से राज्य को स्थायी ऋण देना प्रारम्भ कर दिया था जो सन् १९२६ तक ३८०० करोड पाउण्ड हो गया। फिर, सन् १९२८ में यह घटाकर २० करोड फ्रैंक कर दिया गया। यह कमी जनता से ऋण लेकर और बैंक के स्वर्ण और विनिमय कोष का फ्रैंक की नई विनिमय दर से जो पहिले की दर की केवल ⅕ ही रक्खी गई थी मूल्य लगाकर की गई थी। किन्तु कुछ ही समय बाद फिर उनने सरकार को ३०० करोड़ फ्रैंक का स्थाई ऋण दिया। इसके बाद सन् १९३५ से सन् १९३८ तक में उसने उसे कई लघुकालीन ऋण दिये जिनका कुल जोड ५,००० करोड़ फ्रैंक था। किन्तु इस वर्ष बैंक और सरकार के बीच में एक प्रतिज्ञा पत्र लिखा गया जिससे बैंक के स्वर्ण और विनिमय कोष का फिर से प्रति पाउण्ड १७० फ्रैंक के हिसाब से मूल्य लगाने से जो लाभ हुआ उससे बैंक ने सरकार को जो लघुकालीन ऋण दे रक्खा था उसका आंशिक भुगतान किया गया और बैंक का सरकार के ऊपर ३२० करोड़ फ्रैंक का स्थायी ऋण माना गया। यह केवल दो उदाहरण मात्र हैं। प्रायः प्रत्येक केन्द्रीय बैंक ने आवश्यकता पडने पर अपनी सरकार को अवश्य ही कुछ न कुछ स्थायी ऋण दिये हैं। नये ऋण देने के बाद बार-बार भविष्य में ऐसा करने पर बन्धेज लगाये गये और फिर उन्हें तोडा गया। यह ऋण देने के अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक अपनी-अपनी सरकार के साख-पत्र और बिल भी एक बहुत बड़े परिमाण में खरीद कर अपने पास रखते हैं। संसार के दो बड़े केन्द्रीय बैंक आफ इंगलैण्ड और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के फेड्रल रिजर्व बैंक, प्रथम युद्ध के समय से अब तक बराबर अपनी-अपनी सरकारों की इसी प्रकार सहायता करते आ रहे हैं।

यहाँ पर यह बता देना भी आवश्यक है कि सरकार को ऋण देकर किसी केन्द्रीय बैंक के अपनी साख बढाने से बैंकों के नकद कोष बढ जाते हैं और उनका साख के प्रसार पर वही प्रभाव पड़ता है जो नोटों के प्रसार पर पड़ता है। यह संसार के कई महत्त्वपूर्ण देशो मे सन् १९१४-१८ के बीच में और

उसके बाद न हुआ था। जब कोई केन्द्रीय बैंक अपनी सरकार को ऋण देता है तो सरकार उसे जनता को या तो माल खरीद कर या उसके नाम जमा कराकर दे देती है। फिर, यही नोट या जमा के रूप में प्राप्त हो जाते हैं जिनसे उनकी साख पत्रों पर की लागत (Investments) बिलों पर की लागत तथा ऋणों का परिमाण बढ़ा दिये जाते हैं।

आस्ट्रेलिया का रिज़र्व बैंक यूनियन सरकार को किसी भी सीमा तक इस शर्त पर ऋण दे सकता है कि वह तीन महीनों के अन्दर-अन्दर वापिस हो जायँ। किन्तु यह उनके साख-पत्र या अपनी पूँजी अपने सुरक्षित कोष और अपने बैंकिंग विभाग के जमा के ६० प्रतिशत के मूल्य तक रख सकता है। हाँ, इनमें से जो साल भर के बाद पकनेवाले हैं और जो दस साल के बाद पकनेवाले हैं उनका परिमाण उसकी पूँजी और उसके सुरक्षित कोष के अलावा बैंकिंग विभाग के जमा के क्रमश ४० प्रतिशत और २० प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता। लघुकालीन साख पत्रों का परिमाण इसीलिये अधिक रक्खा गया है कि जिससे उनके मूल्य के ह्रास से उसे हानि न उठानी पड़े और साथ ही वह जब चाहे तब उन्हें वसूल भी कर ले।

सरकार के अढ़तिये और मन्त्री की हैसियत से भी केन्द्रीय बैंकों को बहुत से काम करने पड़ते हैं। वह सरकारी ऋणों का प्रबन्ध करते हैं, उनके सम्बन्ध के स्टाक और प्रमाण-पत्र हस्तान्तरित होने पर जिस रजिस्टर में उनके लेखे होते हैं उन्हें रखते हैं, सरकारी ऋण निकालते हैं, उन्हें दूसरे ऋणों में बदलते हैं अथवा उनका भुगतान करते हैं, सरकारी बिल निकालते हैं और उनके भुगतान करते हैं, विनिमय की निकासी (Clearing) का तथा अन्य बहुत से कार्य करते हैं।

(३) व्यापारिक बैंकों के नकद कोष रखना—व्यापारिक बैंकों ने अपने-अपने केन्द्रीय बैंकों में धीरे-धीरे अपने नकद कोष रखने प्रारम्भ कर दिये। वास्तव में यह तभी विशेष तौर पर होने लगा जब उन्होंने यह समझ लिया कि उनकी नोट चलाने की शक्ति के कारण और विशेषत उनके देश के अन्दर बहुत ही विश्वासपात्र तथा विस्तृत क्षेत्र में चालू होने के कारण उनके यहाँ अपने खाते रखने से उन्हें बहुत लाभ होगा। सच तो यह है कि केन्द्रीय बैंकों में जमा की हुई रकम उनके स्वयं के पास की रकम के ही सदृश्य है इसके अतिरिक्त केन्द्रीय बैंकों से घनिष्ठ सम्बन्ध उत्पन्न हो जाने में वह अपना एक बहुत बड़ा सम्मान भी समझने लगे। इंगलैंड के अठारहवीं शताब्दि

के निजी बैंकों ने भी यह सब बातें भली भाँति समझ ली थीं और इसी से वह बैंक आफ इंगलैंड में अपने हिसाब रखने लग गये थे। सन् १८२६ के बाद जब सम्मिलित पूँजी वाले बैंकों की सस्थापना हुई तब उन्होंने भी पूर्वोक्त चलन चालू रक्खा। दूसरे देशों में भी यही हुआ। किन्तु संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के फेडूल रिजर्व बैंक की सस्थापना के साथ ही इस सम्बन्ध के एक नये सिद्धान्त का प्रारम्भ हुआ जो यह है कि प्रत्येक बैंक अपने यहाँ के केन्द्रीय बैंक के पास अपनी जमा का विधान द्वारा निश्चित प्रतिशत अवश्य रक्खे। उसके बाद जितने केन्द्रीय बैंक सस्थापित हुये हैं उनमें से प्रत्येक के विधान में यह बात दी हुई है। हमारे देश में भी जैसा एक पिछले अध्याय में बताया जा चुका है सब सदस्य बैंकों (Scheduled Banks) को उनकी माँग पर वापिस होनेवाली और एक निश्चित अवधि बीत जाने पर वापिस होनेवाली दोनों प्रकार की जमा के क्रमश. ५ प्रतिशत और २ प्रतिशत का नकद कोष रिजर्व बैंक में रखना पड़ता है।

जहाँ तक किसी देश की द्रव्य सम्बन्धी और बैंकिंग सम्बन्धी स्थिति का प्रश्न है वह नकद कोष के इस प्रकार केन्द्रीय होने से चाहे वह विधान द्वारा हो चाहे चलन के अनुसार हो बहुत ही अर्थपूर्ण हो जाती है। उसके तेजी और आवश्यकता के समय पर पूर्ण रूप से कार्यान्वित हो सकने के कारण उसकी बिना पर साख की लोच बहुत अधिक बढ़ जाती है। यदि हम ससार के मुख्य-मुख्य देशों के बैंकों द्वारा जो नकद कोष उनके यहाँ केन्द्री बैंकों की सस्थापना के पहिले रक्खे जाते थे और जो उसके बाद रक्खे जाते हैं उनकी तुलना करें तो हमें यह अवश्य ही ज्ञात हो जायगा कि इससे उनकी भी कमी हो जाती है। भारतवर्ष ऐसे कृषि-प्रधान देश में कृषि की ऋतु में जो अत्यधिक साख की आवश्यकता पड़ती है उसे पूरा करने के लिये बैंको के नकद कोष केन्द्रीय रखना बहुत ही आवश्यक है, किन्तु यहाँ के रिजर्व बैंक की बैंक दर के बराबर एक समान रहने पर भी हम यह नहीं कह सकते कि उक्त बैंक की सस्थापना के बाद से नकद कोष के उसके पास केन्द्रीय रहने पर भी यहाँ की अत्यधिक साख की माँग बराबर पूरी हो जाती है। किन्तु जो कुछ कठिनाई है वह जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे केवल इसी कारण है कि यहाँ के द्रव्य के आधुनिक बाजार और देशी बाजार के बीच में कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है।

(४) राष्ट्र का धात्विक कोष रखना—प्रत्येक केन्द्रीय बैंक को प्राय

विधान के अनुसार तो अपने पास अवश्य धात्विक कोष रखना पड़ता है। पहिले तो यह धात्विक कोष केवल नोटों के लिये ही रखना पड़ता था किन्तु धीरे धीरे इस बात की भी आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि यह जमा के लिये भी होना चाहिये। सच तो यह है कि प्रायः सभी आगे बढ़े हुये देशों में आजकल जमा की बिना पर निकाले गये चेकों का प्रयोग नोटों के प्रयोग की अपेक्षाकृत कहीं अधिक बढ़ गया है। अतः, ऐसा होना आवश्यक हो गया है। किन्तु इङ्गलैण्ड में और उसके साथ ही अन्य बहुत से देशों में आज भी जमा के सम्बन्ध में धात्विक कोष रखने के लिये कोई विधान नहीं है। हाँ, यह देश वैसे ही इतना अधिक धात्विक कोष रखते हैं[1] जितना कि केवल उनके नोटों के कारण नहीं होना चाहिये। फिर यह कोष कितना होना चाहिये यह बात सदा के लिये नहीं निश्चित की जा सकती। अन्त में इसे उस विशेष केन्द्रीय बैङ्क के निश्चय पर ही छोड़ देना पड़ेगा। वास्तव में जो चीज अनिश्चित है वह यह है कि किसी देश की विनिमय दर और उसकी द्रव्य-प्रणाली स्थिर और चालू रखने के लिये कितने धात्विक कोष की आवश्यकता पड़ेगी। एक ही देश में भिन्न-भिन्न समय में और भिन्न-भिन्न देशों के बीच में यह बराबर परिवर्तित होती रहती है। जितने देश हैं उनकी सबकी आर्थिक स्थिति और प्रणाली में पारस्परिक विभिन्नता के साथ-साथ उनकी जनता की प्रकृति में भी विभिन्नता है, और वास्तव में इन्हीं सब बातों पर उनके धात्विक कोष की मात्रा की आवश्यकता निर्भर रहती है। इसमें सन्देह नहीं कि केन्द्रीय बैंकों के प्रबन्धकर्ता स्वयं ही यह बात अपने अनुभव से सीख लेते हैं और इसी कारण इसके लिये उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता दी जा सकती है। हाँ, जब कोई नया केन्द्रीय बैंक खुलता है तब अवश्य उसके प्रबन्धकर्ताओं के अनुभवहीन होने के कारण इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि यह मात्रा निश्चित कर दी जाय।

कुछ देश अवश्य ऐसे हैं जिनकी विशेष परिस्थितियों के कारण उन्हें जो प्राय आकस्मिक माँग पूरी करनी पड़ती है उसके कारण अवश्य उन्हें इसकी एक बहुत बड़ी मात्रा रखनी पड़ती है। ये निम्न प्रकार के हो सकते हैं—(१) जिनके यहाँ से कुछ थोड़ीसी ही वस्तुयें अत्यधिक निर्यात होती हैं जैसे अर्जेन्टाइना, ब्रेजिल, चिली, कनाडा और न्यूजीलैण्ड। इनके मूल्य गिर जाने से इनकी व्यापारिक विषमता (Balance of Trade) इनके विपरीत हो जाती है जिससे इनके यहाँ के केन्द्रीय बैंकों को अत्यधिक धात्विक कोष निका-

---

[1]यह बात इधर कुछ दिनों से सही नहीं है।

लना पड़ता है। (२) वे जिनके यहाँ विदेशियो के लघुकालीन कोष जमा रहते हैं जैसे ग्रेट ब्रिटेन और सयुक्त राष्ट्र अमेरिका । इन्हें कभी भी माँगा जा सकता है । (३) वे जिनके यहाँ की राजनैतिक परिस्थिति गड़बड़ होने के कारण उनकी करन्सी के विनिमय मूल्य मे बराबर परिवर्तन होता रहता है, जैसे फ्रास ।

सन् १९३२ के पहिले बैंक आफ इगलैण्ड के पास बहुत कम स्वर्णकोष था। किन्तु इसके बाद उसने इसे नोटों और विनिमय समता कोष (Exchange Equalisation Fund) के सम्बन्ध मे बहुत बढा लिया था। हाँ, द्वितीय महायुद्ध के कारण इस समय फिर यह बहुत कम हो गया है, किन्तु धीरे-धीरे अवश्य बढ़ जायगा । इसी प्रकार सयुक्त राष्ट्र अमेरिका की फेड्रल रिजर्व प्रणाली में भी इसकी बाहुल्यता है । अब, केन्द्रीय बैंको के अन्य कार्य लेने के पहिले यह भी कह देना आवश्यक है कि प्राय. इनके नाम मे रिजर्व (Reserve) शब्द आने के कारण जैसे सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के फेड्रल रिजर्व बैंक, दक्षिणी अफ्रीका का रिजर्व बैंक, पीरू का केन्द्रीय रिजर्व बैंक, न्यूजीलैण्ड और भारत के रिजर्व बैंक, इत्यादि बहुत से लोग इनके रिजर्व अर्थात् कोष रखनेवाले कामों का बहुत महत्व समझते हैं।

(५) व्यापारिक बैंकों, बिलों के दलालों और व्यापारियों तथा इसी प्रकार की अन्य द्रव्य से सम्बन्धित सस्थाओं द्वारा लाये हुये विनिमय बिलो, सरकारी बिलों और दूसरे उपयुक्त साख-पत्रों पर इन्हें ऋण देना और (६) जब कहीं ऋण न मिल सके तब उसे देने का दायित्व स्वीकार करना--व्यापारिक बैंकों, बिलों के दलालो और व्यापारियों तथा इसी प्रकार की अन्य द्रव्य से सम्बन्धित सस्थाये प्राय अपने केन्द्रीय बैंकों के पास ऋण के लिये तब तक नहीं जाती जब तक उनके स्वयं के और बाहर के वह सब साधन नहीं समाप्त हो जाते जिन तक उनकी आसानी से पहुँच हो सकती है। अत, केन्द्रीय बैंक जब अन्य कहीं ऋण न मिल सके तब उसे देनेवाले समझे जाते हैं और क्योंकि वह यह काम प्राय' विनिमय बिलों, सरकारी बिलो और दूसरे उपयुक्त साख-पत्रों की बिना पर करते हैं, अत., (५) और (६) काम हम एक साथ ही लेते हैं। किन्तु यहाँ पर यह कह देना भी आवश्यक है कि यद्यपि बैंक आफ इगलैण्ड ने विनिमय बिलों, सरकारी बिलों और दूसरे साख-पत्रो पर बहुत दिनो पहिले से ही ऋण देना प्रारम्भ कर दिया था तो भी वह जब कहीं ऋण न मिल सके तब उसे देने का दायित्व स्वीकार करने के लिये काफी

समय तक तैयार नहीं था। सन् १८२५ तक तो यह इन बिलों के अतिरिक्त अन्य बिल लेने के लिये तैयार ही नहीं होता था किन्तु यह बराबर लेता चला जा रहा था। हाँ, उस वर्ष के संकट काल में बैंक और दूसरी द्रव्य सम्बन्धी संस्थाओं के पास जब ये बिल नहीं रह गये तब बिलों पर ऋण लेने के लिये तैयार था तब उसने अवश्य ही अपने कुछ नियम अनिच्छापूर्वक हटा दिये। इसके बाद अन्य आर्थिक संकटों के अवसरों पर भी उसने बड़ी अनिच्छा दिखाई किन्तु सन् १८७२ के पहिले-पहिल जब बेजहॉट की लोम्बर्ड स्ट्रीट नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी उसने यह दायित्व पूर्णतया स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया था। अन्य केन्द्रीय बैंकों ने भी यह धीरे-धीरे मान लिया। हाँ सन् १९१३ में जब संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के फेडरल रिजर्व बैंक स्थापित हुये उस समय तक यह काम केन्द्रीय बैंकों का एक मुख्य काम समझा जाने लगा था। वास्तव में इसका महत्व सब जगह समझे जाने के कारण ही होट्रे के सदृश बैंकिंग के सभी बड़े-बड़े लेखकों ने केन्द्रीय बैंकों के कार्यों में से इसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। बिलों पर ऋण देने (Re-discounting) के अर्थ साधारणतया तो विनिमय के बहुत ही अच्छे बिलों पर ऋण देने के ही हैं किन्तु अब इसमें सरकारी बिल और अन्य साख-पत्र भी सम्मिलित हो गये हैं वास्तव में इस व्यापकता का एक मात्र कारण यह है कि केन्द्रीय बैंकों ने कहीं भी ऋण न मिलने पर ऋण देने का अपना दायित्व स्वीकार कर लिया है और उसके लिये बहुत अच्छे विनिमय बिल सदा नहीं मिलते। बैंक, इत्यादि विनिमय बिलों के अतिरिक्त सरकारी बिलों और अन्य साख-पत्रों पर भी ऋण देते हैं। सच तो यह है कि प्रथम युद्ध के समय से सरकारी बिलों और अन्य साख-पत्रों का परिमाण विनिमय बिलों की अपेक्षाकृत कहीं अधिक बढ़ गया है। "बिलों पर ऋण देने का काम नोट चालू करने और नकद कोष रखने के कामों से बहुत ही सम्बन्धित है क्योंकि यह दोनों जब केन्द्रिय हो जाते हैं तब केन्द्रीय बैंकों की ऋण देने की शक्ति भी अत्यधिक बढ़ जाती है। नोट चलाने के अधिकार के कारण कोई भी केन्द्रीय बैंक उससे जो हाथों-हाथ चलाने-वाली करन्सी की माँग होती है उसे और नकद कोष केन्द्रित होने के कारण उसके पास जो बिलों, इत्यादि पर ऋण देने की प्रार्थना की जाती है उसे पूरी करने में पूर्णतया समर्थ रहता है।"

किन्तु व्यापारिक बैंकों को इस सुविधा का दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। साधारणतया तो उन्हें स्वयं के साधनों पर ही निर्भर रहना चाहिये। 'जब कि

प्रत्येक केन्द्रीय बैंकों के संकट के समय उनकी सहायता करने के लिये तैयार रहना चाहिये और जब उन्हें कहीं से भी ऋण न मिल सके तब उन्हें ऋण देना चाहिये, इसके यह हर्गिज भी अर्थ नहीं हैं कि बैंकों को हर परिस्थिति मे अपने केन्द्रीय बैंक से अपरिमित ऋण लेने का अटल अधिकार प्राप्त है।' भारतवर्ष मे अभी हाल तक बैंकों को इस सम्बन्ध का एक बहुत बड़ा भ्रमोत्पादक विश्वास था और यहाँ के रिजर्व बैंक को उस समय बहुत बुरा भला कहा गया था जब उसने त्रावङ्कुर नेशनल क्विलन बैंक को सन् १९३८ के मध्य म जिस समय वह बड़ी कठिनाई में पड़ा हुआ था और अन्त मे उसका काम बन्द हो गया था, मदद नहीं दी। अन्त में बैंक के ७वीं दिसम्बर सन् १९३८ के 'सदस्य बैंकों के बिलों पर तथा अन्य प्रकार से ऋण देने के सम्बन्ध के पत्र' द्वारा जो निम्न आशय का था, यह बात स्पष्ट की गई :—

"संसार के दूसरे देशों में केन्द्रीय बैंकों का जो चलन है उसके अनुसार तथा इस देश में बैंकिंग को एक उचित मार्ग पर चलाने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक अपने सदस्य बैंकों को साख देने के समय केवल उनके द्वारा लाई गई जमानतों पर ही नहीं वरन् उनके लागत की किस्मों पर और उनका व्यवसाय करने का जो ढग है उदाहरण के लिये वह जमा आकर्षित करने के लिये ब्याज की ऊँची दर तो नहीं देते हैं. अथवा साधारण अवसरों पर जब द्रव्य बाजारों में काफी द्रव्य रहता है तब वह रिजर्व बैङ्क से सहायता नहीं लेते हैं, अथवा वह अत्यधिक व्यापार तो नहीं करते हैं और वस्तुओं पर अथवा साख-पत्रों पर सट्टेबाजी के लिये अत्यधिक साख तो नहीं देते हैं अथवा जमानत प्राप्त किये बिला तो बहुत अधिक व्यवसाय नहीं करते हैं इस पर भी विचार करेगा। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि रिजर्व बैङ्क विधान के अनुसार केवल अस्थायी ऋण ही दे सकता है। यह बात निश्चय करने के लिये कि वह जो साख दे रहा है उसका किसी प्रकार का दुरुपयोग तो नहीं होगा। रिजर्व बैङ्क उधार लेनेवाले बैङ्कों से कोई भी ऐसी सूचना माँग सकता है अथवा उन पर कोई भी ऐसे बन्धेज लगा सकता है जो उसकी दृष्टि में वाछनीय हैं और सहायता की प्रार्थना करनेवाले किसी भी सदस्य बैङ्क को उपर्युक्त सूचना देनी पड़ेगी तथा बन्धेजों को मानना पड़ेगा।

किसी अन्य बैङ्क की तरह रिजर्व बैङ्क को भी कोई कारण बताये बिना भी किसी बैङ्क को उसके कागजों पर ऋण देने की मनाही कर देने का पूर्ण

अधिकार है। किन्तु जो सदस्य बैंक उचित ढंग पर व्यवसाय करते हैं वे रिज़र्व बैंक से संकट के समय अथवा आवश्यकता पड़ने पर उचित जमानत देने पर अवश्य सहायता पाने की आशा रख सकते हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि कोई केन्द्रीय बैंक जब कहीं ऋण न मिले तब ऋण देने का अपना दायित्व स्वीकार करते हुये भी अपने यहाँ के बैंकों का काम करने का स्तर ऊँचा कर सकता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी इस सम्बन्ध की स्थिति अक्टूबर सन् १९३७ के एक फेडरल रिज़र्व पत्र में स्पष्ट की गई थी।

(७) <u>बैंकों के पारस्परिक लेन देनों को निकास-गृह (Clearing house)</u> द्वारा निपटाना—यह काम केन्द्रीय बैंक या तो स्वयं ही या विधान के कहने पर करने लग गये हैं। इसमें भी बैंक आफ इंगलैण्ड का ही रास्ता दिखाया हुआ है। हॉग के कथन के अनुसार इसका प्रारम्भ सन् १८५४ में हुआ था। वास्तव में बैंकों के नकद कोष अपने पास रखने के उपरान्त बैंक आफ इंगलेण्ड के लिये यह काम करना आवश्यक हो गया था। दूसरे केन्द्रीय बैंकों ने भी शीघ्र ही इसे प्रारम्भ कर दिया। बैंकों का यह अनुभव है कि दूसरे बैंकों के पास उनके ऊपर के जो चेक, इत्यादि होते हैं उनकी रकम लगभग उन चेकों, इत्यादि की रकम के बराबर ही होती है जो उनके पास दूसरे बैंकों के ऊपर की होती हैं। हो सकता है कि दिन-प्रतिदिन के हिसाब में यथेष्ट अन्तर हो, किन्तु अन्त में यह बिल्कुल भी नहीं रह जाता। अतः, दिन-प्रतिदिन के हिसाब का निपटारा उनके जो खाते केन्द्रीय बैंक में होते हैं उन्हीं में जमा नाम करके कर दिया जाता है। अब, यदि इससे किसी विशेष बैंक के खाते में उतनी बाकी नहीं रह जाती जितनी विधानतः और चलन के अनुसार रहनी चाहिये तब वह बैंक अपने बिलों, इत्यादि पर केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर उसे पूरा कर देता है। यह काम बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। प्रथम तो इससे भिन्न-भिन्न बैंकों के पारस्परिक लेन-देन एक बहुत ही सीधे-सादे ढङ्ग से निपट जाते हैं, अर्थात् केवल उनके खातों में ही लेखे करने पड़ते हैं। दूसरे, इससे इस काम में द्रव्य के प्रयोग की बचत होती है। अन्तिम बात यह है कि इससे संकट की स्थिति में भी नकदी न निकाले जाने की सम्भावना के कारण देश की बैंकिंग-प्रणाली बहुत ही सुदृढ़ बन जाती है।

कुछ देशों में जहाँ व्यापारिक बैंकों ने केन्द्रीय बैंकों की सस्थापना के पहिले ही अपने पारस्परिक लेन देनों के निपटारे के लिये स्वयं ही निकास गृहों में

प्रबन्ध कर लिये थे अथवा जहाँ केन्द्रीय बैंकों ने प्रारम्भ मे इस तरफ कोई ध्यान ही नहीं दिया था, जहाँ पर अब भी स्वतन्त्र निकास-गृह हैं और उनके स्वय के विधान तथा काम करने के स्थान हैं। किन्तु वहाँ भी केन्द्रीय बैंक एक तो उनके सदस्य हैं ही, साथ ही प्रत्येक निपटारे के बाद उनकी बाकी के निपटारे का भी प्रबन्ध करते हैं। अन्य स्थानों में वह प्रायः निकास-गृह के लिये स्थान देते हैं, उनके काम करने की विधि सम्बन्धी नियम बनाते हैं, उनका निरीक्षण करते हैं और अन्त मे उनकी बाकी के निपटारे का प्रबन्ध भी करते हैं।

इगलैण्ड मे लन्दन में बैंक आफ इंगलैण्ड का स्वयं का आफिस है, और साथ ही उन ग्यारह प्रान्तीय शहरों में से जिनमे निकास-गृहों का प्रबन्ध है सात मे भी उसकी शाखाये हैं। तथापि इन सभी स्थानों के निकास-गृह स्वतन्त्र हे। हाँ, इनकी बाकी का निपटारा अवश्य सभी जगह बैंक आफ इगलैण्ड द्वारा किया जाता है। लन्दन में जहाँ उसका आफिस है और सातो प्रान्तीय शहरो मे जहाँ उसकी शाखाये हैं, यह निपटारा उक्त आफिस और उसकी शाखाओं के ऊपर जैसा हो चेके काट करके किया जाता है। किन्तु उन चार शहरों में जहाँ उसका कोई आफिस अथवा उसकी कोई साख नहीं है यह उन बैंकों के लन्दन स्थित प्रधान आफिसों के बीच में उनके जो खाते बैंक आफ इगलैण्ड के लन्दन के आफिस मे हैं, उन्हीं पर चेक काट करके उसी तरह से होता है, जिस तरह से यह लन्दन के निकास-गृह की बाकी के सम्बन्ध में होता है।

भारतवर्ष मे रिजर्व बैङ्क की सस्थापना के पहिले भी यहाँ के मुख्य-मुख्य स्थानों में स्वतन्त्र निकास-गृह थे और उनमे कार्य सचालन का अधिकार स्वाभाविक रूप से ही इम्पीरियल बैङ्क को था जो इस सम्बन्ध के सारे काम सब सदस्यों की ओर से करता था। यद्यपि रिजर्व बैङ्क विधान की ५८ (क) धारा के अनुसार उसे निकास-गृहो के सम्बन्ध के नियम बनाने के अधिकार हैं, तो भी उसने अभी तक इस विषय में कोई हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा है और पूर्वोक्त निकास-गृह पहिले की तरह स्वतन्त्ररूप से अपना कार्य करते आ रहे हैं। हाँ, उनमे से कुछ के कार्य सचालन का अधिकार अवश्य इसने ले लिया है, किन्तु कलकत्ता और कानपुर जैसे दो स्थान आज भी ऐसे हैं जहाँ क्रमशः इसके आफिस और इसकी शाखा होने पर भी इसने इस सम्बन्ध के कार्य-सचालन का कार्य दूसरों के ऊपर ही छोड रक्खा है।

कलकत्ते में तो यह काम क्लियरिंग हैस एसोसियेशन की साधारण कमेटी द्वारा नियुक्त एक रिसीवर के हाथ में है और कानपुर में यही इम्पीरियल बैंक के हाथ में है। किन्तु इन सभी स्थानों में सब बैंक अपनी बाकी का निपटारा उनके रिज़र्व बैंक में जो खाते हैं उन्हीं के ऊपर चेक काटकर करते हैं। कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ न तो रिज़र्व बैंक के आफिस हैं और न उसकी शाखायें हैं। अतः वहाँ इम्पीरियल बैंक न केवल निकासगृह सम्बन्धी कार्यों का संचालन ही करता है वरन् उसकी बाकी का भी निपटारा करता है।

(८) व्यापार की आवश्यकता के अनुसार और सरकार द्वारा निर्धारित द्रव्य प्रणाली स्थिर रखने के उद्देश्य से साख का नियन्त्रण करना - वास्तव में केन्द्रीय बैंकों का यह कार्य अन्य सब कार्यों की तुलना में सबसे महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में शा ने कहा है "किसी केन्द्रीय बैंक का एक मात्र वास्तविक और सबसे महत्वपूर्ण काम साख नियन्त्रण है।" इसका एक मात्र कारण यही है कि आधुनिक काल में सब प्रकार के द्रव्य-सम्बन्धी और व्यापार-सम्बन्धी लेन-देनों के निपटारे में साख का ही भाग सबसे प्रधान हो गया है। ऐसा कहा जाता है कि ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जैसे देशों में ६० प्रतिशत भुगतान मुद्राओं और नोटों द्वारा न किये जाकर चेकों द्वारा किये जाते हैं। ऐसा होने के कारण साख अच्छे और बुरे दोनों के लिये कार्यरूप में लाई जा सकती है, अतः, देश के हित के लिये इसका नियन्त्रण बहुत ही आवश्यक हो गया है। इसके अतिरिक्त साख चालू करने और उसे वापिस करने का काम वास्तविक रूप में बैंकिंग के व्यवसाय के अन्तर्गत आने के कारण उसका नियन्त्रण भी राज्य के किसी विभाग द्वारा किये जाने की अपेक्षाकृत किसी बैंक द्वारा ही किया जाना चाहिये और यह बहुत से बैंकों की अपेक्षाकृत एक ही बैंक द्वारा बहुत ही सफलतापूर्वक किया जा सकता है। जहाँ तक इस नियन्त्रण के उद्देश्य का प्रश्न है इस विषय में बहुत मतभेद है। इसका चालू और जो कुछ ही दिनों के पहिले तक मुख्य उद्देश्य था वह विनिमय दर स्थिर रखने का था। हमारे देश में तो यह उद्देश्य बराबर ब्रिटिश राज्य के अन्त तक रहा। किन्तु विनिमय दर की स्थिरता के यह आवश्यक अर्थ नहीं हैं कि चीजों के मूल्य भी स्थिर रहेंगे। प्रायः उनमें बहुत घट-बढ़ होती रहती है। यदि हम यह बात भली भाँति सोचें तो हमें यह विदित हो जायगा कि विनिमय दर की स्थिरता की अपेक्षाकृत चीजों के मूल्य की स्थिरता कहीं अधिक वाञ्छनीय है। यह तो सभी जानते हैं कि मूल्य परिवर्तन से बहुत

से परिवर्तन हो जाते हैं और आधुनिक आर्थिक सगठन बिलकुल गड़बड़ हो जाता है तथा उससे जो बेतरतीबी फैल जाती है उसके आर्थिक और सामाजिक फल बहुत बुरे होते हैं। फिर विनिमय स्थिरता को अत्यधिक महत्त्व देने वाले देश प्राय. किसी एक बडे देश के अथवा कई मुख्य देशों के आश्रित हो जाते हैं। जब से भारतवर्ष ने स्टर्लिङ्ग विनिमय मान अपनाया था तब से इस देश में भी यही हो रहा था। इसकी द्रव्य-सम्बन्धी नीति बराबर इगलैण्ड की द्रव्य-सम्बन्धी नीति पर ही आश्रित रही है। इन देशो की आर्थिक स्थिति एक दूसरे से बिलकुल भिन्न होने के कारण भारतवर्ष के लिये यह बहुत ही हानिकारक सिद्ध हुआ है। विनिमय अथवा मूल्य की स्थिरता का उद्देश्य छोड़कर साख नियन्त्रण का एक उद्देश्य व्यापारिक चक्र (Business cycles) से रक्षा करना अथवा उसे बिल्कुल दूर करना भी है। अब धीरे धीरे लोगों का यह विश्वास होता जा रहा है कि साख नियन्त्रण का सबसे मुख्य उद्देश्य व्यापारिक कार्यों की साधारण एव बराबर उन्नति करना और अत्यधिक तेजी तथा मन्दी रोकना ही है।

जहाँ तक साख नियन्त्रण के तरीकों का प्रश्न है भिन्न-भिन्न केन्द्रीय बैङ्को ने भिन्न भिन्न अवसरों पर भिन्न भिन्न तरीको का प्रयोग किया है। और कभी-कभी तो उन्हें एक ही अवसर पर साथ-साथ ही कई तरीकों का प्रयोग करना पड़ा है। इनमें से बैङ्क दर नीति (Bank rate policy) और बाजार में खुले तौर पर सौदा करने की प्रणाली (Open-Market Operation) बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं। किन्तु हम इनका विस्तृत अध्ययन अगले अध्याय म ही करेंगे। हाँ, किसी देश में उसका केन्द्रीय बैंक साख नियन्त्रण मे कहाँ तक सफल हो सकता है यह भी बहुत सी बातो पर निर्भर है। पहिले तो यह उसके द्रव्य बाजार की उन्नति के स्तर और उसके और केन्द्रीय बैङ्क के पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर है। अधिकाश देशों मे द्रव्य के सुसगठित बाजार हैं ही नहीं। हमारे ही देश मे द्रव्य के दो बाजार हैं—एक देशी और दूसरा आधुनिक—तथा इन दोनों में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। देशी बाजार आधुनिक बाजार की बहुत कम सहायता लेता है, और इसी प्रकार आधुनिक बाजार भी देश के केन्द्रीय बैङ्क की बहुत कम सहायता लेता है। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि व्यापारिक बैङ्कों मे से कितने बैङ्क केन्द्रीय बैङ्क के सदस्य हैं। तीसरे, उनके और केन्द्रीय बैङ्क के बीच मे कैसा सहयोग है, और अन्तिम यह कि केन्द्रीय बैङ्क का व्यापारिक बैङ्कों पर तथा अन्य अर्थ से सम्बन्धित सस्थाओं पर कैसा प्रभाव है। ये भिन्न-भिन्न देशों मे

भिन्न-भिन्न हैं। हाँ, केन्द्रीय बैंक इस उद्देश्य से एक स्पष्ट नीति पर चलकर स्थिति को अवश्य ही सुधार सकते हैं।

केन्द्रीय बैंकों का सरकार से सम्बन्ध

केन्द्रीय बैंकों के जो कार्य हैं उनके महत्व के कारण हमें उनके और सरकार के बीच के सम्बन्ध का भी अध्ययन अवश्य ही कर लेना चाहिये। प्राय सभी देशों की सरकारों ने अपने-अपने मुख्य बैंकों के कार्यों में किसी न किसी रूप से हस्तक्षेप करना आवश्यक समझा है। उन्नीसवीं शताब्दी में तो यह बात विधान में ही स्पष्ट रूप से देने का चलन हो गया था। किन्तु प्रथम युद्ध के समय सरकार के अत्यधिक हस्तक्षेप के कारण इससे जो जनता का अहित हो गया था, उसके कारण कुछ प्रथा बदल गई थी। सन् १९२० में ब्रूसेल्स कान्फ्रेन्स ने जो यह निश्चय किया था कि बैंकों और विशेषकर नोट चलाने-वाले बैंकों पर उनकी सरकार का कोई दबाव नहीं रहना चाहिये और उन्हें अर्थ-सम्बन्धी मामलों में दूरदर्शी नीति पालन करनी चाहिये वह उस समय के जनमत का द्योतक है। किन्तु बहुत से स्पष्ट कारणों से अधिकांश देशों में यह बात मान ली गई है कि प्रत्येक केन्द्रीय बैंक के संचालक मण्डल की रचना में उसकी सरकार का हाथ अवश्य रहना चाहिये और इधर तो उनका राष्ट्रीय-करण भी हो रहा है।

प्रथम तो कुछ ऐसे केन्द्रीय बैंक हैं जिनकी सारी पूँजी उनकी सरकार द्वारा ही प्राप्त हुई है, अथवा वह सरकार की और व्यापारिक बैंकों की, तथा लोगों की सम्मिलित पूँजी है। भारतवर्ष के रिज़र्व बैंक की पूँजी के स्वामित्व के सम्बन्ध में सन् १९२७ ही में एक बड़ा गहरा मतभेद उत्पन्न हो गया था किन्तु अन्त में जब इसकी संस्थापना हुई थी उसके पहिले ही बात पूर्णतया मान ली गई थी कि वह जनता के लोगों की निजी पूँजी ही होनी चाहिये। किन्तु अभी हाल ही में सरकार ने फिर इसके सब हिस्से स्वयं ही खरीद लिये हैं। इस सम्बन्ध में यह भी कह देना आवश्यक है कि सरकार के स्वामित्व का इस समय कोई विशेष महत्त्व नहीं है क्योंकि वह अब इसके बिना भी अनेक प्रकार से अपने-अपने केन्द्रीय बैंकों पर अपना नियन्त्रण रख सकती हैं। दूसरे, उनके प्रधान कार्यकर्ताओं की नियुक्ति भी सरकार द्वारा स्वयं ही, अथवा उनके संचालक मंडल की मन्त्रणा से अथवा व्यवस्थापक सभाओं की स्वीकृति से की जाती है। यदि सरकार अपने यहाँ के

बैंक की पूँजी एकत्रित करने में कोई भी हिस्सा नहीं बॅटाती है तो भी इसके यह अर्थ नहीं है कि वह उनके सचालकों की नियुक्ति में भी हिस्सा नहीं बॅटा सकती है। कुछ देशों में उनकी सरकारों को उनके केन्द्रीय बैंकों की पूँजी मे हिस्सा न भी बॅटाने पर उनके सचालकों की नियुक्ति में ऐसा करने का अधिकार है। भारतवर्ष मे भी रिजर्व बैंक के राष्ट्रीयकरण के पहिले ऐसा ही था।

प्रश्न

(१) 'केन्द्रीय बैकिंग ने केवल इसी शताब्दी मे ही एक विशिष्ट व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है।' उपरोक्त कथन पर अपना मत दीजिये।

(२) केन्द्रीय बैंकिंग के प्राय. कौन-कौन से काम हैं? क्या यह आवश्यक है कि केन्द्रीय बैङ्क साधारणत व्यापारिक बैङ्को के कार्य न करे?

(३) नोट चलाने के एकाधिकार अथवा शेषाधिकार से आप क्या समझते हैं? ससार के मुख्य-मुख्य केन्द्रीय बैंको ने यह अधिकार कब प्राप्त किये हैं? इस अधिकार के कौन-कौन से लाभ हैं?

(४) नोट चलाने का नियन्त्रण करने के लिये कौन-कौन से तरीके हैं? उसमें से प्रत्येक के विषय में उदाहरण के साथ बताइये।

(५) 'सरकार' के बैंकर' के क्या अर्थ हैं? क्या केन्द्रीय बैक अपनी सरकार को ऋण दे सकते हैं? उदाहरण देकर बताइये कि इस सम्बन्ध के बन्धेज किस प्रकार से बारम्बार तोडे गये हैं।

(६) यह बतलाइये कि रिजर्व बैक देश की सरकार को कहाँ तक आर्थिक सहायता दे सकती है।

(७) केन्द्रीय बैक किन-किन तरीको-से व्यापारिक बैंको के नकद कोष रखते हैं? इस कार्य से कौन-कौन सुविधायें प्राप्त हो सकती हैं।

(८) राष्ट्र का धात्विक कोष प्राय. किस रूप में उसके केन्द्रीय बैंक के पास रहता है? वास्तविक रकम किस बात पर निर्भर रहती है? अपने उत्तर के सम्बन्ध में कुछ उदाहरण दीजिये।

(९) बिलों पर ऋण देने और जब कहीं ऋण न मिले तब ऋण देने का दायित्व स्वीकार करने में क्या सम्बन्ध है? यह बताइये कि उसके बाद वाले कार्य की किस प्रकार धीरे-धीरे उन्नति हुई है। भारतवर्ष के रिज़र्व बैंक की इस सम्बन्ध में क्या नीति है?

(१०) निकास-गृह का क्या सिद्धान्त है? उनसे कौन-कौन से लाभ हैं? इस सम्बन्ध में केन्द्रीय बैंकों का क्या भाग रहता है? अपने उत्तर में भारतवर्ष और इंगलैण्ड के उदाहरण दीजिये।

(११) केन्द्रीय बैंकों द्वारा साख नियन्त्रण से आप क्या समझते हैं? इसका क्या उद्देश्य होना चाहिये? इसे करने के दो मुख्य तरीके बताइये।

(१२) किसी केन्द्रीय बैंक का उसकी सरकार से प्रायः क्या सम्बन्ध रहता है? अपने उत्तर के सम्बन्ध में उदाहरण दीजिये।

अध्याय ७

केन्द्रीय बैंकिंग (२)

सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के पहिले मुख्यतः बैंक दर नीति ही के द्वारा साख नियन्त्रण किया जाता था।

१ बैंक दर

बैंक दर का अर्थ—बैंक दर वह दर है जिस पर कोई केन्द्रीय बैंक सर्वोच्च कोटि के बिल फिर से डिस्काउण्ट (Rediscount) करने के लिये तैयार रहता है। यह हर सप्ताह में एक विशेष दिन बैंक सचालकों की एक विशेष बैठक में निश्चित किया जाता है और फिर घोषित कर दिया जाता है। जहाँ तक होता है यह एक बार निश्चित हो जाने पर फिर एक सप्ताह के अन्दर नहीं बदला जाता। आजकल यह वह दर भी है जिस पर कोई केन्द्रीय बैंक अपने सदस्य बैंकों को उनकी सर्वोच्च कोटि की जमानतों की बिना पर ऋण देने के लिये भी तैयार रहता है। यह परिवर्तन केवल इसीलिये हुआ है कि इधर बिलों की बहुत कमी हो गई है और सरकारी साख-पत्र तथा बिल बहुत बढ़ गये हैं। यह बिलों की कमी कई कारणों से हुई है जिनमें से मुख्य तो यह है कि इधर

व्यापारिक बैंक प्राय: अपने ग्राहकों को उनके द्वारा जमा की हुई रकम से कहीं अधिक रकम निकालने की आज्ञा, अधिविकर्ष (Overdraft), नकद साख (Cash Credit) तथा जमानती ऋण (Collateral Loans) देने लगे हैं। इसके अलावा पहिले द्रव्य एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजने के सम्बन्ध में भी बिलों का प्रयोग होता था, किन्तु अब ऐसा नहीं है। व्यापारिक बैंकों की संख्या बढ़ती जा रही है और वह यह कार्य अधिकाधिक अपने बैङ्क ड्राफ्टों द्वारा करते हैं। यह लन्दन में भी हो रहा है और अन्य स्थानों में भी हो रहा है। इसके अलावा प्रथम महायुद्ध के पहिले लन्दन के अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान का केन्द्र होने के कारण वहाँ पर अनेक विदेशी बिल डिस्काउण्ट होने के लिये आते थे। किंतु उसके बाद से अन्य स्थान भी अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के केन्द्र बन गये हैं, जिससे बिल डिस्काउण्ट होने का कार्य उनके बीच में बँट गया है। साथ ही संरक्षण की नीति चालू हो जाने के कारण, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी कमी हो गई है जिससे यह बिल भी अब उतने नहीं निकलते जितने पहिले निकलते थे। इसके विपरीत सरकारी साख-पत्रों और बिलों का प्रयोग विभिन्न सरकारों के ऋण के परिणाम में वृद्धि हो जाने के कारण बहुत बढ़ गया है। यह ऋण परिणाम की वृद्धि प्रथम और द्वितीय महायुद्ध की और उनके बीच के समय की कठिनाइयाँ दूर करने के हेतु ही हुई है।

साख नियन्त्रण में बैंक दर का प्रयोग—साख नियन्त्रण में बैङ्क दर का प्रयोग पहिले-पहिल बैङ्क आफ इंगलैण्ड ने सन् १८३६ में किया था। इसके पहिले बैङ्क दर ४ अथवा ५ प्रतिशत रहती थी। यदि बाजार की दर ४ प्रतिशत से नीचे गिर जाती थी तो बैंक अपनी दर चार प्रतिशत से कम नहीं करता था। इसका अर्थ यह होता था कि उसके पास डिस्काउण्ट कराने के लिये बिल आना रुक जाता था। बैंक को अपनी दर ५ प्रतिशत से अधिक बढ़ाने का भी अधिकार नहीं था। बात यह थी कि उस समय वहाँ पर अन्य ब्याज के विरुद्ध एक विधान (Usury Law) था। तीन महीनों तक की अवधि पर के बिलों के लिये सन् १८३३ में इसका बन्धन हटा दिया गया था। इसके कुछ वर्ष बाद ही यह हर अवधि के बिलों पर के लिये हटा दिया गया। किंतु इसके यह अर्थ नहीं हैं कि बैङ्क आफ इंगलैण्ड सन् १८३६ के पहिले साख-नियन्त्रण के लिये कुछ नहीं करता था। वह दूसरे तरीके प्रयोग में लाता था। एक तो वह हर प्रार्थी के ऋण की

रकम सीमित करके साख का एक तरह से राशन बांध देता था। दूसरे को मिल वह डिस्काउण्ट करने के लिये तैयार रहता था उनकी अवधि कम कर देता था। सन् १८३६ में बैंक दर पहिले तो ५ प्रतिशत और फिर ६ प्रतिशत कर दी गई। किन्तु इसके साथ ही जो बिल वह डिस्काउण्ट करने के लिये तैयार रहता था उसकी अवधि भी उसने ६५ दिन से घटाकर ३० दिन कर दिया था। किन्तु साख नियन्त्रण के लिये बैंक दर नीति का अधिकाधिक प्रयोग केवल सन् १८४४ के विधान पास हो जाने के बाद ही होना प्रारम्भ हुआ और जैसे-जैसे बैंक ने और कहीं ऋण न मिलने पर स्वयं ऋण देने का दायित्व स्वीकार कर लिया वैसे-वैसे यह दायित्व निबाहने के लिये उसे साख-नियन्त्रण के पहिले वाले तरीके छोड़ने पड़े। सन् १८४७ में जब एक संकट का समय (Crisis) उपस्थित हुआ तब बैंक को साख-नियन्त्रण की इस नई नीति की परीक्षा करने का अवसर प्राप्त हुआ। किन्तु पहिले तो उसने कुछ नहीं किया और चुपचाप बैठा रहा और बाद में जब उसने यह नीति अपनाने का प्रयत्न किया तब इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सका। अतः, सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा और उसने सन् १८४४ के विधान का वह भाग कुछ दिनों के लिये रद्द कर दिया जिसके द्वारा बैंक एक निश्चित रकम छोड़ कर अन्य के नोट शत-प्रतिशत स्वर्ण रखे बिना नहीं चालू कर सकता था। किन्तु इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ी। केवल इसके पास कर देने से ही संकट टल गया। सन् १८५७ और १८६६ के संकट काल के समय भी इसने शीघ्रता नहीं की, और अपनी दर उस समय न बढ़ाकर जब साख की अत्यधिक बाढ़ हो रही थी केवल उसी समय ही बढ़ाई जब देश से स्वर्ण निर्यात होने लगा। अतः, इन दोनों अवसरों पर भी सन् १८४४ के विधान के जिस भाग का ऊपर संकेत किया गया है उसे रद्द करने के लिये प्रबन्ध करना पड़ा और सन् १८५७ के संकट के समय इसे प्रयोग में भी लाना पड़ा। हाँ, सन् १८७३ में जब इसे एक कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा तब इसने शीघ्रता की और उसमें इसे सफलता भी मिली। इसके बाद अन्य अवसरों पर भी इसने यही किया और उनमें भी यह सफल रहा। सन् १८६० में एक तरफ तो इसने अपनी दर बढ़ाकर साख का अत्यधिक फैलाव रोका और दूसरी तरफ अन्य अंग्रेजी बैंकों और अर्थ सम्बन्धी संस्थाओं के सहयोग से बारिंग ब्रदर्स के जो फेल हो चुके थे, उनके पकने पर देने का विश्वास दिलाया। इसने न केवल जनता का भय दूर हो गया बल्कि बैङ्क की मर्यादा भी काफी बढ़ी। किन्तु धीरे-धीरे

-साख-नियन्त्रण के अन्य तरीके भी प्रयोग में आने लगे जैसे लन्दन बाजार में उधार लेना, किसी हद तक स्वर्ण के क्रय-विक्रय के अपने दर बढाना और घटाना तथा फ्रांस और रूस में साख का प्रबन्ध करना और उसे स्वीकार करना। तथापि प्रथम महायुद्ध के पहिले और विशेषतः सन् १८४४ के विधान पास हो जाने के बाद तक साख-नियन्त्रण का मुख्य तरीका बैंक दर नीति ही रहा। कहना न होगा कि अन्य केन्द्रीय बैंकों ने भी बैंक आफ इगलैण्ड के नियत्रण सबधी अनुभव से लाभ उठाया किन्तु इसका और कहीं भी इतने जोर से और इतनी जल्दी-जल्दी प्रयोग नहीं हुआ। ज़ूवेट के कथन के अनुसार जब कि बैंक आफ इगलैण्ड ने सन् १८७५ और १९०० के बीच में इसका १९७ बार उपयोग किया, बैंक आफ फ्रास ने केवल २५ बार और रीश बैंक (जर्मनी के केन्द्रीय बैंक) ने केवल ८४ बार इसका उपयोग किया। इसके कई कारण थे :—(१) लन्दन के स्वर्ण का एक स्वतन्त्र बाजार होने के कारण वह विदेशी पूँजी की लागत के लिये बहुत ही उपयुक्त स्थान माना जाता था। अत., जब कहीं भी गड़बड़ मचती थी और वहाँ की पूँजी लन्दन से निकाली जाती थी तब लन्दन में अवश्य कठिनाई उत्पन्न हो जाती थी। (२) ब्रिटिश साख की रचना की तुलना में इस समय बैंक आफ इगलैण्ड का स्वर्ण कोष बहुत ही थोड़ा रहता था। (३) ब्रिटिश पूँजी विदेशों में लगने के कारण ग्रेट ब्रिटेन के बैंकिंग के साधनों पर बराबर बोझ पडता रहता था और उसका यह प्रभाव होता था कि कभी-कभी अत्यधिक लागत लग जाती थी तथा उत्पत्ति और व्यापार सीमा उलघन कर जाते थे जिससे सट्टेबाजी बढ जाती थी। यह केवल बैंक दर ही बढाकर और कभी-कभी तो अत्यधिक बढाकर ही रोकी जा सकती थी।

बैंक दर नीति साख नियन्त्रण तभी कर सकती है जब केन्द्रीय बैंक के डिस्काउण्ट की दर के परिवर्तन से द्रव्य के अन्य दरों में भी उसी अनुपात से परिवर्तन हो। इगलैण्ड में द्रव्य की विभिन्न दरों के बीच में एक बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध था। बैंक दर प्राय बाजार के डिस्काउण्ट दर से कुछ ऊँचा रहा करता था। यह एक प्रकार से दड देनेवाली दर थी। अत', बाजारवाले बैंक से उसी समय ऋण लेते थे जब उन्हें और कहीं ऋण नहीं मिलता था। साथ ही बैंक का यह सबसे नीचा दर था। इस पर बैंक केवल सर्वोच्च बिल डिस्काउण्ट करने के लिये तैयार रहता था। निम्न श्रेणी के बिल डिस्काउण्ट

करने के लिये वह और ऊँची दर लगाता था। बैंक जमानतों पर जो ऋण देता था उन पर भी उससे ½ प्रतिशत ऊँची दर लेता था। बैंक दर के परिवर्तन पर बाजार के डिस्काउन्ट दर में भी परिवर्तन होता था। बैंक सात दिन की सूचना की शर्त पर जो जमा प्राप्त करते थे उस पर जो ब्याज देते थे उसकी दर प्रायः बैंक दर से १½ प्रतिशत कम रहती थी। सन् १९२१ में तो यह अन्तर २ प्रतिशत तक हो गया था; माँग पर वापिस होनेवाले ऋणों पर की ब्याज दर प्रायः जमा के ब्याज दर से ½ प्रतिशत अधिक होती थी। फिर, बैंक अन्य ऋणों के सम्बन्ध में अपने ग्राहकों से जो ब्याज लेते थे उसकी दर बैंक दर से प्रायः १ प्रतिशत ऊँची होती थी और कम से कम ५ प्रतिशत अवश्य होती थी। कभी-कभी यह क्रम नहीं चलता था, किन्तु प्रायः यही रहता था। किन्तु अन्य देशों में यह सम्बन्ध इतना निश्चित नहीं रहता था। अतः, वहाँ की बैंक दर नीति साख-नियन्त्रण में इतनी सफल नहीं होती थी। जिन परिस्थितियों में कोई केन्द्रीय बैंक साख-नियन्त्रण कर सकता है उनका अध्ययन तो हम पहिले भी कर चुके हैं. और यह भी स्पष्ट है कि इंगलैण्ड को छोड़कर किसी भी दूसरे देश में वह परिस्थितियाँ सम्पूर्ण रूप में नहीं पाई जातीं।

जब सन् १९१४ में फेड्रल रिजर्व बैंकों ने कार्यारम्भ किया था तब उन्होंने बैंक आफ इंगलैण्ड के साख-नियन्त्रण के तरीकों का अवलम्बन करना चाहा था और न्यूयार्क में एक बहुत ही उन्नत द्रव्य बाजार की संस्थापना का निरन्तर प्रयत्न किया था। इसमें संदेह नहीं कि वे इसमें बहुत अंशों तक सफल भी हो गये थे। किन्तु उनके यहाँ के बैंक दर और बाजारू दरों का सम्बन्ध कुछ भिन्न परिस्थितियों के कारण भिन्न था। ग्रेट ब्रिटेन में बैंक बैंक आफ इंगलैण्ड से सीधे ऋण की याचना नहीं करते थे। आवश्यकता के समय वह जो करते थे वह इस प्रकार था कि वे बिल के दलालों से और अन्य ऋण लेनेवालों से अपने माँग पर वापिस होनेवाले ऋण माँग लेते थे और साथ ही उनके बिल डिस्काउन्ट करना बन्द कर देते थे। इसका स्वभावतः यह फल होता था कि बाजारवाले बैंक आफ इंगलैंड से सहायता माँगते थे और वह उनसे यथोचित व्यवहार करता था। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में रिजर्व बैंकों के सदस्य बैंक सीधे रिजर्व बैंक के साथ काम करते थे। फिर, जब इंगलैण्ड में बैंक आफ इंगलैण्ड से ऋण प्राप्त करने का सबसे नीचा दर बैंक दर था संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह बात नहीं थी। डिस्काउन्ट दर के अतिरिक्त फेड्रल

रिजर्व बैंक अन्य बैंको द्वारा स्वीकृति हुये बिलों के क्रय की एक अन्य दर भी घोषित करते थे जो बिल बाजार की सहायता करने और उन्हे बनाये रखने के उद्देश्य से डिस्काउन्ट दर से नीची और प्राय. बाजार दर के बराबर होती थी। अत', जब सदस्य बैंक रिजर्व बैकों से ऊँचे दर पर अपने व्यापारिक साख-पत्र डिस्काउन्ट कराते थे तब वह बाजारवालों के बैंकरों द्वारा स्वीकृत किये हुये बिल यह नीची दर पर खरीद लेते थे। इसका यह फल होता था कि वहाँ पर साख-नियन्त्रण के लिए बैंक दर नीति उतनी कारगर नहीं होती थी जितनी ग्रेट ब्रिटेन मे होती थी। तीसरे, जब से फेड्रल रिजर्व बैंक स्थापित हुये है तब से वहाँ पर स्वर्ण कोष की बाहुल्यता रही है जिससे वह करन्सी प्रसार के लिये काम मे आता रहा था। इन सब कारणों के साथ-साथ कुछ अन्य कारण भी थे, जैसे वहाँ पर सट्टेबाजी की अत्यधिक सुविधा और वहाँ के लोगो का उसके प्रति अत्यधिक झुकाव। फिर, रिजर्व बैंकों को बैंक दर निर्धारित करने की उतनी स्वतन्त्रता भी नहीं है जितनी बैंक आफ इगलैण्ड को है। ऐसे अनेक उदाहरण है जब रिजर्व बैंकों की प्रार्थना पर बोर्ड ने बैंक दर बढाने की अनुमति नहीं प्रदान की।

प्रथम महायुद्ध के काल में और उसके बाद भी अनेक अवसरों पर केन्द्रीय बैंक बैंक दर नीति का पालन केवल इसलिए नहीं कर सके कि उन्हे सरकार की अर्थ-सम्बन्धी आवश्यकताओ का ध्यान रखना था। किन्तु जैसे ही अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्ण मान अपना लिया गया और केन्द्रीय बैंक अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिये मुक्त हो गए वैसे ही साख-नियन्त्रण के लिये बैंक दर नीति का फिर से अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। हाँ, साख नियन्त्रण के अन्य तरीकों जैसे बाजार मे खुले तौर पर काम करना अपना नैतिक प्रभाव डालना, इत्यादि की अपेक्षाकृत इसका प्रयोग घटता गया। हम यह बात तो देख चुके हैं कि बिलों की कमी क्यों पड़ने लगी थी और केन्द्रीय बैंक उनके स्थान पर सरकारी बिलो और साख पत्रों की जमानत पर ऋण देने में बैंक दर का किस प्रकार प्रयोग करने लगे थे। किन्तु इससे अधिक लाभ नहीं हुआ क्योंकि कुछ अन्य परिस्थितियो मे भी परिवर्तन हो चुका था और हो रहा था। एक तो द्रव्य के जितने मुख्य बाजार थे वह सब द्रवित अवस्था मे थे। बात यह थी कि उनके यहाँ के केन्द्रीय बैंकों में अथवा सरकार के विनिमय सम्बन्धी खातों मे इस समय काफी स्वर्ण कोष था, अत , उसी से उसके यहाँ करन्सी का काफी प्रसार भी था। दूसरे, सरकारी बिलों की रकम बढ जाने के कारण इस समय

केन्द्रीय बैंकों की अपेक्षाकृत मरगार का प्रभाव बाजार पर कहीं अधिक था। अन्तिम बात यह है कि जब से स्वर्णमान सारे संसार भर से हट गया है तब से उसके स्थान पर कृत्रिम करेन्सी मान चल रहा है। साथ ही आजकल अधिकांश देशों में स्वाभाविक तौर पर काम करने के स्थान में योजनाओं के अनुसार काम हो रहा है जिसमें मूल्य में, मजदूरी के दर में, उत्पत्ति में और व्यापार में द्रव्य की दरों के और साख की स्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ योजना के अनुसार ही परिवर्तन हो जाते हैं। चेतमैन का कथन है कि बैंक दर नीति उसी आर्थिक संगठन में सफल हो सकती है जिसमें मूल्य, मजदूरी और ब्याज प्राय आवश्यकता के अनुसार स्वाभाविक तौर पर ही कृत्रिम तरीकों से योजना के अनुसार नहीं बदलते रहते। किन्तु कृत्रिम करन्सी और योजनाओं की प्रणाली के अन्दर ऐसा नहीं होता। अत, इन परिस्थितियों में बैंक दर नीति का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

किन्तु प्राय सभी केन्द्रीय बैंक दर ससार में अपने-अपने बैंक दर अब भी घोषित करते हैं अधिकतर तो उनके विधानों में ही यह दिया हुआ है कि उन्हें अपना बैंक दर निश्चित और घोषित करना पड़ेगा। इससे बैंक दर के आज भी महत्वपूर्ण होने का पता लगता है। पहिले तो इससे यह मालूम हो जाता है कि केन्द्रीय बैंक कुछ विशेष प्रकार के साख-पत्रों की जमानत पर किस दर से ऋण देने के लिये तैयार है। दूसरे, यह इस बात का भी द्योतक है कि ऋण साधारणत किस दर पर प्राप्त हो सकता है। तीसरे, इससे यह भी पता लगता है कि केन्द्रीय बैंक का देश की साख की स्थिति के विषय में क्या मत है। कभी कभी तो इससे यहाँ की साधारण आर्थिक स्थिति के विषय में भी बैंक के मत का पता चलता रहता है। गिब्सन के शब्दों में[1] हम यह कह सकते हैं कि बैंक दर की वृद्धि आर्थिक स्थिति के विकृत रूप की चेतावनी देती है। एडिस के कथनानुसार[2] यह व्यापारियों के लिये भयसूचक लाल रोशनी

---

[1] 'A rise in Bank rate may be regarded as the amber coloured light of warning of a robot system of finance and economics'—Gibson

[2] 'A rise in Bank rate is a danger signal, the red light warning to the business community of rocks ahead on the course in which they are engaged A fall in it on the other hand may be looked upon as the green light indicating that the coast is clear and that the ship of commerce may proceed on her way with caution'—Addis

का काम करती है और उन्हें इस बात की चेतावनी देती है कि आगे चलकर उनके ठोकर खाकर गिर जाने की सम्भावना है। इसके विपरीत इसकी कमी हरी रोशनी की द्योतक है जो यह बतलाती है कि रास्ता बिल्कुल साफ है और व्यापार रूपी पोत सावधानी के साथ आगे बढ सकता है।

२. साख-नियंत्रण के लिये बाजार में खुले तौर पर काम करना

(Open market operations)—यह तो पहिले ही बतलाया जा चुका है कि बैंक आफ इंगलैण्ड साख-नियन्त्रण के सम्बन्ध में बैंक दर नीति के साथ-साथ अन्य कई तरीकों का प्रयोग प्रथम महायुद्ध के और उसके बाद के साल के बहुत पहिले से ही करता आ रहा था। अब, इन सब में से बाजार में खुले तौर पर काम करने की नीति (Open market policy) ही धीरे-धीरे विशेष तौर पर प्रधानता प्राप्त करती गई—यहाँ तक कि आजकल यह बैंक दर नीति के सहायक रूप में न रहकर स्वयं ही एक स्वतन्त्र रीति से प्रयोग में आने लगी है। इस नीति के यह अर्थ हैं कि केन्द्रीय बैंक स्वयं ही बाजार में प्रत्यक्ष रूप से उन सब साख-पत्रों का क्रय और विक्रय करने लगे जिन्हें वह साधारण तौर पर लेता और बेचता है, चाहे वह सरकारी साख-पत्र हों अथवा जनता के दूसरे साख-पत्र हों, अथवा बैंकों द्वारा स्वीकृत किये गये बिल हों अथवा व्यापारियों के बिल हों। लेकिन चलन यही है कि बैंक केवल सरकारी साख-पत्र ही लेते और बेचते हैं। हाँ, वह दीर्घकालीन और लघुकालीन दोनों होते हैं। जनता के दूसरे साख-पत्र वह कुछ स्पष्ट कारणों से नहीं छूते। वास्तव में यह सम्भव भी केवल इसीलिये हो सका है कि आजकल की सरकारों ने बहुत से ऋण ले रक्खे हैं। यह दीर्घकालीन और लघुकालीन दोनों प्रकार के हैं। ऐसा करने में बैंक अपनी तरफ से बाजार में काम करता है, बाजार के लोग उसके पास स्वयं नहीं जाते। उन्हें ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। बैंक को देश के हित में ऐसा करना आवश्यक मालूम होता है।

किन्तु इस नीति का प्रभाव केवल कुछ विशेष परिस्थितियों में ही पड़ सकता है। प्रथम तो यह आवश्यक है कि देश की बैंकिंग की प्रणाली बहुत ही उन्नत अवस्था को पहुँच गई हो, अर्थात् लोग अपनी बचत की रकम अपने पास न रखकर बैंकों में ही रखते हों। यदि ऐसा नहीं होता तो जब केन्द्रीय बैंक साख-पत्र बेचने लगता है तब उन्हें लोग अपने पास की रकमों

से खरीद लेते हैं जिससे उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु जब उनकी बचत बैंकों में जमा रहती है तब केन्द्रीय बैंक द्वारा बेचे गये साख-पत्र खरीदने के लिये लोग बैंकों से अपना रुपया निकालते हैं और बैंकों के नक्द कोष में इस प्रकार से कमी आ जाने पर उनकी साख उत्पादन शक्ति में भी कमी आ जाती है। यही साख नियन्त्रण है। यह साख-नियन्त्रण उस समय भी नहीं हो पाता जब विदेशी लोग केन्द्रीय बैंक द्वारा बेचे हुये साखपत्र खरीद लेते हैं। दूसरे, बैंकों के नक्द कोष में वृद्धि होने और कमी पड़ने पर उनकी साख उत्पादन शक्ति पर भी प्रभाव पड़ना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं होता तो साख नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। बहुधा ऐसा होता है कि नक्द की वृद्धि पर भी व्यापारिक बैंक साख नहीं बढ़ाते। तीसरे, इसमें केवल यही प्रश्न नहीं है कि व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक की लक्ष्य पूर्ति के लिये तैयार हों, बल्कि यह भी प्रश्न है कि कुछ आदमी लोग काम चलाने के उद्देश्य से ऋण लें और उनका इतना विश्वास हो अथवा उनके पास इस तरह की जमानत हो कि जिस पर बैंक उन्हें उधार दे सकें। यदि यह दोनों बातें नहीं हैं तो बैंकों की इच्छा रहने पर भी साख प्रसार नहीं हो सकता। इसी तरह से यदि काम करने वालों को व्यापार और सट्टे में लाभ दिखाई पड़ता है तो बैंक प्रयत्न करने पर भी शायद साख की माँग में कमी नहीं कर सकते। अन्तिम बात यह है कि बैंकों की जमा की चाल (Deposit velocity) में भी कोई परिवर्तन न हो। स्वाभाविक तौर पर तो व्यापार की वृद्धि से इसमें वृद्धि और उसकी मन्दी से इसमें मन्दी हो जाती है। किन्तु सच बात तो यह है कि उपर्युक्त में से कोई भी बात पूरी तौर से किसी देश में भी नहीं मिलती। लेकिन साधारणतया बाजार में खुले तौर पर काम करने की यह नीति मुख्य-मुख्य देशों में अपना प्रभाव अवश्य रखती है। इसका महत्त्व यह है कि यह बैंकों के नक्द कोष बढ़ा अथवा घटा देती है और इन परिवर्तनों से द्रव्य की दरों और साख की स्थितियों में भी परिवर्तन हो जाते हैं जिससे मूल्यों और व्यापारिक स्थितियों में भी आवश्यक उलट-फेर हो जाते हैं। हाँ, यदि कहीं कोई रुकावट पड़ जाती है तो अवश्य इच्छित प्रभाव नहीं पड़ता।

जहाँ तक लन्दन का प्रश्न है वहाँ के किक नामक एक बैंक अर्थशास्त्री ने यह कहा है कि बैंक आफ इगलैण्ड अपने प्रत्यक्ष काम से वहाँ का नक्द कोष घटा-बढ़ाकर वहाँ के बैंकों की जमा प्रसार और संकुचन बड़े जोरों से और जान-बूझकर कर सकता है और करता है तथा इसी तरह साख नियन्त्रण

मे सफल होता है। एम० एच० डी काक ने बैंक आफ इगलैण्ड की इस नीति के लक्ष्य के विषय में निम्न बातें बतलाई हैं :—

(१) बैंक दर का प्रभाव उत्पन्न करना अथवा बैंक दर में परिवर्तन करने के लिये स्थिति पैदा कर देना।

(२) सरकारी द्रव्य की अथवा ऋतु सम्बन्धी गति विधि से द्रव्य बाजारों में जो हलचल पैदा हो जाती है, उसे रोकना।

(३) स्वर्ण निर्यात और आयात रोकना।

(४) नये ऋण निकालने और पुराने ऋण नये ऋणों मे बदलने की अवस्था में सरकारी साख की रक्षा करना।

(५) व्यापार के पुनर्निर्माण मे सहायता पहुँचाने के लक्ष्य सस्ते द्रव्य की स्थितियाँ उत्पन्न करना और उन्हें बनाये रखना।

सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के फेड्रल रिजर्व बैंकों की भी खुले तौर पर बाजार मे काम करने की नीति के लक्ष्य के विषय में यही कहा जा सकता है। हाँ, उनके कामों में और उनके इस पर जोर देने तथा इसे करने के स्तर (Standard) में अवश्य कुछ विशेष अन्तर है।

भारतवर्ष के रिजर्व बैंक को भी आवश्यकता पड़ने पर इस नीति का प्रयोग करने का अधिकार दिया गया है, और साथ ही जहाँ तक सम्भव हो सका है उन परिस्थितियों को भी उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है जिनसे इसका यथेष्ठ प्रभाव पड़ सकता है। किन्तु अभी तक कोई ऐसा अवसर नहीं आया जब वह यह नीति प्रयोग मे लाया हो।

साख नियन्त्रण के अन्य तरीकों का प्रयोग

साख नियत्रण के अन्य तरीकों में से कुछ का सकेत तो हम बैंक दर नीति के सम्बध मे ही कर चुके हैं। वहाँ पर यह भी बतलाया जा चुका है कि सन् १८३६ के पहिले बैंक आफ इगलैण्ड (१) प्रत्येक प्रार्थी के ऋण की रकम बाँध करके साख की राशनिंग कर दिया करता था, और (२) जिन बिलों का डिस्काउण्ट करने को तैयार रहता था उनकी अवधि भी घटा देता था। उसने इस वर्ष साख नियत्रण के लिये वास्तव में बैंक दर नीति के साथ साथ उपर्युक्त दूसरी नीति भी अपनायी थी और डिस्काउण्ट करनेवाले बिलो की अवधि ६५ दिन के स्थान पर केवल ३० दिन ही कर दी थी। उसी सम्बध

में हम यह भी देख चुके हैं कि धीरे-धीरे बैंक ने साख नियंत्रण के अन्य तरीकों का भी प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था जैसे लन्दन बाजार में ऋण लेना, स्वर्ण का क्रय और विक्रय दर एक विशेष सीमा के अन्दर घटा देना और माम तथा रूप से उधार लेना अथवा स्वीकार करना। इधर हाल में कुछ अन्य तरीकों का भी प्रयोग होने लगा है। किन्तु उन सब का अध्ययन करने के पहिले हमें एक बार साख की राशनिंग का तरीका फिर से भली-भाँति समझ लेना है। बात यह है कि इधर तानाशाही (Fascist) सरकारों ने हाल में भी इसका काफी प्रयोग किया था। वास्तव में राष्ट्रीय योजनायें कार्यान्वित करने के लिये ऐसा करना आवश्यक हो जाता है।

३ साख की राशनिंग—जर्मनी ने इसका प्रयोग सन् १६२४ में अपने निज रैंटेनमार्क के मूल्य का ह्रास रोकने के लिये किया था। फिर वहाँ पर सन् १६२६ में भी यही प्रयोग में लाई गई थी। उस वर्ष यङ्ग योजना के सम्बंध की पेरिस की वार्तालाप के कारण वहाँ से द्रव्य का निर्यात प्रारम्भ हो गया था जिससे वहाँ की करंसी की स्थिति बिगड़ने की सम्भावना उपस्थित हो गई थी। अत, उसे इसी नीति द्वारा साख नियंत्रण करके सँभाला गया था। सन् १६३१ में भी वहाँ पर रीश बैंक ने साख का कोटा (Quota) बाँध करके बड़े-बड़े बैंकों को फेल होने से बचाया था। रूस में तो यह तरीका वहाँ के सरकारी बैंक की साधारण आर्थिक नीति का प्राय एक अङ्ग ही बन गया है। कजनलनबाम (Katzenellenbaum) का कथन है कि केन्द्रीय बैंक का दर न तो ऋण सम्बंधी कोष की माँग और भरती (Supply) का सूचक है और न उसकी भरती ठीक करता है। जहाँ तक रूस के सरकारी बैंक में जमा होनेवाले कोष का प्रश्न है उसके सम्बंध में वह एक अन्य सिद्धांत के अनुसार चलता है अर्थात् जिन्हें उसकी आवश्यकता होती है उन्हें वह एक निश्चित योजना के अनुसार देता है और कभी-कभी जब उनकी माँग उसके पास के कोष की अपेक्षाकृत अधिक हो जाती है तब वह उसे उनके बीच में एक विशेष योजना के अनुसार बाँट देता है। द्वितीय महायुद्ध के काल में प्रजातन्त्र राज्यों में भी इस तरीके का काफी प्रयोग किया गया था।

५ प्रत्यक्ष कार्यवाही करना और नैतिक प्रभाव डालना

(Direct action and moral suasion)—वास्तव में प्रत्यक्ष कार्यवाही करने में नैतिक प्रभाव डालना भी सम्मिलित है। किंतु एम० एच० डी० काक ने इन दोनों के बीच में कुछ अंतर दिखाने का प्रयत्न किया है।

उसके कथन के अनुसार प्रत्यक्ष कार्यवाही करने के अर्थ हैं किसी व्यापारिक बैंक के विरुद्ध कुछ कड़े उपायों का प्रयोग करना और नैतिक प्रभाव डालने के अर्थ हैं उपयुक्त प्रकाश डालकर अपना लक्ष्य सिद्ध करना। इसमें केन्द्रीय बैंक का प्रभाव और उसकी स्थिति समझने की और उसी के अनुसार काम करा लेने की शक्ति का अधिक महत्त्व है। केन्द्रीय बैंकों ने इन तरीकों का प्रयोग किसी न किसी रूप में बैंक दर नीति और बाजार में खुले तौर पर काम करने की नीति अपनाने के साथ-साथ अथवा उनसे पृथक्-पृथक अनेक बार समय-समय पर किया है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में जब-जब फेड्रल रिजर्व बोर्ड ने बैंक दर मे परिवर्तन करने की अनुमति नहीं दी और विशेषकर सन् १९२८-२९ में उसने उसके स्थान पर यही तरीके काम मे लाने के लिये इशारा किया था। किन्तु क्लार्क के कथनानुसार हम यह कह सकते हैं कि फेड्रल रिजर्व बैंकों को इनके प्रयोग का जो अनुभव हुआ है उससे यह ज्ञात होता है कि यह काफी उपयोगी नहीं सिद्ध हुये, अतः, इनका प्रयोग बहुत ही समझ बूझ कर करना चाहिये। हाँ, रीश बैंक ने भी प्राय इनका प्रयोग किया है और वह इसमें फेड्रल रिजर्व बैंकों की अपेक्षाकृत अधिक सफल हुआ है। किन्तु यह केवल इसीलिये हो सका कि उसमें बहुत कड़े उपाय प्रयोग में लाने का भय दिखाया गया था जोकि केवल तानाशाही शासन-प्रणाली ही के अन्तर्गत सम्भव है।

केन्द्रीय बैंकों में व्यापारिक बैंकों द्वारा रक्खी जानेवाली न्यूनतम नकदी में परिवर्तन—पाँचवें अध्याय में जब हम व्यापारिक बैंकों के नकद कोष के विषय मे अध्ययन कर रहे थे तब हमने यह देखा था कि कुछ देशों मे इन बैंकों को चालू जमा और स्थायी जमा का एक निर्धारित अंश अपने यहाँ केन्द्रीय बैंकों में रखना पड़ता है। इधर केन्द्रीय बैंकों ने कभी-कभी यह अंश घटाने बढ़ाने की शक्ति का भी प्रयोग किया है। पहिले-पहिल इसका आविष्कार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सन् १९३३ में हुआ था और फिर इसका संशोधन वहाँ पर सन् १९३५ में किया गया था। इसके सम्बन्ध का जो विधान बना था उसके द्वारा फेड्रल रिजर्व प्रणाली के शासक मण्डल को साख का हानिकारक प्रसार और संकुचन रोकने के लिये सदस्य बैंकों द्वारा उनके पास उनकी जमा का जो अंश जमा किया जाता है उसे घटाने बढ़ाने का अधिकार दे दिया गया है। वस्तुत इसका प्रयोग वहाँ पर सन् १९३६ के अगस्त मे किया गया था। उस वर्ष जमा होनेवाले कोष का अंश पहिले से ड्योढ़ा कर

दिया गया। उस समय शासक मण्डल ने यह चाहा था कि इसकी अपेक्षाकृत कि पहिले तो यह अत्यधिक कोष भाग चलन के काम में आवे और फिर उसे शामिल किया जाय यह अधिक बेहतर है कि इसके प्रयोग में आने के पहिले ही इसके एक अंश को बेकाम बनाकर रोक दी जाय। किन्तु स्वर्ण का स्वतन्त्र आयात होने के कारण फिर बैंकों के कोष बढ़ने लगे और सन् १९३७ के आरम्भ में शासक मण्डल को फिर उनके द्वारा जमा किये जानेवाले कोष का अनुपात दो किस्तों में बढ़ाना पड़ा जिससे सदस्य बैंकों को अगस्त १९३६ के पहिले जो न्यूनतम जमा रखनी पड़ती थी उससे अब दुगनी जमा रखनी पड़ने लगी। परन्तु सन् १९३८ में इस जमा किये जानेवाले कोष का प्रतिशत नये प्रतिशत से १२½ प्रतिशत कम कर दिया गया। न्यूजीलैण्ड और स्वीडन ने भी बाद में इस तरीके का प्रयोग किया था।

निस्सन्देह साख-नियन्त्रण का यह तरीका बहुत ही अच्छा है किन्तु साथ ही इसमें कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। प्रथम तो सब बैंकों के कोष एक साथ तथा एक ही मात्रा में नहीं बढ़ते-घटते। अतः, केन्द्रीय बैंकों का उनके यहाँ जमा किये जानेवाले अंश घटा-बढ़ा देने से भिन्न-भिन्न बैंकों पर भिन्न-भिन्न असर पड़ता है। दूसरे, यह तरीका तभी सफल हो सकता है कि जब बाजार में खुले तौर पर काम करने की नीति सफल बनाने के लिये जिन परिस्थितियों का होना आवश्यक है वह सब परिस्थितियाँ यह तरीका प्रयोग में लाने के लिये भी मौजूद हों।

८ साख-पत्रों के मूल्य का वह अंश घटाना-बढ़ाना जिसके बराबर उनकी बिना पर ऋण दिये जाते हैं—सन् १९३४ के साख-पत्र विनिमय विधान (Securities Exchange Act) द्वारा फेडरल रिजर्व प्रणाली को साख नियन्त्रण का एक अन्य तरीका भी बतला दिया गया है, अर्थात् साख-पत्रों के मूल्य का वह अंश घटाना-बढ़ाना जिसके बराबर उसकी बिना पर ऋण दिये जाते हैं। जैसा कि स्पष्ट है इसका उद्देश्य साख-पत्रों की सट्टेबाजी रोकना है। सन् १९३६ में मडल (Board) ने बैंकों और दलालों के लिये यह आवश्यक कर दिया था कि वह लोग साख पत्रों की जमानत पर अपने ग्राहकों को ऋण देते समय उनके मूल्य की कम से कम ५५ प्रतिशत की गुञ्जाइश अपने पक्ष में रख लें। फिर, सन् १९३७ के नवम्बर में यह घटाकर ४० प्रतिशत कर दी गई थी। द्वितीय महायुद्ध के समय यह तरीका कई अन्य देशों में भी प्रयोग में लाया गया था।

7 विज्ञप्ति—सभी केन्द्रीय बैंक समय-समय पर किसी न किसी रूप में अवश्य कुछ न कुछ विज्ञप्ति करते रहते हैं। किन्तु साख नियन्त्रण के लिये इसका प्रयोग जितना सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे हुआ है उतना अन्य किसी भी देश में नहीं हुआ है। बरगेस के कथनानुसार फेड्रल रिजर्व प्रणाली के अफसरों के वक्तव्यों की साख नियन्त्रण के लिये कभी-कभी तो उतना ही असर पड़ा है जितना कि शायद उनके प्रत्यक्ष दबाव का पड़ता। रीश बैंक ने भी इसका काफी प्रयोग किया है।

केन्द्रीय बैंकों की व्यापारिक चक्र (Business cycles) रोकने की शक्ति

केन्द्रीय बैंकों के साख नियन्त्रण के कार्य के सम्बन्ध में यह तो पिछले अध्याय में ही बताया जा चुका है कि इसका एक उद्देश्य व्यापारिक चक्र का प्रभाव कम करना अथवा उसे बिल्कुल रोक देना भी है। साथ ही हम वहीं पर यह भी देख चुके हैं कि आज-कल तो इस साख नियन्त्रण का पहिला उद्देश्य व्यापारिक कार्यों की बराबर स्वाभाविक तौर पर उन्नति करते रहना और तेजी-मन्दी (Booms and slumps) रोकना ही है, अन्य सब बातें तो बाद में आती हैं। अब, यह बात समझने के पहिले कि केन्द्रीय बैंक इसमें कहाँ तक सफल हुए हैं, हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि व्यापारिक चक्र, तेजी और मन्दी (Booms and slumps) के क्या अर्थ हैं। जहाँ तक व्यापारिक चक्र के प्रयोग का प्रश्न है वह इसलिये होने लगा है कि व्यापारिक कार्यों की जो घट-बढ़ होती है वह एक प्रकार से चक्र ही की तरह की है। वैसले मिचेल ने व्यापारिक चक्र की जो परिभाषा[1] दी है वह कुछ इस आशय की है :—यह व्यापारिक कार्यों का एक क्रमिक प्रसार और सकुचन है। इसमें यह आवश्यक नहीं है कि तेजी और मन्दी का परिवर्तन एक सकट के रूप में हो। इसमें दो तेजी की भी अवधि हो सकती है और दो मन्दी की भी अवधि हो सकती है। इसी बिना पर एम० एच० डी० काक इसमें चार

[1] Business cycle is any single succession of expansion and contraction of business activity, i e between one period of prosperity and another or between one depression, and another, irrespective of whether the transition from prosperity to depression is of the nature of a crisis or merely mild recession—Wesley Mitchell

प्रकार की गतिविधि सम्मिलित करता है, अर्थात् उत्थान (Prosperity), वापिसी (Recession) झुकाव (Depression) और पुनरुत्थान (Revival)। इनमें से उत्थान की अवधि तेजी की अवधि (Boom period) और झुकाव की अवधि मन्दी की अवधि (Slump period) कहलाती है। जहाँ तक इसके कारणों का प्रश्न है यह द्रव्य सम्बन्धी (Monetary) और गैर द्रव्य सम्बन्धी (Non-monetary) दोनों हैं। अतः द्रव्य सम्बन्धी कारण पूरी तरह से नहीं तो कुछ अंशों में अवश्य ही रोके जा सकते हैं। बताया गया है कि उत्थान और प्रसार के समय के बाद जो वापिसी अथवा सकट का समय आता है वह केवल अत्यधिक सट्टेबाजी के कारण ही आता है। एम० एन० डी० राव ही के कथन के अनुसार उत्थान के और व्यवसाय की वृद्धि के समय जन-साधारण में साहस और आशा की भावना स्वाभाविक रूप से ही दृष्टिगोचर होने लगती है। ऐसे समय में व्यवसाय में आसानी से लाभ बढ़ाने के लिये व्यापारी समुदाय अपनी बिक्री और उत्पादन भी बढ़ाता है और उसके लिये बैंकों की सहायता प्राप्त करना चाहता है। इसका फल यह होता है कि बैंक उत्पादकों और अन्य व्यवसायियों को साख देते हैं और उत्पादक और व्यवसायी भी अच्छी परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने ग्राहकों को साख देते हैं। अब, पूँजी की तुलना में व्यवसाय के अनुपात की उपभोग तथा उत्पत्ति के सामान के उत्पादन और व्यापार के परिमाण की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है और चारों तरफ तेजी ही तेजी (Boom) दिखाई पड़ने लगती है। अब यह लाभ की वृद्धि का, बढ़ते हुये व्यापार और उत्पादन का, अधिकाधिक सट्टेबाजी का और भूमि, सामान तथा साख-पत्रों के मूल्योत्कर्ष का क्रम सदा के लिये तो नहीं बढ़ सकता। कभी न कभी तो विपरीत परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और बिल्कुल उल्टा हो जाता है। वास्तव में सट्टा रोकना ही चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि बैंकों के पास जन समुदाय की भावनायें रोकने के साधन तो नहीं हैं किन्तु वह ऐसे साख का नियन्त्रण करके उनका कार्यान्वित होना तो रोक ही सकते हैं। इससे वापिसी (Recession) भी रुक जाती है। वापिसी तथा सकट के क्रम का विश्लेषण करके माटक्स ने तीन मुख्य बातें बताई हैं जो निम्नांकित हैं —(१) इसके लिये सट्टे की भावना होनी चाहिये; (२) सट्टे का प्रभाव मूल्य वृद्धि द्वारा दृष्टिगोचर होता है, (३) सट्टा मूल्य को साख वृद्धि द्वारा ही प्रभावित करता है। अत, उसका कथन है कि बैंक साख नियन्त्रण करके मूल्य नियन्त्रण कर सकते हैं और मूल्य नियन्त्रण से सट्टेबाजी रुक सकती है जिससे वापिसी

रुक जाती है। केन्द्रीय बैंक बैकों का प्रधान है। अत, वह उनकी स्वाभाविक स्थिति पर दृष्टि रखकर उन्हें सचेत कर सकता है और यदि इतने पर भी कोई सकट मे पड़ जाय तो वह उसकी सहायता भी कर सकता है।

प्रश्न

(१) 'बैंक दर' से आप क्या समझते है ? इधर इसके अर्थ मे जो परिवर्तन हो गया है वह किन कारणो से हुआ है ?

(२) 'बैंक दर' नीति उन्नीसवी शताब्दी मे इगलैण्ड में तथा अन्य देशो में साख नियन्त्रण के सम्बन्ध में क्यो अधिकाधिक प्रयोग मे आने लगी। फिर, सन् १६१४-१८ के महायुद्ध के काल से इसका महत्व क्यो घट गया है ?

(३) 'बैंक दर' और दूसरी दरो के बीच मे लन्दन के द्रव्य बाजार में क्या सम्बन्ध था ? बैंक आफ इगलैण्ड का 'बैंक दर' अन्य केन्द्रीय बैंको के 'बैंक दर' से किन-किन बातो मे भिन्न था ?

(४) 'साख नियन्त्रण के लिये बैङ्क दर नीति अन्य देशो में न तो उतनी प्रभावोत्पादक ही सिद्ध हुई और न उतनी प्रयोग मे ही आई जितनी इगलैण्ड मे।' उपर्युक्त के क्या कारण थे ?

(५) बाजार मे खुले तौर पर काम करने से आप क्या समझते है ? साख नियन्त्रण के लिये इस नीति की सफलता किन-किन परिस्थितियो पर निर्भर है ? अपना उत्तर बहुत स्पष्ट शब्दो मे दीजिये।

(६) साख नियन्त्रण के निम्न तरीको पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —(१) साख की राशनिंग, (२) डिस्काउण्ट के योग्य बिलो की मुद्दत घटाना, (३) प्रत्यक्ष कार्यवाही करना, (४) नैतिक प्रभाव डालना, (५) न्यूनतम नकद कोष में परिवर्त्तन, (६) जमानत के जिस अश के बराबर ऋण दिया जाता है उसमे परिवर्तन, और (७) विज्ञप्ति।

(७) 'व्यापार चक्र', 'तेजी' और 'मन्दी' से आप क्या समझते है ? क्या केन्द्रीय बैङ्को के पास व्यापार चक्र रोकने की शक्ति है ?

अध्याय ८

साख और साख-पत्र

आधुनिक व्यवसाय और बड़ी मात्रा की उत्पत्ति दोनों ही साख और साख-पत्र के प्रयोग पर निर्भर हैं। मैक्लियड के कथनानुसार यन्त्र के लिए जितना आवश्यक इंजन है, गणितशास्त्र के लिये जितना आवश्यक कलन (Calcules) है उतनी ही आवश्यक व्यवसाय के लिये साख है।

साख क्या है ?

साख का शाब्दिक अर्थ तो विश्वास है, किन्तु वास्तविक रूप में इसका अर्थ भुगतान टालना (Postponement of Payment) है। हम कह सकते हैं कि यह वह विनिमय है जो एक निश्चित समय बीत जाने के पहिले पूरा नहीं होता है। साख की तीन आवश्यकतायें हैं —(१) मूल्य विनिमय, (२) समय, और (३) विश्वास—यह विश्वास ऋणी की ऋण अदा करने की क्षमता और ईमानदारी दोनों में होना चाहिये।

प्रकृति (Nature)—औद्योगिक क्रान्ति के समय से साख ने इतना महत्व प्राप्त कर लिया है कि कुछ लोग इसे धन अथवा पूँजी और उत्पत्ति का साधन समझने लगे हैं। अब, इसकी सत्यता निश्चित करने के लिये हमें यह जानना आवश्यक है कि क्या साख किसी अन्य चीज की सहायता के बिना मनुष्य की इच्छा की पूर्ति कर सकती है, क्योंकि धन का यही तो एक विशेष लक्षण है। फिर, यदि इसका उत्तर 'हाँ' में है तो हमें यह मालूम करना पड़ेगा कि क्या यह उत्पत्ति करने के लिये प्रयोग में आ सकती है, क्योंकि धन इसी तरह से तो पूँजी बनता है। प्रथम तो साख स्वयं ही धन नहीं है। हमारा किसी पर कितना ही विश्वास क्यों न हो, इस अकेले विश्वास से ही तो उसे पूँजी नहीं मिल जायगी, पूँजी मिलने के लिये तो किसी के पास धन भी होना चाहिये। हम उस पर विश्वास तो करते हैं किन्तु हमारे पास धन तो है ही नहीं। अत, हम उसे पूँजी दे कहाँ सकते हैं। किन्तु हम देखते हैं कि बैंकों के पास जितना धन रहता है उससे कहीं अधिक मूल्य की साख वह उत्पन्न कर देते हैं। अत, लोग कहते हैं कि धन से अधिक जितनी साख उत्पन्न हुई है वह तो धन है ही। किन्तु सत्य यह है कि इस बढ़े हुये धन की तह पर कुछ वास्तविक धन है जिसके बिना यह बढ़ा हुआ धन उत्पन्न हो ही नहीं सकता था। अत, हम यह कह सकते हैं कि साख से धन बढ़ जाता है और वही जब प्रयोग में आने लगता है तब पूँजी बन

जाता है और संक्षेप मे हम यह कह सकते हैं कि साख धन को अधिक उप-
योगी बना देती है। अत, यह उत्पादन का साधन (Factor) नहीं है,
वरन् तरीका (Method) है। वह पूँजी को उसी प्रकार अधिक कुशल
बना देती है जिस प्रकार श्रम विभाजन (Division of Labour) श्रम
को कुशल बना देता है।

रूप—साख के अनेक रूप है—व्यवसायिक साख (Com-
mercial Credit), बैंक की साख, सरकारी साख (Public Credit),
औद्योगिक साख (Industrial or Capital Credit), वैयक्तिक
साख (Individual or Personal Credit)। जब कोई व्यवसाय
अपनी साख के कारण उधार माल खरीदता है तब वह व्यवसायिक साख
कहलाती है। किन्तु इस साख का क्षेत्र बहुत ही सीमित रहता है और यह बहुत
जल्द ही समाप्त हो जाती है। अत, इसका क्षेत्र और इसकी अवधि बढाने
के लिये इसका विनिमय बैंक साख से करना पडता है। विनिमय बिल व्यवसा-
यिक साख के रूप हैं। उनका चलन सीमित रहता है। किन्तु जैसे ही उनका
विनिमय बैंक की साख के साथ अर्थात् नोटों तथा बैंको द्वारा स्वीकृत किये
गये बिलों और साख पत्रों (Letters of Credit) जैसे अन्य साख पत्रो
(Credit Instruments) के साथ हो जाता है वैसे ही वह एक बहुत
बडे क्षेत्र में चालू किये जा सकते हैं। किसी व्यवसायी को तो कुछ ही व्यवसायी
जानते हैं। अत, वह अन्य व्यवसायियों से अपनी साख पर उधार माल नहीं
खरीद सकता। किन्तु जब वह अपनी साख बैंक साख से बदल लेता है तब
वह कहीं से भी उधार माल खरीद सकता है, बैंक उसे चेक और बिल काटने
(Draw) की आज्ञा दे देता है। बिल तो प्राय उस व्यवसायी को माल
उधार देने वाले स्वयम् करते हैं। हमने इनके विषय मे बहुत काफी अध्ययन
पाँचवे अध्याय में ही वैको द्वारा स्वीकृत किये जानेवाले बिलों के अन्तर्गत
कर लिया है। सरकारी साख के अन्दर सरकार द्वारा उधार लेना आ जाता
है। वे अपने ब्याजू साख-पत्र निकालते हैं। औद्योगिक साख के अन्तर्गत
उद्योग-धन्धों द्वारा उधार लेना आता है। वैयक्तिक साख के अन्तर्गत उप-
भोक्ताओं द्वारा उपभोग के लिये उधार माल खरीदना अथवा उधार द्रव्य
लेना आ जाता है। उधार या तो साख-पत्रों की बिना पर या हिसाब-किताब
की पुस्तकों में किये गये लेखों की बिना पर मिलता है। जब वह हिसाब किताब
की पुस्तकों मे किये गये लेखों की बिना पर मिलता है तब हम उसे किताबी
साख (Book credit) कहते हैं।

लाभ—साख से साख-पत्रों की उत्पत्ति होती है जो धात्विक मुद्रा के स्थान पर काम करते हैं। (अ) यह धात्विक मुद्राओं की अपेक्षाकृत विनिमय के सस्ते माध्यम होते हैं (ब) यह उठान करने में अधिक सुविधाजनक रहते हैं, और (स) यह धात्विक मुद्रा की कमी पूरी करते हैं—वास्तव में धात्विक मुद्रा अकेली आजकल के विनिमय के माध्यम की आवश्यकतायें पूर्ण नहीं कर सकती। इनके प्रयोग से धातु की बड़ी मात्रा दूसरे उपयोगों में आने के लिये मुक्त हो जाती है। यह धन को दूर-दूर भेजने के काम में भी आते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान तो इनके द्वारा बहुत ही आसानी से चुकाये जाते हैं।

साख के कारण जब समुदाय का धन केन्द्रित हो जाता है, तब उससे बचत करने वाले और बचत का उपयोग करनेवाले दोनों को लाभ होता है। अत, समुदाय मितव्ययी बन जाता है। फिर, जब केन्द्रित रकम उद्योग-धन्धों अथवा व्यवसायादि में लग जाती है तब उनसे अनेक व्यक्तियों का जीवन-निर्वाह होता है। आधुनिक काल का व्यापक उत्पादन साख ही के कारण सम्भव हो सका है।

साख से लोचता की घट बढ़ भी कम हो जाती है। जब कभी द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है तब बैंक साख के रूप में उसे उत्पन्न कर देते हैं, और जब उसकी आवश्यकता नहीं रहती है तब वह उसे समेट लेते हैं।

साख से राष्ट्र अपने यहाँ के आर्थिक सकट दूर कर लेते हैं। इसी के सहारे वे लम्बी-लम्बी लड़ाइयाँ लड़ते हैं।

जब कोई व्यक्ति थोड़े समय के लिये धन सकट में पड़ता है तब उसे भी साख के ही कारण उधार मिल जाता है और उसका काम चल जाता है।

हानियाँ—जहाँ पर साख से इतने लाभ हैं वहाँ पर उससे अनेक हानियाँ भी होती हैं। वास्तव में उसमें सबसे अधिक बुराई तो उसके अत्यधिक उपयोग में आ जाने के कारण होती है। जब अत्यधिक साख उत्पन्न हो जाती है तब बहुत उत्साह बढ़ जाता है और उससे अत्युत्पादन तथा सट्टेबाजी बढ़ जाती है। इससे अयोग्य व्यक्तियों को भी सट्टेवाले तथा अन्य हानिकारक व्यवसाय करने का अवसर प्राप्त हो जाता है, जिससे न केवल उन्हीं की बल्कि दूसरों की भी हानि होती है। जो उपभोक्ता साख प्राप्त कर सकते हैं, वह प्राय. अधिक व्ययी होकर अपनी आर्थिक अवस्था खराब कर लेते हैं। फिर, इससे पूँजीवाद और उससे उत्पन्न अन्य बुराइयों की, जैसे प्रतियोगिता तथा श्रम शोषण, इत्यादि की उत्पत्ति हो जाती है।

साख-पत्र

साख से अनेक प्रकार के साख-पत्रों की उत्पत्ति हो गई है। अत', उन सब का तो यहाँ पर अध्ययन करना असम्भव-सा है। किन्तु उनमे से कुछ का अध्ययन अवश्य हम यहाँ पर (१) विनिमय साध्य साख-पत्रो (Negotiable Instiuments), (२) हुण्डियो तथा (३) अन्य साख-पत्रों के शीर्षक के अन्तर्गत करेंगे।

विनिमय साध्य साख-पत्र—इनमें चेक, विनिमय बिल और प्रणपत्र सम्मिलित हैं। साधारणत ये हस्तान्तरकृत को अच्छा अधिकार देते हैं किन्तु इनकी यह -शक्ति (Negotiability) इन पर प्रतिबन्ध युक्त वेचान (Restrictive endorsements) करके अथवा चेक मे उस पर अविनिमय साध्य रेखाङ्कन (Not negot iable Crossing) करके समाप्त अथवा सीमित भी की जा सकती है। हॉ, इस शक्ति की समाप्ति अथवा उसके प्रतिबन्ध के यह अर्थ नही हैं कि यह साख-पत्र हस्तान्तरित (Transfer) भी नहीं किये जा सकते हैं। हस्तान्तरित होने की शक्ति (Transferability) और विनिमय साध्यता (Negotiability) का अन्तर भली भॉति समझ लेना चाहिये। जिस साख-पत्र मे विनिमय साध्यता नहीं होती अथवा उसे समाप्त अथवा सीमित कर दिया जाता है उसे, जितनी बार चाहे उतनी बार हस्तान्तरित तो किया जा सकता है, किन्तु यदि वह किसी व्यक्ति द्वारा चुरा लिया जाता है अथवा किसी अन्य अनुचित तरीके पर उसके पास पहुँच जाता है, तब उस पर हस्तान्तरकृत (Transferee) का उसी हस्तातरकर्ता (Transferor) ही की तरह का अधिकार होता है जिसने उसे चुरा लिया था अथवा अन्य अनुचित तरीके पर प्राप्त कर लिया था, अर्थात् उससे उसने जो लाभ उठाया है उसे आवश्यकता पड़ने पर उसके वास्तविक स्वामी को लौटाल देना पडता है। स्पष्ट है कि यदि हस्तातरकर्ता ठीक है तो हस्तान्तरकृत की कोई हानि नहीं है। इसके विपरीत यदि किसी ऐसे विनिमय साध्य साख-पत्र को जिसकी यह विनिमय साध्यता समाप्त अथवा सीमित नहीं कर दी गई है कोई व्यक्ति उसके पूरे मूल्य पर प्राप्त कर लेता है तो उसे उसका लाभ उसके वास्तविक स्वामी के जिससे उसे चुरा लिया गया था अथवा किसी अनुचित तरीके पर प्राप्त कर लिया गया था -विरोध मे भी अपने पास रखने का अधिकार है। संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि जब हस्तावरित

होने की शक्ति निरपेक्ष स्वामित्व (Absolute ownership) नहीं प्रदान करती, विनिमय साध्यता ऐसा करती है।

चेक—विनिमय साध्य पुर्जों के भारतीय विधान की ६वीं धारा में चेक की जो परिभाषा दी गई है वह इस आशय की है —चेक एक ऐसा विनिमय बिल है जो एक विशेष बैंक के ऊपर लिखा जाता है और जिसके भुगतान देने का आदेश माँग पर छोड़कर अन्य किसी प्रकार नहीं हो सकता है। अतः इसकी तीन विशेषतायें हैं।

(१) यह विनिमय बिलों में एक है, (२) इसका ऊपरवाला धनी कोई बैंक होना चाहिये, और (३) यह दर्शनी होनी चाहिये, अर्थात इसका भुगतान माँगने पर फौरन होना चाहिये।

उपर्युक्त विधान की ५वीं धारा में विनिमय बिलों की भी परिभाषा दी हुई है। वह निम्न प्रकार की है —यह एक ऐसा लिखित पत्र है जिस पर इसे लिखनेवाले के हस्ताक्षर रहते हैं और जो उसमें लिखित किसी व्यक्ति को उसमें लिखित किसी अन्य व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार अथवा उसके वाहक को उसमें लिखित रकम बिना शर्त दिला देने की आज्ञा देता है।

अस्तु उपर्युक्त परिभाषायें ध्यान में रखते हुये हम चेक की अपनी परिभाषा भी बना सकते हैं जो कुछ निम्न प्रकार की होगी :—एक चेक एक ऐसा शर्त रहित लिखित आज्ञा-पत्र है जिसमें इसे लिखनेवाला अपने हस्ताक्षर से उसमें लिखित किसी विशेष व्यक्ति को अथवा उसकी आज्ञानुसार अथवा उसके वाहक को उसमें लिखित एक विशेष रकम माँग पर देने के लिये कहता है। यद्यपि इस परिभाषा का प्रत्येक शब्द महत्वपूर्ण है तो भी इसमें निम्न विशेषतायें मिलती हैं :—

(१) यह एक आज्ञापत्र है।
(२) यह लिखित होता है।
(३) यह बेशर्त होता है।
(४) यह किसी विशेष बैंक पर होता है।
(५) इस पर इसे लिखनेवाले के हस्ताक्षर होते हैं।
(६) इसमें लिखित रकम माँगने पर फौरन देनी पड़ती है।
(७) इसकी रकम निश्चित होती है।
(८) जिसे भुगतान दिया जाता है उसका नाम इसमें लिखित होता है अथवा उसके आदेशानुसार होता है अथवा इसका वाहक होता है।

चेक से सम्बन्धित धनी तीन प्रकार के होते हैं —

(१) लिखनेवाला धनी (Drawer)—इसका बैंक में चालू खाता होता है, (२) ऊपरवाला धनी (Drawee)—यह बैंक होता है और (३) पानेवाला धनी (Payee)—जिसे चेक का धन मिलना होता है। यदि पानेवाला धनी कोई कल्पित व्यक्ति रहता है तो चेक का धन चेक के वाहक (Bearer) को मिलता है।

पानेवाले धनी का नाम लिखने के लिये जो स्थान होता है उसके अन्त में 'आर्डर (Order) अथवा वेरर (Bearer)' छपा होता है। अत चेक लिखनेवाले को इसमें से एक काट देना चाहिये। यदि आर्डर कट जाता है तो वेरर चेक (Bearer Cheque) रह जाता है और यदि वेरर कट जाता है तो आर्डर चेक (Order Cheque) रह जाता है। वेरर चेक के अर्थ हैं कि उसका दाम उसके वाहक को दे दिया जाय और आर्डर चेक के अर्थ हैं कि उसका दाम ऊपरवाले धनी के आदेशानुसार दिया जाय। आर्डर चेक का वेचान होता है। इसके बारे में हम आगे चलकर विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे। यहाँ पर तो यह कह देना ही काफी है कि एक आर्डर चेक वेचान द्वारा ही हस्तांतरित की जा सकती है। कभी कभी वेरर और आर्डर दोनो ही शब्द काटकर 'केवल' (Only) लिख दिया जाता है। ऐसी चेक भी आर्डर चेक कहलाती है। आर्डर चेक को हम फरमानजोग चैक और वेरर चेक को देखनहार चेक कहते हैं।

चेकें उसी स्थान की करन्सी में काटनी चाहिये जिस स्थान मे बैंक रहता है। यदि चेक किसी अन्य करन्सी मे काट दी गई है तो बैंक चाहे तो इसका भुगतान उस समय की विनिमय दर के अनुसार कर दे अथवा उसे लौटा दे।

चेक का नमूना

Counterfoil	Cheque
No 135	No 135 Dated July 10, 1948
Dated 10 July	ALLAHABAD COMMERCIAL BANK LTD ALLAHABAD
In favour of Mr Ram Prasad Or order	Pay Mr Ram Prasad ORDER / BEARER
	Rupees One hundred only
	Rs. 100/-
Rs 100	G Dayal

नं० १२५	नं० १२५ ता० १० जुलाई, १९४८
ता० १० जुलाई, १९४८	इलाहाबाद कमर्शियल बैंक, लिमिटेड इलाहाबाद
पानेवाला धनी, श्री राम-प्रसाद अथवा उनके आदेश के अनुसार	श्री रामप्रसाद को अथवा उनके आदेश के अनुसार रुपया दीजिये।
Rs 100	रु० १००) जी० दयाल

चेक का रूप (Foil) और प्रतिरूप (Counter-foil) दोनों होते हैं। बायाँ भाग प्रतिरूप (Counter-foil) और दायाँ भाग रूप (Foil) कहलाता है। प्रतिरूप अपने पास रख लिया जाता है, रूप पानेवाले धनी को दे दिया जाता है।

चेक लिखते समय उसके रूप और प्रतिरूप दोनों भरने चाहिये। प्रथम तो तारीख रहती है। इसे ठीक-ठीक भरना चाहिये। आगे की तारीख भर देने से जब तक वह तारीख नहीं आ जाती उसका भुगतान नहीं होता। ऐसी चेक उत्तर तिथीय (Post-dated) कहलाती है। यदि किसी चेक में पीछे की तारीख भर दी गई है तो यदि वह छै मास से भी पहिले की हो जाती है तो उसका भुगतान नहीं हो सकता। पहिले की तारीख भर देने से चेक पूर्व तिथीय (Ante-dated) हो जाती है और छै महीने से ज्यादा की चेक पुरानी (Stale) हो जाती है। हाँ, यदि किसी चेक में बिल्कुल ही तारीख नहीं भरी जाती तो उसे पानेवाला धनी अथवा अन्य कोई व्यक्ति उस पर सही तारीख भर सकता है। यदि कोई बिना तारीख की चेक बैंक में पहुँच जाती है तो बैंकर चाहे तो उस पर सही तारीख भरकर उसका भुगतान कर दे अथवा अपूर्ण (Incomplete) लिखकर वापिस कर दे।

तारीख भरने के बाद पानेवाले धनी का नाम भरना पड़ता है। इसे उन्हीं अक्षरों में भरना चाहिये जो पानेवाला धनी लिखता है, अन्यथा जब वह हस्ताक्षर करेगा, गलती हो जाने का डर रहेगा। यदि रकम स्वयम् के लिये निकालनी है तो उसमें 'मुझी को दीजिये' (Pay to self) लिखना

चाहिये। इसके बाद प्राय: हर चेक में जैसा कि पहिले बताया जा चुका है 'बेरर' अथवा 'आर्डर' शब्द दिये रहते हैं। इनमें से आवश्यकतानुसार एक रख लेना चाहिये और दूसरा काट देना चाहिये। कभी-कभी दोनों काटकर 'केवल' लिख दिया जाता है।

पानेवाले धनी के नाम के बाद धन लिखना पड़ता है। यह धन पहिले तो शब्दों में और फिर अङ्कों में लिखा जाता है। शब्दों और अङ्कों में एक ही धन होना चाहिये। यदि अन्तर है तो बैंकर अपनी इच्छानुसार या तो शब्दों की रकम या शब्दों और अङ्कों में से जिसकी रकम कम है उसका भुगतान कर सकता है। किन्तु प्राय: बैंकर 'शब्दों और अङ्कों के धन में अन्तर है (Amounts in words and figures differ) लिखकर चेक वापस कर देते हैं। धन लिखते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि शब्दों के बीच में और इकाइयों के बीच में कोई अन्तर नहीं छोड़ना चाहिये वरना जालसाजी की सम्भावना रह जाती है।

अन्त में लिखनेवाले धनी के हस्ताक्षर होते हैं। इस धनी ने बैंक में जब अपना हिसाब खोला होगा तब वहाँ पर हस्ताक्षर का नमूना दिया होगा। अत:, यह हस्ताक्षर उसी से मिलना चाहिये यदि यह हस्ताक्षर नहीं मिलता तो चेक का भुगतान नहीं किया जाता।

जहाँ तक चेक की सुरक्षा का प्रश्न है, आर्डर चेक बेरर चेक की अपेक्षाकृत कहीं अधिक सुरक्षित रहता है। किन्तु जैसा कि पहले बताया जा चुका है 'केवल' (Only) शब्द लिख देने से वह और भी अधिक सुरक्षित हो जाती है। ऐसी चेक का हस्तांतरकर्ता हस्तांतरकृत को उस पर वैसा ही अधिकार देता है जैसा उसका स्वयं का रहता है। चेकों को रेखांकित (Crossed) भी बनाया जा सकता है। इसके लिये उसके ऊपरी बायें कोने पर दो आड़ी समानान्तर रेखायें खींच दी जाती हैं। यदि इनके अन्दर किसी विशेष बैंक का नाम नहीं लिखा जाता तब तो यह साधारण रेखाङ्कन (General Crossing) कहलाता है। रेखाङ्कन के अर्थ है कि उसका भुगतान किसी बैंक की मार्फत किया जाय। अत:, कोई बैंक किसी चेक का धन तभी तो लेगा जब उसकी उस व्यक्ति से जान-पहचान होगी जिसके लिये वह भुगतान ले रहा है। ऐसा व्यक्ति प्राय: उसका ग्राहक होता है। स्पष्ट है कि रेखाङ्कित चेक अन्य चेकों की अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित रहती है। यदि इसे और अधिक सुरक्षित बनाना है तो रेखाओं के अन्दर किसी विशेष बैंक

का नाम दिया जा सकता है । ऐसा रेखाङ्कन विशेष रेखाङ्कन (Special Crossing) कहलाता है । यदि किसी चेक पर विशेष रेखाङ्कन किया गया है तो उसका भुगतान केवल उसी बैंक की मार्फत किया जाता है जिसका नाम रेखाओं के अन्दर दिया गया है । अब यदि उसे और अधिक सुरक्षित बनाना है तो रेखाओं के बीच में साधारण रेखाङ्कन में और विशेष रेखाङ्कन में भी 'केवल पानेवाले धनी के खाते में' (Account payee only) अथवा 'अविनिमय साध्य' (Not Negotiable) अथवा दोनों लिख दिये जाते हैं । 'केवल पाने वाले धनी के खाते में' (Account Payee only) लिख देने से उसका वसूल करने वाला बैंक (Collecting Banker) उसकी रकम पाने वाले धनी के खाते में जमा कर देता है उसे नकद नहीं देता । 'अविनिमय साध्य' (Not Negotiable) लिख देने से उस पर हस्तान्तरकृत का वैसा ही अधिकार हो जाता है जैसा हस्तान्तरकर्त्ता का था । अतः, यह रेखाङ्कन चेकों को और भी अधिक सुरक्षित बना देते हैं ।

चेक के अधिकारी (Holder of a cheque) को उसे उसके ऊपर वाले बैंक के पास उचित समय के अन्दर ले जाना चाहिये । यह काम वह स्वयं अथवा अपने किसी प्रतिनिधि द्वारा कर सकता है । यदि कोई अधिकारी अपना चेक अपने पास रक्खे रहता है और इस बीच में ऊपरवाला बैंक फेल हो जाता है तो इसमें जो हानि होती है उसका उत्तरदायित्व उसी अधिकारी के ऊपर पड़ता है । मान लीजिए कि राम ने श्याम को एक चेक दी है, और श्याम ने उसका भुगतान उचित समय के अन्दर नहीं लिया है तथा ऊपरवाला बैंक इसी बीच में फेल हो गया है, तब यदि राम को ऊपरवाले बैंक से केवल आधी रकम मिलती है तो राम श्याम को उस चेक की आधी रकम ही देगा । जिस चेक में रेखाङ्कन नहीं होता वह चेक खुली चेक (Open-cheque) कहलाती है ।

चेक का अधिकारी (Holder)—विनिमय साध्य पुर्जे के विधान की ८वीं धारा में चेक के, प्रण-पत्र के और विनिमय बिल के अधिकारी की जो परिभाषा दी हुई है वह कुछ निम्न आशय की है—"यह वह व्यक्ति है जिसे उसे रखने का और जिनके ऊपर उसके भुगतान का दायित्व है उनसे उसका भुगतान पाने और वसूल करने का अधिकार है । यदि कोई चेक, प्रण-पत्र अथवा विनिमय बिल खो भी गया है अथवा नष्ट हो गया है तो भी उसका अधिकारी वही है जिसे उसके खोने अथवा नष्ट होने के पहिले उपर्युक्त

अधिकार थे। साथ ही उसे उस चेक, प्रण-पत्र तथा विनिमय बिल की एक अन्य प्रतिलिपि भी उनके ऊपर वाले धनी से इस बात का वायदा करके प्राप्त कर लेने का अधिकार है कि यदि उनके किसी निरपराधी व्यक्ति के हाथ में पड़ जाने से उसकी कोई हानि होगी तो वह उसे पूरा कर देगा। यदि कोई साख-पत्र डाक से भेजा जाता है और वह रास्ते में खो जाता है तो उसका दायित्व उस भेजनेवाले ही के ऊपर पड़ता है। हाँ, यदि भेजने वाले ने उसे जिसके पास भेजा गया था उसके आदेशानुसार ऐसा किया था तो वही जिसके पास उसे भेजा गया था उसका जिम्मेदार होता है।

मूल्य दिये हुये पुर्जे का अधिकारी (Holder for value)—जिस पुर्जे का मूल्य किसी ने कभी भी चुका दिया है उस पुर्जे का अधिकारी, मूल्य दिये हुये पुर्जे का अधिकारी माना जाता है। मान लीजिये कि एक चेक 'व' के पक्ष में है और 'स' का 'ब' के ऊपर द्रव्य चाहिये जिससे 'ब' ने 'स' के पक्ष में उसका वेचान कर दिया है। अब यदि 'स' उसे 'द' को दान मे दे देता है तो 'द' मूल्य दिये हुये पुर्जे का अधिकारी है। उसने स्वय तो इसका मूल्य नहीं दिया है किन्तु इसका मूल्य 'स' के द्वारा दिया जा चुका है।

चलन के अनुसार अधिकारी (Holder in due course)—इसकी परिभाषा भी उपर्युक्त विधान ही मे दी हुई है। यह निम्न आशय की है—यदि कोई चेक, प्रण-पत्र और विनिमय बिल वाहक को देय हैं तो उसका चलन के अनुसार अधिकारी वही व्यक्ति है जिसने उसके प्रतिफल के विनिमय में उसे प्राप्त किया है, और यदि वह आदेशानुसार देय है तो इसके लिये उपर्युक्त के अलावा उसे या तो उसका पानेवाला धनी अथवा वेचान द्वारा हस्तान्तरकृत होना चाहिये। साथ ही चलन के अनुसार अधिकारी के लिये यह भी आवश्यक है कि उसने उसके पक जाने के पहिले और उसके हस्तान्तरकर्ता पर इस बात का सन्देह किये बगैर कि उस पर उसका अनुचित अधिकार है उसे प्राप्त किया हो। अब, यह स्पष्ट है कि वाहक को देय पत्र में तो वह उसे दिया गया हो और आदेशानुसार देय-पत्र में या तो वह स्वय उसका पानेवाला धनी हो या उसके नाम वह वेचान किया गया हो। साथ ही इसके लिये निम्न बाते भी आवश्यक हैं—

(१) वह किसी प्रतिफल के विनिमय में प्राप्त किया गया हो।

(२) जब वह प्राप्त किया गया हो तब पक न चुका हो।

(३) उसे इस बात का सन्देह होने की तनिक भी आशंका न रही हो कि उसके हस्तान्तरकर्ता का उस पर कोई अनुचित अधिकार था।

संक्षेप में यह 'असली नीयत से मूल्य के विनिमय में किसी सन्देह बिना प्राप्त करनेवाला धारक होना' (Bonafide holder for value without notice) होना चाहिये। यह वाक्यांश बेढंगा अवश्य है, किन्तु स्वयं स्पष्ट है।

किसी विनिमय साध्य पुर्जे के चलन के अनुसार अधिकारी का ही उस पर अच्छा अधिकार होता है।

चिह्नित चेक (Marked Cheque)—यह वह चेक है जिस पर ऊपरवाले बैंक ने कोई ऐसा चिह्न बना दिया है जिससे यह मालूम पड़ता है कि जिस समय वह चिह्न बनाया गया था उस समय यदि उसका भुगतान माँगा जाता तो बैंक दे देता। ऐसे चेक का भविष्य में भुगतान होना, इस बात पर निर्भर होता है कि लिखनेवाले धनी के खाते में रकम शेष है या नहीं। कोई चेक उसके लिखनेवाले धनी को अथवा उसके पानेवाले धनी को और उसके किसी भी अधिकारी की प्रार्थना पर चिह्नित किया जा सकता है।

विनिमय बिल (Bill of Exchange)—विनिमय बिलों की परिभाषा तो ऊपर दी ही जा चुकी है। इसके भी चेक ही की तरह के तीन धनी होते हैं हाँ, यह अन्तर अवश्य रहता है कि यह आवश्यक नहीं है कि ऊपरवाला धनी कोई बैंक ही हो। यह देशी और विदेशी (Inland and Foreign) दो प्रकार के हो सकते हैं। देशी बिल वह है जिसे जिस देश में लिखा जाता है उसी देश में उसका भुगतान होता है, अथवा उसका ऊपरवाला धनी उसी देश का रहनेवाला होता है। इसके विपरीत विदेशी बिल वह है जिसमें उपर्युक्त बातें नहीं होती हैं।

देशी बिल का नमूना

| २ आ० |

रु० ८००)　　　　　　　　　　　　प्रयाग

१५ जनवरी, सन् १९४८

उपरोक्त तिथि से एक माह बाद आठ सौ रुपया पहुँचे दाम बाबू प्रकाशचन्द को अथवा उनके आदेशानुसार दे देना।

जोग देना

भाई मोहनलाल,

नीची बाग,

कलकत्ता।

रामदास हरिदास

Allahabad,
Jan 15, 1948

| 2 as | Rs 800/-

One month after date pay to B Prakash Chand or order the sum of Rupees Eight hundred only, value received

Ramdas Haridas

To
Mohanlal Esqr,
Nichi Bagh,
Calcutta

विदेशी बिल का नमूना

मूल्य लिपि

| २ आ० | पौ० ४०

प्रयाग (भारतवर्ष
१५ जनवरी, १९४८

यह मूल लिपि देखने के नब्बे दिन बाद यदि इसकी दूसरी और तीसरी लिपियों का भुगतान नहीं हुआ है तब चालीस पाउण्ड भाई एडवर्ड स्मिथ को पहुँचे दाम दे दीजिये।

जोग देना
श्री जेम्स स्मिथ,
लन्दन

बी० बादशाह

FIRST OF EXCHANGE

Allahabad (India),
January 15, 1948

| -/2/- | £ 40—

Ninety days after sight of this First of Exchange (Second and third of the same tenor and date unpaid), pay to Edward Smith Esqr the sum of Pounds Forty only, value received

B Badshah

To
James Smith Esqr,
London.

बिल लिखते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) तारीख—जिस दिन बिल लिखा जाता है उसी दिन की तारीख भी लिखी जानी चाहिए। बात यह है कि बिल पकने की तारीख का पता उपर्युक्त तारीख ही से बिल की अवधि जोड़कर निकाली जाती है।

(२) अवधि—(Tenor or term)—जिस अवधि के लिए कोई बिल लिखा जाता है वह उसकी अवधि कहलाता है, जैसे• उपर्युक्त तारीख के तीन मास बाद (Three months after date — 3 m/d) अथवा देखने के ९० दिन बाद (90 days after sight-90d/s)। यह अवधि बहुत ही स्पष्ट तौर पर लिखी जानी चाहिये। बिल पकने की तारीख निकालने के लिये इसमें प्रायः तीन रियायती दिन भी जोड़ जाते हैं। यदि किसी बिल के पकने की तारीख किसी छुट्टी के दिन पड़ जाती है तो उसका भुगतान छुट्टी के पहिले ही हो जाता है। अंग्रेजी विधान में सार्वजनिक छुट्टियों और बैंक की छुट्टियों में कुछ अन्तर है। यदि कोई बिल किसी बैंक की छुट्टी के दिन पकता है तब उसका भुगतान उसके अगले दिन होता है। भारतीय विधान में ऐसी कोई बात नहीं है, अतः यहां के विद्यार्थियों को सार्वजनिक छुट्टियों और बैंक की छुट्टियों के बीच का अन्तर जानने की आवश्यकता नहीं है। बिल दर्शनी (Demand) भी हो सकते हैं। उनमें रियायती दिन नहीं जुड़ते।

(३) धन की रक़म—यह दो बार लिखी जाती है—शब्दों में और अंकों में। कुछ लोग बिलों के बीच में जितनी रकम का बिल होता है उसमें कुछ बढ़ाकर उसके नीचे (Under Rs) लिख देते हैं।

(४) बिल के धनी—पानेवाले धनी का नाम तो इबारत के साथ ही दिया रहता है और उसमें आदेशानुसार अथवा वाहक शब्द (Order or Bearer) दिया रहता है। लिखनेवाले धनी का नाम इबारत के नीचे दाहिनी तरफ और ऊपरवाले धनी का बायीं तरफ दिया रहता है।

(५) स्टाम्प—दर्शनी बिलों को छोड़कर अन्य सब बिलों पर उनके रकम के अनुसार स्टाम्प लगा रहता है।

(६) पहुँचे दाम (Value Received)—प्रत्येक बिल में यह शब्द अवश्य लिखे जाते हैं। इनके ये अर्थ हैं कि ऊपरवाले धनी को इसका मूल्य किसी न किसी रूप में मिल गया है।

विदेशी बिलों की दो अथवा तीन लिपियाँ एक साथ तैयार की जाती हैं। अतः, प्रत्येक लिपि में अन्य लिपियों का संकेत रहता है। ऊपरवाले धनी को

केवल एक ही लिपि का भुगतान करना पड़ता है। प्रत्येक प्रतिलिपि अंग्रेजी में वाया (via) कहलाती है। यदि किसी विदेशी बिल की एक ही लिपि तैयार की जाती है तो उसे सोला बिल (Sola) कहते हैं। कहीं-कहीं अन्य देशों में लिखे गये बिलो पर उनके भुगतान के लिये आने पर फिर से स्टाम्प लगाना पड़ता है।

प्रत्येक मुद्दती बिल पर ऊपरवाले धनी को अपनी स्वीकृति (Acceptance) देनी पड़ती है। यह वह उसके बीच मे हस्ताक्षर करके करता है। यदि वह चाहे तो स्वीकार किया (Accepted) और अमुक स्थान पर भुगतान होगा (Payable at..) भी उस पर लिख सकता है। जब तक बिल पर स्वीकृति नही होती उसे ड्राफ्ट कहते हैं, और जब यह हो जाता है तब वह स्वीकृत बिल (Acceptance) कहलाता है। बिल की स्वीकृति साधारण (General) तथा विशेष (Special) हो सकती है। साधारण स्वीकृति मे ऊपरवाला धनी उसे उसमे दी हुई शर्तों पर स्वीकार करता है और विशेष स्वीकृति मे वह इन्हे बदल देता है। अत, यह निम्नाङ्कित हो सकते हैं—

(१) **हेतुमत शर्ती,** (Conditional)—जब भुगतान के पहिले कोई शर्त पूरी हो जाने के लिए लिख दिया जाता है, जैसे माल आ जाना।

(२) **आंशिक** (Partial)—जितनी रकम लिखी हुई है उससे कम के लिए स्वीकृति देना।

(३) **स्थानिक** (Local)—जब किसी विशेष स्थान पर ही भुगतान देने के लिये लिख दिया जाता है—केवल इलाहाबाद बैंक मे ही भुगतान मिलेगा और कहीं नही (Payable at Allahabad Bank and there only)। जिस जगह भुगतान दिया जायगा उसका स्थान लिख देने से वह बिल स्थानीय बिल (Domiciled-Bill) कहलाता है।

अवधि परिवर्तन—इसमे ऊपरवाला धनी बिल मे दी हुई अवधि से कुछ अधिक अवधि मे बिल का भुगतान करने की स्वीकृति देता है।

ऊपरवाले सब धनियों द्वारा न स्वीकृत होना—मान लीजिए कि एक बिल राम, श्याम और हरी के ऊपर लिखा गया है, किन्तु उस पर केवल राम की ही स्वीकृति होती है।

ड्राफ्ट स्वीकृति के पहिले भी हस्तान्तरित किया जा सकता है। यदि किसी बिल पर विशेष स्वीकृति मिली है तो उसका अधिकारी उसे अस्वीकृत मान

सकता है। हाँ, यदि उसने उसे लिखनेवाले धनी तथा उसके ऊपर जिन अन्य धनियों का दायित्व है उनसे पूछे बिना ही ऐसा कर लिया है तो विशेष स्वीकृति के कारण जितने दायित्व से ऊपरवाला धनी बच जाता है उतने ही दायित्व से अन्य सब धनी भी बच जायेंगे। किसी बिल की स्वीकृति के लिये उसके ऊपरवाले धनी को छुट्टियाँ छोड़कर ४८ घन्टे का समय दिया जाता है।

बिल अपनी स्वीकृति और अपने भुगतान के लिये तिरस्कृत हो अथवा नकारा जा सकता है (Dishonoured)। किसी बिल के नकारे जाने पर उसके अधिकारी का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उन सब धनियों को इसकी सूचना दे दे जिन्हें वह उस पर दायी बनाना चाहता है। फिर उसे उस पर नोट (Noting) भी लगाना पड़ता है। इसके लिये नोटेरी पब्लिक (Notary Public) है। यह व्यक्ति यह बिल उसके ऊपरवाले धनी के पास एक बार स्वयम् ले जाता है, और यदि तब भी यह नकार दिया जाता है तो वह उस पर यह बात लिख देता है। यही नोटिंग है। इसके लिए नोटेरी पब्लिक अपना शुल्क भी लेता है। कभी-कभी पर नोटेरी पब्लिक से एक प्रमाण-पत्र भी ले लिया जाता है। इसे अंग्रेजी में प्रोटेस्ट (Protest) कहते हैं। कभी-कभी ऊपरवाले धनी का दिवाला निकल जाने पर उससे बिल के भुगतान के विषय में पूछ-ताछ की जाती है, और यदि इसका कोई ऐसा उत्तर नहीं मिलता कि जिससे यह विश्वास हो जाय कि उसके पकने पर उसका भुगतान हो जायगा तो यह प्रोटेस्ट अच्छी जमानत का प्रोटेस्ट (Protest for better security) कहलाता है।

बिल की नोटिङ्ग हो जाने के बाद अथवा उसकी प्रोटेस्टिङ्ग हो जाने के बाद कोई भी व्यक्ति उसे किसी भी ऐसे धनी के बजाय जिसके ऊपर उसका दायित्व है स्वयं उसे सकार सकता है। वह यह स्पष्ट लिख देता है कि वह किसके लिये उसे सकार रहा है।

बिल नकारे जाने से उसके अधिकारियों को जो कठिनाई उठानी पड़ती है उसे दूर करने के लिये कभी कभी तो लिखनेवाला धनी पहले ही से उसके नीचे यह लिख देता है कि आवश्यकता पड़ने पर यह अमुक धनी के पास ले जाया जाय (Drawee in case of need)।

विशेष परिवर्तन (Material Alterations)—किसी भी विनिमय साध्य पुर्जे पर कोई भी विशेष परिवर्तन कर देने से उस पर जो उत्तरदायित्व बढ़ जाता है उसके लिए यदि वह उनकी आज्ञा से नहीं किया

गया है जो उसके लिये दायी है तो वह उनके ऊपर लागू नहीं होता। निम्न परिवर्तन साधारण परिवर्तन हैं। अतः, वह उन लोगों पर लागू है जो उस पर उत्तरदायी हैं।

साधारण परिवर्तन--(१) अर्धलिखित पुर्जा (Inchoate Stamped Instruments) पूरा कर देना।

(२) जब कोई साधारण बेचान उसके ऊपर किसी का नाम लिखकर विशेष बेचान में परिवर्तित कर दिया जाता है।

(३) जब खुली हुई चेक पर साधारण अथवा विशेष रेखाङ्कन कर दिया जाता है अथवा साधारण रेखाङ्कन विशेष रेखाङ्कन में परिवर्तित कर दिया जाता है। वसूल करनेवाला बैंक अपने पक्ष के रेखाङ्कन में किसी अपने अढ़तिया बैंक की जिसके द्वारा वह उसे वसूल कराना चाहता है विशेष रेखाङ्कन भी कर सकता है।

विशेष परिवर्तन के निम्न उदाहरण हैं—

(१) किसी पुर्जे की अवधि बदलने के विचार से उसकी तारीख बदलना।

(२) उसका धन बदलना।

(३) उसकी अवधि बदलना।

(४) उस पर दायी धनी बदलना।

(५) ब्याज अथवा विनिमय दर बदलना।

(६) भुगतान का स्थान बदलना।

प्रणपत्र--यह वह लिखित पुर्जा है (बैंक नोट और करेंसी नोट नहीं) जिसमें उसका लिखनेवाला उसमें दिये हुये किसी धनी को अथवा उसके आदेशानुसार अथवा जिसके पास वह पुर्जा हो बिना किसी शर्त के उसमें लिखी हुई एक निश्चित रकम देने का प्रण करता है।

प्रणपत्र में केवल दो ही धनी होते हैं—(१) लिखनेवाला, (२) पानेवाला।

प्रणपत्र लिखनेवाला धनी एक अकेला अथवा कई संयुक्त हो सकते हैं। [illegible] संयुक्त प्रणपत्र लिखनेवालों पर उसके भुगतान की केवल [illegible] अथवा [illegible] जिम्मेदारियाँ हो सकती हैं। प्रथम अवस्था में तो उसका पानेवाला [illegible] धनी सब लिखनेवाले धनियों से उसका भुगतान करने की [illegible] प्रार्थना कर सकता है, किन्तु दूसरी अवस्था में वह चाहे तो प्रत्येक लिखने [illegible]

वाले धनी से अलग-अलग भी उसका भुगतान करने को कह सकता है, किन्तु इसमें शर्त यह है कि उसे उतना ही भुगतान मिलेगा जितना प्रणपत्र में लिखा है।

प्रणपत्र का नमूना

| २ आ० | रु० ३००)

बनारस,
९ जनवरी, १९४८

उपरोक्त तारीख से एक माह बाद मैं भाई छोटामल को केवल तीन सौ रुपया पहुँचे दाम देने का प्रण करता हूँ।

शिवनाथ दास

संयुक्त प्रणपत्र

| २ आ० | रु० १००)

लीडर रोड,
इलाहाबाद।
जनवरी १२, १९४८

हम श्री हरवंश जी को उनके माँगने पर केवल एक सौ रुपया पहुँचे दाम देने का प्रण करते हैं।

ब्रजमोहन साहु
कृष्णमोहन साहु

संयुक्त और पृथक्

| २ आ० | रु० ६००)

मेस्टन रोड,
कानपुर।
फरवरी १५, १९४८

हम संयुक्त और पृथक्-पृथक् भाई रामलाल को आज से तीन महीना बाद केवल छः सौ रुपया पहुँचे दाम देने का प्रण करते हैं।

गोपीकृष्ण अग्रवाल
सीताराम केसरवानी

SPECIMEM P/N

| -/2/- | Rs 400/-

Allahabad,
Nov 25, 1947

One month after date I promise to pay to Mr Jaigopal the sum of Rupees Four hundred only value received

Balramdas

JOINT

-/ 2/	Rs 200/-	Kanpur Oct 15, 1947.

On demand we promise to pay to Mr Ram Anugrah the sum of Rupees Two hundred only, value received

Brijmohan Lal
Bhagwati Prasad

JOINT and SEVERAL

७/2७	Rs 600/-	Kanpur, Aug 29, 1947

Three months after date, we jointly and severally promise to pay to Mr Raghuendra or order the sum of Rupees Six hundred only, value received

Mahmood Khan
Shahabuddin

भारतीय कागजी मुद्रा विधान के अनुसार रिजर्व बैंक छोड़कर अन्य कोई व्यक्ति अथवा सस्था दर्शनी और देखनहार दोनो प्रणपत्र एक मे नहीं लिख सकती है।

हुँडियाँ

यद्यपि अन्छा विनिमय साध्य पुर्जे विधान मे केवल तीन ही विनिमय साध्य पुर्जों अर्थात् चेक, विनिमय बिलो और प्रणपत्रों का ही नाम दिया हुआ है किंतु चलन के अनुसार अन्य कई पुर्जे भी ऐसे माने गये हैं। हुण्डियाँ प्रायः सभी विचार से विनिमय बिलों से मिलती जुलती हैं। उन्हीं की तरह उन पर स्टाम्प लगता है, उन्ही की तरह उन पर बेचान होता है और उन्ही की तरह उन्हे सकारा जाता है। हाँ, उनकी लिखावट अवश्य कुछ भिन्न होती है। किन्तु जोखमी हुण्डी अवश्य विनिमय बिलों की तरह नहीं होती। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे इसे लिखने का सिद्धान्त ही कुछ दूसरा है। इसके अलावा जहाजी रसीद, डक वारण्ट, सुपुर्दगी के आदेश-पत्र (जो सब माल सम्बन्धी

है) शेयर वारण्ट, देयनकार ऋणपत्र (जो व्यक्तिक अवधि के होते हैं) आंशिक विनिमय साध्य पत्र (Semi-Negotiable Instruments) कहलाते हैं। इनके अधिकारी (रखनी वालों) को इनकी सम्पत्ति अपने नाम से बदल कर लेने का अधिकार तो रहता है किन्तु इन पर उनका वैसा ही अधिकार हो जाता है जैसे उन लोगों का था जो इनको उन्हें हस्तान्तरित करते हैं।

हुंडियाँ विशेषत दो प्रकार की होती हैं--(१) मुद्दती, और (२) दर्शनी। मुद्दती हुंडी वह कहलाती है जिसका भुगतान हुंडी लिखने की तारीख या मिति के बाद हुंडी में लिखी हुई अवधि पूरा होने पर किया जाता है। दर्शनी हुंडी वह कहलाती है जिसमें पहुँचे तुरन्त अथवा इसी तरह के अन्य कोई शब्द लिखे जाते हैं जिनका अर्थ यह होता है कि हुंडी में लिखी हुई मिती के बाद किसी दिन भी उसे दिखाने पर उसका भुगतान हो जायगा।

फिर हुंडियाँ देखनहार, फरमान जोग, धनी जोग, शाह जोग और जोखिमी भी हो सकती हैं।

देखनहार हुंडी—यह वह है जिसका भुगतान उसे दिखानेवाले व्यक्ति को किया जाता है। दर्शनी हुंडियाँ देखनहार नहीं हो सकती हैं।

नाम जोग या फरमान जोग हुंडी—यह वह है जिसका भुगतान पानेवाले धनी के आदेशानुसार किया जाता है। इसमें बेचान की आवश्यकता पड़ती है।

धनी जोग हुंडी—यह वह होती है जिसका भुगतान केवल पानेवाले धनी को ही हो सकता है।

शाह जोग हुंडी--यह वह है जिसका भुगतान केवल किसी शाह को ही हो सकता है। शाह उस व्यक्ति या फर्म या कम्पनी को कहते हैं जिसका नाम उस सूची में लिखा हो जो किसी स्थानीय बोर्ड द्वारा समय-समय पर प्रकाशित हुआ करती है। आधुनिक काल के बैंक या इनके अलावा जिसे हुंडी भरनेवाला अपनी जानकारी या जाँच के मुताबिक शाह मान ले उसे भी शाह कहते हैं।

जोखमी हुंडी--यह आजकल तो व्यापार का ढंग बदल जाने के कारण नहीं चलती किन्तु पहिले इसका बड़ा चलन था। मान लीजिये कि बनारस के किसी व्यक्ति के पास कलकत्ते की किसी फर्म का आर्डर आता है।

बनारस का व्यक्ति माल तैयार करके किसी ऐसे व्यक्ति के सुपुर्द कर देता था जो माल ले जाने का, उसका बीमा करने का और उसके सम्बन्ध की हुण्डी का मिति काटकर भुगतान करने के लिये (Discounting) तैयार होता था। यह हुडी जोखमी होती थी। इसका लिखनेवाला, माल बेचनेवाला, ऊपरवाला, माल खरीदनेवाला और पानेवाला जिसे रक्खे भी कहते ह वह होता था जो मिति काटकर इसका भुगतान करता था। मिति काटनेवाले न सिर्फ मिति का ब्याज, बल्कि माल बनारस से कलकत्ते ले जाने का किराया और उतने समय की जोखिम की बीमे का प्रीमियम काट लेता था। यदि माल सुरक्षित कलकत्ते पहुँच जाता था तो ऊपरवाला धनी माल लेकर उसे सकार देता था और यदि माल रास्ते ही में खो जाता था तो हुडी का भुगतान नही होता था और रक्खेवाले धनी का नुकसान होता था। इस तरह से यह हुडी आजकल के विनिमय बिल, बिल्टी, बीमा पत्र और गिरवी पत्र (Letter of Hypothecation) चारो का काम करती थी। चूँकि इसका भुगतान केवल उसी शर्त पर होता था जब माल ऊपरवाले धनी को सुरक्षित अवस्था मे दे दया जाता था, यह बिला शर्त का पुरजा नही था। इसमे और विनिमय बिल मे यह सैद्धान्तिक अन्तर है।

हुंडी का नमूना

सिद्ध श्री कानपुर शुभ स्थान श्री पत्री भाई सीताराम लक्ष्मनदास जोग लिखी प्रयाग जी से माधुरीदास नरायनदास की राम राम बचने। अपरच हुडी कीनी एक आप ऊपर रुपया ४००) आँकड़े चार सौ के नीमे दो सौ के दूने पूरे देना। यहाँ रक्खा भाई पन्नालाल शम्भूनाथ के मिति चैत्र बदी पचमी सवत् २००३ से पूरे पचपन दिन पीछे दाम धनी जोग बिना जाब्ता बाजार चलन हुडी की रीति ठिकाने लगाय चोकस कर देना। मिति चैत्र बदी पचमी सवत् २००३।

पीठ पर

नीमे के नीमे रुपिया एक सौ का चौगुना पूरा रुपिया चौकस कर दीजो।

४००)

श्री पत्री भाई सीताराम लक्ष्मनदास, कानपुर।

हुडी लिखनेवाले भी उनके ऊपरवाले धनी के भुगतान न करने पर उनका

भुगतान करा देने के उद्देश्य से रुपयेवाले को किसी ऐसे व्यक्ति के नाम चिट्ठी दे देते थे जो उनका भुगतान कर दे। यह चिट्ठी जिकरी चिट कहलाती है।

हुंडियों की स्वीकृति उन पर हस्ताक्षर करके नहीं होती, वरन् ऊपरवाला धनी उनका ब्योरा अपनी हुंडी बही में कर लेता है।

यदि हुंडी खो जाती है तो उसकी प्रतिलिपियाँ मिल सकती हैं। पहिली प्रतिलिपि पैठ, दूसरी पर पैठ, तीसरी दर पैठ और चौथी पचायती अथवा मेजरनामा कहलाती हैं।

हुंडी का भुगतान करना उसे सकारना और हुंडी का भुगतान न करना उसे खड़ा करना कहलाता है।

चेक और विनिमय बिलों में अन्तर

चेक	विनिमय बिल
(१) चेक एक बैंकर के ऊपर लिखी जाती है।	(१) विनमय बिल किसी के ऊपर भी लिखे जा सकते हैं।
(२) यह दर्शनी होती है।	(२) यह दर्शनी और मुद्दती दोनों हो सकते हैं।
(३) यह प्रायः देशी होती है।	(३) यह देशी और विदेशी दोनों हो सकते हैं।
(४) यह देश की ही करन्सी में लिखी जाती है।	(४) विदेशी विनिमय बिल विदेशी करन्सियों में भी हो सकते हैं।
(५) इसमें स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती।	(५) मुद्दती बिलों में स्वीकृति की आवश्यकता पड़ती है।
(६) यदि यह उचित समय के अन्दर बैंक में नहीं ले जाई जाती तो यदि बैंक फेल नहीं हो जाता तो इसके लिखनेवाले धनी का इस पर का दायित्व समाप्त नहीं हो जाता।	(६) यदि यह उचित समय पर ऊपरवाले धनी के पास नहीं ले जाई जाती तो लिखनेवाला धनी तथा अन्य धनी इस पर के दायित्व से मुक्त हो जाते हैं।
(७) यदि लिखनेवाला धनी बैंक को इसे खड़ी रखने के लिये लिख देता है अथवा वह मर जाता है, अथवा पागल हो जाता है, अथवा दिवालिया घोषित कर दिया	(७) इसका ऊपरवाला धनी यदि इसका भुगतान नहीं करता है, तो लिखनेवाला धनी स्वयं इसका भुगतान कर देता है।

जाता है तो इसका भुगतान नहीं होता।

(८) इस पर रेखाङ्कन किया जा सकता है।

(९) यदि इस पर का बेचान जाली है तो बैंकर की कुछ वैधानिक बचत है।

(१०) इसके खडी रह जाने पर इसके ऊपर जिन लोगों का दायित्व है उन्हे इसकी सूचना देने की आवश्यकता नही पड़ती।

(११) इसकी नोटिङ्ग नहीं होती।

(८) इस पर रेखाङ्कन नहीं होता।

(९) स्थानीय बिलो पर के जाली बेचानों के सम्बन्ध में बैंकरों को कोई भी वैधानिक बचत नहीं दी गई है।

(१०) इसके खडे रह जाने पर इसके ऊपर जिन लोगों का दायित्व है उन्हे सूचना देनी पडती है।

(११) इसकी नोटिङ्ग होती है। कभी-कभी तो इसके प्रोटेस्ट की भी आवश्यकता पडती है।

चेक और प्रणपत्रों में अन्तर

चेक

(१) चेक प्राय जमा रखने-वाले (Creditor) के द्वारा लिखी जाती है।

(२) इसमे भुगतान करने का आदेश रहता है।

(३) इसमे दो से अधिक धनी भी हो सकते हैं।

(४) इसका ऊपरवाला धनी केवल बैंकर ही हो सकता है।

(५) यह प्राय प्रयोग मे आती है। अत, यह विनिमय के माध्यम का बहुत काम करती है।

प्रणपत्र

(१) प्रणपत्र लिखनेवाले स्वयम् ऋणी (Debtors) होते हैं।

(२) इसमे भुगतान करने का प्रण होता है।

(३) इसमें दो ही धनी होते हैं।

(४) इसका भुगतान कोई भी धनी स्वयम् अथवा किसी के साथ और पृथक्-पृथक् भी कर सकता है।

(५) यह बहुत प्रयोग मे नहीं आते। अत विनिमय के माध्यम की तरह भी काम में नहीं आते।

(६) यह दर्शनी होती है।	(६) यह दर्शनी और मुद्दती दोनों ही सकते हैं।

विनिमय बिलों और प्रणपत्रों में अन्तर

विनिमय बिल	प्रणपत्र
(१) इसमें दो से अधिक धनी भी हो सकते हैं।	(१) इसमें दो ही धनी होते हैं।
(२) इसे प्रायः लेनदार (Creditor) ही लिखता है।	(२) इसे देनदार (Debtor) लिखता है।
(३) इसमें भुगतान करने का आदेश रहता है।	(३) इसमें भुगतान करने का प्रण रहता है।
(४) यदि यह दर्शनी नहीं होता तो इसकी स्वीकृति की आवश्यकता पड़ती है।	(४) इसकी स्वीकृति की आवश्यकता नहीं पड़ती।
(५) इसे किसी की साख रखने के लिए सकारा जा सकता है।	(५) यह किसी की साख रखने के लिये नहीं सकारा जाता।
(६) विदेशी बिलों की कई प्रतिलिपियाँ एक साथ लिखी जाती हैं।	(६) यह अकेला ही लिखा जाता है।
(७) इसके ऊपरवाले धनी केवल संयुक्त रूप से ही इस पर दायी होते हैं।	(७) इसे लिखनेवाले इस पर संयुक्त रूप से और पृथक् रूप से दोनों प्रकार से दायी हो सकते हैं।
(८) इसकी नोटिङ्ग होती है और इसके विदेशी होने पर इसकी प्रोटेस्टिङ्ग भी होती है।	(८) इसकी नोटिङ्ग और प्रोटेस्टिङ्ग की आवश्यकता नहीं पड़ती।
(९) यह बहुत प्रयोग में आता है।	(९) यह बहुत अधिक प्रयोग में नहीं आता।

विनिमय बिल और हुण्डी में अन्तर

विनिमय बिल	हुण्डी
(१) इसमें केवल आवश्यक बातें रहती हैं।	(१) यह एक पत्र के रूप में होता है और इसमें राम राम, इत्यादि भी लिखा रहता है।
(२) इसकी भाषा निश्चित है।	

(३) यह हमेशा बिला शर्त होता है।

(४) इसमें ऊपरवाले धनी का नाम नीचे बॉयें कोने पर दिया होता है।

(५) लिखनेवाले धनी का नाम इसमें नीचे दाहिने कोने पर दिया रहता है।

(६) इसमे धन की रकम दो अथवा अधिक से अधिक तीन बार दी होती है।

(७) इसकी स्वीकृति इसी पर हस्ताक्षर करके की जाती है।

(८) विदेशी बिलों की सभी प्रतिलिपियॉ एक साथ ही तैयार कर ली जाती हैं और भिन्न-भिन्न डाकों से भेज दी जाती हैं।

(९) यह ससार भर मे सब जगह प्रयोग मे आते हैं और इसी से देशी तथा विदेशी दोनो हो सकते हैं।

(१०) यह अच्छा विनिमय साध्य पुर्जो के विधान के द्वारा शासित होते हैं।

(११) इनके खड़े रह जाने पर इनकी नोटिङ्ग और कभी-कभी प्रोटेस्टिङ्ग भी होती है।

(२) इसकी भाषा स्थानीय चलन के अनुसार बदलती-बदलती रहती है।

(३) यह किसी शर्त की भी हो सकती है, जैसे जोखमी हुडी।

(४) इसमे ऊपरवाले धनी का नाम सिरनामे मे ही दिया रहता है। और बाद मे इसकी पीठ पर दिया रहता है।

(५) इसमे लिखनेवाले धनी का नाम सिरनामे ही मे दिया रहता है।

(६) इसमे धन की रकम पॉच बार दी रहती है। अत, उसमे जाल नहीं हो सकता।

(७) इसकी स्वीकृति के लिये केवल इसकी मुख्य-मुख्य बाते अलग नोट कर लेनी पड़ती हैं।

(८) इसकी प्रतिलिपियॉ केवल मॉगने पर ही की जाती हैं। इसकी चार प्रतिलिपियॉ हो सकती हैं।

(९) यह केवल भारतवर्ष ही मे प्रयोग मे आती हैं और इसी से केवल देशी होती हैं।

(१०) यह स्थानीय चलन के अनुसार शासित होती हैं।

(११) इनकी नोटिङ्ग और प्रोटेस्टिङ्ग नही होती।

विनिमय बिल और हुन्डियों में समानता

(१) दोनों में तीन धनी होते हैं।

(२) दोनों दर्शनी और मुद्दती दोनों हो सकते हैं। दोनों में मुद्दती होने की अवस्था में धन के अनुसार स्टाम्प लगता है।

(३) दोनों में लिखनेवाले धनी की माल के लिये स्वीकृति दी जा सकती है।

(४) दोनों का मिति काटकर धन मिल जाता है।

(५) दोनों का बेचान किया जाता है।

(६) दोनों में पकने की तारीख पता लगाने के लिए कुछ रियायती दिन जोड़ने पड़ते हैं।

(७) दोनों ही एक निश्चित रकम भुगतान करने के लिये होते हैं।

अन्य साख-पत्र

बैंक ड्राफ्ट— यह भी एक प्रकार का विनिमय बिल ही है। जब आधुनिक काल के बैंक भारतवर्ष में नहीं थे तब बैंक ड्राफ्ट का काम हुंडियाँ ही करती थीं। आजकल यदि किसी धनी को कहीं द्रव्य भेजना है तो वह किसी बैंक से एक बैंक ड्राफ्ट ले सकता है। यह बैंक ड्राफ्ट एक बैंक का उसके किसी अन्य आफिस के ऊपर अथवा आढ़तिया बैंक के ऊपर एक प्रकार का दर्शनी बिल होता है, जिसमें यह लिखा होता है कि वह एक अमुक धनी को अथवा उसके आदेश के अनुसार किसी को एक अमुक रकम दे दे। द्रव्य भेजने में आजकल बैंक ड्राफ्ट का बहुत चलन हो गया है। कोई बैंक अपने किसी आफिस को दर्शनी और देखनहार बैंक ड्राफ्ट नहीं करता।

बैंक ड्राफ्ट का नमूना

इम्पीरियल बैंक आफ इन्डिया

न०१५०२० इलाहाबाद १९४

रु०१००० मांगने पर [illegible] को अथवा उनके आदेशानुसार [illegible] रुपया पहुँचे दाम दीजिए।

जोग देना— इम्पीरियल बैंक आफ इन्डिया की ओर से

इम्पीरियल बैंक आफ इन्डिया

बम्बई

मैनेजर

IMPERIAL BANK OF INDIA

No 1720 . . . .

Rs 1000 Allahabad 12th March 1955

On demand pay to Mr. Bal Krishna ~~Sharda~~ ... Sharda ... *or order*

Rupees One thousand only *value received*

To *For Imperial Bank of India,*

Imperial Bank of India,

Bombay *Agent*

डिविडेन्ड वारन्ट—जब कोई कम्पनी अपना डिविडैण्ड (हिस्सो पर का मुनाफा) बाँटती है तब वह हिस्सेदारो को डिविडैण्ड वारण्ट भेज देती है। यह चेक की शक्ल का, अथवा बिल की शक्ल का अथवा रसीद की शक्ल का हो सकता है। चेक की शक्ल का होने पर यह कम्पनी-द्वारा लिखा जाता है और इसका ऊपरवाला कम्पनी का बैंक तथा पानेवाला हिस्सेदार होता है। ऐसा वारण्ट चेक की तरह ही माना जाता है अर्थात् इस पर रेखाङ्कन भी हो सकता है बिल के रूप का होने पर भी इसके वह धनी होते हैं जो चेक के रूप का होने पर होते हैं। इसके रसीद के रूप मे होने पर यह पानेवाले (हिस्सेदार) की तरफ से रसीद होती है जिसपर बीस रुपया अथवा उससे अधिक की रकम होने पर स्टाम्प भी लगता है। यह कम्पनी की तरफ से निकाली जाती है और हिस्सेदार इस पर हस्ताक्षर करके इसे कम्पनी के बैंक मे दे देता है।

ब्याज-पत्र (Interest Warrants)—सरकार और सम्मिलित पूँजीवाली कम्पनियों को जब अपनी उधार ली हुई पूँजी पर ब्याज देना होता है तब वे ब्याज-पत्र निकालते हैं। जब सरकार की ओर से ब्याज दिया जाता है तब इसे केन्द्रीय बैंक निकालता है और यह उसी के ऊपर लिखा भी जाता है। जब सम्मिलित पूँजीवाली कम्पनियाँ इसे निकालती हैं तब यह उनके अपने-अपने बैंकों के ऊपर लिखे जाते हैं। जब इसे कोई केन्द्रीय बैंक अपने ही ऊपर करता है तब यह चेक के रूप मे नहीं होता।

सरकारी बिल (Treasury Bill)—यह इंगलैण्ड और भारतवर्ष दोनों में निकाले जाते हैं। भारतवर्ष में इन्हें केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार दोनों निकालती हैं। यह एक अल्पकालीन ऋण है जिसकी अवधि प्रायः तीन मास होती है। रिजर्व बैंक के बैंकिंग विभाग के सभी दफ्तर और उसकी शाखायें 'करन दिल्ली को छोड़कर' इन्हें टेंडर से अथवा मध्यकालीन दर से निकालते हैं। जब इन्हें निकालना होता है तब एक सूचना-द्वारा जिसमें इनकी सभी शर्तें दी रहती हैं इनके लिए टेंडर मँगाये जाते हैं। टेन्डर के प्रार्थना-पत्रों में सरकारी बिलों की शर्तों का, उनकी रकम और दर का खुलासा हवाला रहता है। दर प्रत्येक सौ रुपये के लिये रुपये, आनों और पैसों में दी रहती है। जितना रुपया ऋण में लेना है यदि उतने से अधिक के टेंडर आ जाते हैं तो उनके अनुपात के हिसाब से बँटनी हो जाती है। किसी धनी की बँटनी पचीस हजार रुपयों से कम की नहीं होती है। सरकारी बिल पचीस हजार, एक लाख, पाँच लाख, दस लाख और पचास लाख रुपयों के होते हैं। जब सप्ताह के बीच में इन्हें चालू करना होता है तब यह उसी दर से चालू कर दिये जाते हैं जो दर उस सप्ताह के स्वीकृत टेंडरों की होती है। इन सरकारी पत्रों की अवधि बीत जाने पर इनका भुगतान रिजर्व बैंक द्वारा ही हो जाता है।

साख-पत्र (Letters of Credit)—साख-पत्र कई प्रकार के होते हैं। एक तो यह गश्ती (Circular) अथवा साधारण (General) हो सकते हैं। दूसरे यह चालू (Running) और विशेष हो सकते हैं।

गश्ती साख-पत्र (Circular Letters of Credit)—जब किसी व्यक्ति को कई स्थानों पर रुपयों की आवश्यकता पड़ने की सम्भावना रहती है तब वह गश्ती साख-पत्र लेता है। इसमें एक रकम दी होती है जिस हद तक पानेवाले को किसी एक अथवा कई स्थानों से रकम लेने का अधिकार रहता है। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति को यूरोप के कई शहरों में घूमना है और उसे सब मिलाकर पाँच हजार पौंड की आवश्यकता है जिसको वह थोड़ा थोड़ा करके यूरोप के बड़े-बड़े शहरों में लेना चाहता है। अतः यदि उसके पास गश्ती साख-पत्र है तो वह जहाँ चाहे वहाँ जिसने ऐसा साख-पत्र निकाला है उसकी किसी शाख में अथवा उसके किसी अढ़तिये के यहाँ उसे दिखाकर अपनी अपनी आवश्यकता के अनुसार

द्रव्य प्राप्त कर सकता है। द्रव्य देनेवाला जितना रुपया देता है उसे साख-पत्र पर लिख देता है जिससे पूरी रकम जितनी उसमें लिखी है उससे अधिक न हो जाय।

साधारण (General) साख-पत्र—यह साख-पत्र किसी विशेष व्यक्ति के नाम रहता है जो एक निश्चित रकम तक भुगतान दे सकता है। जो माल खरीदना चाहते हैं उन्हें भी उनके अढतिये के नाम ऐसा पत्र मिल जाता है जिससे कि अढतिया उन्हें माल दे देता है और उसके लिये साख-पत्र लिखनेवाले के ऊपर जो प्राय कोई बैंक होता है, बिल अथवा हुंडी कर लेता है।

चालू (Running or Revolving) साख-पत्र—इस साख-पत्र में एक निश्चित रकम दी होती है जिस तक द्रव्य मिल जाता है और जिसकी वापसी पर फिर भी द्रव्य मिल सकता है। अत, यह बराबर चालू रहता है।

विशेष साख-पत्र—इसमें एक विशेष रकम दी रहती है जिस तक एक बार द्रव्य मिल जाता है। इसके भुगतान के बाद फिर द्रव्य नहीं मिल सकता। यदि आवश्यकता पड़े तो एक दूसरा साख-पत्र लिखवाना पड़ता है।

आई० ओ० यू० (I O U)—यह पुर्जा अंग्रेजी के ऐसे तीन शब्दों के उच्चारण के नाम से विख्यात है जिसके अर्थ हैं—मैं तुम्हारा देनदार हूँ। इसमें दाहिनी ओर लिखनेवाले का पता और लिखने की तारीख होती है। फिर उसके बाद बाईं ओर जिसका ऋण चाहिये उसका नाम, पता देकर बीच में आई० ओ० यू० शब्दों के साथ-साथ रकम दी होती है और अन्त में दाहिने किनारे पर फिर लिखनेवाले का हस्ताक्षर होता है।

औद्योगिक साख-पत्र—औद्योगिक कम्पनियाँ अपने हिस्से और ऋण पत्र निकालती हैं, उन्हें औद्योगिक साख-पत्र कहते हैं।

सरकारी साख-पत्र (Government Securities)—जब सरकार दीर्घकालीन ऋण लेती है तब वह सरकारी साख पत्र निकालती है। ये सरकारी साख-पत्र कई शक्ल के हो सकते हैं, जैसे स्टाक सार्टिफिकेट्स (Stock Certificates) प्रण-पत्र (Promissory Notes) और

देनदार बाण्ड (Bearer Bonds)। एक प्रकार के बाण्ड या दूसरे प्रकार के बाण्ड्स में परिवर्तित किये जा सकते हैं। [illegible] स्टाक और प्रमाणपत्रों के दाम पर देनदार बाण्ड नहीं दिये जाते। स्टाक और देनदार बाण्डों पर तो उन्हें भेजे बिना भी ब्याज मिल जाता है किन्तु प्रमाणपत्रों पर केवल उन्हें भेजने पर ही ब्याज मिलता है।

प्रश्न

(१) 'साख' से आप क्या समझते हैं? यह क्या काम करती है? इसके कौन-कौन से रूप हैं? इससे कौन कौन से लाभ तथा कौन-कौन सी हानियाँ हुई हैं?

(२) 'साख उत्पत्ति का साधन नहीं है वरन उसकी कार्यक्षमता बढ़ाता है,' उपरोक्त की विवेचना कीजिये।

(३) विनिमयसाध्य पुर्जे से आप क्या समझते हैं? विनिमय साध्यता और हस्तान्तरण में क्या कोई भेद है? एक विनिमयसाध्य पुर्जा अविनिमय साध्य कैसे बनाया जा सकता है?

(४) चेक की परिभाषा बताइये और उसका विश्लेषण कीजिये। चेक लिखते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये?

(५) ऐसे कौन-कौन से तरीके हैं जिनसे एक चेक अधिक सुरक्षित बनाया जा सकता है?

(६) अधिकारी, मूल्य दिये हुये पुर्जे का अधिकारी और चलन के अनुसार अधिकारी में क्या भेद है?

(७) चिह्नित चेक से आप क्या समझते है? चेक चिह्नित कब बनाये जाते हैं?

(८) विनिमय बिल की परिभाषा बताइये और एक नमूना बनाइये। इसे लिखते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये?

(९) देशी और विदेशी बिलों में आप कैसे विभेद करेंगे।

(१०) क्या विनिमय बिलों पर स्वीकृति की आवश्यकता पड़ती है?

स्वीकृति कैसे दिखलाई जाती है? विभिन्न प्रकार की स्वीकृति के विषय मे बतालइये।

(११) विनिमय बिलों के कौन-कौन से धनी होते हैं? उनमें से प्रत्येक के दायित्व का संक्षेप मे दिग्दर्शन कराइये।

(१२) बिलो के सम्बन्ध के निम्नलिखित पदो के विषय मे बताइये—(१) नोटिङ्ग, (२) प्रोटेस्टिङ्ग, (३) साख के लिये सकारना और (४) विशेष परिवर्तन।

(१३) प्रण-पत्र किसे कहते है? एक ही व्यक्ति का प्रण-पत्र संयुक्त प्रण-पत्र और संयुक्त तथा अलग-अलग जिम्मेदारी के प्रण-पत्र से आप क्या समझते है?

(१४) हुन्डी किसे कहते है? विभिन्न प्रकार की हुण्डियो के बारे में बताइये।

(१५) एक बिल चेक, प्रण-पत्र और हुण्डी के किन-किन बातो मे विभिन्न है और हुण्डी से किन-किन बातो मे उसकी समानता है?

(१६) निम्न पर छोटी-छोटी टिप्पणियाँ लिखिये—(१) बैङ्क ड्राफ्ट, (२) लाभ-पत्र (Dividend Warrant), (३) सरकारी बिल (Treasury Bill), (४) सरकारी साख-पत्र और (५) औद्योगिक साख-पत्र।

(१७) साख-पत्रो (Letters of credit) से आप क्या समझते है? ये कितने प्रकार के होते है? प्रत्येक के विषय में अच्छी तरह से समझाइये। इनकी क्या आवश्यकता पडती है?

अध्याय ९

बैंकर का ग्राहक से सम्बन्ध

बैंकर का ग्राहक से क्या सम्बन्ध है यह बात समझने के लिये हमे पहिले यह समझ लेना चाहिये कि बैंकर किसे कहते हैं और ग्राहक किसे कहते हैं। जहाँ तक बैंकर का प्रश्न है वह तो हम पहिले अध्याय ही मे देख चुके हैं। अब रह गया ग्राहक का प्रश्न। ग्राहक उसे कहते है[1] जो किसी बैंक से निय-

मित बैंकिंग के व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाले लेन-देन बराबर करना रहता है और क्योंकि इस नियमित बैंकिंग के व्यवसाय में केवल रकम की जमा और उसे निकालना ही सम्मिलित है, इसके यह अर्थ है कि बैंकर के यहाँ उसका चालू खाता होना चाहिये। जिनके अन्य प्रकार के खाते होते हैं अथवा जो नियमित बैंकिंग के तो नहीं बल्कि उसी के सदृश्य अन्य प्रकार के बैंकिंग के व्यवसाय से सम्बन्धित लेन देन करते हैं वे ग्राहक नहीं कहे जा सकते। नियमित बैंकिंग के व्यवसाय के यह अर्थ नहीं है कि उसके लिये कुछ समय बीत गया हो। जैसा कि एक मामले में निश्चित हो चुका है कि यदि उसी दिन भी हिसाब खोला गया हो जिस दिन के लेन-देन के सम्बन्ध में कोई झगड़ा है तब भी वह ग्राहक माना जायगा।

कोई भी व्यक्ति (१) एक चालू खाता (Current Account), (२) एक स्थायी खाता (Fixed Deposit Account), (३) एक बचत खाता (Savings Bank Account), इत्यादि खोल सकता है।

(१) चालू खाता खोलना—जब कोई व्यक्ति किसी बैंक में चालू खाता खोलना चाहता है तब उसका उस बैंक से बैंक के किसी परिचित व्यक्ति द्वारा परिचय कराया जाता है। खाता खोलने के लिये प्रायः एक छपा हुआ प्रार्थना-पत्र भरना पड़ता है जिसमें परिचय करानेवाले व्यक्ति के

---

1 A customer 'must have recognisable course of habit of dealing in the nature of the regular banking business and as the transactions peculiar to regular banking business' consist of only deposit and withdrawal, a customer must have a current account with a banker Persons having other accounts or doing business ancillary or allied to regular banking business are not customers of the bank The use of the word 'regular' in the above definition does not in any way suggest that some period must elapse after opening an account before one can be entitled to be called a customer In the case Commissioner of Taxation vs English Scottish and Australian Bank, Limited, it has been laid down that 'customer' signifies a relationship in which duration is not of the essence, and includes a person who has opened an account on the day before paying in a cheque to which he has no title

हस्ताक्षर और पते के लिये भी स्थान होता है। ग्राहक को हस्ताक्षरों की कापी (Autograph Book) में अपने हस्ताक्षर के नमूने भी देने पड़ते हैं। हस्ताक्षर वैसा ही होना चाहिये जैसा कि ग्राहक स्वभावतः ही किया करता है। बात यह है कि उसके भविष्य के हस्ताक्षर इन हस्ताक्षरों से मिलाये जाते हैं, और यदि उनमें तनिक-सा भी अन्तर होता है तो बड़ी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। हमारे देश मे बैंकवाले प्रति दिन अनेक चेक यह लिखकर कि उनके लिखनेवाले धनी के हस्ताक्षर नहीं मिलते हैं (Drawer's signature differs) वापस कर देते हैं। इतना करने के उपरान्त ग्राहक अपनी पहली रकम जमा करता है, और बैंकर उसे पाने के बाद एक पास बुक, एक जमा करने की किताब (Pay-in Book) और एक चेक बुक देता है।

पास बुक मे बैंकर के लेजर में जो ग्राहक का खाता (Account) रहता है उसकी प्रतिलिपि होती है, और उसे प्राय उसके पास बनाने के लिये भेजना पड़ता है। ग्राहक को चाहिये कि वह बराबर उसकी जॉच कर ले और यदि उसमें कोई त्रुटि हो तो उसे बैंकर को बता दे।

जमा करने की किताब मे जमा करने के पर्चे (Pay-in-slips) होते हैं। जब रकम जमा की जाती है तब उसका ब्योरा इस किताब मे भर दिया जाता है। इसके भी दो भाग रहते हैं, रूप (Foil) और प्रतिरूप (Counterfoil) । रूप बैंक ही मे रख लिया जाता है और प्रतिरूप कोषाध्यक्ष के हस्ताक्षर सहित किताब के साथ ही ग्राहक को वापिस कर दिया जाता है। जमा करने की रकम के विषय में बाद मे यदि कोई झगड़ा पड़ता है तो यही देखी जाती है।

चेक बुक में चेक के सादे फार्म होते हैं। वे नाम, रूप और ढॉचे, इत्यादि मे एक ही तरह के होते हैं। चालू खातों से रकम निकालने के लिये प्राय चेकें ही काम में आती हैं। वैसे तो इसके लिये लिखकर अलग से भी आदेश दिया जा सकता है, किन्तु जाल से बचने के लिये और समानता की दृष्टि से बैंक चेकों का प्रयोग ही अधिक पसन्द करते हैं । चेकों के लिये कोई कीमत नहीं देनी पड़ती। जब एक चेक बुक की सब चेकें काम में आ जाती हैं तब दूसरी चेक बुक मिल जाती है। इसके लिये एक प्रार्थना-पत्र भेजना पड़ता है। प्रायः प्रत्येक चेक बुक के अन्त में यह प्रार्थना-पत्र दिया रहता है जिसे भरकर बैंक को भेज दिया जाता है।

(२) स्थायी खाता खोलना--इस खाते मे द्रव्य जमा करने पर ग्राहक को एक जमा की रसीद (Deposit Receipt) मिलती है जो हस्तान्तरित

नहीं की जा सकती। जिस अवधि के लिये द्रव्य जमा किया गया है उसके बीत जाने पर ग्राहक यह रसीद बैंक को वापिस कर देता है और उससे ब्याज सहित अपना द्रव्य पा जाता है। हाँ, यदि वह इसे फिर से जमा करना चाहता है तो उसे एक नई जमा की रसीद मिल जाती है। अवधि बीतने के पहिले इस खाते से कोई रकम नहीं निकाली जा सकती। हाँ, यदि ग्राहक को धन की आवश्यकता है तो वह अपनी जमा की जमानत पर बैंक से ऋण ले सकता है। कभी-कभी जो अवधि बीत गई है उसका ब्याज छोड़ देने पर यह रकम वापिस भी कर दी जाती है इस पर ब्याज केवल निश्चित अवधि का ही मिलता है। उसके बीत जाने पर यदि रकम फिर से नहीं जमा कर दी जाती है अथवा निकाल ली जाती है तो ब्याज की हानि होती है।

(३) बचत खाता खोलना—यह खाता भी चालू खाते ही कि तरह एक प्रार्थना-पत्र देने पर खुलता है और इसमें भी हस्ताक्षर का नमूना देना पड़ता है। साथ ही इसमें भी ग्राहक को एक पास बुक और किसी-किसी बैंक से एक जमा करने की किताब (Pay-in-Book) और चेक बुक भी मिलती है। जब जमा करने की किताब और चेक बुक नहीं मिलती, तब जमा करने और निकालने के लिये साधारण फार्म प्रयोग में लाये जाते हैं और ऐसे अवसरों पर पास बुक भी ठीक करवानी पड़ती है। महीने में जो सबसे कम बाकी रहती है उस पर इसम महीने भर का ब्याज मिलता है।

अब हम बैंकर के ग्राहक से सम्बन्ध के मुख्य-विषय पर आ सकते हैं। यह सम्बन्ध कई प्रकार के होते हैं। अपनी सुविधा के लिये इन्हें हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं —(१) मुख्य, (२) सहायक, और (३) विशेष।

मुख्य सम्बन्ध

१ एक बैंकर और ग्राहक के बीच का मुख्य सम्बन्ध देनदार और लेनदार का होता है। प्रायः ग्राहक यह सम्बन्ध बैंकर के पास एक रकम जमा करके स्थापित करता है। ऐसी अवस्था में बैंकर तो देनदार और ग्राहक लेनदार होता है। किन्तु कभी-कभी बैंकर अपने ग्राहक को कुछ रकम उधार दे देता है अथवा उसकी जितनी रकम उसके पास जमा है उससे अधिक निकालने की उसे आज्ञा दे देता है। ऐसी अवस्था में वह लेनदार और ग्राहक देनदार हो जाता है। जो रकम बैंक के पास जमा की जाती है वह उसके पास धरोहर (Trust) के रूप में नहीं रक्खी जाती। वह उसे उधार दी जाती है जिससे वह जिस प्रकार चाहे उसे अपने काम में ला सकता है। हाँ, कभी-कभी यह रकम

धरोधर के तौर पर भी रक्खी जाती है। मद्रास के एक फैसले मे[1] यह घोषित किया गया था कि यदि किसी बैंक को कोई रकम किसी कम्पनी के कुछ हिस्से खरीदने को दी जाती है, और बैंक कुछ हिस्से खरीद लेता है किन्तु पूरी खरीद करने के पहिले फेल हो जाता है तो वह शेष रकम का धरोहरी माना जायेगा और उसे ग्राहक को वह रकम पूरी की पूरी वापिस करनी पड़ेगी। किन्तु इस फैसले में और वहीं के एक अन्य फैसले मे[2] जो अन्तर है उसे भली भाँति समझ लेना चाहिये। इस दूसरे फैसले मे जिसमे ग्राहक की रकम बैंक के खाते में पहिले ही से थी, ग्राहक ने बैंक से उस रकम के कुछ अंश के साखपत्र खरीदने को कहा था और बैंक ने ऐसा करने की स्वीकृति भी दे दी थी, किन्तु ऐसा करने के पहिले ही वह फेल हो गया था यह फैसला दिया गया कि बैंकर जमा की रकम के किसी अंश के लिये भी धरोहरी नहीं है। यदि बैंकर को उसके ग्राहक से चेकें और विनिमय बिल वसूली के लिये प्राप्त होते हैं, तो यदि परस्पर कोई विशेष बात नहीं ते हो गई है तो वह वसूली की रकम बैंकर के पास धरोहर नहीं वरन् ऋण के तौर पर समझी जायगी।

इस सम्बन्ध की कुछ विशेषतायें—बैंकर और ग्राहक के बीच मे जो यह सम्बन्ध है उसकी कुछ विशेषतायें हैं जो साधारण लोगों के इस सबन्ध मे नहीं हैं। प्रथम तो बैंकर के पास जब कोई रकम जमा कर दी जाती है तो वह जब चाहे तब उसे ग्राहक (लेनदार) को वापिस नहीं कर सकता है। साधारण लोगों के पारस्परिक ऋणी जब चाहे तब लेनदार को रकम वापिस कर सकते हैं। एल० जे० अटकिन (L J Atkin) ने इसे एक फैसले मे[3] बहुत ही स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने यह कहा था कि बैंकर और ग्राहक के बीच मे जो समझौता होता है उसकी एक शर्त यह रहती है कि उचित सूचना दिये बिना बैंकर ग्राहक का हिसाब बन्द नहीं कर सकता। दूसरे, इसी फैसले में यह भी उपलक्षित था कि भारतवर्ष मे खातों के तीन वर्ष तक और इंगलैंड मे छै वर्ष तक सुप्त पड़े रहने पर साधारण ऋणों की तरह उनमें अवधि बीत जाने के कारण अदालत की सहायता न मिल सकने का नियम (Statute of Limitations) नहीं लागू हो सकता। सत्य तो यह है कि बैंकों ने कभी इस नियम का लाभ उठाने का विचार ही नहीं किया क्योंकि इससे उनकी साख बिगड़ जाने का डर रहता है। तीसरे, इस अवस्था मे बैंकर और

[1] Official Assignee of Madras vs I W. Irwin
[2] Official Assignee of Madras vs D Rajaram Aiyar
[3] Joachimson vs Swiss Bank Corporation

उसके ग्राहक के बीच में यह निश्चित-सा रहता है कि बैंकर वह रकम ग्राहक की आज्ञा के अनुसार देगा। प्राय यह आज्ञा चेक पर लिखी जाती है। यदि बैंकर जाल के कारण, अथवा मिथ्या वर्णन के कारण अथवा गलती के कारण आज्ञा के विरुद्ध भुगतान कर देता है तब वही उसका दायी होता है। हाँ, जहाँ पर उसकी स्थिति वैधानिक रूप से सुरक्षित कर दी गई है वहाँ की बात तो दूसरी है। कुछ विशेष परिस्थितियाँ छोड़कर वह अपने ग्राहकों की चेक तिरस्कृत (Dishonour) भी नहीं कर सकता है। एक बात अवश्य है कि बैंकर अपने ग्राहक के प्रति ही दायी रहता है। अन्य किसी के प्रति अर्थात् चेक के अधिकारी के प्रति नहीं। चौथे और अन्तिम बैंकर को ग्राहक की उसके ऊपर जो रकम बाकी है उसे गोपनीय रखना पड़ता है। वह उसके हिसाब के विषय में किसी को नहीं बता सकता। हाँ, कभी-कभी उसे ऐसा करना पड़ता है। उदाहरण के लिये निम्न परिस्थितियाँ ली जा सकती हैं—

(अ) जब अदालत उसे ऐसा करने के लिये कहे। यह प्राय. तभी होता है जब ग्राहक अदालत द्वारा किसी का ऋणी (Judgment debtor) मान लिया जाता है।

(ब) जब ग्राहक स्वयं ही उसे ऐसा करने की आज्ञा दे देता है। यह आज्ञा स्पष्ट और उपलक्षित दोनों में से कोई भी हो सकती है।

(स) जब ऐसा करना उसके स्वयं के हित में आवश्यक हो जाता है। मान लीजिये कि उसके और ग्राहक के बीच में अदालत चल रही है। इस सम्बन्ध में उसे अदालत के सामने ग्राहक का खाता रखना पड़ता है।

(द) जब यह जनहित के लिये आवश्यक हो जाता है। वास्तव में इसका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। अत, बैंकर को यह निश्चित करना पड़ता है कि उसे कब कब ऐसा करना चाहिये।

हाँ, वह जब कोई उसके ग्राहक के साथ व्यापार करने के ध्येय से उसकी स्थिति के विषय में जानना चाहता है अवश्य उसके हिसाब की साधारण स्थिति बता सकता है। किन्तु इसमें उसे बहुत होशियारी करने की आवश्यकता पड़ती है।

बैंकों के लिये वैधानिक बचत—ऊपर इस बात का संकेत किया जा चुका है कि बैंकों को चेकों के भुगतान के सम्बन्ध में विधान द्वारा कुछ बचत दी गई है- यह उन पर के ग्राहकों के हस्ताक्षर के, रकम के और बेचान के सम्बन्ध की है। बैंकों के पास उनके ग्राहकों के हस्ताक्षरों के नमूने रहते हैं जिनसे वह चेकों पर के उनके हस्ताक्षर उनके भुगतान करने के पहिले

मिला लेते हैं। यदि किसी ग्राहक का हस्ताक्षर जाली बना लिया गया है अथवा उसके वास्तविक प्रतिनिधि-द्वारा नहीं किया गया है तो जाल चाहे जितना साफ क्यों न हो बैंक उन पर के भुगतान के लिये ग्राहक को दायी नहीं बना सकता है। हाँ, इस व्यवस्था में एक अपवाद है और वह यह है कि बैंक यह प्रमाणित कर दे कि भुगतान ग्राहक की जानकारी में की गई असावधानी (Negligence imputabe to customer) के कारण हुआ है। इस सम्बन्ध का कोई विधान तो नहीं है किन्तु यह स्थिति कुछ फैसलों-द्वारा स्पष्ट की जा चुकी है। सी० जे० वैस्ट ने यग बनाम फ्रोट के मुकदमे के सम्बन्ध में यह न्याय किया था कि यदि बैंक ने ग्राहक के अपराध के कारण जितना द्रव्य देना था उससे अधिक दे दिया है तो वह उसके लिये दायी नहीं है। यद्यपि यह उस स्थिति के सम्बन्ध में अधिक लागू है जब ग्राहक इतनी असावधानी से चेक पर रकम लिखता है और वह आसानी से बढ़ा दी जाती है तो भी यह उस स्थिति के सम्बन्ध में भी लागू हो सकता है जब ग्राहक की असावधानी से उसके चेकों पर उसके हस्ताक्षर जाली बना दिये जायँ। किन्तु ग्राहक की जानकारी में की गई असावधानी (Negligence imputable to a customer) और साधारण असावधानी (Mere carelessness) में अन्तर है। स्कल-फील्ड बनाम लैण्डसबरो के मुकदमें में[4] लार्ड हैल्सबरी ने अपने फैसले के सम्बन्ध मे यह कहा था कि यदि ग्राहक अपने किसी काम द्वारा बैंक को कोई काम करके अथवा न करके कोई भुगतान कराने में सहायता देता है, तो यह स्पष्ट है कि वह अपना यह काम अथवा काम न करना बैंक के, जिसे वह धोखा देता है अथवा अपनी असावधानी से धोखा खाने की गुंजाइश पैदा कर देता है, अहित मे प्रयोग मे नहीं ला सकता। ग्राहक के लिये यह भी आवश्यक है कि जैसे ही उसे यह मालूम हो जाय कि उसके हस्ताक्षर जाली बनाये गये हैं वह इस बात की बैंक को सूचना

---

4 In the case Scholfield vs Land as borough, Lord Halsbury during the course of his Judgment observed that if the customer by any act of his induces the banker to act upon the document, by his act or neglect of some act usual in the course of dealing between them, it is quite intelligible that he should not be permitted to set up his own act or neglect to the prejudice of the banker whom he thus misleads or by neglect permits to be misled

दे दे ताकि बैंक सावधान हो जाय। ग्रीनवुड बनाम मार्टिंस बैंक लिमिटेड के मुकदमें में जहाँ ग्राहक को यह पता लग गया था कि उसकी पत्नी ने उसके चालू खाते से उसके हस्ताक्षर जाली बनाकर कुछ चेकों का भुगतान ले लिया है और कई महीने तक उसने यह बात छिपाये रक्खा, किन्तु जब वह मर गई और बैंक का उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का अवसर निकल गया, तब उसने बैंक को सूचित किया यह निश्चय किया गया था कि बैंक गलत भुगतान के लिये ग्राहक के प्रति दायी नहीं है।

बैंकों को जाली बेचानों पर भी भुगतान करने पर बचत दी गई है। हाँ, यह अवश्य है कि उन्हें चेकों का भुगतान करने में उचित सावधानी करनी चाहिये तथा भुगतान अच्छी नियत से (In good faith), कोई असावधानी न करके (Without negligence) और अपने व्यवसाय के साधारण दौरान में (In the ordinary course of business) करना चाहिये। हमारे देश में अच्छे विनिमयसाध्य पुर्जों के विधान की ८५ (१) धारा में इसे बहुत ही स्पष्ट कर दिया गया है। उसमें यह लिखा है*, कि जहाँ पर आदेश के अनुसार चेकों का भुगतान करना है वहाँ पर यदि जिन्हें भुगतान मिलता है, उनके बेचान उन्हीं के द्वारा अथवा उनकी ओर से किये हुये मालूम पड़ते हैं, तो यदि बैंक ने उचित रीति से भुगतान कर दिया है तो वह अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। विनिमय बिलों के अंग्रेजी विधान की ६०वीं धारा में भी यही सिद्धान्त दिया हुआ है। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि यह बचत उन बिलों के भुगतान के सम्बन्ध में लागू नहीं है जिनके भुगतान बैंकों द्वारा किये जाते हैं (Domiciled Bills) अब इस प्रश्न का उत्तर देना कि कोई बेचान उसी धनी द्वारा अथवा उनकी ओर से किया गया मालूम पड़ता है अथवा नहीं कि जिसे उसे करना चाहिये था, बहुत ही कठिन है किन्तु बैंक इसका उत्तर अदालतों के इस सम्बन्ध के फैसले और चलन दृष्टि में रखकर अपनी साधारण बुद्धि के बल पर दे लेते हैं। इनका और अधिक विस्तार में अध्ययन हम आगे चलकर बेचान के तरीकों के सम्बन्ध में करेंगे। ऊपर जो शर्तें दी हैं अर्थात् अच्छी नीयत से (In good faith), असावधानी न करके (Without negligence) और व्यवसाय के साधारण दौरान में (In the ordinary course

* It lays down 'where a cheque payable to order purports to be endorsed by or on behalf of the payee, the drawee is discharged by payment in due course'

उसके भुगतान करने की मनाही कर देता है और बैंकर ने उसका भुगतान पहिले ही कर दिया है तो भी वह कठिनाई में पड़ जाएगा।

(४) जब चेक पर रेखाङ्कन है और वह किसी बैंक के मार्फत नहीं आती है।

(५) जब चेक छै माह या उससे अधिक पुरानी है।

(६) धरोहर सम्बन्धी हिसाब के सम्बन्ध में भुगतान की रकम के उपयोग के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह हो जाने पर भी जब तक वह सन्देह दूर नहीं हो जाता तब तक चेक का भुगतान नहीं किया जाता।

(७) जब चेक की रकम के विषय में कोई सन्देह हो जाता है। शब्दों और अङ्कों की रकमें एक सी होनी चाहिये। यदि बैंकर चाहे तो वह शब्दो की रकम अथवा न्यूनतम रकम का भुगतान कर सकता है, किन्तु प्राय. वह ऐसी चेक वापिस कर देता है, चेकों पर यदि कोई संशोधन किया गया है तो उसके साथ-साथ ग्राहक का हस्ताक्षर होना चाहिये।

(८) जब ग्राहक के हिसाब में भुगतान करने के लिये पूरी रकम नहीं रहती। हाँ, यदि जमा की हुई रकम से अधिक निकालने की आज्ञा दी जा चुकी है तो उस सीमा तक चेकों का भुगतान करना ही पड़ता है। यह याद रखना चाहिये कि इस प्रकार के प्रबन्ध की अवहेलना पहिले से सूचना दिये बिना नहीं की जा सकती है। यदि बैंकर ने ग्राहक के पास बुक में बाकी निकालने में गलती कर दी है और उसके कारण उसकी इतनी रकम निकलती हुई मालूम पड़ती है कि चेक का भुगतान हो सकता है तो उसका भुगतान कर देना चाहिये और फिर ग्राहक से कमी की रकम मँगवा लेनी चाहिये।

(९) जब ग्राहक स्वयम् किसी चेक का भुगतान रोक देता है। इस सम्बन्ध मे यह याद रखना चाहिये कि प्रत्येक बैंकर को अपने ग्राहकों के आदेश पूरी तरह से मानने चाहिये।

(१०) जब ग्राहक दिवालिया अथवा पागल घोषित कर दिया गया है अथवा मर गया है।

(११) जब किसी अदालत की ओर से कोई ऐसा आदेश (Garnishee order) प्राप्त हो गया है। मान लीजिये कि अ के ऊपर ब का रुपया चाहिये और ब को डिक्री (Decree) मिल गई है और साथ ही उसे यह मालूम है कि अ का अमुक बैंक में हिसाब है तो वह उस बैंक के ऊपर सुपुर्दगी

का एक अदालती हुक्म (Garnishee order) निकलवा सकता है। इस हुक्म के यह अर्थ है कि बैंक उस को उस समय तक रुपया न दे जिस समय तक अदालत उस रुपये के सम्बन्ध में कोई आदेश न दे दे।

(१२) जब चेक अत्यधिक कटा-फटा गया है।

चेक तिरस्कृत करने के समय बैंक प्रायः निम्न वाक्य लिखते हैं --

(१) लिखने वाले धनी से पूछिये Refer to Drawer (R/D) इससे चेक की तिरस्कृति का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। इससे केवल यह स्पष्ट होता है कि कोई न कोई ऐसी बात अवश्य है जिससे चेक का भुगतान नहीं किया गया है। प्राय यह उस परिस्थिति में लिखा जाता है जब लिखने वाले धनी की काफी रकम उसके हिसाब में नहीं रहती।

(२) प्रबन्ध नहीं किया गया (Not arranged) इसके यह अर्थ हैं कि जिस हिसाब के ऊपर चेक काटी है उसमें उसके भुगतान के लिये यथेष्ट रकम नहीं है। हाँ, यदि प्रबन्ध किया जाता तो दूसरे हिसाबों से उसमें काफी रकम आ जाती, किन्तु प्रबन्ध नहीं किया गया है। यदि बैंकर चाहे तो वह दूसरे हिसाब से भी भुगतान कर सकता है, किन्तु वह ऐसा करता नहीं।

(३) वसूलयाबी अभी तक नहीं हुई है चेक फिर लाइयेगा (Effects not yet cleared please present again)। प्राय यह देखा गया है कि ग्राहक अपने कुछ अधिकार पत्र बैंक को वसूली के लिये भेज देता है, और उन्हीं के बिना पर अपनी रकम यथेष्ट समझ कर चेक इत्यादि काट देता है। किन्तु यदि इस बीच में अधिकार पत्रों की बैंक में वसूली नहीं होती तो उसकी चेकों का भुगतान नहीं होता। अत, बैंक यह लिख देता है कि वसूलयाबी अभी तक नहीं हुई है, चेक फिर लाइयेगा।

(४) प्रबन्ध से अधिक है (Exceeds arrangement)—कभी कभी ग्राहक अपने खातों से रुपया प्राप्त करने का प्रबन्ध कर लेता है किन्तु यदि इतने पर भी उसकी चेक की रकम इतनी अधिक है कि उसका भुगतान नहीं हो सकता तो यह कारण लिख दिया जाता है।

(५) बाकी यथेष्ठ नहीं है (Insufficient Funds)—यह कारण तो स्पष्ट ही है किन्तु बैंक प्राय ऐसा नहीं लिखते।

(६) पूरी रकम नहीं प्राप्त हो पाई है (Full covers not received)—इसके भी प्राय वही अर्थ हैं जो (५) के हैं।

(७) लिखने वाले धनी ने भुगतान रोक दिया है (Payment stopped by the drawer) यह कारण भी स्पष्ट ही है।

(८) लिखने वाले धनी के हस्ताक्षर नहीं मिलते (Drawer's Signature Differs)—प्रत्येक बैंक के पास उसके ग्राहक के हस्ताक्षरों का नमूना रहता है। अतः, इसके यह अर्थ हैं कि चेक पर के उसके हस्ताक्षर नमूने से उसके हस्ताक्षरों के नहीं मिलते।

(९) पाने वाले धनी का बेचान अपूर्ण है अथवा नहीं है अथवा अनियमित है अथवा अस्पष्ट है (Payees Endorsement is incomplete, Required / Irregular / Ielegible)—यह भी स्पष्ट ही है। अलिखित स्थान पर प्रथम, द्वितीय, इत्यादि जैसा हो लिख दिया जाता है।

(१०) बेचान का बैंक द्वारा प्रमाणित होना आवश्यक है (Endorsment Requires Bank's Guarantee Confirmation)—जब कोई चेक किसी बैंक द्वारा आती है तब यदि कोई बेचान अनियमित होता है तो बैंक द्वारा उसे प्रमाणित करवाया जाता है। अत, ऐसी परिस्थिति में उपयुक्त कैफियत लिखी जाती है।

(११) लिखने वाले धनी के हस्ताक्षर की आवश्यकता है (Drawer's Signature Required)—जब लिखने वाला धनी अपने हस्ताक्षर करना भूल जाता है तब यह कैफयत लिखी जाती है।

(१२) चेक फटी है, अथवा पूर्वतिथीय है अथवा बहुत पुरानी हो गई है (Cheque is mutilated, Post-dated, Out of date)—फटी हुई चेक का भुगतान नहीं होता। यदि वह संयोग से फट गई है तो लिखने वाले धनी को उसे जोड़कर उस पर यह बात लिख देनी चाहिये।

इसी तरह से यदि किसी चेक पर आगे की तारीख पड़ी रहती है तो भी उसका भुगतान नहीं किया जाता। फिर जो चेक छै महीने अथवा उससे अधिक पुरानी हो जाती हैं, उसका भी भुगतान नहीं किया जाता।

(१३) शब्दों और अङ्कों में लिखे हुये धन भिन्न-भिन्न हैं (Amount in words and figures differ)—इसमें जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है या तो शब्दों में लिखा हुआ धन या जो धन भी कम हो वह दे दिया जा सकता है किन्तु ऐसी चेक प्राय उपर्युक्त कारण देकर वापिस कर दी जाती है।

(१४) रेखांकित चेक किसी बैंक के मार्फत आनी चाहिए (Crossed cheque must be presented through a Bank)—यह कारण भी स्वयम् स्पष्ट है।

(१५) वसूली की मोहर लगनी चाहिये (Clearing Stamp Required)—वसूली करने वाले बैंक की अपनी मोहर भी चेक पर पड़नी चाहिये। अत, यदि कोई चेक किसी बैंक द्वारा आती है और उस पर उसकी मोहर नहीं पड़ती तो यह कारण लिख दिया जाता है।

(१६) संशोधन पर लिखने वाले धनी के हस्ताक्षर की आवश्यकता है (Alteration requires drawer's confirmation)—यदि चेक पर तनिक-सा भी संशोधन किया जाता है तो उस पर लिखने वाले धनी के हस्ताक्षर होने हैं। ऐसा न होने पर चेक वापिस कर दी जाती है।

(१७) लिखने वाले धनी का स्वर्गवास हो गया है (Drawer deceased)—यह कैफियत तो स्पष्ट ही है।

(१८) लिखने वाला धनी दिवालिया घोषित कर दिया गया है (Drawer declared bankrupt)—यह कैफियत भी स्पष्ट ही है।

(१९) अदालत की निषेध आज्ञा प्राप्त हो गई है (Garnisee order served)—अदालत की निषेध आज्ञा प्राप्त हो जाने पर फिर चेक का भुगतान नहीं होता।

(२०) चेक टाइप से तैयार की गई है (Type written cheque)—ऐसी चेक का भुगतान प्राय: नहीं किया जाता।

चेक गलती से तिरस्कृत हो जाने पर बैंकर का दायित्व

बैंक किसी चेक को किसी विशेष कारण बिना नहीं तिरस्कृत करता। हाँ, यदि वह ऐसा गलती से कर जाता है तो उसे न केवल लिखने वाले धनी की हानि ही पूरी करनी पड़ती है वरन् उसकी मान-हानि के लिये भी कुछ देना पड़ता है। बात यह है कि जब किसी व्यापारी की चेक का भुगतान नहीं होता और विशेषत: हिसाब में यथेष्ट रकम न होने के कारण ऐसा नहीं होता तब उस व्यापारी की बड़ी बदनामी होती है और जैसा कि सभी को ज्ञात है व्यापार में बदनामी बहुत ही खराब चीज है। मान हानि की रकम का निश्चय स्वयं अदालत करती है। वह यह देखती है कि उस स्थान के लोग चेकों का तिरस्कृत हो जाना हेय दृष्टि से देखते हैं अथवा नहीं। वह यह भी देखेगी कि उस ग्राहक की कोई चेक पहिले कभी उसी अपराध के कारण तिरस्कृत हुई थी

अथवा नहीं। यदि ऐसा हो चुका है तो इस तिरस्कार से उसको कोई विशेष बदनामी नहीं समझी जायगी।

बैङ्क द्वारा भुगतान होने वाले बिलों के सम्बन्ध में बैङ्क का दायित्व

कभी-कभी ऊपर वाला धनी बिलों पर स्वीकृत देते समय उनके भुगतान का भी स्थान दे देता है। साधारणत यह स्थान उसी बैंक का होता है। ऐसे बिल अंग्रेजी में डोमिसाइल्ड बिल (Domiciled bill) कहलाते हैं। इस सम्बन्ध मे यह याद रखना चाहिये कि जब कि बैंको के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने ग्राहकों द्वारा काटे गये चेकों का भुगतान करे उनके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने ग्राहकों द्वारा स्वीकृत किये गये बिलों का भुगतान करें। हॉ, यदि यह किसी प्रकार भी पहिले से तै हो चुका है, तो अवश्य ही उन्हें ऐसा करना पडेगा। कोई बैंकर ऐसी परिस्थिति में भी इनका भुगतान करने से केवल निम्न हालतों में मना कर सकता है —

(१) जब वह ठीक हालत में नहीं रहता।

(२) जब उसमें आवश्यक स्टाम्प नहीं लगा रहता। प्रत्येक मुद्दती बिल में प्रत्येक देश के विधान से निर्धारित कुछ न कुछ मूल्य का स्टाम्प अवश्य लगाना पडता है। हमारे ही देश मे १३ जनवरी सन् १९४० के विधान के अनुसार एक वर्ष तक की अवधि के बिलों पर २ आना प्रति सहस्र रुपया तथा उसके अंश पर स्टाम्प लगाना पडता है।

(३) जब वह पकने की तरीख के पहले पेश किया जाय।

(४) जब उसमें कुछ विशेष संशोधन हो और उन पर ऊपर वाले धनी की सही न हो गई हो।

(५) जब ऊपर वाले धनी के हस्ताक्षर जाली मालूम पड़ते हों। प्रत्येक बैंकर को चाहिये कि वह उपर्युक्त हस्ताक्षरों को उसके पास जो हस्ताक्षरों के नमूने की किताब है उसमें जो उसके ग्राहक के हस्ताक्षर हैं, उससे मिला ले।

(६) जब पाने वाले धनी अथवा अन्य बेचानकर्ताओं के उस पर के हस्ताक्षर जाली मालूम पड़ते हों। इस सम्बन्ध मे यह याद रखना चाहिये कि जाली बेचानों के बिलों पर भुगतान कर देने पर बैंकों को उस तरह की कोई बचत नहीं दी गई है जैसी जाली बेचानों के चेकों पर भुगतान कर देने पर दी गई है। प्राय. बैंकर बिल के अधिकारी से यह बात लिखवाकर अपनी बचत कर लेता है कि यदि कोई भी बेचान जाली होने के कारण वह दायी ठहराया जायगा तो उसकी क्षति वह पूरी करेगा।

(७) जब ऊपर वाला धनी दिवालिया घोषित कर दिया जाता है। उसके स्वर्गवास की हालत में भी बैंकर को उसके उत्तराधिकारी की सही प्राप्त कर लेनी चाहिये।

सहायक सम्बन्ध

सहायक सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं —

(१) आढ़त (Agency) के और (२) धरोहर (Trust) के।

(१) आढ़त का सम्बन्ध

जब कोई बैंक अपने किसी ग्राहक के चेकों अथवा बिलों का भुगतान करता है तब उसके आढ़तिये (प्रतिनिधि—Agent) का काम करता है। अब, यदि वह कोई गलती करता है तो उसके लिये अपने मालिक (ग्राहक) के प्रति ही दायी समझा जाता है। हाँ, उसे चेकों के भुगतान के सम्बन्ध में उनके जाली होने की हालत में अवश्य कुछ बचत दी गई है जिसका हम पहिले ही अध्ययन कर चुके हैं।

फिर, हम यह भी जानते हैं कि वह अपने ग्राहकों की ओर से उनके चेकों, बिलों, ऋण-पत्रों, व्याज पत्रों, (coupons) लाभ बँटनी पत्रों, चन्दे, आयकर बीमा के प्रतिफल, इत्यादि की वसूली करता है। साथ ही वह उसकी तरफ से हिस्सों, स्टाकों, ऋण-पत्रों और बाण्डों इत्यादि को खरीदता और बेचता है। इन सब परिस्थितियों में और अन्य बहुत-सी परिस्थितियों में उसका और ग्राहक का सम्बन्ध फिर आढ़तिये और मुखिये का होता है और इसी कारण वश उनके बीच के अधिकार और दायित्व आढ़त के नियमों के अनुसार होते हैं। हाँ, इसमें एक अपवाद है और वह एक रेखाङ्कित चेक और बैंक ड्राफ्ट के सम्बन्ध का है।

रेखाङ्कित चेक (Crossed Cheque)—यह वह चेक है जिसके ऊपर कुछ शब्दों के साथ-साथ अथवा वैसे ही दो आड़ी समानान्तर रेखायें खींच दी जाती हैं। इनका यह प्रभाव होता है कि ऐसी चेकों का भुगतान ऊपर वाला बैंक किसी बैंक के अतिरिक्त अन्य किसी धनी को नहीं देता है। किसी चेक पर या तो साधारण या विशेष रेखाङ्कन किया जा सकता है।

साधारण रेखाङ्कन (General Crossing)—यदि किसी चेक के ऊपर कुछ शब्दों के साथ-साथ हों, किसी बैंक के नाम के साथ नहीं दो

आड़ी समानान्तर रेखायें खींची गई हैं तो वह रेखाङ्कन साधारण रेखाङ्कन होता है । इसके नमूने निम्नाङ्कित हैं :—

1. (blank)
2. & Co
3. Not Negotiable
4. Not Negotiable & Co
5. Under one Hundred Rupees & Co
6. & Co Account payee only
7. Not Negotiable A/c payee only
8. Account payee only

बैंक ड्राफ्ट के वसूली के सम्बन्ध में अभी हाल ही में यह बचाव दिया गया है ।

साधारण रेखाङ्कन का यह प्रभाव होता है कि उस चेक का भुगतान ऊपर वाला बैंक अपने कटघरे पर किसी बैंक के अतिरिक्त अन्य किसी धनी को नहीं देता । यदि कोई रेखाङ्कित चेक किसी ऐसे धनी के पास आ जाती है जिसका किसी बैंक में हिसाब नहीं होता तो वह उसको वसूल करने के लिये अपने किसी ऐसे मित्र के नाम उसका बेचान कर देता है जिसका किसी बैंक में खाता होता है ।

विशेष रेखाङ्कन (Special Crossing)—यदि किसी चेक के ऊपर के रेखाङ्कन के अन्दर किसी बैंक का नाम दिया रहता है तो वह रेखाङ्कन विशेष रेखाङ्कन कहलाता है । इस तरह के रेखाङ्कन का यह प्रभाव पड़ता है कि उसका भुगतान रेखाङ्कन में दिये हुये बैंक को ही दिया जाता है । किसी चेक के रेखाङ्कन के अन्दर केवल एक ही बैंक का नाम रहता है । हाँ, यदि बैंक उस चेक की स्वयं वसूली नहीं कर सकता तो अवश्य उस पर दूसरे वसूली करने वाले बैंक के नाम का रेखाङ्कन कर दिया जाता है ।

बैंकों को रेखाङ्कित चेकों की वसूली के सम्बन्ध में किस

प्रकार का बचाव दिया गया है—वैसे तो जब कोई बैंक अपने किसी ग्राहक की ओर से किसी चेक की वसूली करता है तो उसकी स्थिति उसके अभिकर्ता की सी होती है, तथापि यदि उस चेक पर ग्राहक का अच्छा अधिकार नहीं रहता तो वसूली करने वाले बैंक का भी अच्छा अधिकार नहीं रहता किन्तु अच्छा अधिकार देने वाले पुर्जों के भारतीय विधान की १३१वीं धारा और विनिमय बिलों के अंग्रेजी विधान की ८२वीं धारा के अनुसार बैंक को उसके अपने ग्राहक के लिये एक रेखांकित चेक की वसूली करने पर एक बचत दी गई है। अच्छा अधिकार देने वाले पुर्जों के भारतीय विधान की १३१वीं धारा निम्नांकित है:—"यदि कोई बैंकर अच्छी नीयत से सावधानी के साथ किसी रेखांकित चेक का चाहे वह साधारण रेखांकित हो अथवा उसी के नाम का विशेष रेखांकित हो अपने ग्राहक के लिये भुगतान प्राप्त कर लेता है तो बाद में यदि यह भी प्रमाणित हो जाता है कि उस पर खराब अधिकार था तब भी वह उसके वास्तविक स्वामी के प्रति केवल इस भुगतान को प्राप्त कर लेने के कारण ही दोषी नहीं ठहराया जायगा।"

उपर्युक्त को स्पष्ट करने के लिये उसके साथ-साथ ही निम्न टीका भी दी हुई है :—

"इस धारा के सम्बन्ध में कोई बैंकर चाहे वह भुगतान पाने के पहिले ही ग्राहक के हिसाब में वह रकम जमा कर दे अथवा नहीं जो भुगतान पाता है, वह अपने ग्राहक के लिए ही पाता है।"

यहाँ यह अवश्य याद रखना चाहिये कि बैंकर को यह बचाव केवल एक रेखांकित चेक की वसूली पर ही दिया गया है और वह भी उसके स्वयं के ग्राहक के लिये होने पर। यदि वसूली किसी खुली हुई चेक की अथवा किसी अन्य पुर्जे की हुई है (हाँ, इधर हाल ही में बैंक ड्राफ्ट की वसूली के सम्बन्ध में भी यह बचाव दे दिया गया है) अथवा बैंक के स्वयं के ग्राहक के लिये नहीं हुई है तो यह बचत नहीं मिलती। साथ ही उसे यह वसूली अच्छी नीयत से और सावधानी से भी करनी चाहिये। यदि कोई ग्राहक एक चेक जमा करके हिसाब खोलना चाहता है तो बैंकर को उसके विषय में पूछ ताछ कर लेनी चाहिये। ऐसा न करने पर बैंकर को उपर्युक्त बचत नहीं मिलती। लैडबक बनाम टौड के मुकदमे में जिसमें एक चोर ने एक चेक पर उसके पाने वाले धनी के नाम का जाली बेचान किया था और फिर उससे एक बैंक

में हिसाब खोलकर उसे वसूल कराकर सारी रकम निकाल ली थी बैंक पर असावधानी करने का अपराध लगाया गया था और उससे सारा द्रव्य वापिस ले लिया गया था। सेण्ट जान के अभिभाविकों और बार्कलेज के बीच के मुकदमें में भी जिसमें कि चोर ने अपनी पहचान के लिये फिजरौय स्क्वायर निवासी एक मि० अलफ का नाम दिया था जिसे बैंक जानता भी नहीं था और जो बिल्कुल जाली था बैंक के ऊपर असावधानी का अपराध लगाया गया था।

वसूल करने वाले बैङ्क की चलन के अनुसार अधिकारी की स्थिति—चेक, विनिमय बिल और प्रण-पत्र विनिमय साध्य पुर्जे हैं अर्थात इनकी मुख्य विशेषता यह है कि इनका अधिकार इनका बेचान करके अथवा केवल इन्हें हस्तान्तरित करके हस्तान्तरित किया जा सकता है और हस्तान्तरकृत अगर अच्छी नीयत से किसी प्रतिफल की बिना पर, उचित रूप में और इनके पकने की तारीख से पहिले इन्हें प्राप्त कर लेता है तो चाहे उसने इन्हें किसी ऐसे व्यक्ति से ही क्यों न पाया हो जिसका इन पर अच्छा अधिकार नहीं है तब भी उसका अधिकार तो इन पर अवश्य ही अच्छा माना जायगा और वह इनकी वसूली के लिये इनके लिए दायी धनियों के ऊपर अपने नाम से नालिश कर सकता है। अत, यदि कोई वसूली करनेवाला बैंक अपनी इस स्थिति पर निर्भर रहना चाहता है अर्थात् अपने ग्राहक को वसूली के लिये आई हुई चेक का वसूली के पहिले ही मूल्य देकर वह उसका अच्छी नीयत से मूल्य के विनिमय में किसी सन्देह के बिना प्राप्त करने वाला अधिकारी या चलन के अनुसार अधिकारी होने का दावा करता है तो वह ऐसा कर सकता है। किन्तु यदि उसने उसका मूल्य नहीं दिया है, अथवा उस पर के रेखाङ्कन के अन्दर अविनिमय साध्य (Not Negotiable) लिखा हुआ है तो यदि उस पर किसी भी बेचानकर्ता का जाली बेचान है तो उसका उपर्युक्त दावा नहीं चल सकता। अतः, जिस वैधानिक वचत का पहिले वर्णन किया जा चुका है वह वसूली करनेवाले बैंकों के लिये इस विशेष स्थिति में बहुत ही उपयोगी है।

(२) धरोहरी का सम्बन्ध

बैंक अपने ग्राहकों के धरोहरी भी होते हैं। इसका एक उदाहरण तो इस अध्याय के प्रारम्भ[1] ही मुख्य सम्बन्ध के शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा चुका

---

1 Official Assignee of Madras vs I W Irwin

है। हम यह भी जानते हैं कि वे अपने ग्राहकों की बहुमूल्य वस्तुयें, इत्यादि भी सुरक्षित दशा में रखने के लिये प्राप्त करते हैं। जब वह उस काम के लिये कुछ प्रतिफल नहीं लेते हैं तब तो वह मुफ्ती धरोहरी की स्थिति में रहते हैं और धरोहर की वस्तु की हानि हो जाने पर उसके लिये केवल एक बहुत बड़ी असावधानी (Gross negligence) करने पर ही दायी ठहराये जाते हैं। और जब वह इसके लिये कुछ प्रतिफल लेते हैं तब एक प्रतिफल पाये हुये धरोहरी की स्थिति में रहते हैं और तनिक सी भी असावधानी करने पर धरोहर की वस्तु की हानि हो जाने पर उसके लिये दायी ठहराये जाते हैं। किन्तु यह अंग्रेजी विधान के अनुसार है भारतीय विधान में मुफ्ती धरोहरी और प्रतिफल पाये हुये धरोहरी की स्थिति में कोई अन्तर नहीं है। उसके अनुसार तो एक धरोहरी को उसके पास जो धरोहर रक्खी जाती है उसके सम्बन्ध में उतनी ही सावधानी रखनी पड़ती है जितनी कि एक साधारण विचारवान मनुष्य उन्हीं स्थितियों में अपने स्वयं के उसी के परिमाण, किस्म और मूल्य के माल के सम्बन्ध में रखता है और यदि उसने ऐसा किया है तो धरोहर खो जाने, नष्ट हो जाने अथवा खराब हो जाने पर उसकी क्षति का दायी नहीं ठहराया जा सकता है। किन्तु यह वचत गलत सुपुर्दगी के सम्बन्ध में नहीं दी गई है। प्राय बैंक धरोहर की वस्तु मुहरबन्द स्थिति में लेते हैं और उनका एकमात्र दायित्व यही है कि वह उन्हें उसी मुहरबन्द स्थिति में या तो उसे रखने वाले को या उसके आदेश के अनुसार वापिस कर दें। कई मुकदमों में यह फैसला किया जा चुका है कि उसकी सुपुर्दगी किसी अनधिकृत व्यक्ति को कर देने से वह गलत सुपुर्दगी होगी और यह किसी हालत में भी खयानत (Conversion) अर्थात् अमानत को अपने प्रयोग में लाने से कम नहीं समझी जाती और उसी के अनुसार विधान द्वारा दण्डनीय मानी जाती है। किन्तु कभी-कभी बैंकों को कुछ साख-पत्र न केवल उन्हें सुरक्षित रखने के लिये वरन् उन पर की सामयिक आय और उनके पकने पर स्वय उन्हें वसूल करने के लिये भी रक्खे जाते हैं। ऐसी अवस्था में वह उन पर अपने ऋण की अदायगी के लिये साधारण स्वत्व-ग्रहणाधिकार (General Lien) भी स्थापित कर सकता है। वस्तुत बैंकों के साधारण स्वत्व ग्रहणा- धिकार (General Lien) को उनके अथवा अन्य व्यक्तियों के विशेष स्वत्व ग्रहणाधिकार की तुलना में भली भांति समझ लेना चाहिये।

साधारण स्वत्व-ग्रहणाधिकार बनाम विशेष स्वत्व ग्रहणाधिकार (General Lien *versus* Particular Lien)—विशेष स्वत्व ग्रहणाधिकार तो वह है जिसमे कोई वस्तु उस समय तक अपने पास रोक रखने का अधिकार है कि जब तक उसके सम्बन्ध के सब भुगतान न मिल जायँ। इसके विपरीत साधारण स्वत्व ग्रहणाधिकार वह है जिसमें कोई भी वस्तु उस समय तक रोक रखने का अधिकार है जब तक उसके मालिक के ऊपर कोई भी भुगतान बाकी रह जाय। बैंको के यह दोनों ही प्रकार के स्वत्व-ग्रहणाधिकार हैं किन्तु यदि किसी बैंक का किसी वस्तु पर कोई विशेष स्वत्व-ग्रहणाधिकार है तो उसी के साथ-साथ उस पर उसका साधारण स्वत्व-ग्रहणाधिकार नही ठहर सकता। उदाहरण के तौर पर मान लीजिये कि किसी बैंक के पास एक ८००० रुपये के ऋण के सम्बध में कोई १०००० रुपये की जमानत जमा है। अत., उसका इस जमानत में से ८००० रु० और उसका व्याज वसूल कर लेने का इस पर विशेष स्वत्व ग्रहणाधिकार है। किन्तु इसका शेष बचने पर उसके पास उसे अपने किसी अन्य ऋण के सम्बन्ध मे रोक लेने का कोई साधारण स्वत्व-ग्रहणाधिकार नही है। हाँ, यदि वह उसके पास उस विशेष ऋण की अदायगी के बाद भी छोड़ दिया जाता है तो अवश्य उस पर उसका साधारण स्वत्व ग्रहणाधिकार हो जाता है। स्वत्व-ग्रहणाधिकार जमानत बेंचने का अधिकार नही देता, वह केवल उसे रोक लेने ही का अधिकार देता है। जमानत काम में लाने के लिये पहिले अदालत से डिक्री के प्राप्त कर लेनी चाहिये, और फिर उस डिक्री के सम्बन्ध मे उसे कुर्क करवा लेना चाहिये और तब वह बेची जा सकती है। बैंकों का उनके पास वसूली के लिये आई हुई चेकों पर साधारण स्वत्व ग्रहणाधिकार हो जाता है और वह उनकी रकम अपने किसी भी ऋण की अदायगी में लगा सकते हैं। हाँ, यदि कोई रकम उनके पास किसी विशेष काम के लिये आई है तो अवश्य ही उसका प्रयोग उसी काम के लिए होना चाहिये।

(३) विशेष सम्बन्ध

किसी बैंकर और ग्राहक के बीच के उपर्युक्त सम्बन्ध तो उनके साधारण सम्बन्ध हैं, किन्तु इनके अलावा उनके कुछ विशेष सम्बन्ध भी हो सकते हैं। अत. ऐसी स्थिति मे बैंकर के ग्राहकों के प्रति कुछ विशेष दायित्व भी उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरण के तौर पर जैसा कि हम जानते हैं किसी बैंक को अपने दिवालिया ग्राहक की चेकों का भुगतान नहीं करना चाहिये। यदि

वह ऐसा कर लेता है तो सरकारी आसाइनी (Official Assignee) के प्रति जो उसके लेनदारों के हित के लिये उसकी सारी सम्पत्ति का स्वामी माना जाता है उसके लिये उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। उसे किसी ऐसे दिवालिये का हिसाब भी नहीं रखना चाहिये जिसको दिवाला अदालत द्वारा न छुटकारा मिला हो क्योंकि इसमें इस बात का डर है कि कहीं आगे चलकर उसमें अदालत द्वारा रकम न माँग ले जो उसके पास दिवालिया ने जमा की थी और धीरे धीरे निकाल ली है। हम यह भी देख चुके हैं कि किसी ग्राहक के स्वर्गवास की सूचना पा जाने पर बैंक को उसकी चेकों का भुगतान करना बन्द कर देना चाहिये। ऐसी स्थिति में या तो मृत ग्राहक का प्रबंधक (Executor) आवश्यक मृतलेख। अथवा प्रबन्धाधिकार या ग्राहक का कोई उत्तराधिकारी अपना उत्तराधिकार स्वयं ही पेश करते हैं और तब उन्हीं के अनुसार उपयुक्त अधिकारी के आदेशानुसार उसका भुगतान किया जाता है। यह भी पहिले ही बताया जा चुका है कि बैंक एक पागल ग्राहक की चेकों का भी भुगतान नहीं करता है। किन्तु ऐसा करने के पहिले उसे उसके सचमुच पागल हो जाने का पता लगा लेना चाहिये। यदि ग्राहक पागलखाने में भेज दिया गया है अथवा किसी न्यायालय द्वारा पागल घोषित कर दिया गया है तब तो बैंक के भुगतान रोक देने में कोई डर नहीं है। किसी नशे में मस्त ग्राहक की गणना भी पागल व्यक्ति ही में की जा सकती है अतः, ऐसे व्यक्ति के स्वयं ही अपनी चेक का भुगतान लेने के लिये आने पर भी बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये। हो सकता है कि ऐसा करने के पहिले कोई विश्वस्त साक्षी ले ली जाय। सत्य तो यह है कि ऐसे लोगों से बैंक को कोई सम्पर्क ही नहीं रखना चाहिये।

बैंकर को अल्पवयस्क ग्राहकों के साथ काम करने में भी बहुत सावधानी बरतनी चाहिये। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा है कि उन लोगों के पास उनके पावने की वसूली के सम्बन्ध में किसी को मुक्त कर देने की शक्ति न होने के कारण बैंकर को उनकी जमा भी उनके द्वारा निकाल लेने पर अन्त में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है, किन्तु कुछ जिम्मेदार व्यक्तियों ने कहा है कि विधान ने अल्पवयस्कों को जो बचत प्रदान कर रक्खी है वह इस सीमा तक नहीं जा सकती है। चलन तो यह है कि उनके हिसाब तो खोल लिये जाते हैं और उनमें से उन्हें रकम निकालने की आज्ञा भी प्रदान कर दी जाती है, किन्तु उन्हें जमा से अधिक रकम निकालने के लिये कभी

नहीं आज्ञा दी जाती। एक अल्पवस्यक वेचान कर सकता है और दूसरे की ओर से उनका प्रतिनिधि भी हो सकता है।

बैंकर को धरोहरियों के साथ काम करने मे भी बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये। यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि जिन लोगों के हित के लिये ऐसी धरोहर की जाती है उनके हितों का अदालत बहुत ध्यान रखती है और जिन्हे यह मालूम रहता है कि वह किसी धरोहर से सम्बन्ध रखने वाले कोष मे लेन-देन कर रहे हैं उनसे यह आशा की जाती है कि वह जाल, इत्यादि के सम्बन्ध मे साधारण तौर पर जो सावधानी करते हैं उससे कहीं अधिक सावधानी इस विशेष सम्बन्ध म करेंगे। धरोहरी लोग अपनी सामूहिक शक्ति अपने मे से किसी एक को नहीं सौंप सकते। वास्तव मे यह उसी स्थिति मे हो सकता है जब धरोहर सम्बन्धी पत्र मे ऐसा विशेष रूप से लिखा हो। अत, इस बात का पता लगाने के लिये कि सब धरोहरियों की ओर से किसी एक धरोहरी के हस्ताक्षर ठीक माने जायँ अथवा नहीं, धरोहर पत्र का अवश्य अध्ययन कर लेना चाहिये। यदि एक ग्राहक का एक हिसाब तो उसके स्वय के नाम में है और दूसरा किसी धरोहर के नाम मे है तो यदि वह धरोहर के हिसाब मे से कुछ रकम अपने निजी हिसाब मे हस्तान्तरित कर देता है तो बैंकर को आवश्यक पूछताछ कर लेनी चाहिये। धरोहर के तनिक भी भङ्ग हो जाने की शका हो जाने पर बैंकर को बहुत ही सावधान हो जाना चाहिये। ऐसे हिसाब के सम्बन्ध मे तनिक-सी भूल नहीं करनी चाहिये।

बैंकर को अपने ग्राहकों के कर्मचारियों और प्रतिनिधियों से लेन-देन करने मे भी यथेष्ट सावधानी बरतनी चाहिये। बात यह है कि इन लोगों के अधिकार सीमित रहते हैं। अत:, जब भी यह कोई काम करते हैं तभी इस बात का पता लगा लेना चाहिये कि इन्हें वह काम करने का अधिकार है अथवा नहीं। विनिमय साध्य पुर्जों के भारतीय विधान की २७वीं धारा मे यह लिखा हुआ है कि काम करने के और ऋण की वसूली तथा भुगतान करने के एक साधारण अधिकार के यह अर्थ नहीं हैं कि कर्मचारियों अथवा प्रतिनिधियों को अपने मालिक तथा मुखिया के विनिमय बिल स्वीकार करके और बेचान करके उन्हे बाँधने का भी अधिकार मिला हुआ है। इन लोगों के, जब उनके मालिकों के हिसाब के साथ-साथ स्वय के भी हिसाब होते हैं, तब बैंकर को इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि मालिकों के हिसाब से

उनके स्वयं के हिसाब में यदि कोई रकम हस्तान्तरित होती है तो यह उस पर यथेष्ट ध्यान रक्खे। वसूली करनेवाले बैंक को तो बहुत ही सावधान रहना चाहिये, क्योंकि इस मामले की तनिक-सी भी असावधानी हो जाने पर उसे विनिमय साध्य पुर्जों के भारतीय विधान की १३१वीं धारा के अनुसार जो बचत मिली हुई है उसके समाप्त हो जाने का डर है। इंगलैण्ड में रिगेल बनाम फारस के मुकदमे में जिसमें एक व्यापार में सम्बन्धित साझी ने अपने मालिक को देय चेक से जिस पर उसने अदालत द्वारा दिये गये अधिकार के नाम से (Per Procuration) बेचान करके एक बैंक में अपने नाम का खाता खोल लिया था, यह निश्चय हुआ था कि ऐसे बेचान पर यह बात पता चलने के कारण कि बेचान करनेवाले को बहुत ही सीमित अधिकार हैं, बैंक को उसके अधिकारों का पता लगा लेना चाहिये था और उसने ऐसा न करके एक बहुत बड़ी असावधानी दिखलाई थी। वस्तुतः बैंकों को ऐसे हस्ताक्षर देखते ही उनके सम्बन्धी अधिकार पत्र अवश्य देख लेने चाहिये।

अन्तिम, बैंकों को किसी संयुक्त हिन्दू परिवार के खातों के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि उसकी सब चेकों पर परिवार के प्रबन्धकर्ता के ही, जिसे केवल कर्ता कहते हैं और जो प्रायः परिवार का सबसे बड़ा पुरुष व्यक्ति होता है, हस्ताक्षर होने चाहियें। बात यह है कि विधानतः वही संयुक्त परिवार के फर्म की ओर से सब काम कर सकता है। यह साझे की फर्म के बिल्कुल विपरीत है, जहाँ साझे के सभी सदस्यों के विधानतः एक से अधिकार रहते हैं।

प्रश्न

(१) ग्राहक की परिभाषा दीजिये और उसके सम्बन्ध की विशेष बातें बताइये।

(२) किसी बैंक में प्रायः कौन-कौन से खाते खोले जा सकते हैं? उन्हें खोलने के क्रम बताइये।

(३) किसी बैंकर और ग्राहकों के बीच में किस प्रकार के सम्बन्ध खड़े हो सकते हैं? मुख्य सम्बन्ध की विशेषतायें बताइये।

(४) चेकों पर के जाल के सम्बन्ध में बैंकों को कौन-कौन सी बचत दी गई हैं। इस सम्बन्ध में (अ) एक जाली बेचान-युक्त चेक के और (ब) एक जाली हस्ताक्षर-युक्त चेक के भुगतान हो जाने पर बैंक के दायित्व पर प्रकाश डालिये।

(५) किसी चेक का बेचान करने के क्या अर्थ है? चेको पर कब और कैसे बेचान करने चाहिये। विभिन्न प्रकार के बेचान बताइये।

(६) कोई बैंक अपने ग्राहको की चेकें किन-किन परिस्थितियो मे भुगतान किये बिना ही वापिस कर सकता है?

(७) चेकें भुगतान किये बिना ही वापिस करने पर बैंक प्राय कौन-कौन से कारण लिख भेजते है? उन्हे भली भाँति समझाइये।

(८) यदि कोई बैंक कोई चेक भुगतान किये बिना ही गलती से लौटाल दे तो उसके कौन-कौन से दायित्व है? अपने उत्तर के साथ-साथ उपयुक्त उदाहरण भी दीजिये।

(९) एक स्थानीय (Domiciled) बिल के भुगतान के सम्बन्ध में किसी बैंक के कौन-कौन से दायित्व है? ऐसे बिल किन-किन परिस्थितियो में तिरस्कृत किये जा सकते हैं।

(१०) एक रेखाङ्कित चेक की वसूली के सम्बन्ध मे उसके वसूल करनेवाले बैंक को कौन-कौन से अधिकार और दायित्व है? इस सम्बन्ध मे उसे जो वैधानिक बचत दी गई है, उसे स्पष्ट कीजिये।

(११) रेखाङ्कन से आप क्या समझते हैं? उसके भिन्न-भिन्न रूप बताइये। रेखाङ्कन का क्या उद्देश्य है।

(१२) बैंकर के स्वत्व (Lien) ग्रहणाधिकार से आप क्या समझते है? इस सम्बन्ध में साधारण स्वत्व-ग्रहणाधिकार और विशेष स्वत्व-ग्रहणाधिकार के अन्तर बताइये।

(१२) बैंको को किन विशेष प्रकार के ग्राहको से काम करना पडता है? उन्हे इनसे काम करने में किन बातो का ध्यान रखना चाहिये?

अध्याय १०

ऋण के लिये बैंकों की उपयुक्त जमानतें

यह तो हम पहिले ही देख चुके हैं कि बैंक केवल अच्छी जमानतों के आधार पर ही ऋण देते हैं। वास्तव में इनके अनेक रूप हैं। इनकी जो जोखिमें हैं उन्हें समझने के लिये हमें उनमें से प्रत्येक के विषय में बहुत ही

अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये। बैंकों को किसी प्रकार की जमानत पर भी काम करने के समय बहुत ही सावधान रहना चाहिये। उन्हें न केवल यही देखना चाहिये कि जमानतें मूल्य की पक्की और शीघ्र ही बिक जाने वाली हैं वरन् यह भी देखना चाहिये कि उन पर उनके अधिकार सुरक्षित नहीं होंगे।

जमानत के बिना ऋण (Clear advances)

कई बार जब कोई ग्राहक बहुत ही ऊँची साख का होता है और उसकी आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी होती है तब उसे केवल उसकी वैयक्तिक जमानत पर ही ऋण मिल जाता है अथवा उसके खाते में से उसे जमा की हुई रकम से अधिक रकम निकाल लेने का अधिकार प्रदान कर दिया जाता है। ऐसी अवस्था में बैंकर केवल उसकी ईमानदारी, चाल-चलन और उसके तथा व्यापारिक ढंग पर ही भरोसा रखता है। हाँ, कभी-कभी अपनी बचत के ध्यान से वह उसके लिखे हुए प्रण-पत्र पर किन्हीं एक अथवा दो स्वतन्त्र व्यक्तियों के हस्ताक्षर भी ले लेता है, जिससे उस ऋण के सम्बन्ध की उनकी भी वैयक्तिक जमानत हो जाती है। किन्तु समय पर ऋण की वसूली न होने पर मुख्य देनदार तो ऋण लेने वाला व्यक्ति ही होता है। बैंकर को जामिन के प्रति अपने अधिकारों का तभी प्रयोग करना चाहिये जब उसकी पूरी रकम देनदार की स्वयं की सम्पत्ति से न वसूल हो सके। ऐसे ऋण बिना जमानती ऋण (Clean advances) कहे जाते हैं।

उपर्युक्त जमानत चालू (Continuing) और विशेष (Specific) भी हो सकती है। चालू जमानत की अवस्था में जमानत करने वाला व्यक्ति एक विशेष रकम तक चाहे वह कितनी बार ही क्यों न ली दी जाय, दायी रहता है और विशेष जमानत की अवस्था में वह केवल एक ही बार दी हुई रकम पर दायी रहता है। मान लीजिये कि 'अ' पाँच सौ रुपये का ऋण लेता है, और कुछ ही दिनों बाद वह २०० रु० वापिस कर देता है, किन्तु फिर १०० रु० ले लेता है। अब, उस पर ४०० रु० की बाकी बची है। अत, चालू ज़मानत में जमानत करनेवाला व्यक्ति ४०० रु० के लिये दायी है और वह उस २०० रु० का लाभ नहीं उठा सकता जो 'अ' ने पहिले वापिस किये थे। हाँ, विशेष जमानत में वह ३०० रु० के लिये दायी होगा क्योंकि २०० रु० तो 'अ' ने वापिस कर दिये थे। इस अवस्था में उससे उन १०० रु० से कोई मतलब नहीं है जो 'अ' ने बाद में फिर

लिये थे। जमानत करनेवाला व्यक्ति जब जमानत की रकम दे देता है तब वह यह रकम मुख्य देनदार से वसूल कर सकता है।

अतिरिक्त आनुसंगिक जमानत (Collateral Securities)

उधार लेनेवाले व्यक्तियों को उधार रकम के सम्बन्ध में प्राय कुछ अतिरिक्त (आनुसगिक) जमानत भी जमा करनी पडती है। अतिरिक्त (आनुसंगिक) जमानत किसी भौतिक पदार्थ की अथवा उनके सम्बन्ध के अधिकार पत्रों की हो सकती है। यह जमानत वैयक्तिक जमानत के अतिरिक्त होती है और इसीलिये अतिरिक्त जमानत कहलाती है। वास्तव मे इन्हें बेचकर ऋण की वसूली तभी की जा सकती है जब देनदार उसे वैसे ही देने से इन्कार कर दे अथवा न दे। यह अतिरिक्त जमानत स्वत्व-ग्रहणाधिकार (Lien) के अथवा गिरवी (Pledge) के अथवा रेहन (Mortgage) के रूप मे हो सकती हैं।

स्वत्व ग्रहणाधिकार में जमानत अपने पास रोक रखने का अधिकार है, उसे बेचा नहीं जा सकता। हाँ, यदि ऐस करना है तो पहले अदालत से डिक्री प्राप्तकरनी पड़ती है और फिर उस डिक्री मे वह चीज कुर्क करवानी पड़ती है और तब वेचा जा सकता है। किन्तु पूर्ण रूप से विनिमय साध्य पत्रो की ज़मानतों मे जैसे देखनहार शेयर वारण्ट, स्टाक और सर्टीफिकेट, देखनहार और रजिस्टर्ड ऋण-पत्र, विनिमय बिल, प्रण-पत्र और चेकों मे बैंक के स्वत्व (ग्रहणाधिकार) मे देनदार को उचित सूचना देकर इन्हें बेच लेने का भी अधिकार है। जहाँ तक अन्य अधिकार-पत्रो का प्रश्न है उनमे अवश्य यह अधिकार नहीं है। उन्हे केवल रोका जा सकता है।

गिरवी की हालत में बैंकर को जमानत रोकने और फिर उचित सूचना देकर बेचने का भी अधिकार है। अत', स्वत्व (ग्रहणाधिकार और गिरवीं मे पूर्ण रूप से विनिमय साध्य पत्रो को छोडकर शेप में यही अन्तर है कि जब एक मे जमानत की वस्तुये केवल रोकी ही जा सकती हैं, दूसरे में वे बेची और रोकी दोनों जा सकती हैं। इसका यह निष्कर्ष है कि गिरवी स्वत्व (ग्रहणाधिकार) से अधिक अच्छा है।

जब जमानत अचल सम्पत्ति की दी जाती है तब उसका रेहन करवाना पड़ता है। इसमे स्वत्व (ग्रहणाधिकार) और गिरवी के विपरीत जमानत की वस्तु का कब्जा लेनदार का नहीं हो जाता। वह या तो देनदार का ही रहता हे अथवा देनदार जिसे चाहता हे उसका रहता है। इसमे प्रायः

स्वामित्व अवश्य हस्तान्तरित हो जाता है। ल्यन (ग्रहणाधिकार) और गिरवी में जैसा कि हमें मालूम है कब्जा तो प्राय बदला जाता है किन्तु स्वामित्व नहीं बदलता। किन्तु यहाँ पर जो कुछ रेहन के विषय में कहा गया है। वह केवल वैधानिक रेहन (Legal Mortgage) के लिये ही लागू है। वास्तव में रेहन कई प्रकार के होते हैं, किन्तु यहाँ पर हमें केवल वैधानिक रेहन (Legal Mortgage) और सादे रेहन (Equitable Mortgage) के विषय में ही समझना है। वैधानिक रेहन रेहननामे के आधार पर होता है जिसे लिखाने के लिये एक सरकारी कागज का प्रयोग किया जाता है और जो रेहन के रजिस्ट्रार के पास रजिस्टर्ड कराया जाता है। इसके विपरीत सादा रेहन (Equitable Mortgage) में केवल अधिकार-पत्र अकेले ही अथवा एक स्मरण-पत्र (Memorandum) के साथ अथवा केवल स्मरण-पत्र (Memorandum of Charge) ही जिसके पास रेहन रक्खा जाता है उसे सौंप दिया जाता है। अब, दोनों में यह अन्तर है कि जब कि पहले में रेहन की सम्पत्ति का स्वामित्व जिसके पास वह रेहन की जाती है उसका हो जाता है और इसीसे उसे ऋण की अदायगी न होने पर उसे बेच लेने का अधिकार रहता है, दूसरे में ऐसा नहीं हो पाता। इसमें जिसके पास रेहन रक्खा जाता है उसे पहले अदालत की शरण लेनी पड़ती है और उसकी आज्ञा प्राप्त करने के बाद ही वह उसे बेच सकता है। सादा रेहन (Equitable Mortgage) भारतवर्ष में केवल कलकत्ते, मद्रास, बम्बई, कराँची और उन शहरों में ही किया जा सकता है जिन्हें गवर्नर जनरल समय-समय पर गजट में निकालता है। वैधानिक रेहन में भी ऋण की अदायगी के बाद रेहन रखनेवाले को रेहन रक्खी हुई सम्पत्ति का फिर से स्वामित्व प्राप्त हो जाता है। रेहन रखनेवाले की यह अधिकार प्राप्ति छुटकारे का दावा (Equity of Redemption) कहा जाता है।

अतिरिक्त (आनुसंगिक) जमानतों के विभिन्न रूप

अतिरिक्त (आनुसंगिक) जमानतें विभिन्न रूप की हो सकती हैं जो निम्नाङ्कित हैं :—

(१) स्टाक एक्सचेंज में बिकनेवाले पत्र

इनमें सरकार के और कम्पनियों के दोनों के पत्र आ जाते हैं। ये (अ) पूर्ण रूप से विनिमयसाध्य हस्तान्तरित होनेवाले (Fully Negotiable-Convertible) और (ब) अविनिमयसाध्य हस्तान्तरित न होनेवाले

(Non-negotiable Inconvertibee) दोनों होते हैं। हस्तान्तरित न होनेवाले स्टाक फिर से रजिस्टर में स्वय हस्ताक्षर करने पर हस्तान्तरित होने वाले (Inscribed) और हस्तान्तर-पत्र (Transfer deed) भरकर हस्तान्तरित होनेवाले (Registered Stocks and Shares) स्टाकों मे विभाजित किये जा सकते हैं। पूर्ण रूप से विनिमयसाध्य स्टाक दूसरो को देकर अथवा बेंचान करके हस्तान्तरित किये जा सकते हैं। हस्तान्तरित न होने वाले वह स्टाक जो रजिस्टर में स्वय हस्ताक्षर करने पर हस्तान्तरित किये जा सकते हैं (Inscribed) वह हैं जिन्हें हस्तान्तरित करने के लिये हस्तान्तरकर्ता को स्वय कम्पनी में जाकर अथवा अपना कोई प्रतिनिधि भेजकर कम्पनी के रजिस्टर में हस्ताक्षर करना पडता है। अत , वह दूसरों को देकर अथवा बेचान करके हस्तान्तरित नहीं किये जा सकते। इसलिये इनके रेहन रक्खे जाने पर बैंकर को इन पर अपना पूरा अधिकार प्राप्त करने के लिये इनके मालिक से इनके हस्तान्तरित किये जाने के प्रमाणस्वरूप कम्पनी के रिजस्टरों मे हस्ताक्षर करवा लेने चाहिये। जहाँ तक हस्ताक्षर-पत्र भरकर हस्तान्तरित होनेवाले स्टाकों (Registered stocks) का प्रश्न है उनके हस्तान्तर होने का प्रमाण उन्हे निकालनेवाली कम्पनी एक मुहरबन्द प्रमाण-पत्र देकर दे देती है और वह वैधानिक तौर से (Legal transfer) अथवा सादे तौर से (Equitable charge) हस्तान्तरित किये जा सकते हैं। वैधानिक तौर से हस्तान्तरित करने के लिये (Legal transfer) एक हस्तान्तर-पत्र लिखना अथवा लिखकर मोहर करवाना पडता है और जब उसका प्रमाण-पत्र (Certificate) हस्तान्तर-पत्र सहित कम्पनी के पास पहुँच जाता है तब वह उसके अधिकारी के स्थान पर बैंकर का नाम दर्ज करके बैंकर को एक दूसरा प्रमाण-पत्र (Certificate) भेज देती है। इसके विपरीत सादे तौर से हस्तान्तरित करने के लिये (Equitable charge) प्रमाण-पत्र (Certificate) को जमा करने के एक स्मरण-पत्र (Memorandum of deposit) सहित अथवा उसके बिना अथवा हस्तान्तरित करने के एक स्मरण-पत्र तथा एक सादे हस्तान्तर-पत्र पर हस्ताक्षर करके बैंकर के पास जमा कर देना पड़ता है। जब प्रमाण-पत्र (Certificates) जमा किये जाते हैं तब उनके साथ प्रायः जमा का एक स्मरण-पत्र (Memorandum of deposit) और हस्ताक्षर किया हुआ एक सादा हस्तान्तर-पत्र (Duly Executed Blank-Transfer) अवश्य रहता है। बात यह है कि जब इससे बैंकर के लिये यह सुविधा हो जाती है कि जब उसकी ऋण की रकम वसूल नहीं होती तब वह

हस्ताक्षर किये हुये द्वारा हस्तान्तर-पत्र भरकर कम्पनी को सूचना देकर स्टाक अपने नाम में हस्तान्तरित करा लेता है। इसके विपरीत जब केवल प्रमाण-पत्र ही जमा रहते हैं अथवा उनके साथ जमा का स्मरण-पत्र भी होता है, तब उधार की रकम न मिलने पर बैंक देनदार को कहलवाकर उसके स्टाकों को वैधानिक तौर से हस्तान्तरित करने को कहता है और उसके ऐसा न करने पर अदालत से उनके हस्तान्तर करने की और बेचने की आज्ञा प्राप्त करता है। इसमें उसे बहुत असुविधा होती है। अतः, इस तरह की जमानत प्राय चालू नहीं है।

स्टाक एक्सचेंज में बिकने वाले पत्र

- पूर्ण रूप से अच्छा अधिकार देने वाले स्टाक—हस्तान्तरित होने वाले स्टाक (इन्हें दूसरों को देकर अथवा बेचान करके हस्तान्तरित किया जा सकता है)
- पूर्ण रूप से अविनिमयसाध्य स्टाक—हस्तान्तरित न होने वाले स्टाक
  - रजिस्टर में स्वयं हस्ताक्षर करने पर हस्तान्तरित होने वाले स्टाक (Inscribed stocks) इन्हें दूसरों को देकर अथवा बेचान करके हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता। इनके अधिकारी को स्वयं अथवा किसी प्रतिनिधि से कम्पनी के रजिस्टरों में हस्ताक्षर करवाने पड़ते हैं।
  - हस्तान्तर-पत्र भरकर हस्तान्तरित होने वाले स्टाक (Registered stocks and shares)
    - वैधानिक तौर से हस्तान्तरित होना (Legal transfer)—इसमें हस्तान्तर-पत्र भरकर कम्पनी में भेजना पड़ता है।
    - सादे तौर से हस्तान्तरित होना (Equitable charge)—इसमें प्रमाण-पत्र जमा के अथवा हस्तान्तर करने के स्मरण-पत्र के साथ

अथवा किसी ऐसे पत्र के बिना ही और एक सादे हस्ताक्षर किये हुये हस्तान्तर पत्र के साथ रख दिया जाता है।

गुण—(१) ये आसानी से और शीघ्रतापूर्वक वसूल किये जा सकते हैं।

(२) इनकी वास्तविक बाजारू कीमत आसानी से मालूम की जा सकती है।

(३) इनकी कीमत बहुत नहीं घटती-बढती।

(४) इनके स्वामित्व मे कोई झगडा नहीं होता। अतः, यह आसानी से बेचे जा सकते हैं।

(५) पूर्ण रूप से विनिमयसाध्य स्टाकों के सम्बन्ध मे यदि उन्हें अच्छी नीयत से और उनकी पूरी कीमत चुका कर प्राप्त किया गया है तो बैंकर के पास उनका अच्छा अधिकार रहता है, और जब तक उसके ऋण की रकम का भुगतान नहीं हो जाता, वह उन्हें प्रत्येक व्यक्ति के विरोध मे भी अपने पास रख सकता है।

(६) यदि बैंकर द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है तो वह इन्हें केन्द्रीय बैंक में रखकर इन पर ऋण प्राप्त कर सकता है।

दोष—(१) जिन हिस्सों अथवा ऋण-पत्रों पर आंशिक भुगतान हुआ है उन पर कुछ और भुगतान माँगा जाने पर बैंकर को वह भुगतान देना पड़ सकता है, क्योंकि भुगतान न पहुँचने पर उनके जब्त हो जाने का डर रहता है।

(२) कुछ कम्पनियों की यह शर्त होती है कि हिस्सेदार के ऊपर कम्पनी की कोई भी रकम बाकी रहने पर वह उसके हिस्से से वसूल की जायगी। यदि ऐसा है और बैंकर को यह नहीं मालूम है कि हिस्सेदार के ऊपर कम्पनी की कोई रकम चाहिये तो बाद मे अपनी रकम वसूल करते समय उसे यह मालूम होने पर कि पूरी रकम वसूल नहीं की जा सकती उसे हानि हो सकती है।

(३) जब यह पूर्ण रूप से विनिमयसाध्य हस्तान्तरित होने वाली नहीं होती तब इनके हस्तान्तर करवाने मे बड़ी कठिनाई पड़ती है। ऐसी अवस्था मे बैंकर का अधिकार हस्तान्तरकर्ता के अधिकार की ही तरह का का होता है और उसके दूषित होने पर उसका अधिकार भी दूषित हो जाता है।

सावधानियाँ—स्टाक एक्सचेंज में बिकने वाले पत्रों की ज़मानतों के सम्बन्धों में यदि निम्न बातें ध्यान में रक्खी जायँ तो उनके सब दोष दूर हो सकते हैं।

(१) यथासम्भव गुंजाइश देनी चाहिये। जब कभी भी मूल्य गिर जाय, और अधिक ज़मानत माँग लेनी चाहिये।

(२) आंशिक भुगतान वाले हिस्से और ऋण पत्र कभी नहीं लेने चाहिये।

(३) अविनिमयसाध्य पत्रों की अवस्था में पहिले के हस्तान्तर करवा लेना चाहिये।

(४) घटे भाव के हिस्से नहीं लेने चाहिये।

(२) विनिमयसाध्य पुर्जे

हमें यह तो ज्ञात ही है कि विनिमय बिल बैंकों से भुनवाये जा सकते हैं। अत, जब वह ऐसा करते हैं तब उन पर उन्हें पूरे अधिकार मिल जाते हैं जिससे वे उन्हें बेच भी सकते हैं और दूसरों से फिर से भुना भी सकते हैं। हाँ, यदि यह गिरवी रक्खे जाते हैं तो बैंकर ऐसा नहीं कर सकता। उसे इन्हें इनके पकने तक अपने पास रखना ही पड़ता है। अत, बैंकर के विचार से तो इन्हें उसके हाथ बेच देना ही अच्छा है, गिरवी रखना नहीं।

गुण—(१) यदि बैंकर ने इन्हें अच्छी नीयत से प्राप्त किया है तो उसका इन पर अच्छा अधिकार ही रहता है।

(२) इनका मूल्य निर्धारित रहता है।

(३) इन्हें फिर से भुनाया जा सकता है।

(४) इनके पकने पर द्रव्य मिलना निश्चित है।

दोष—इनके पकने पर बैंकर को इनकी वसूली करनी पड़ती है।

सावधानियाँ—जहाँ तक हो सके इन्हें भुना दिया जाय गिरवी न रक्खा जाय।

(३) माल अथवा माल के अधिकार-पत्र

जब माल बैंकर के यहाँ गिरवी रक्खा जाता है तब या तो वह उसी के गोदाम में ले आया जाता है या उधार लेने वाले के पास ही छोड़ दिया जाता है। यदि यह उधार लेने वाले के पास ही छोड़ दिया जाता है तो उसके गोदाम की तालियाँ अवश्य बैंकर को ही दे दी जाती हैं। दोनों ही स्थितियों में माल

का बीमा करना पड़ता है और उसका खर्च उधार लेने वाले को देना पड़ता है। जब माल बैंकर के गोदाम में रक्खा जाता है तब वह उसका किराया भी ले लेता है। माल के अधिकार-पत्र भी गिरवी रक्खे जा सकते हैं। इनमें जहाजी बिल्टी (Bill of ladings), डाक पत्र (Dock-warrant), गोदाम वालों के प्रमाण-पत्र (Warehoues keeeper's certificates) घटवारे का प्रमाण-पत्र (Wharfinger's certificate), रेल की बिल्टी (Railway Receipt), माल देने के लिये आदेश पत्र तथा ऐसे ही कोई अन्य कागजात जो माल का स्वामित्व हस्तान्तरित करने मे काम मे लाये जाते हैं, सम्मिलित हैं।

गुण—(१) माल और माल सम्बन्धी कागजात एक प्रकार से स्वय वास्तविक वस्तु हैं अथवा उनके प्रतिनिधि हैं। अत, जमानत के लिये बहुत अच्छे हैं।

(२) इनके मूल्य नहीं घटते-बढते।

(३) इन्हें बहुत आसानी से बेचा जा सकता है।

(४) इनकी जमानत पर जो ऋण दिया जाता है उसके अवश्यमेव भुगतान होने की सम्भावना रहती है। बात यह है वह द्रव्य इन्हीं के क्रय के लिये लिया जाता है और इन्हीं के विक्रय पर वापिस कर दिया जाता है।

(५) इनका मूल्य आसानी से मालूम हो जाता है।

दोष—(१) माल खराब हो सकता है।

(२) इनके मूल्य में दैनिक परिवर्तन होता है। हाँ, यह परिवर्तन बहुत अधिक नहीं होता।

(३) कभी-कभी एक ही माल कई किस्म का होता है। अत, इसमें धोखा दिया जा सकता है।

(४) कुछ माल रखने मे बहुत जगह की आवश्यकता पड़ती है।

(५) इसमें चोरी हो जाने की भी बड़ी आशका रहती है।

(६) इन्हें देनदार थोड़ी थोड़ी रकम देकर थोड़े-थोड़े परिमाण में उठाता रहता है। अत, माल देने में गलती हो सकती है।

(७) माल सम्बन्धी अधिकार-पत्रों में जालसाजी की बड़ी गुञ्जाइश रहती है।

भारतवर्ष में इनके प्रिय न होने के कारण—(१) यहाँ पर लाइसेन्स प्राप्त गोदाम नहीं के बराबर हैं।

(२) प्रायः माल की उचित कीमत निर्धारित नहीं है और जहाँ पर होता है भी वहाँ पर उसका उचित ध्यान नहीं रक्खा जाता।

(३) बहुत सी दशाओं में बहुत-सी चीजों का संगठित बाजार नहीं है। अतः, उनके मूल्य का पता लगाने में असुविधा होती है।

सावधानियां—(१) जिस माल के खराब हो जाने की अधिक सम्भावना है उसे नहीं रखना चाहिये और यदि वह रखना भी जाय तो उसका बीमा करवा लेना चाहिये। जहाँ तक माल खराब हो जाने का डर है, सोना-चाँदी खराब नहीं होता है। अतः यह सर्वोत्तम है।

(२) माल के मूल्य का बराबर पता लगाते रहना चाहिये। वास्तव में उधार देते समय ही यथेष्ट गुञ्जाइश रख लेनी चाहिये और यदि मूल्य बहुत कम हो जाय तो और अधिक अतिरिक्त जमानत मँगवा लेनी चाहिये।

(३) जो माल रक्खा जाय उसकी किस्म समझ लेने के लिये एक बहुत ही अनुभवी व्यक्ति रखना चाहिये।

(४) जब माल छोड़ा जाय तब बहुत निगाह रखनी चाहिये। जहाँ तक हो सके इसके लिये एक अलग गुमाश्ता होना चाहिये।

(५) माल सम्बन्धी कागजों पर उधार देने के पहिले उनकी वास्तविकता का पता लगा लेना चाहिये। साथ ही उनके वास्तविक अधिकारी की भी जाँच-पड़ताल करा लेनी चाहिये।

(६) बैंकर को वही माल लेने चाहिये जिन्हें वह अपने गोदाम में आसानी से रख सकता हो। यदि माल ऋणी के ही गोदाम में छोड़ दिया जाता है तो उसके गोदाम की जाँच करवा लेनी चाहिये और उसके दोष दूर करवा देने चाहिये। खत्तियों में कच्ची खत्तियों की तुलना में पक्की खत्तियाँ कहीं अच्छी होती हैं।

(७) सबसे आवश्यक तो यह है कि बैंकर को ऋण लेने वाले की ईमानदारी इत्यादि का पता लगा लेना चाहिये। जो काम वह करता हो उसमें उसे होशियार होना चाहिये।

(८) बैंकर को अपने ग्राहकों के कर्मचारियों इत्यादि को उधार देते समय बहुत सावधान रहना चाहिये। प्राय इनके अधिकार सीमित रहते हैं।

(९) माल गिरवी रक्खे जाने का प्रमाण बराबर लिखित रूप में ले लेना चाहिये।

(१०) जहाजी बिल्टी (Bill of lading) की कई प्रतिलिपियाँ होती हैं। अत, सब ले लेनी चाहिये जिससे जाल न किया जा सके।

(४) जान बीमा-पत्र

बीमे का प्रस्ताव पत्र भरते समय यदि कोई बात गलत नही लिखी गई है तो जान बीमा-पत्र के आधार पर उसके परित्यज्य मूल्य (Surrender Value) तक की रकम बहुत ही अच्छी तरह से उधार दी जा सकती है। किन्तु बैंकों के पास प्रायः जो जमानतें रहती हैं उनमे यह बहुत अधिक मात्रा में नही पाया जाता। बात यह है कि बीमा कम्पनियों के स्वय ही बीमा-पत्रो के आधार पर रकम उधार देने के लिये तैयार रहने के कारण अधिकाश मे इनके आधार पर उन्हीं से ऋण ले लिया जाता है और इसमे बीमा कम्पनियो को तथा उधार लेने वाले दोनो को बहुत ही सुविधा रहती है। इनका भी वैधानिक रेहन (Legal mortgage) अथवा सादा रेहन (Equitable mortgage) हो सकता है। सादे रेहन मे बीमा-पत्र दे दिया जाता है, चाहे साथ मे जमा करने का स्मरण-पत्र दिया जाय अथवा नही। इसके विपरीत वैधानिक रेहन मे एक बेची-पत्र (Deed of assignment) भी भरा जाता है जिसमे मूलधन और ब्याज देने का वायदा रहता है और बीमा पत्र के ऋण की अदायगी हो जाने पर छुटकारे की शर्त के साथ उसकी बेची भी रहती है।

गुण—(१) इनका त्याज्य मूल्य आसानी से मालूम किया जा सकता है। प्राय., इनकी पीठ पर इसे निकालने का तरीका दिया रहता है। साथ ही बीमा कम्पनी से भी इसका पता लगाया जा सकता है।

(२) यदि बीमे का प्रतिफल बराबर चुकता होता रहता है तो इनका त्याज्य मूल्य भी बराबर बढ़ता जाता है।

(३) यदि बीमा-पत्र स्मरण-पत्र के बिना नही जमा कर दिया जाता है तो भी ऋण लेने वाले के दिवालिया हो जाने पर पहले बैंकर को बीमा-पत्र से ऋण की रकम वसूल करने का अधिकार रहता है और फिर उसके बाद सरकार द्वारा निर्धारित इविकर्ता का अधिकार होता है।

(४) ऋण लेने वाले के एक विशेष आयु पर पहुँचने पर अथवा मर जाने पर उसका जान बीमा-पत्र स्वय ही पक जाता है।

(५) यदि जान बीमा-पत्र की बेची हो गई है और बीमा कम्पनी को सूचना दी जा चुकी है तो यह पूर्ण रूप से सुरक्षित रहता है। इसमें अधिकार के खराब होने का प्रश्न नही उठ सकता।

(६) आवश्यकता पड़ने पर बैंकर इसकी बेची किसी अन्य धनी के नाम भी कर सकता है।

दोष—(१) यदि प्रस्ताव-पत्र ठीक नहीं भरा गया था तो बीमा-पत्र के पकने पर वह अवैध ठहराया जा सकता है।

(२) यदि बीमा कराने वाले की आयु का प्रमाण बीमा कम्पनी के द्वारा पहले से स्वीकृत नहीं कराया जा चुका है तो बीमा कराने वाले की मृत्यु पर बैंकर को पैसा कराने में कठिनाई पड़ सकती है।

(३) प्राय आत्महत्या और न्यायालय की ओर से फाँसी की सजा बीमा पत्रों के अन्दर नहीं सम्मिलित होती।

(४) बीमा प्राय विधवा और बच्चों के हित के लिये करवाया जाता है। अतः, बैंक के लिये उसकी रकम लेना भलमनसाहत नहीं समझी जाती।

(५) बीमे का मूल्य उसका प्रतिफल देने से ही बढ़ता है। अतः, यदि बीमा कराने वाला यह प्रतिफल नहीं देता तो उसे बैंक को देना पड़ सकता है।

(६) यदि बीमा किसी अन्य व्यक्ति ने करवाया है तो जिसकी जान का बीमा हुआ है उसकी जान में बीमा कराने वाले की आर्थिक दिलचस्पी न होने के कारण बीमा अवैध सिद्ध हो सकता है।

(७) यदि बीमा-पत्र नहीं ले लिया गया है तो यह किसी और के नाम बेचा जा सकता है। वास्तव में जो व्यक्ति भी पहले बीमा कम्पनी को बीमे की बेची की सूचना दे देता है वही उसे पाने का हकदार समझा जाता है।

सावधानियाँ—(१) बैंकर को यह बात देख लेनी चाहिये कि जिसका जान बीमा कराया गया है उसकी आयु का प्रमाण बीमा कम्पनी ने मान लिया है।

(२) उसे यह भी देख लेना चाहिये कि बीमा कराने वाले जिसका जान बीमा कराया गया है उसकी जान में बीमा कराने के समय आर्थिक दिलचस्पी थी।

(३) उसे सादे रेहन की अपेक्षाकृत वैधानिक रेहन पर अधिक जोर देना चाहिये।

(४) उसे यह बात देखते रहना चाहिये कि प्रतिफल देने की रसीदें बराबर उसके यहाँ जमा होती रहती हैं और प्रतिफल बराबर दिया जाता है।

(५) उसे बीमा कम्पनी को रेहन की सूचना दे देनी चाहिये और इस बात का पता लगा लेना चाहिये कि वह पहले से तो रेहन नहीं थी ।

(६) बैंकर की दृष्टि से एक निश्चित अवधि पर अथवा यदि उससे पहिले मृत्यु हो जाय तो उस पर पकने वाला बीमा (Endowment) केवल मृत्यु पर पकने वाले बीमे (Whole life) की अपेक्षाकृत कहीं अधिक अच्छा है ।

(७) कुँवारी स्त्रियों के बीमे के सम्बन्ध मे उनका विवाह हो जाने पर बीमा-पत्र के ऊपर विवाह की बात लिखवा लेनी चाहिये ।

(८) प्रत्येक बीमा-पत्र की सब धारायें अपने अधिकार और दायित्व समझने के लिये बहुत अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिये ।

अचल सम्पत्ति

जब अचल सम्पत्ति जमानत की तौर पर दी जाती है तब प्राय. उसका रेहन-नामा होता है और जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है यह रेहन-नामा प्रायः वैधानिक होता है क्योंकि सादा रेहन-नामा तो हमारे यहाँ कुछ विशेष शहरो को छोडकर अन्य शहरों में होता ही नही और न उसमे सम्पत्ति बेंचने का ही अधिकार रहता है । अचल सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकार-पत्रों को भलीभाँति जँचवा लेना चाहिए अन्यथा उन पर का अधिकार झूठा प्रमाणित हो सकता है । उनका मूल्य भी भलीभाँति आँकवा लेना चाहिये और उनका बीमा भी करवा लेना चाहिये ।

गुण—सत्य तो यह है कि अचल सम्पत्ति में ऐसा कोई गुण ही नहीं है जिससे कि वह जमानत के तौर पर स्वीकृत की जाय, किन्तु प्राय. ऐसे ग्राहक मिलते हैं जिनके पास इन्हें छोड़कर और कोई चीज़ जमानत के तौर पर देने के लिये निकलती ही नहीं । अतः, इन्हें स्वीकार करना ही पडता है ।

दोष—(१) वैधानिक रेहन में तो बहुत ही खर्च पड़ता है और वह असुविधाजनक भी होता है, और सादा रेहन कुछ विशेष शहरों को छोड़कर अन्य शहरों में हो ही नहीं सकता ।

(२) अचल सम्पत्ति के वास्तविक अधिकारी का पता लगाना बहुत ही कठिन है । बात यह है कि हमारे देश में हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम बहुत ही टेढे-मेढे हैं ।

(३) अचल सम्पत्ति का मूल्य ठीक ठीक आँक लेना बहुत ही कठिन हो जाता है और यह भी घटता-बढ़ता रहता है।

(४) इन्हे बेचने में बहुत ही असुविधा होती है क्योंकि इसमें बहुत सी वैधानिक कार्रवाइयाँ करनी पड़ती हैं। फिर इन्हें खरीदने वाले भी मुश्किल से ही मिलते हैं और भिन्न भिन्न व्यक्ति इनके भिन्न भिन्न मूल्य लगाते हैं।

(५) कुछ मकान मरम्मत, इत्यादि न होने के कारण बहुत जल्दी ही खराब हो जाते हैं।

(६) ऋण की अदायगी न होने पर जिस दिन से जमानत पर रक्खे गये मकान इत्यादि बैंक के हाथ में आ जाते हैं, उस दिन से उसे उनमें किरायेदार रखने और उनकी मरम्मत कराने के दायित्व अपने ऊपर लेने पड़ते हैं।

(७) इनके अधिकार-पत्रों की वास्तविकता का पता लगाना बहुत ही कठिन हो जाता है।

(८) जहाँ पर जमीन पट्टे पर होती है वहाँ पर किराया न पहुँचने पर पट्टे की समाप्ति की आशंका रहती है।

(९) इसके आग से नष्ट हो जाने का डर रहता है।

सावधानियाँ—(१) अचल सम्पत्ति लेते समय ऋण लेने वाले का उस पर का अधिकार भलीभाँति पता लगा लेना चाहिये।

(२) अधिकार पत्र अच्छी तरह से जँचवा लेने चाहिये।

(३) भविष्य में मरम्मत इत्यादि के लिये प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

(४) पट्टे की सम्पत्ति के सम्बन्ध में किराया देने का प्रबन्ध हो जाना चाहिये।

(५) इसका आग बीमा करवा लेना चाहिये और ऋण लेने वाले से माफिक प्रतिफल देने का जिम्मा भरवा लेना चाहिये।

(६) जहाँ तक हो एक रेहन के बाद दूसरा रेहन नहीं स्वीकार करना चाहिये और यदि दूसरे रेहन की सूचना मिल जाय तो फिर और रकम उधार नहीं देनी चाहिये।

प्रश्न

(१) 'उधार' (Advances) से आप क्या समझते हैं? चालू (Continuing) और विशेष (Specific) जमानतों को भली भाँति समझाइये।

(२) अतिरिक्त (आनुसगिक) जमानत (Collateral securities) से आप क्या समझते है ? ये किस प्रकार की होती है ? इनमे से प्रत्येक के विषय मे बताइये ।

(३) बैंक प्राय. किस प्रकार की अतिरिक्त जमानत ले लेते है ? प्रत्येक की विशेषताओ पर छोटी-छोटी टिप्पणियाँ लिखिये ।

(४) बैंकर की दृष्टि से स्टाक एक्सचेञ्ज में विकने वाले साख-पत्रो की जमानत कैसी होती है ? इसके दोष कम करने के लिये अपने सुझाव रखिये ।

(५) माल और माल के अधिकार-पत्रो के अतिरिक्त जमानत की तरह से प्रयोग मे आने के गुण और दोप भली भाँति समझाइये । इन्हे लेने के समय किन बातो का ध्यान रखना चाहिये ? भारतवर्ष में यह बहुत अधिक प्रिय क्यो नही हैं ?

(६) जान बीमा-पत्र जमानत की तरह पर लेने में कौन-कौन से गुण और दोप है ? इन्हे लेने के समय किन किन बातो का ध्यान रखना चाहिये ?

(७) 'अचल सम्पत्ति अच्छी जमानत नही है' यह बात बैंकर की दृष्टि से समझाइये ।

(८) विनिमय साध्य पुर्जो को जहाँ तक सम्भव हो गिरवी की तरह से ही लेना चाहिये, इस पर अपने विचार लिखिये ।

अध्याय ११

बैंकों का निकासगृह (Clearing House)

बैंकों का निकासगृह वह सस्था है जहाँ स्थानीय बैंकों के पारस्परिक लेन-देनों का निपटारा हो जाता है । इसे समाशोधन गृह अथवा वलय भी कहा जाता है । जैसा कि छठे अध्याय मे बताया जा चुका है । यह काम प्राय: सभी केन्द्रीय बैंक या तो चलन के अनुसार करते आ रहे हैं या विधान ने उन्हें ऐसा करने के लिये बाध्य कर रक्खा है । जिन देशों में केन्द्रीय बैंकों की सस्थापना के बहुत पहिले ही से व्यापारिक बैंकों ने स्वय ही अपने लेन-देनों का निपटारा

करने के लिये प्रबन्ध कर लिया था अथवा जहाँ पर केन्द्रीय बैंकों ने यह काम बहुत दिनों तक प्रारम्भ ही नहीं किया था वहां पर स्वतन्त्र निकासगृह स्थापित है और उनके स्वयं के नियम तथा काम करने के स्थान बने हुये हैं। हां, इतना अवश्य है कि यहां के केन्द्रीय बैंक भी उनके सदस्य हैं और साथ ही प्रत्येक दिन की निकासी के अन्त में बैंकों के जो शेष बचते हैं उनके निपटारे का भी प्रबन्ध यही करते हैं। अन्य देशों में तो यही निकासगृह के लिये स्थान देते हैं, यही काम करने के लिये नियम बनाते हैं, यही उनकी निगरानी करते हैं और यही अन्त में बचे हुये शेष का निपटारा करते हैं। उपर्युक्त अध्याय में इस बात का भी संकेत कर दिया गया था कि बैंकों का अनुभव यह बतलाता है कि एक विशेष समय के अन्दर एक विशेष बैंक के ग्राहकों द्वारा उस पर कटे हुये उन चेकों की रकम जो दूसरे बैंकों द्वारा उसके यहां वसूली के लिये आती है उन चेकों की रकम के प्रायः बराबर होती है जो उसके पास दूसरे बैंकों के ऊपर भी उसके ग्राहकों द्वारा इसी काम के लिये आती है। वस्तुतः बैंकों के निकासगृहों की स्थापना ही इसी सिद्धान्त के आधार पर की गई है।

काम करने का ढङ्ग

इनके काम करने का ढङ्ग बहुत ही साधारण है। मान लीजिये कि अ, ब, स, और द नाम के चार बैंकों के बीच में निकासी का काम होता है। अब इनमें से प्रत्येक के पास जाने वाली निकासी के सम्बन्ध के विशेष तौर पर छपे हुये कागज (Summary sheets of out-clearing) रहते हैं जिनमें उन सभी चेकों और बिलों इत्यादि का लेखा कर लिया जाता है जिनकी एक बैंक को अन्य बैंकों से वसूली करनी होती है। अतः यदि 'अ' बैंक को चेकों और ड्राफ्ट छाँटने पर 'ब' बैंक के ऊपर के चेक और ड्राफ्ट मिलते हैं तो वह इन्हें उक्त कागज में 'ब' बैंक का नाम लिखकर, लिख लेता है। इसी तरह से दूसरे बैंकों के ऊपर की रकमें भी अलग-अलग लिख ली जाती हैं। यह प्रत्येक बैंक करता है। इसके बाद चेक, इत्यादि फिर से देखकर उनके अलग-अलग बण्डल बना लिये जाते हैं। फिर, ये बण्डल निकासगृह में ले जाये जाते हैं और चारों बैंकों के निर्धारित स्थान में प्रत्येक दूसरा बैंक इन्हें रख देता है। वहाँ पर इन बैंकों के कर्मचारी प्राप्त बण्डलों से उसी प्रकार के आने वाली निकासी के कागजातों (Summary sheets of in-clearing) में लेखे करते हैं। जिस प्रकार इनके लेखे जाने वाली

निकासी के कागजातों मे पहले किये गये थे। अब यदि 'अ' बैंक को 'ब' बैंक से जो पाना है वह उसको जो उसे देना है उससे अधिक है तब उसे उससे पाना है और यदि इसका उल्टा है तो उसको उसे देना है। अत., प्रत्येक बैंक से अन्त में जो पाना है अथवा उसे देना है वह एक साधारण चिट्ठे (General Balance-Sheet) मे लिख लिया जाता है। इस चिट्ठे मे निकासगृह के सब सदस्य बैंकों के नाम, उनके पाउने और देने के खानो सहित छपे रहते हैं। अब, यदि किसी बैंक से पाना है तो वह पाउने के खाने में और यदि देना है तो वह देने के खाने मे लिख लिया जाता है। अन्त मे पाउने और देने के जोड़ों का शेष निकाल लिया जाता है और यदि पाउना ज्यादा है तो केन्द्रीय बैंक से अपना एकाउण्ट क्रेडिट करने (जमा करने) और यदि देना ज्यादा है तो अपना एकाउण्ट डेबिट करने (नाम लिखने) को कह दिया जाता है। केन्द्रीय बैंक इन लेखों के दोहरे लेख निकासी के एकाउन्ट (Clearing) में करता है। अब, यदि सब का हिसाब ठीक है तो निकासी के एकाउन्ट में दोनों तरफ के लेखे बराबर हो जाते हैं अन्यथा गलती ढूंढकर ठीक कर ली जाती है। अन्त में सब बैंक वाले अपने-अपने ऊपर की चेक अपने यहाँ ले जाते हैं और वहाँ पर उनकी जाँच-पडताल करके उनके लेखे कर लेते हैं और यदि वहाँ पर वह ठीक नहीं जँचती तो दूसरे दिन की निकासी मे वह बाहर जाने वाली चेकों के साथ वापिस कर दी जाती है।

लाभ

इस सगठन से बैंकों और जनता दोनों को बहुत से लाभ हैं। बैंकों के लिये तो यह इस प्रकार से लाभदायक है कि (१) उन्हें अपने कर्मचारियों को भिन्न-भिन्न बैंकों में नहीं भेजना पडता। केवल एक कर्मचारी निकासगृह में चला जाता है। (२) उन्हें व्यर्थ में नकदी में भुगतान नहीं करना पडता—एक तो प्रत्येक बैंक को भुगतान नहीं किया जाता, दूसरे सब बैंकों को मिलाकर भुगतान भी केवल केन्द्रीय बैंक में जो एकाउन्ट रहता है उसी में लेखा करने से हो जाता है। (३) इससे यह भी लाभ होता है कि बैंकों को अपने पास बहुत कम नकदी रखनी पडती है। यह जनता के लिये भी बहुत लाभप्रद है। (१) इससे उसका बहुत कम नकदी से काम चल जाता है। (२) इसके कारण चेकों इत्यादि का जो प्रयोग बढ जाता है उससे भी जो साख की वृद्धि होती है उससे भी जनता का बड़ा लाभ होता है।

अंग्रेजी निकासगृह

जैसा कि छठे अध्याय में बताया जा चुका है, इगलिस्तान में, लन्दन में

और ग्यारह प्रान्तीय शहरों में स्वतन्त्र निकासगृह हैं। इनमें से लन्दन में और सात प्रान्तीय शहरों में तो जहाँ बैंक आफ इंगलैण्ड के अपने दफ्तर और शाखायें हैं, बैंक अपनी पारस्परिक बाकी का निपटारा उनके बैंक आफ इंगलैण्ड में जो स्थानीय एकाउन्ट हैं उन पर चेकें काट कर कर लेते हैं। किन्तु उन चार शहरों में जहाँ निकासगृह तो हैं किन्तु बैंक आफ इंगलैण्ड के दफ्तर और शाखायें नहीं हैं ऐसा नहीं हो पाता। अत, वहाँ पर यह काम उनके लन्दन स्थित प्रधान दफ्तर के जो एकाउन्ट बैंक आफ इंगलैन्ड में हैं उनके द्वारा करवाया जाता है।

लन्दन में निकासी का काम—लन्दन में निकासी का काम तीन भागों में विभक्त है। (१) शहर से सम्बन्धित निकासी (Town clearing) (२) अन्य शहरों से सम्बन्धित निकासी (Country clearing) और (३) शहर के दूर स्थित स्थानों से अथवा वृहत् लन्दन से सम्बन्धित निकासी (Metropolitan clearing)

(१) शहर से सम्बन्धित निकासी—के अन्तर्गत यह क्षेत्र आता है जो बैंक आफ इंगलैण्ड के दफ्तर से करीब है। इसकी प्रति दिवस प्राय दो निकासी होती हैं, एक प्रात और दूसरी मध्याह्न में। निकासगृह का प्रत्येक सदस्य बैंक हर निकासी के समय प्रत्येक बैंक के ऊपर की अथवा उन बैंकों के ऊपर की चेकों के जिनके ये सदस्य बैंक प्रतिनिधि हैं पृथक्-पृथक् बन्डल बनाकर जिन्हें वहाँ पर चारजेज (Charges) कहा जाता है निकासगृह के दफ्तर में भेज देता है। वहाँ पर ये आपस में बदले जाते हैं और फिर इनसे लेखे तैयार किये जाते हैं और अन्त में जोड़, इत्यादि ठीक करके बाकी निकाली जाती है। फिर, वह साधारण चिट्ठे में प्रत्येक बैंक के नाम के आगे डेबिट (नाम) अथवा क्रेडिट (जमा) में जैसा होता है लिख ली जाती है। इसके बाद दोनों खाने पृथक्-पृथक् जोड़कर उनकी बाकी निकाल ली जाती है। अब, प्रत्येक बैंक का केन्द्रीय बैंक में एकाउण्ट तो होता ही है। अत उसी एकाउण्ट में यह बाकी डेबिट अथवा क्रेडिट करके जैसा होता है इसका निपटारा कर दिया जाता है।

(२) अन्य शहरों से सम्बन्धित निकासी—के अन्तर्गत वृहत् (समूचे) लन्दन को छोड़कर इंगलैण्ड और वेल्स में फैले हुए सभी बैंकों और उनकी शाखाओं के चेकों की निकासी आ जाती है। लन्दन के बाहर जितने बैंक हैं प्राय उन सभी ने लन्दन शहर में स्थित किसी न किसी बैंक को

निकासी के लिये अपना प्रतिनिधि अवश्य बना रक्खा है। अत:, इनके पास उनके जो अन्य बैंकों के ऊपर के चेक, इत्यादि रहते हैं वह आ जाते हैं। इसमें भी निकासी का वही क्रम चलता है जो शहर से सम्बन्धित निकासी में चलता है। हाँ, यह निकासी प्रतिदिन केवल एक बार ही होती है और इसमें साधारण चिट्ठे से जो बाकी निकलती है वह सीधे-सीधे न निपटकर तीसरे दिन की शहर से सम्बन्धित निकासी के साधारण चिट्ठे में शामिल कर ली जाती है। इस देरी का कारण यह है कि ऊपर वाले बैंकों के प्रतिनिधि बैंक जो चेक पाने वाले बैंकों के प्रतिनिधि बैंकों से पाते हैं उन्हें वह ऊपर वाले बैंकों के पास भेजते हैं और वहाँ से उनके सकर जाने पर ही उन्हें निकासी में सम्मिलित करते हैं।

शहर से दूर स्थित स्थानों से अथवा बृहत लन्दन से सम्बन्धित निकासी बहुत बाद में प्रारम्भ हुई थी। इसमें उस क्षेत्र के बैंकों की चेकों की निकासी होती है जो न तो प्रथम और न दूसरे प्रकार की निकासी में सम्मिलित की जा सकती हैं। बात यह है कि बृहत लन्दन का क्षेत्र बहुत बड़ा है। अत, इससे लन्दन के उन बैंकों को सुविधा दी गई है जो बैंक आफ इगलैन्ड के दफ्तर से दूर पर स्थित हैं। ये बैंक इस क्षेत्रफल में स्थिति बैंकों की चेकें इत्यादि छाँटकर लन्दन शहर के अपने प्रतिनिधि बैंकों के पास भेज देते हैं जो उन्हें ऊपर वाले बैंकों के अपने यहाँ के प्रतिनिधि बैंकों के बंडलों में शामिल कर लेते हैं। इस निकासी से सम्बन्धित साधारण चिट्ठे की बाकी भी दूसरे दिन की शहर से सम्बन्धित निकासी के साधारण चिट्ठे में शामिल कर ली जाती है। इसमें भी प्रतिनिधि बैंक प्राप्त चेक ऊपर वाले बैंकों के पास सकरने के लिये भेजते हैं जिसकी सूचना दूसरे दिन आ जाती है।

प्रत्येक निकासी की लौटी हुई चेक दूसरे दिन की उसी निकासी के लिये जाने वाली चेकों की निकासी में मिला दी जाती है।

एक बात और ध्यान देने की है कि शहर से सम्बन्धित और बृहत लन्दन से सम्बन्धित निकासी में चेकें और ड्राफ्ट दोनों सम्मिलित कर लिये जाते हैं किन्तु अन्य शहरों से सम्बन्धित निकासी में केवल चेकें ही शामिल की जाती हैं ड्राफ्ट नहीं शामिल किये जाते।

भारतवर्ष में निकासी

पाँचवें अध्याय में यह भी बताया गया था कि हमारे देश में भी रिजर्व बैंक की संस्थापना के पहले से ही कई जगह स्वतंत्र निकासगृह थे जिनमें कार्य

की देख-रेख स्वभावत: इम्पीरियल बैंक ही अन्य सदस्य बैंकों की ओर से किया करता था। फिर, रिजर्व बैंक की संस्थापना होने पर यह काम रिजर्व बैंक के पास आ गया। किन्तु फिर भी कलकत्ता और कानपुर दो ऐसे स्थान हैं जहाँ पर रिजर्व बैंक के क्रमश: दफ्तर और शाखा होने पर भी वहाँ के निकासगृहों की देख-रेख रिजर्व बैंक के जिम्मे नहीं है। हाँ, बाकी का निपटारा तो अवश्य बैंकों के जो इनके यहाँ एकाउन्ट हैं, उन्हीं पर चेकें काटकर होता है। जिन स्थानों में रिजर्व बैंक का दफ्तर अथवा शाखा नहीं है वहाँ पर इम्पीरियल बैंक न केवल निकासगृह की देख-रेख करता है वरन् बाकी का निपटारा भी करता है।

यहाँ पर इस समय अमृतसर अहमदाबाद, आगरा, अलप्पी, इलाहाबाद, कलकत्ता, कानपुर, कालीकट, कोयम्बटूर, जालन्धर, देहरादून, देहली, नागपुर पटना, बंगलौर, बम्बई, मंगलौर, मद्रास, मदूरा, लखनऊ, राजकोट, पूना, गया और शिमला में भारतवर्ष में और करांची, रावलपिण्डी, लयालपुर और लाहौर में पाकिस्तान में निकासगृह हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसे शहर हैं जिनमें बहुत से बैंक हैं किन्तु निकासगृह नहीं हैं—उदाहरणार्थ जबलपुर, जमशेदपुर, बनारस, बरेली, मेरठ, सूरत इत्यादि हैं। अत, इनमें उन्हें खुलना चाहिये।

इसके अतिरिक्त कुछ स्थानों में लन्दन निष्कासगृह की तरह ही अन्य शहरों से सम्बन्धित निकासी का प्रबन्ध भी करना चाहिये। इसके लिये कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, कानपुर इत्यादि से प्रारम्भ किया जा सकता है।

भारतीय निकासगृहों ने कुछ ऐसे नियम बना रक्खे हैं जिनसे नये बैंक उनके सदस्य नहीं बन पाते हैं, उदाहरणार्थ कोई बैंक तब तक उसका सदस्य नहीं बन पायेगा जब तक तीन चौथाई सदस्य उसके पक्ष में न हों। अस्तु, कहीं-कहीं पर विदेशी बैंकों का प्रभुत्व है। अत, वह नये भारतीय बैंकों को उनका सदस्य बनने देते। इसके परिणामस्वरूप कलकत्ते में कुछ बैंकों ने एक नई संस्था बना ली है जिसे मेट्रोपोलिटन बैंकिङ्ग एसोसियेशन कहते हैं। यह संस्था इनकी चेकों इत्यादि के निकासी का प्रबन्ध करती है।

भारतीय निकासगृहों में भी निकासी का क्रम वही है जो अन्य स्थानों में है। प्रत्येक निकासगृहों के कुछ सदस्य हैं। इनके अतिरिक्त इनमें कुछ उप-सदस्य भी हैं। जो बैंक सदस्यता की शर्तें पूरी नहीं कर सकते वह उपसदस्य बनने की प्रार्थना करते हैं। यह प्रार्थना किसी सदस्य बैंक द्वारा भेजी जाती है। अस्तु, उपसदस्य बैंकों की ओर से यही सदस्य बैंक निकासी का काम करते हैं।

अन्य देशों के निकासगृह

अमेरिका के निकासगृह बहुत लाभदायक काम करते हैं। वे जमा करने वालों को दिया जाने वाला न्यूनतम व्याज निश्चित करते हैं। साथ ही वे बैंकों को ऐसे प्रमाण-पत्र देते हैं जिनके आधार पर उन्हें ऋण प्राप्त हो सकता है इत्यादि, इत्यादि। यूरोप में भी प्रत्येक बड़े देश मे निकासगृह स्थापित हैं। हाँ, इनमे उतना काम नहीं होता जितना इगलैण्ड और वेल्स मे होता है। बात यह है कि यूरोप मे चेकों और रेखाङ्कन का चलन उतना नही है जितना इगलैण्ड और वेल्स में है।

प्रश्न

(१) निकासगृह की परिभाषा दीजिये और यह बताइये कि केन्द्रीय बैंक इस सम्बन्ध में क्या काम करते है? यह भी बताइये कि निकासगृहो में किस सिद्धान्त पर काम होता है?

(२) निकासगृह की कार्य-व्यवस्था सक्षेप में किन्तु स्पष्ट तौर पर समझाइये। अपने उत्तर के सम्बन्ध मे एक उदाहरण ले लीजिये।

(३) निकासगृह के कौन-कौन से लाभ हैं? उनका वर्णन कीजिये।

(४) इगलिस्तान को निकासी (Clearing) का वर्णन कीजिये। लन्दन मे निकासी (Clearing) का जो प्रबन्ध है उसे विस्तृत रूप में बताइये।

(५) भारतवर्ष में निकासी (Clearing) का क्या प्रबन्ध है? उसका थोड़ा-सा विवरण दीजिये। क्या उसमें कुछ सुधार की आवश्यकता है?

अध्याय १२

भारतीय बैंकिग

ऐतिहासिक दृष्टि

भारतवर्ष मे आधुनिक बैंकिंग का प्रादुर्भाव तो अंग्रेजों के आने के साथ-साथ ही हुआ था, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उसके पहले हमारे यहाँ बैंकिंग थी ही नहीं। ऋण देने के प्रमाण तो यहाँ पर वैदिक काल मे

ही ईसा से कम से कम दो हजार वर्ष पहले मिलते हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद में 'ऋण' शब्द बार-बार आया है। फिर ऋण देने वाले महाजनों के नाम बौद्ध पुस्तकों (जातकों) में भी मिलते हैं जो विन्सेंट स्मिथ के अनुसार ईसा से पाँच-छै सौ वर्ष पहले से सम्बन्धित हैं। इसके बाद सरस्वती नगर के महाजनों ने फिरोजशाह को (१३५१-८८) बहुत काफी रकम उधार में दी थी जिसे उसने फौज के खर्च में लगाया था। इसी तरह से हमें साख-पत्रों का भी जिक्र मिलता है। भगवान् कृष्ण के समय की एक कथा प्रसिद्ध है जिसमें जूनागढ़ के नरसिंह भगत ने द्वारिकापुरी के सेठ साँवल साह के ऊपर एक हुण्डी की थी। सम्भव है कि यह केवल कथा ही हो, क्योंकि बौद्ध पुस्तकों के और सूत्रों के समय तक हुण्डी का अन्य कहीं जिक्र नहीं पाया जाता। किन्तु कुछ शहरों के बड़े-बड़े व्यापारी साख-पत्र (Letters of credit) तो अवश्य निकालते थे। इसके अलावा जमा का काम भी होता था—यहाँ तक कि ईसा की दूसरी और तीसरी शताब्दी में मनु के समय तक यह काफी बढ़ गया था क्योंकि उसने अपनी स्मृति में जमा और गिरवी पर एक पूरा अध्याय लिखा है। साथ ही सिक्कों के विनिमय का काम भी बहुत पहले ही होने लगा था और मुगलकाल तक तो यह बहुत ही अधिक उन्नति कर चुका था। बात यह है। कि उस जमाने में बहुत से नये-नये सिक्के बनाये गये थे, जिनमें से कुछ तो एक ही नाम के थे, यद्यपि प्रत्येक का बाजारू दर भिन्न था। इन सबसे यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष के ऐतिहासिक काल में तो अवश्य ही यहाँ पर बैंकिंग की एक ऐसी सुघड़ प्रणाली चालू थी जो यहाँ की आवश्यकताओं के लिये पूर्ण रूप से उपयुक्त थी। हाँ, यह पश्चिमी प्रणाली से अवश्य भिन्न थी।

आधुनिक बैंकों के प्रवेश के पहले देशी बैंकों (Indigenous Bankers) का महत्त्व

आधुनिक बैंकों के प्रवेश के पहले यहाँ पर देशी बैंकों का बहुत महत्त्व था। उस समय के महाजनों के धनी-मानी होने से उनके व्यवसाय का लाभप्रद होना तो स्वयं सिद्ध है। इसके अतिरिक्त पश्चिम के यहूदियों के विपरीत, जनता और सरकार दोनों ही उन्हें बहुत ही अच्छी दृष्टि से देखते थे। यहाँ तक कि औरङ्गजेब जैसा धर्मपरायण बादशाह भी उनका बड़ा सम्मान करता था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसने उस समय के सबसे प्रसिद्ध महाजन मानिकचन्द को 'सेठ' की उपाधि से विभूषित किया था। उसके बाद बादशाह

फर्रुखसियर ने अपने समय के महाजन फतेहचन्द को जो सेठ मानिकचन्द का दत्तक पुत्र था 'जगत सेठ' की पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली उपाधि प्रदान की थी। फिर, इनका सम्बन्ध अंग्रेजों से भी बहुत अच्छा रहा। रेवेरेण्ड जे० लाङ्ग के लेख के अनुसार क्लाइव ने सन् १७५६ में उस समय के जगत सेठ की चार दिन की आवभगत में १७३४ रु० खर्च किये थे जिसका बदला उसने उसका बंगाल के नवाब के विरुद्ध साथ देकर दिया था। अब, जहाँ तक इनकी व्यवसाय कुशलता का प्रश्न है उसके लिये हम सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी यात्री जे० बी० टेवरनियर का लेख देख सकते हैं। उसने लिखा है कि इटली के सब यहूदी जो द्रव्य और विनिमय के काम में बहुत ही दक्ष हैं, भारतवर्ष के इन महाजनों के यहाँ काम सीखने वालों की भी मुश्किल से बराबरी कर सकते हैं।[1]

देशी बैंकों की अवनति

किन्तु इनका व्यवसाय और इनकी शक्ति धीरे-धीरे कम होने लगी—यहाँ तक कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक इनका महत्त्व बहुत ही घट गया था। इसके निम्न कारण थे :—

(१) अंग्रेजी व्यापारी इनकी लिखावट न समझ सकने के कारण इनका प्रयोग नहीं कर सके।

(२) इनका चलन भी नहीं बदला। ये अपने ही ढंग प्रयोग में लाते रहे और केवल कृषि, हाथ की कारीगरी तथा देशी व्यापार ही की सहायता करते रहे।

(३) यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बहुत दिनों तक यहाँ पर पश्चिमी बैंको को नहीं आने दिया किन्तु अन्त में वह आ ही गये और देशी महाजनों के व्यवसाय के कुछ अंगों में उनकी होड़ करने लगे और अन्त में उन्हें पछाड़ दिया।

(४) मुगल साम्राज्य की अवनति के बाद जो गड़बड़ी मची थी उसके कारण भी देशी महाजनों की बहुत हानि हुई। प्रायः उन लोगों की जो रकम राजाओं इत्यादि के यहाँ थी वह वसूल नहीं हो सकी।

---

1 All the Jews who occupy themselves with money and exchange in the empire of the Grand Seigneur pass for being very Sharp, but in India they would scarcely be apprentices to these!

(५) देशी महाजन हाथ बेईमानी इत्यादि करने लगे जिससे वह बदनाम हो गये और अन्त में उनका व्यवसाय गिर गया।

(६) सन् १८३५ के बाद ब्रिटिश भारतीय रुपया सारे देश में चल जाने के कारण उनका विनिमय का व्यवसाय भी नष्ट हो गया जिससे उनकी बड़ी हानि हुई।

(७) रेल, वाष्पयान, डाक और तार इत्यादि खुल जाने के कारण व्यापारिक मार्ग और सम्बन्ध बदल गये जिससे भारतीय व्यापारियों को विदेशी व्यापारियों के लिये जगह छोड़नी पड़ी और वे अंग्रेजी बैंकों को अधिक काम देने लगे।

आधुनिक बैंकों की संस्थापना

जहाँ तक ज्ञात है सबसे पहला आधुनिक बैंक मद्रास प्रान्त में खुला था, यद्यपि अधिकांश पुस्तकों में कलकत्ते की आढ़ती कोठियों के बैंकों (Calcutta Agency Houses) का जिक्र है। वह सरकारी बैंक था और इसका प्रबन्ध काउन्सिल के सदस्यों के हाथ में था। शायद यह सन् १६८८ में खुला था। फिर, सन् १७२८ में बम्बई सरकार ने बम्बई शहर में ऐसा ही एक बैंक खोला। इसके बाद मद्रास में कई निजू बैंक खुले और एक अन्य सरकारी बैंक भी खुला। पहिले तो ये सब बैंक जमा प्राप्त करने और एकाउण्ट रखने के लिये खोले गये थे किन्तु बाद में इन्होंने अपने नोट भी चलाने प्रारम्भ कर दिये। बंगाल में सबसे पहिले आधुनिक बैंक कलकत्ते की आढ़ती कोठियों द्वारा खोले गये। ये कलकत्ते की आढ़ती कोठियाँ व्यापारिक संस्थायें थीं और विशेषत चाय और नील का काम करती थीं। बैंकिंग का तो इनका एक अतिरिक्त व्यवसाय था। अलेक्जैण्डर एण्ड कम्पनी ने कुछ अन्य कम्पनियों के साथ मिलकर सन् १७७० में बैंक आफ हिन्दुस्तान खोला। बंगाल बैंक और जनरल बैंक आफ इंडिया लगभग सन् १७८६ में खुले। इनमें से प्रथम तो किसी भी आढ़ती कोठी से सम्बन्धित नहीं था। और १६ मार्च सन् १७८६ के कलकत्ता गजट के अनुसार उसे व्यापार करने की मनाही भी थी। जहाँ तक दूसरे बैंक का प्रश्न है, अभी तक यही ज्ञात है कि वह सारे ब्रिटिश साम्राज्य में सीमित दायित्व का सबसे पहला बैंक था। वास्तव में इंगलिस्तान में यह सीमित दायित्व का सिद्धान्त बहुत देर में अर्थात् सन् १८५५ में लागू किया गया और यह भी बैंकों के लिये नहीं। बैंकों के लिये तो यह वहाँ सन् १८५७ के संकट (Crisis) के बाद माना गया और तब भी नोट इससे अलग

रक्खे गये। भारतवर्ष में इस सिद्धान्त को सन् १८६१ के भारतीय कम्पनी विधान मे स्थान दिया गया।

जनरल बैङ्क आफ इडिया उत्तरोत्तर वृद्धि करता गया। शीघ्र ही यह सरकार का बैङ्क बना दिया गया। वास्तव मे इसका प्रबन्ध बहुत ही अच्छे हाथों मे था और इसीसे इसने अपने प्रतिद्वन्दियों, विशेषकर बैङ्क आफ हिन्दुस्तान तथा बगाल बैङ्क को पछाड़ दिया। किन्तु सन् १७८७ में अनेक वेसिर-पैर की बातें कही गईं और अनुचित आलोचना की गई। फिर, सन् १७८८ के दुर्भिक्ष के बाद जब यह सरकार को ८ प्रतिशत के व्याज से ऋण न दे सका तब सन् १७८६ में इसका सरकार से सम्बन्ध विच्छेद हो गया। इस वर्ष के अन्त तक बारम्बार की मॉग पूरी न कर सकने के कारण बङ्गाल बैङ्क भी बन्द हो गया। केवल बैङ्क आफ हिन्दुस्तान ही बच रहा। इसने न केवल सन् १७६१ के सकट का वरन् सन् १८१६ और सन् १८२६ के सकटों का भी बड़ी सफलता से सामना किया। किन्तु अन्त मे सन् १८३२ मे अलेक्जैण्डर एव कम्पनी के जिससे कि यह प्रारम्भ से ही सम्बन्धित था फेल होने पर यह भी फेल हो गया। आढती कोठियों द्वारा खोले गए अन्य बैङ्को का भी यही हाल हुआ। मैसर्स पामर ऐण्ड कम्पनी द्वारा खोला गया कलकत्ता बैङ्क तो सन् १८२६ मे ही फेल हो चुका था। मेसर्स मैकिंटोश ऐण्ड कम्पनी से सम्बन्धित कमर्शियल बैङ्क आफ कलकत्ता सन् १८३३ मे भङ्ग हो गया। ये सब बैंक नोट भी निकालते थे, अत, इनके फेल होने से न केवल इनमे रु० जमा करने वालों को ही जिनमे बहुत-सी विधवायें और बहुत से पेन्शन पाने वाले भी थे वरन् नोट रखने वालों की भी बड़ी हानि हुई। यह सब यूरोपीय धन्धे थे। अतः, इनके फेल होने का दायित्व भारतीयों के सिर नहीं मढा जा सकता।

प्रेसीडैन्सी बैंक

बैंक आफ बगाल जो कि सर्वप्रथम प्रेसीडैन्सी बैंक था सन् १८०६ मे कलकत्ता बैंक के नाम से स्थापित हुआ था, और उसे सन् १८०६ में बैंक आफ बगाल के नाम से अधिकार-पत्र प्राप्त हुआ था। इसकी सस्थापना का मुख्य उद्देश्य कोई विशेष जोखिम और असुविधा उठाये विना जनता की सेवा करना और आवश्यकता पड़ने पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार को आर्थिक सहायता देना था। इसका एक उद्देश्य मुद्रा की पूर्ति करना भी था। सन् १८२३ मे इसे नोट चलाने की भी आज्ञा प्रदान कर दी गई और सन् १८३६ में इसे अपनी शाखायें खोलने और भारतीय विनिमय का काम करने

की भी आज्ञा दे दी गई—विदेशी विनिमय का काम करने की आज्ञा इसे नहीं मिली। बंगाल की सरकार ने इनके कार्य क्षेत्र को सीमा के अन्दर रखने के उद्देश्य से इसके प्रबन्ध में भाग लेने के लिए इसकी पचमांश पूँजी भी अपने पास से लगाई थी। अत, बैंक का सेक्रेटरी प्राय सिविल सर्विस का सदस्य होता था और कुछ सञ्चालकगण (Directors) भी सरकार चुनती थी।

बैंक आफ बम्बई और मद्रास भी क्रमश सन् १८४० और १८४३ में संस्थापित हुए और इनकी पूँजी के भी कुछ हिस्से इनकी सरकारों ने बङ्गाल की सरकार की तरह ही लिये। ये भी नोट चलाते थे। तीनों प्रेसीडेन्सी बैंकों को सरकार का बैंकिंग व्यवसाय करने का एकाधिपत्य भी दिया गया था। किन्तु नोट चलाने का अधिकार इनसे सन् १८६१ में छीन लिया गया क्योंकि उस वर्ष स्वयं सरकार ने इसका एकाधिकार ले लिया। हाँ, नोट चलाने का अधिकार छीन लेने से इनकी जो क्षति हुई थी उसकी पूर्ति के लिये सरकार की नकदी प्रेसीडेन्सी शहरों में तथा अन्य स्थानों में जहाँ इनके दफ़्तर और इनकी शाखायें, थीं इनके पास इनसे कुछ ब्याज लिये बिना ही रक्खी जाने लगी।

सन् १८६८ में एक विशेष घटना घटित हो गई जिसके फलस्वरूप सरकार का प्रेसीडेन्सी बैंकों से जो सम्बन्ध था उसमें एक बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। बात यह थी कि अमेरिका के घरेलू युद्ध के कारण रूई की कीमत बढ़ गई थी और उसमें सट्टेबाजी होने लगी थी। अत, बैंक आफ बम्बई इसमें फँस गया जिससे उसकी बड़ी हानि हुई। इसके फलस्वरूप उसे भङ्ग कर दिया गया। किन्तु फौरन ही एक दूसरा बैंक उसी नाम से एक करोड़ रुपये की पूँजी से खोल दिया गया। पुराने बैंक की जमा की रकम तो सब दे दी गई, किन्तु हिस्सेदारों को लगभग कुछ नहीं मिला। अत, सरकार ने इसके बाद बैंक आफ बंगाल और मद्रास के हिस्से भी बेच दिये और फिर वह किसी भी बैंक को न तो सञ्चालक चुन सकती थी और न उसके कार्यों में भाग ले सकती थी। साथ ही बैंक आफ बम्बई के फेल होने के कारणों का पता लगाने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की गई और उसकी रिपोर्ट निकलने के बाद सन् १८७६ में एक प्रेसीडेन्सी बैंक विधान पास किया गया जिसके अनुसार इन बैंकों के कामों पर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये गये। संक्षेप में ये निम्नाङ्कित थे—

(१) वे विदेशी विनिमय का काम नहीं कर सकते थे।

(२) उन्हें भारतवर्ष से बाहर उधार लेने और जमा प्राप्त करने की भी मनाही कर दी गई थी।

(३) वे छः महीनों से अधिक के लिये उधार नहीं दे सकते थे।

(४) उन्हें रेहन पर, अचल सम्पत्ति की जमानत पर, दो स्वतंत्र व्यक्तियों से कम द्वारा लिखे गये प्रण-पत्रों पर और माल पर जब तक कि वह माल अथवा उसके सम्बन्धी अधिकार-पत्र उनके पास न रख दिये जायें उधार देने की मनाही कर दी गई थी।

वे अब सरकार की नकदी का भी पूर्ण रूप से उपयोग नहीं कर सकते थे। बात यह थी कि प्रेसीडैन्सी शहरों में सरकार के स्वय के सुरक्षित कोष (Reserve Treasuries) खुल गये और उन्ही मे उसकी अधिकाश नकदी रक्खी जाने लगी। प्रेसीडैन्सी बैंकों के पास सरकार की बहुत कम नकदी रहती थी।

यद्यपि ये बैंक जमा प्राप्त करते थे, देशी बिल डिस्काउण्ट करते थे और वहाँ के सरकारी ऋण का प्रबन्ध करते थे, तो भी यह विदित हो गया था कि ये केवल प्रेसीडैन्सी शहरों के लिये ही अथवा अधिक से अधिक थोड़े से बड़े-बड़े व्यापारिक शहरों के लिये ही उपयोगी थे, अन्य स्थानों के लिये नहीं। वास्तव में इनमें निम्न दोष थे—

(१) इनके बीच मे किसी प्रकार का एकीकरण नहीं था। वास्तव मे बैंक आफ बङ्गाल को सारे भारतवर्ष का बैंक बनाने की माँग ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सञ्चालक कोर्ट के सामने सन् १८३६ ही में रक्खी जा चुकी थी। फिर सन् १८६० और ७६ में भी यह माँग दोहराई गई। सन् १८९८ में भी फाउलर कमीशन के सामने कुछ लोगों ने एक केन्द्रीय बैंक की सस्थापना की माँग रक्खी। सन् १९१३ में चैम्बरलेन कमीशन ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये एक अनुभवी कमेटी की नियुक्ति का सुझाव पेश किया। प्रथम महायुद्ध के समय एक केन्द्रीय बैंक की अनुपस्थिति बहुत ही खली।

(२) इन्होंने केवल उन्हीं स्थानों में अपनी शाखायें खोली थीं जिनमें इन्हें लाभ मिलने की सम्भावना थी। जिस समय ये तीनों बैंक एक किये गये, उस समय सब मिलाकर इनकी केवल ५९ शाखायें थीं।

(३) देश के व्यापार को सहायता पहुँचाने के लिए इनके पास काफी रकम नहीं थी। इनकी सब की मिलाकर केवल ३¾ करोड़ रुपये की पूँजी थी, इनका सुरक्षित कोष केवल ३, ७७, ७६,००० रु० था और इनकी जमा की रकम इनके एकीकरण के समय सन् १९२० में ८७,०४,५३,००० रु० थी। सरकार की अधिकाश नकदी उसके कोष और उपकोष में फालतू पड़ी रहती थी।

(४) यहाँ के चालू नोटों के देश की व्यापारिक माँग के अनुसार घटने-बढ़ने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं था, अत, उनसे ब्याज और डिस्काउण्ट की दरों में बहुत कमी बेशी होती रहती थी। सरकार का नियन्त्रण तो कानूनों पर था और माल पर जो कुछ नियन्त्रण था वह प्रेसीडेन्सी बैंकों का था। अत., इनमें कोई बन्धन नहीं था।

(५) ऊपर जो पहले दो बन्धन दिये हुये हैं वह केवल जोखिम से बचाने के लिये थे। किन्तु विनिमय दर स्थिर हो जाने पर भी जब विनिमय के काम में कोई जोखिम नहीं रह गई तब भी यह बन्धन चलते रहे। तीनों बैंकों ने लन्दन और भारतवर्ष में उधार लेने और विदेशी विनिमय में काम करने की एक संयुक्त माँग सरकार से सन् १८७७ में पेश की थी। सन् १८६६ में बैंकों की माँग पर विचार करने के लिये एक सभा भी हुई थी किन्तु जनता के इनके पक्ष में रहने पर भी सरकार ने कुछ भी नहीं किया। लन्दन में उधार लेने का प्रश्न तो बराबर अच्छी तरह से विचार किये बिना ही अस्वीकृत कर दिया जाता था।

(६) ये न तो बैंकों के बैंक ही थे और न अन्य किसी जगह से उधार मिलने पर उधार देने का ही दायित्व स्वीकार करते थे। सच तो यह है कि यह इतने मजबूत ही नहीं थे कि उपर्युक्त कार्य कर सकते। जो हो, इन्होंने तो उतना भी नहीं किया जितना ये कर सकते थे।

स्वतन्त्र व्यापारिक बैंक

आढ़ती कोठियों द्वारा स्थापित किये गये बैंकों के सन् १८३३ में फेल हो जाने के बाद, यहाँ पर स्वतन्त्र व्यापारिक बैंक खुले। सन् १८६० तक ये अपरिमित दायित्व के सिद्धान्त पर रहे। इसी बीच में सी० एच० कुक के अनुसार यहाँ पर लगभग १२ बैंक खुले और उनमें से लगभग आधे फेल भी हो गये। बात यह थी कि जब तक आढ़ती कोठियाँ थीं तब तक तो वे सरकारी कर्मचारियों के लिये बैंकिंग का काम करती थीं। किन्तु सन् १८२६-३२ के संकट काल के समय इनके फेल हो जाने के बाद, बड़ी कठिनाई पड़ी। अतः, वह कठिनाई दूर करने के लिए शीघ्र ही आगरा ऐण्ड युनाइटेड सर्विस बैङ्क तथा गवर्नमेन्ट सेविंग्स बैङ्क, कलकत्ता खुले। फिर, आगरा सेविंग्स बैङ्क और अनकवेनैटेड सर्विस बैङ्क स्थापित किये गए। किन्तु यह बैङ्क भी दीर्घ काल तक नहीं चल सके। इनके फेल हो जाने के कारणों में सट्टेबाजी और जालसाजी मुख्य थे। बात यह थी कि उस समय एकाउण्ट का निरीक्षण ठीक

नहीं था। अच्छी बैंकिंग के लिये अच्छा एकाउण्ट निरीक्षण बहुत ही आवश्यक है। जो हो, इस काल के कुछ बैंकों ने बड़ा अच्छा काम किया।

सन् १८६० भारतीय बैंकिंग के लिये विशेष महत्व का था। उस वर्ष यहाँ पर बैंको को सर्वप्रथम सीमित दायित्व के सिद्धान्त की सुविधा दी गई। अत, इसके फलस्वरूप और अमेरिका के घरेलू युद्ध के कारण वहाँ से रूई का निर्यात रुक जाने से भारतीय रूई की जो कीमत बढ गई थी उससे यहाँ पर जो धन-वृद्धि हो गई उसके फलस्वरूप यहाँ पर विशेपत. सन् १८६४-६५ मे लगभग २५ बैंक खुले, किन्तु ये सब बहुत शीघ्र ही काल कवलित हो गये। सत्य तो यह है कि जिस सट्टे के कारण ये उत्पन्न हुये थे उसकी समाप्ति पर ही यह भी समाप्त हो गये। हाँ, बैंक आफ अपर इण्डिया जो सन् १८६४ मे खुला था अवश्य सन् १९१४ तक चला।

सन् १८६५-१९०५ का समय विश्राम का समय था। इन चालीस वर्षों में बहुत कम बैंक खुले। किन्तु जो खुले उनमे से कुछ ने तो बडा काम किया। इलाहाबाद बैंक जो सन् १८६५ में खुला था, आज तक है और पाँच बडे बैंको में से एक है। अलायन्स बैंक आफ शिमला सन् १८७४ में खुला था। यह बहुत ही सफल रहा और सन् १९२३ में जब फेल हुआ तब केवल अपने अभाग्य ही के कारण फेल हुआ। सन् १९२१ के उसके जो अङ्क प्राप्त हैं उनसे उसकी सुदृढ स्थिति का पता चलता है :—

प्राप्त पूँजी	८८ लाख रु०
सुरक्षित कोष	५३ लाख रु०
स्थायी जमा	९०० लाख रु०
चालू जमा	६७९ लाख रु०
कुल जमा	१,६२७ लाख रु०
नकद रोकड़ा	४३९ लाख रु०
शाखायें	३६

अवध कमर्शियल बैंक सन् १८८१ मे रजिस्टर्ड हुआ था। इसका प्रधान आफिस फैजाबाद में है। यह रिजर्व बैंक का सदस्य बैंक (Scheduled Bank) है। पजाब नेशनल बैंक सन् १८९४ मे खुला और इस समय यहाँ के पाँच बड़े बैंकों में से एक है। पिउपिल्स बैंक सन् १९०१ मे खुला और सन् १९१३ में बन्द हो गया। इसका एक मात्र उद्देश्य औद्योगिक सस्थायें खोलना और चलाना था। किन्तु जिन परिस्थितियों में इसने यह काम अपने ऊपर लिया था वह सतोषजनक न थीं। उद्योग-धन्धे या तो थे ही नहीं या

अधूरी हालत में थे। अतः, इसके प्रबन्ध सचालक ने स्वय ही कई काम खोले और उनका प्रबन्ध किया जिसका फल वही हुआ जो बैंकिंग और व्यापार सम्मिलित करने का होता है। ऐसी हालत में बैंकिंग के सिद्धान्त नहीं निभ पाते। सन् १६१० में इसकी जो स्थिति थी उसका पता नीचे दिये हुये अंकों से मालूम हो सकता है।

प्राप्त पूँजी . . १ १ ५ लाख रु०
सुरक्षित कोष .. १ ८ लाख रु०
जमा ...... ६८ ४ लाख रु०
नकद साख, बिल, ऋणपत्र
और अधिविकर्ष ७६ ३ लाख रु०
दूसरे बैंकों के यहाँ जमा २ ४ लाख रु०
ड्राफ्ट की बाकी १ ६ लाख रु०
ऋणपत्र और दूसरी लागत ४ २ लाख रु०
सरकारी कागज ४ २ लाख रु०
नकद रोकड़ और बैंक में ७ १ लाख रु०

सन् १८६५ में जो बैंक फेल हुये थे उसने बैंक संस्थापकों की हिम्मत टूट गई थी। जो बैंक फेल हुये थे वे भारतीय और यूरोपीय दोनों के प्रबन्ध में थे। हम जानते हैं कि बैंक आफ बम्बई जैसा मजबूत बैंक भी अपमानित हो चुका था और प्रधानत सन् १८६५ के सट्टे के कारण जो संकट पैदा हो गया था उसी के फलस्वरूप सन् १८६८ में भङ्ग किया जा चुका था। किन्तु उपर्युक्त विश्राम का एक अन्य कारण भी था जिससे स्थिति बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। हमें ज्ञात है कि चाँदी का मूल्य सोने में सन् १८७१-७२ के बाद गिरने लगा था। अत, भारतवर्ष के उस समय रजतमान पर होने के कारण, चाँदी के मूल्य में जो भी कमी होती थी उसका प्रभाव रुपये के विनिमय दर पर पड़ता था। इससे देश के विदेशी व्यापार में अनिश्चितता आ गई और उससे उद्योग-धन्धों पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। यह स्थिति सन् १८६३ तक रही। करन्सी की कठिनाइयों ने बैंकिंग पर दोहरा प्रभाव डाला। एक तो लोगों का ध्यान बैंकिंग की स्थापना की ओर से हटकर द्रव्य की इकाई स्थिति करने की ओर लग गया, और दूसरे व्यापार की अनिश्चितता से ऐसी परिस्थियाँ और ऐसा वातावरण उत्पन्न हो गया जो बैंकों की स्थापना के विरुद्ध था।

इसके बाद के काल में सन् १९०६-१३ का विदेशी आन्दोलन चला जिसके फलस्वरूप इस बीच में ९८ बैंक सस्थापित किये गये। इनमें से बहुत-से बहुत छोटे थे और सन् १९१३-१९ मे फेल हो गये। किन्तु आजकल के बहुत से महत्वशाली बैंक भी इसी समय चालू हुए थे। इस समय के पॉच बडे बैंकों मे से दो तो जैसा कि पहिले ही बताया जा चुका है इसके पहले के काल मे सस्थापित हो चुके थे। अन्य तीन इसी काल मे खुले थे। बैंक आफ इन्डिया सन् १९०६ मे रजिस्टर्ड हुआ था, बैंक आफ बरोदा सन् १९०९ मे और सेन्ट्रल बैंक आफ इन्डिया सन् १९११ मे रजिस्टर्ड हुये थे। अन्य बैंकों मे से जो इस समय सस्थापित हुए थे और आज तक चल रहे हैं, ये मुख्य हैं —इन्डियन बैंक (१९०७), पजाब ऐन्ड सिन्ध बैंक (१९०८) और बैंक आफ मैसूर (१९१३)। ये सभी रिजर्व बैंक के सदस्य बैंक (Scheduled Bank) हैं।

प्रथम युद्ध और युद्धोत्तर की तेजी ने बैंकिंग को एक और प्रोत्साहन दिया। सबसे पहिले टाटा इडस्ट्रियल बैंक सन् १९१८ मे खुला। इसका भविष्य बडा ही उज्ज्वल प्रतीत होता था। किन्तु दीर्घकालीन और साधारण बैंकिंग के काम साथ-साथ करने के कारण और अधिकाश यूरोपीय कर्मचारियों की जिनके हाथ में इसका काम था, अनभिज्ञता तथा उसीसे उत्पन्न साधारण जनता और भारतीय कर्मचारियों की उदासीनता के फलस्वरूप यह फेल हो गया और सन् १९२३ में सेन्ट्रल बैंक आफ इन्डिया के साथ मिला दिया गया। फिर, इन्डस्ट्रियल बैंक आफ वेस्टर्न इन्डिया, कारनानी इन्डस्ट्रियल बैंक, यूनियन बैंक आफ इन्डिया तथा अन्य कई बैंक जो आज तक चालू हैं और रिजर्व बैंक के सदस्य बैंक हैं इसी समय खुले। किन्तु बहुत से अन्य बैंक भी इसी अवधि के बीच में खुले जो केवल फेल होने वाले बैंकों की संख्या बढाने के लिये ही थे। यद्यपि सन् १९१३-१९ के सकट की उग्रता कम हो गई तो भी सन् १९१९-२५ मे भी बैंक फेल होते रहे। सब मिला कर इस अवधि मे ५.१ करोड रु० की पूँजी के ८४ बैंक फेल हुए जिनमे अलायन्स और टाटा जैसे सुदृढ बैंक भी थे।

इसके बाद के काल में भी बहुत से छोटे और बडे बैंक सस्थापित हुये। किन्तु द्वितीय युद्ध काल अर्थात् सन् १९४०-४५ के बीच मे इनमें विशेष तौर पर उन्नति हुई। इसके मुख्य कारण निम्नाकित थे।—युद्ध की परिस्थितियॉ सुधर जाने के कारण विश्वास की मात्रा बढ जाना, युद्ध सम्बन्धी परिस्थितियों के कारण आर्थिक लेन-देनों की वृद्धि और सरकार द्वारा मित्र राष्ट्रों की

तरह से व्यय करने के कारण कम्पनी के परिमाण में अत्यधिक वृद्धि पाँच लाख और उससे अधिक की पूँजी और सुरक्षित कोष वाले सम्मिलित पूँजी के बैंकों की संख्या सन् १९२६ के २८ से बढ़कर सन् १९४० में ५८ (४१ सदस्य बैंक और १७ साधारण बैंक) और सन १९४६ में १०० सदस्य बैंक हो गई थी। इसी तरह से एक लाख और पाँच लाख के बीच वाले बैंकों की संख्या सन् १९२६ में ८७, सन् १९४० में १२० और सन् १९४५ में १७४ थी। हाँ, पचास हजार और एक लाख के बीच वाले बैंक सन् १९४० और सन् १९४५ में क्रमश १२१ और ११४ थे और पचास हजार से नीचे वाले बैंक इन्हीं वर्षों में क्रमश ३३२ और २४८ थे। छोटी पूँजी वाले बैंक अब कम खुलते हैं। विशेषत: पचास हजार से कम पूँजी वाले बैंकों का खुलना तो सन् १९३६ के विधान द्वारा ही बन्द कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त जो ऐसे बैंक हैं भी उन्हें अपने सुरक्षित कोष बढ़ाकर अपनी पूँजी बढ़ाने के लिये बाध्य किया जा रहा है।

इन वर्षों में बैंक फेल भी काफी हुये। सन् १९३१ में जिस वर्ष सबसे कम बैंक फेल हुये थे यह संख्या १८ थी और सन् १९४० में जिस वर्ष सबसे अधिक बैंक फेल हुये थे यह संख्या १०२ थी। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि सन् १९३६ के पहिले जब भारतीय कम्पनी विधान में 'बैंक' शब्द की परिभाषा थी ही नहीं। यहाँ पर बैंक फेल होने का कोई विशेष अर्थ नहीं था। बात यह थी कि उस समय तक कोई भी संस्था चाहे वह बैंकिंग का काम करती रही हो अथवा नहीं अपने को बैंक कह सकती थी। अत ऐसी संस्थाओं के फेल होने से यही समझा जाता था कि बैंक ही फेल हुये हैं, किन्तु वास्तव में यह बात न थी। फिर, प्राय थोड़े ही दिनों के खुले हुये और थोड़ी ही पूँजी वाले बैंक ही अधिक फेल होते थे। हाँ बैंक आफ अपर इंडिया, अलायन्स बैंक आफ शिमला, पिउपिल्स बैंक और टाटा इंडस्ट्रियल बैंक का फेल होना अवश्य कुछ अर्थ रखता था। किन्तु सन् १९३६ से तो बैङ्कों के फेल होने के विशेष अर्थ हैं यद्यपि इधर भी प्राय. कमजोर बैङ्क ही फेल हुये हैं। हाँ कुछ बड़े बड़े बैङ्क भी फेल हुये हैं। जैसे शिवराम अय्यर बैङ्क, मद्रास, बङ्गाल नेशनल बैङ्क ट्रावनकोर नेशनल ऐन्ड क्विलन बैङ्क, बनारस बैङ्क, और अभी हाल ही में ज्वाला बैङ्क। इनका फेल होना बहुत ही शोक की बात है। और विशेषत इसलिए कि यह सदस्य बैङ्क थे।

इम्पीरियल बैंक

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि सारे देश के लिए एक केन्द्रीय बैङ्क की आवश्यकता तो सन् १८३६ से ही प्रतीत होने लगी थी। अतः, सन् १६२० में उस वर्ष के इम्पीरियल बैङ्क विधान द्वारा तीनों प्रेसीडैन्सी बैङ्कों का एकीकरण करके एक इम्पीरियल बैङ्क बनाया गया। इसकी प्राप्त पूँजी ५.६२ करोड़ रु० रक्खी गई और इसे जनता के हित मे काम करने के लिए कहा गया। यही कारण था कि इसके केन्द्रीय मण्डल के १६ शासकों मे से १० की नियुक्ति सपरिषद् गवर्नर-जनरल के हाथ में रक्खी गई। इसका निर्माण निम्न भाँति होता था—

(१) सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्ति—

(अ) केन्द्रीय मण्डल की सिफारिश पर विचार करते हुए दो प्रबन्ध शासक (Managing Governors)।

(ब) भारतीय हित का प्रतिनिधित्व करने वाले चार गैरसरकारी शासक।

(स) बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के तीनो स्थानीय मण्डलों के तीन मंत्री।

(द) करन्सी संचालक (Controller of Currency)।

(२) हिस्सेदारों द्वारा निर्वाचित—तीनों स्थानीय मण्डलो के सभापति और उप-सभापति।

जिन बातों का सम्बन्ध सरकार की आर्थिक नीति अथवा उसका इसके पास जो नकद कोष रहता था उसकी रक्षा से होता था उनमें सरकार इसे कोई भी आदेश दे सकती थी। वह इसके कामो, कागजातों, पाउने और देने की सूची के सम्बन्ध में इसके किसी प्रकार की पूछ-ताछ भी कर सकती थी। वह इसके हिसाब की जाँच-पड़ताल करने और उस पर अपनी रिपोर्ट देने के लिए अपने निरीक्षक (Auditors) भी नियुक्त कर सकती थी। अन्तिम, नए स्थानीय दफ्तर और मण्डल खोलने के पहिले बैङ्क को उसकी स्वीकृति प्राप्त कर लेना भी आवश्यक था।

इस बैङ्क और भारत सचिव के बीच मे एक समझौता भी हुआ था जिसमे यह तै पाया था कि बैङ्क सरकार के सब बैङ्किग के कार्य करेगा और उसके ऋण की भी व्यवस्था करेगा। साथ ही यह भी कि यह अपनी संस्थापना के पाँच वर्षों के अन्दर अपनी सौ नई शाखायें खोलेगा जिनमे से कम से कम पच्चीस का स्थान स्वय सरकार निश्चित करेगी। इनके एवज में जहाँ जहाँ इसकी

शाखायें थीं वहाँ वहाँ इसे सरकार का नकद कोष अपने पास रखने का अधिकार दिया गया था और यह अपना कोष करन्सी द्वारा जहाँ चाहे वहाँ कुछ प्रतिफल दिए बिना ही भेज सकता था। इसके अतिरिक्त जिन दो स्थानों में इसकी शाखायें थीं उनके बीच में सरकार ने करन्सी ट्रान्सफर (Currency Transfer) और सप्लाई बिल (Supply Bills) न निकालने का वचन दिया था। हाँ, इसके लिए इसने करन्सी कार्यालय से न्यूनतम कमीशन पर जनता को एक जगह से दूसरी जगह द्रव्य भेजने की सुविधा देना स्वीकार किया था।

फिर, विधान ने यह भी निर्धारित कर दिया था कि यह बैंक बैंकिंग के श्रोन पांत से काम नहीं कर सकेगा। इसके अलावा इसे अन्छी ऋतु में द्रव्य बाजार की सहायता करने की क्षमता प्रदान करने के लिए सरकार के कागजी मुद्रा विभाग को इसे देशी बिलों और हुंडियों की जमानत पर १२ करोड़ रु० तक की अतिरिक्त करन्सी, पहले चार करोड़ तक तो ६ प्रतिशत ब्याज पर और शेष आठ करोड़ ७ प्रतिशत ब्याज पर, उधार रूप में दे देने का अधिकार दे दिया गया था।

किन्तु देश में एक सर्वांगी केन्द्रीय बैंक संस्थापित करने की माँग बराबर होती रही और अन्त में हिल्टन यंग कमीशन ने इस बैंक से पृथक एक केन्द्रीय बैंक स्थापित करने की बहुत ही स्पष्ट शब्दों में सिफारिश की। अतः, सन् १९३५ में जो रिजर्व बैंक खोला गया वह उसी सिफारिश के फलस्वरूप था।

विदेशी बैंक

इस देश में जो बैंक खुले उनके अलावा कुछ विदेशी बैंक भी जिनके प्रधान कार्यालय यहाँ से बाहर हैं अपनी शाखाओं द्वारा यहाँ पर काम करते आ रहे हैं। पहिले तो सन् १८५३ तक ईस्ट इंडिया कम्पनी ने आढ़ती कोठियों की सहायता ने ओरियन्टल बैंकिंग कारपोरेशन को छोड़ कर जो यहाँ पर सन् १८४२ में खोला गया था अन्य विदेशी बैंकों को यहाँ पर नहीं खुलने दिया। इसका एक मात्र कारण यह था कि वह यह नहीं चाहती थी कि उसके अलावा अन्य कोई संस्था भारतवर्ष के किसी भी व्यवसाय से लाभ उठा सके। वह यह कहती थी कि तृतीय जार्ज के शासन काल में जो ४७वाँ विधान पास हुआ था उसने उसे ऐसे बैंकों को संस्थापित करने का अधिकार दिया था और उससे उन्हें अधिकार पत्र देने का जो राजकीय अधिकार था वह समाप्त हो चुका था। किन्तु सन् १८५३ तक यह निश्चित हो गया कि उपर्युक्त

विधान ने उसे अपने राज्य में बैंक संस्थापित करने का अधिकार तो दिया था किन्तु उससे भारतवर्ष में बैंकों को व्यवसाय करने का अधिकार पत्र देने का राजकीय अधिकार समाप्त नहीं हुआ था। अत, उक्त वर्ष, चार्टर्ड बैंक आफ इंडिया, आस्ट्रेलिया ऐण्ड चाइना और चार्टर्ड बैंक आफ एशिया (जो बाद में मर्केन्टाइल बैंक आफ इन्डिया, लन्दन और चाइना हो गया) राजकीय अधिकार-पत्र द्वारा खोले गये। उपर्युक्त बैंकों में से ओरियन्टल बैंक तो सन् १८८४ में फेल हो गया और मर्केन्टाइल बैंक को सन् १८६३ में अपना अधिकार-पत्र छोड़ कर अपने को फिर से संगठित करना पड़ा। अत, इनमें से केवल चार्टर्ड बैंक आफ इन्डिया, आस्ट्रेलिया और चाइना ही रह गया। सन् १८६३ में कलकत्ता बैंकिंग कारपोरेशन खुला जिसका प्रधान कार्यालय कलकत्ते में था। किन्तु दूसरे ही वर्ष इसने अपना नाम बदल कर नेशनल बैंक आफ इन्डिया कर लिया और फिर दो वर्ष बाद इसका विधान कार्यालय लन्दन चला गया। अन्य जो अंग्रेजी और विदेशी बैंक यहाँ पर काम कर रहे हैं उनमें से कम्पटोइर नेशनल डी एस्काम्पेट डी पेरिस सन् १८६२ में खुला, निदरलैंड्स इन्डिया कमर्शियल बैंक सन् १८६३ में, हांगकांग ऐन्ड शांघाई बैंकिंग कारपोरेशन सन १८६४ में, योकोहामा स्पेशी बैंक सन् १८६४ में और ईस्टर्न बैंक सन् १६१० में खुले। सन् १६१३ में सब मिलकर यहाँ पर ऐसे १२ बैंक काम कर रहे थे। प्रथम युद्ध काल में तीन बैंकों ने अपना काम बन्द कर दिया और सन् १६१६-२२ के बीच में नौ नये बैंक खुले। आजकल इनकी संख्या १५ है।

सहकारी और भूमि-बन्धक बैंक

उपर्युक्त के अलावा हमारे यहाँ सहकारी और भूमि-बन्धक बैंक भी हैं। भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन सन १६०४ से चल रहा है। उस वर्ष यहाँ पर पहला सहकारी विधान बना था। फिर सन् १६१२ में दूसरा सहकारी विधान बना। यह दूसरा विधान पहले विधान की बुराइयाँ दूर करने के लिये बना था। सहकारी बैंक भारतीय कृषकों को ऋण की सुविधा देने के लिये स्थापित किये जाते हैं। यह जमा प्राप्त करते हैं और ऋण भी लेते हैं। अत, इनकी यह पूँजी इनके सदस्यों को उनकी आवश्यकता और योग्यता के अनुसार ऋण देने के काम में आती है। जिन सहकारी बैंकों की पूँजी और सुरक्षित कोष मिलाकर पाँच लाख रु० अथवा उससे अधिक है उनकी संख्या

सन् १६२५ में ८ और सन् १६४४ में ५० थी और [illegible] लाख तथा पाँच लाख के बीच वाले [illegible] की संख्या इन्हीं वर्षों में क्रमशः ६० और ३२२ थी। इसके अलावा सन् १६४६ में छोटी छोटी [illegible] कम्पनियों की संख्या [illegible] थी। [illegible] की संख्या ७०० से ऊपर थी।

डाकखानों के सेविंग्स बैंक

प्रस्तुत वर्णन पूरा करने के लिये डाकखानों के सेविंग्स बैंकों का वर्णन करना भी बहुत आवश्यक है। इन बैंकों का [illegible] भारतवर्ष में स्वतन्त्र सेविंग्स बैंक नहीं है। किन्तु इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया ने तथा अन्य बैंकों ने अपने यहाँ सेविंग्स विभाग खोल रखा है। पहले गवर्नमेंट ने सेविंग्स बैंक प्रेसीडेन्सी नगरों में खोले। फिर वह जिलों में खोले गये। किन्तु सन् १८८२ में डाकखानों के सेविंग्स बैंक खुले और धीरे धीरे डिस्ट्रिक्ट बैंक इन्हीं में सम्मिलित हो गये। वस्तुतः, डाक विभाग चार तरह से बचत और विनियोग (Investment) प्रोत्साहित करता है—(अ) अपने सेविंग्स विभाग में जमा प्राप्त करके, (ब) नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट निकाल करके, (स) जनता की ओर से सरकारी साख-पत्रों का निःशुल्क क्रय और विक्रय करके और (द) सरकारी और विश्वविद्यालयों के कर्मचारियों का जीवन बीमा करके। लड़ाई के समय में १० वर्षीय डिफेन्स सेविंग्स सर्टीफिकेट और बाद में बारह वर्षीय नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट और पोस्ट आफिस डिफेन्स सेविंग्स बैंक एकाउण्ट प्रारम्भ किये गये थे। डिफेन्स सेविंग्स सर्टीफिकेट और पोस्ट आफिस डिफेन्स सेविंग्स बैंक एकाउण्ट लड़ाई के बाद बन्द कर दिये गये। जून १६४८ से पंचवर्षीय तथा सप्तवर्षीय नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट भी चालू कर दिये गये हैं।

लोन आफिस, निधि और चिट फण्ड

उपर्युक्त संस्थायें तो सभी जगह हैं। किन्तु कुछ ऐसी संस्थायें भी हैं जो केवल कुछ ही स्थानों में हैं, जैसे बंगाल के लोन आफिस और मद्रास के निधि और चिट फण्ड। बंगाल के लोन आफिस तो पहले भूमि बन्धक बैंकों के स्थान पर ही खोले गये थे। वे जमा प्राप्त करते हैं। उनका मुख्य व्यवसाय भूमि तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं की जमानत पर जमीन्दारों और कृषकों को ऋण देना है। वैयक्तिक जमानतों पर भी ऋण देते हैं। कुछ व्यापार और

उद्योग-धन्धों और विशेष कर चाय के धन्धों को आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं। कुछ ऋण देने के साथ-साथ व्यापार भी करते हैं। निधि पहले-पहल मद्रास में चालू हुई थी। ये पारस्परिक ऋण देने वाली संस्थायें हैं। किन्तु अब इन्होंने आधुनिक बैंकों के कुछ कार्य करने प्रारम्भ कर दिये हैं और जमा प्राप्त करने तथा गैरसदस्यो को उधार भी देने लग गई हैं। चिट फण्ड भी कुछ लोगों की एक ढीली-ढाली समिति है जो मितव्ययता फैलाने में बड़ी सहायक है। इसके सदस्य कुछ किश्त इसके संस्थापक के पास बराबर जमा करते जाते हैं और वह पहली किस्त की पूरी रकम तो स्वय अपने परिश्रम के लिये ले लेता है और शेष किस्तें एक-एक करके सब सदस्यो को बारी-बारी से दे देता है।

प्रश्न

(१) इस देश को बैंकिंग की क्रमिक उन्नति का इतिहास लिखिये और मध्यकाल मे उसकी जो अवस्था थी उसका दिग्दर्शन कराइये। बाद मे इसकी अवनति के क्या कारण थे?

(२) इस देश के आधुनिक काल के बैंको की प्रथम संस्थापना के विषय मे एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। उनके फेल होने के क्या मुख्य कारण थे?

(३) प्रेसीडेन्सी बैंको का एक संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण दीजिये और यह बताइये कि वह कौन-कौन से काम नहीं कर सकते थे? उनमें कौन-सी कमी थी?

(४) सन् १८३३ से अब तक आधुनिक बैंको की जो संस्थापना हुई है और जो फेल हुये है उसका एक संक्षिप्त विवरण दीजिये और हर काल की विशेषतायें बताइये। सन् १८६५ और १९०५ के बीच मे जो बहुत कम बैंक संस्थापित हुये थे उसके कारण बताइये।

(५) इम्पीरियल बैंक की संस्थापन और सन् १९३५ तक उसकी कार्य-प्रणाली पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये और यह भी बताइये कि उसे कौन-कौन से विशेषअधिकार मिले थे और उसके क्या दायित्व थे।

(६) भारतवर्ष में विदेशी बैंकों की संस्थापन और उन्नति का एक संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण दीजिये।

(७) निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये— कलकत्ते की आढ़ती कोठियाँ (Calcutta Agency Houses), सहकारी और भूमि-बन्धक बैंक, डाकखानों के सेविंग्स बैंक, बंगाल के लोन ऑफिस, मद्रास के निधि और चिट फण्ड।

अध्याय १३

बैंकिंग की देशी प्रणाली

(Indigenous System of Banking)

भारतवर्ष में बैंकिंग के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करने के उपरान्त अब हम उसके प्रत्यक्ष का अध्ययन करेंगे। प्रथम तो इनका एक पचमेल समूह है जिसमें अनेक प्रकार के ग्रामीण और शहरी महाजन तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के द्रव्य और साख का काम करनेवाले अनेक लोग सम्मिलित हैं। इनके बहुत से नाम हैं जैसे बनिया, महाजन, साहूकार, सर्राफ, और कोठीवाल तथा यह सारे देश में फैले हुये हैं। इनके सम्बन्ध में किसी प्रकार के आँकड़े तो प्राप्त नहीं हैं, किन्तु ऐसा अनुमान किया जाता है कि इनकी संख्या ३ और ४ लाख के बीच में होगी। ये सभी जाति के हैं और विशेषतः अग्रवाल, जैन, मारवाड़ी, चट्टी, खत्री, अरोड़ा, मुल्तानी और बोहरा जाति के हैं। मुसलमानों में काबुली और पठान हैं।

देशी बैंकिंग और देशी बैंकर के अर्थ

(Meaning of the term 'Indigenous Banking, or 'Indigenous Bankers')

अंग्रेजी के इण्डीजेनस (indigenous) शब्द के अर्थ देश में ही उत्पन्न अथवा देश में ही प्राकृतिक रूप से जनित होने के कारण इण्डीजेनस बैंकिंग द्रव्य के लेन-देन की वह प्रणाली है जो इसी देश में विकसित हुई है और इण्डीजेनस बैंकर वह हैं जो उस प्रणाली के अनुसार बैंकिंग का व्यवसाय करते हैं। वास्तव में यह विदेशी प्रणाली और उसके अनुसार व्यवसाय करने

वालो से जो क्रमशः आधुनिक बैंकिंग तथा आधुनिक बैंकर कहे जाते हैं, बिल्कुल भिन्न है। इसके यह अर्थ हैं कि यदि इसी देश के निवासी विदेशी प्रणाली के अनुसार बैंकिंग का व्यवसाय करते हैं तो भी वह इंडीजेनस बैंकर नहीं कहे जा सकते। अस्तु, ऐसा हम उन्हीं को कहेंगे जो विशुद्ध भारतीय ढङ्ग के अनुसार बैंकिंग का व्यवसाय करते हैं और इस सम्बन्ध में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इसके अन्तर्गत उधार देने और बैंकिंग के काम मे कोई भेद नहीं समझा जाता। किन्तु बैंकिंग के विषय मे अनुसन्धान करने वाली अनेक प्रान्तीय कमेटियों (Provincial Banking Enquiry Committees) के इस बात के कह देने के बाद भी आधुनिक काल के बहुत से भारतीय लेखकों ने इनमें विभेद उत्पन्न करने के प्रयत्न किये हैं। अत, फल वही हुआ जो होना चाहिये था, अर्थात् वे इसमे सफल नहीं हो सके। वस्तुतः, उन्होंने एक गड़बड़ी पैदा कर दी है। उदाहरणार्थ वह कहते हैं कि उधार देने वाले और इंडीजेनस बैंकर मे बड़ा भेद है। उधार देने वाला अपना द्रव्य उधार देता है, जमा नहीं प्राप्त करता। उधार उत्पत्ति और उपभोग दोनो के लिये देता है। साथ ही वह खेती, माल ढोने और दूसरे प्रकार का काम भी उधार देने के काम के साथ-साथ ही करता है। किन्तु सबसे विशेष भेद तो यह है कि उधार देने वाला प्राय' उपभोग के लिये ही अधिक उधार देता है और इंडीजेनस बैंकर प्राय. उत्पत्ति के लिये ही अधिक उधार देता है। इंडीजेनस बैंकर अपने और उधार लिये हुए द्रव्य से व्यवसाय करता है, जमा प्राप्त करता है, व्यापार और उद्योग-धन्धों को आर्थिक सहायता पहुँचाता है, केवल बैंकिंग का ही व्यवसाय करता है और हुंडियों में भी लेन-देन करता है। फिर, इंडीजेनस बैंकर और आधुनिक काल के सम्मिलित पूँजी वाले बैंकों के बीच मे भेद बताते हुए वही यह कहते हैं कि सब इंडीजेनस बैंकर जमा नहीं प्राप्त करते और आधुनिक काल के बैंक जमा प्राप्त करके द्रव्य का संग्रह करते हैं। आधुनिक काल के बैंकों से बिल्कुल विपरीत, इंडीजेनस बैंकर केवल बैंकिंग ही का व्यवसाय नहीं करते वरन् उसके साथ ही प्राय. अन्य व्यवसाय भी करते हैं। इसके अतिरिक्त वे आधुनिक काल के बैंकों की तरह केवल उत्पत्ति के लिये ही उधार नहीं देते। इस सबसे यह स्पष्ट है कि वह कभी कुछ कहते हैं और कभी कुछ। एक स्थान पर तो ऐसा मालूम होता है कि वह यह कहते हैं कि इंडीजेनस बैंकर जमा प्राप्त करते हैं, अधिकांश में उत्पत्ति सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करते और केवल बैंकिंग का ही व्यवसाय करते हैं और दूसरे स्थान पर

ऐसा मालूम होता है कि वे यह कहते हैं कि इंडीजेनस बैंकर जमा नहीं प्राप्त करते, केवल उत्पादन को ही नहीं रुपया देते और केवल बैंकिंग का ही व्यवसाय नहीं करते। अतः, उनसे यह पूछा जा सकता है कि उधार देने वाले और इंडीजेनस बैंकरों में जो भेद बतलाते हैं वह कहाँ तक सही है। बैंकिंग के विषय में अनुसंधान करने वाली केन्द्रीय समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह कहा है कि हम जानते हैं कि कुछ उधार देने वाले जमा प्राप्त करते हैं और साथ ही कुछ बैंकिंग का व्यवसाय करने वाले ऐसे लोग हैं जो जमा तो नहीं प्राप्त करते किन्तु जिन्हें जनता बैंकर कहती है। सत्य तो यह है कि जनता की दृष्टि में बैंकर और उधार देने वाले के बीच में कोई भेद नहीं है। अब, यदि हम इस प्रकार कमेटी के साथ ही यह कहते हैं कि दोनों में दर्जे का भेद है, अर्थात् जब कि इंडीजेनस बैंकर बैंकिंग और व्यापार दोनों करते हैं, बैंकिंग मुख्य रहता है, अथवा जब कि वह उत्पत्ति और उपभोग दोनों के लिये ही उधार देते हैं, उत्पत्ति के लिये उधार देना मुख्य है तो यह भी केवल काल्पनिक है। इस कमेटी ने इस सम्बन्ध में जो अन्य बातें कही हैं उनके सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। अर्थात (१) जब कि उधार देने वाला प्रायः बिना जमानत लिये ही उधार देता है; इंडीजेनस बैंकर प्रायः जमानत लेकर ही उधार देता है, अथवा (२) उधार देने वालों के ग्राहक इंडीजेनस बैंकरों के ग्राहकों की अपेक्षा निश्चित समय पर उधार की वापसी कम करते हैं, अथवा (३) उधार देने वाले इंडीजेनस बैंकर की अपेक्षा अधिक ब्याज लेते हैं, इत्यादि इत्यादि। हाँ, यदि हम दोनों में भेद करना ही चाहते हैं तो हम डाक्टर जैन की तरह ही यह कह सकते हैं कि भारतवर्ष में प्रायः इन दोनों में भेद इनकी कार्यशील पूँजी के परिमाण के अनुसार किया जाता है।

अब यह विषय छोड़ने के पहिले हमें इंडीजेनस बैंकरों की जो परिभाषायें प्रायः पाठ्य पुस्तकों में दी हुई हैं उन्हें भी देख लेना चाहिये। इनमें से एक तो यह है जो केन्द्रीय कमेटी ने दी है, अर्थात् इंडीजेनस बैंकरों का अर्थ उन बैंकरों से है जो इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया, विनिमय बैंक (Exchange Banks), सम्मिलित पूँजी वाले बैंक (Joint Stock Banks) और सहकारी समितियों से भिन्न हैं और इसमें कोई भी ऐसी वैयक्तिक अथवा निजू फर्म सम्मिलित है जो जमा प्राप्त करती है और हुंडियों का व्यवसाय करती है अथवा द्रव्य

उधार देती हैं यह स्पष्ट है कि इसमें द्रव्य उधार देना भी[1] सम्मिलित है। दूसरी परिभाषा वह है जो डाक्टर जैन ने दी है, अर्थात् इंडीजेनस बैंकर के अर्थ हैं कोई भी ऐसी वैयक्तिक अथवा निजू फर्म, जो उधार देने के अतिरिक्त या तो हुंडियों का व्यवसाय करती है या जमा प्राप्त करती है या दोनों काम करती हैं। इस परिभाषा में कम से कम दो कामों पर जोर दिया गया है जिनमें से एक अर्थात् उधार देने का काम आवश्यक है और दूसरा (१) जमा प्राप्त करने के काम अथवा (२) हुन्डियों का व्यवसाय करने के काम में से कोई भी एक हो सकता है। यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि कम से कम दो कार्य होने क्यों आवश्यक हैं। क्या एक से काम नहीं चल सकता और फिर उधार देने का काम क्यों आवश्यक है, जमा प्राप्त करने का काम क्यों आवश्यक नहीं है। विशेषत जब हम यह जानते हैं कि आधुनिक विचार के अनुसार उधार देना और जमा प्राप्त करना दोनों मिलाकर ही बैंकिंग के व्यवसाय की पूर्ति करते हैं।

अत, उपसंहार में यह कहा जा सकता है कि जहाँ तक बैंकिंग की देशी प्रणाली के क्रमिक विकास की दृष्टि से देखा जाता है, इंडीजेनस बैंकरों की परिभाषा के अन्तर्गत वह सब वैयक्तिक और निजू फर्म आ जाती हैं जो किसी भी रूप में द्रव्य का व्यवसाय करती हैं और जहाँ तक इसके आधुनिक विचार से देखा जाता है इसमें केवल वही वैयक्तिक और निजू फर्म आती हैं जो उधार देने के व्यवसाय के साथ-साथ जमा प्राप्त करने का व्यवसाय भी और विशेषत चेकों द्वारा निकाली जा सकने वाली जमा प्राप्त करने का व्यवसाय करती हैं। अब, यदि हम केवल यह दूसरी परिभाषा ही लेते हैं तो इस देश

---

[1]वास्तव में इस परिभाषा के अन्तिम वाक्यांश के दो अर्थ होते हैं: (१) वह जो जमा प्राप्त करती हैं और हुन्डियों का व्यवसाय करती हैं अथवा केवल द्रव्य उधार देती हैं, (२) वह जो जमा प्राप्त करती हैं और या तो हुन्डियों का व्यवसाय करती हैं अथवा द्रव्य उधार देती हैं। लेखक का विश्वास है कि पहिला अर्थ सही है और इसी के अनुसार उसने इन शब्दों का प्रयोग किया है। किन्तु यदि दूसरा अर्थ ठीक माना जाता है तो यह चलन के विरुद्ध है क्योंकि इस देश में ऐसे इन्डीजेनस बैंकर नहीं मिलेंगे जो जमा प्राप्त करते हैं और हुन्डियों का व्यवसाय करते हैं किन्तु द्रव्य उधार नहीं देते।

से इण्डीजेनस बैंकरों की संख्या बहुत ही कम हो जाती है। जो भी, इस पुस्तक में यह शब्द उन व्यक्तियों और कोठियों के लिये प्रयोग में लाया गया है जिनके पास बहुत अधिक पूँजी है और जो द्रव्य सम्बन्धी कोई भी व्यवसाय करती हैं।

उधार देने वाले और इण्डीजेनस बैंकर

ये ग्रामीण और शहरी दोनों होते हैं। 'देहाती उधार देने वाले" और जैसा कि वह प्रायः कहे जाते हैं "बनिये" भारतवर्ष में बहुत काल से चले आ रहे हैं। नियमानुसार तो यह उधार देने का काम प्राचीन भारत के व्यापारिक और औद्योगिक वर्ग अर्थात् वैश्यों का ही है, किन्तु बहुत प्राचीन काल में ही इन वैश्यों के आधिपत्य को ऊँचे वर्ग के उन लोगों ने समाप्त कर दिया था जो समाज द्वारा दिये हुये सम्मान के स्थान पर धन को अधिक महत्व देते थे। आजकल उधार देने वाला किसी भी जाति का हो सकता है। रिपोर्टों में तो ब्राह्मणों, राजपूतों, खत्री, तेली, हलवाई और अनेक प्रकार के वैश्यों का, जिनमें सर्वोच्च अग्रवाल से लेकर निम्नतम कगट्ट तक सभी सम्मिलित हैं, उल्लेख मिलता है। बनिया वर्ग लालच और कमीनेपन के लिये कई शताब्दियों से बहुत ही बदनाम है। "बनिया मारे जान, ठग मारे अनजान।" "ना बनिया मीत, न वेश्या सती।' "बनिया सुई की तरह घुसता है और तलवार की तरह निकलता है।" किन्तु इन कहावतों में वह जैसा दर्शाया गया है वस्तुतः वैसा नहीं है। ग्रामीण उधार देने वाला ग्रामीण जीवन का अत्यावश्यक अङ्ग है—यह अङ्ग मँहगा और कभी-कभी भयानक भी सिद्ध होता है, किन्तु सदैव आवश्यक रहता है। जब कभी-कभी परिस्थितियों से मजबूर होकर वह उधार देना बन्द कर देता है तो दूर-दूर तक त्राहि-त्राहि मच जाती है।

यद्यपि ऊपर बनिया' शब्द उधार देने वालों के लिये प्रयोग में लाया गया है, किन्तु साधारणतया तो यह उधार देने वालों का वह वर्ग है जिसकी आटा, दाल इत्यादि वस्तुओं की दूकान होती है। बनिये उधार सामान भी बेचते हैं और छोटी-छोटी रकमें उधार भी देते हैं। ये छोटी जाति के वैश्य हैं। इनकी पूँजी थोड़ी होती है और इनका दर्जा इनके ग्राहकों की ही तरह का होता है।

एक दूसरी तरह के भी उधार देने वाले होते हैं जिन्हें महाजन कहा जाता है। बनिये की तुलना में महाजन की पूँजी और व्यवसाय दोनों अधिक

होते हैं। बनिये की तरह महाजन भी किसी जाति का हो सकता है, किन्तु प्राय' ऊँची जाति के उधार देने वालो को बनिया न कह कर महाजन ही कहा जाता है। महाजन का दर्जा प्राय उसके ग्राहको की तुलना में ऊँचा होता है और अधिकतर वह उसे बड़े सम्मान से देखते हैं। वह प्रायः जमींदार होता है अथवा बनिये के काम की अपेक्षा कोई अन्य ऊँचा व्यवसाय करता है।

शहरो मे बनिये और महाजन ऋणदाताओ के अतिरिक्त साहूकार, सर्राफ और कोठीवाल ऋणदाता भी होते हैं।

साहूकार महाजन ही की तरह का होता है। हाँ, प्राय वह अधिक धनी होता है। साहूकार गाँव का भी काम करता है। इसके दो रूप हो सकते हैं। एक तो वह जमींदारो को उनकी सम्पत्ति रेहन रख कर उधार देता है। दूसरे, वह गाँव के महाजन को भी आवश्यकता पड़ने पर उधार दे सकता है।

सर्राफ सोने, चाँदी का काम करता है। वह ऋण तो देता ही है, किन्तु साथ मे हुंडियों का भी व्यवसाय करता है और कभी-कभी जमा भी प्राप्त करता है। फिर, यह सब काम अन्न, घी, चीनी, कपड़े और अन्य वस्तुओ के दूकानदार भी करते हैं।

कोठीवाल प्राय' जमींदार और उच्चकोटि के व्यापारी होते हैं जो बैंकिंग के भी मुख्य काम करते हैं। कभी-कभी वह भी अन्य बड़े और छोटे जमींदारों को ऋण देते हे।

उपर्युक्त स्थायी ऋणदाताओं के अतिरिक्त फेरीवाले ऋणदाता भी होते हैं। ये लोग प्रायः गाँवों में ही होते हैं, हाँ, कभी-कभी शहरों मे भी पाये जाते हैं।

फेरीवाले ऋणदाताओं में किस्तियाँ होते हैं। उत्तर प्रदेश के पश्चिमीय भाग मे इसे रहती वाला, अवध मे उगाहीवाला, और उत्तर प्रदेश के पूरब में हुन्डीवाला अथवा थरस्कार कहते हैं। यह किस्त की प्रणाली पर ऋण देते हैं। प्राय १० रु० का ऋण इसमे १ रु० की १२ किस्तों में वसूल किया जाता है। कुछ शहर के रहने वाले लोग भी अपने गुमाश्तो द्वारा यही काम कराते हैं, अथवा स्वय जाकर करते हैं। उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद के साहू अपने गुमाश्तों को भेज कर ऊख पैदा करने वालों को ऋण देते हैं और काबुली, हड़िया तथा ब्यौपारी स्वय गाँवों में जाकर यह काम करते हैं। काबुली

अफगानिस्तान के पठान हैं। ये कपड़े का व्यवसाय करते हैं और उन्हें उधार बेचते हुये तथा उसकी कीमत किस्त में वसूल करते हुये इधर उधर घूमते रहते हैं। कभी-कभी ये रुपया भी उधार दे देते हैं। रुहिया बिहार के मगहोर हैं। ये ढोरों का भी व्यापार करते हैं। अन्य बातों में यह काबुलियों से मिलते-जुलते हैं। व्यौपारी रुहिया ही की तरह के हैं किन्तु प्राय: उत्तर प्रदेश के हैं।

उपर्युक्त के अलावा और भी बहुत से लोग हैं। बनारे गल्ले का व्यवसाय करने वाले और उसे ढोने वाले होते हैं। ये अधिकतर मराठा के इलाके में हैं। व्यौहारी कमाऊ महाजन हैं। फेरीवाले प्राय: उन सभी व्यापारियों को कहते हैं जो घूम घूमकर चीजें बेचते हैं। किन्तु यहाँ पर यह उनके लिये प्रयोग में आया है जो उधार माल बेचते हैं और इसी कारण ऊँचे दाम लेते हैं। साहूकारी गाँड़ का व्यापार करते हैं और गन्ना उपजाने वाले किसानों को इस शर्त पर उधार देते हैं कि वह उनके हाथ अपना गन्ना अथवा गुड़ पहले ही से निश्चित दर पर बेचेंगे।

यह उत्तर प्रदेश और उत्तरी भारत के विषय में है। अन्य हिस्सों में ऐसे ही महाजन हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। दक्षिणी भारत में और बर्मा में चट्टी हैं। इनमें पुन्याकुड़ी चट्टी छोटे व्यापारी हैं। ये अपने कन्धों पर झोले लटका कर इधर उधर व्यापार करते फिरते हैं और खाना-बदोश कहे जा सकते हैं। इनके अलावा नट्टूकोटाई चट्टी होते हैं जो बहुत धनी हैं। उनका काम करने का ढङ्ग कोठीवालों का सा होता है। सिन्ध में शिकारपुरी मुल्तानी हैं और गुजरात में बोहरा हैं इत्यादि, इत्यादि।

अभी तक जिन पेशेवर ऋणदाताओं के विषय में कहा गया, उनके अलावा बहुत से ऐसे ही ऋणदाता भी हैं जिनका पेशा ऋण देने का नहीं है। ये सभी वर्ग के हैं, उदाहरणार्थ पेन्शन पाने वाले पण्डे, गाँवों के पटवारी और मास्टरों जैसे छोटे-छोटे अफसर, नाई, चमार, फकीर इत्यादि, इत्यादि। कुछ विधवायें भी यह काम करती हैं। फिर कृषक, जमीन्दार और रैयत ऋण-दाता भी होते हैं। इनमें और पेशेवर ऋणदाताओं में यह अन्तर है कि जब कि यह अपना रोजगार ऋण देने का नहीं बताते पेशेवर ऋणदाता अपने को ऋणदाता कहते हैं। इनकी ब्याज की आय बहुत कम है। ये अपनी आय के लिये किसी अन्य व्यवसाय पर निर्भर रहते हैं।

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि उपर्युक्त ऋणदाताओं में से कुछ तो विशेषकर सर्राफ, कोठीवाल, नट्टूकोटाई चट्टी और दूसरे लोग जो

कोठीवालों के ही सदृश्य हैं, ऋण देने के अलावा बैंकिंग के अन्य कार्य भी करते हैं। हाँ, इनमें से अधिकाश जमा लेना नही पसन्द करते। फिर, यह हुन्डियों का व्यवसाय भी बहुत नही करते, क्योंकि यह व्यवसाय यहाँ पर अधिकतर द्रव्य को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये किया जाता था, और अब इसे आधुनिक बैंको ने और सरकार के डाक विभाग ने छीन लिया है। किन्तु देश मे कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं जो जमा प्राप्त करते हैं और उसे चेको पर वापस करते है। वास्तव मे उन्होने आधुनिक बैंकों के तरीके अपना लिये हैं।

इनका काम करने का ढङ्ग—इनका काम करने का ढङ्ग बहुत ही सस्ता और सीधा-सादा है। न तो इनकी गद्दियो मे अधिक रुपया लगा है और न यह आलीशानी ही मालूम पड़ती हैं। हाँ, नियमित गद्दियाँ अवश्य हैं, किन्तु वे बहुत सादे ढङ्ग की हैं। हिसाब-किताब का ढङ्ग भी बहुत सादा है। हाँ, सही और कुशल अवश्य है। जो लोग केवल उधार देने का ही व्यवसाय करते हैं और वह भी छोटे पैमाने पर उनके यहाँ शायद गद्दियाँ न हों। कुछ के यहाँ शायद हिसाब-किताब भी न हो। उधार मिलने के पहले कोई नियमित कार्यवाही नहीं होती, अत, इसके मिलने मे देर भी नहीं लगती ये विज्ञापनो मे भी विश्वास नहीं करते। इसके विपरीत ये अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में बहुत छिपाव रखते हैं। इस धन्धे की शिक्षा भी घर के लोगों ही से मिल जाती है। इनकी भाषा, लेखन-शैली, अङ्क, इत्यादि सभी स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न हैं और कही तो एक ही स्थान पर भी कई हैं। कुछ गोपनीय भाषा भी है। डाक्टर जैन ने अपनी पुस्तक इन्डीजेनस बैंकिंग इन इन्डिया मे एक ऐसी ही गोपनीय भाषा का जो काठियावाड़ मे चलती है जिक्र किया है जिसमे किट के अर्थ एक, घर के दो, ऊधन के तीन, गोठ के चार, सुई के पाँच हैं। हमारे प्रान्त मे अंको के लिये निम्न शब्द प्रचलित हैं :—

'साग = १, सवान = २, एकवाई = ३, फोक = ४, बुध = ५, ढेक = ६, पैंत = ७, मग = ८, कोन = ९, सलाय = १०।

उधार देने के तरीके

इस देश में ऋणदाता और महाजन उधार देने के लिये अनेक तरीके काम मे लाते हैं। अब इनमे से निम्नाङ्कित मुख्य है, अत, हम इनका यहाँ पर अध्ययन करेंगे।

[१] प्रण-पत्र—जब ऋण की रकम और उस पर के ब्याज की दर ऋण देने वाले और लेने वाले के बीच में तै हो जाती है तब ऋण लेने वाला ऋण की रकम ब्याज के साथ मांग पर अथवा एक विशेष अवधि बीत जाने के बाद वापिस कर देने का एक प्रण-पत्र लिख देता है। यदि रकम बहुत अधिक होती है तो प्रण-पत्र पर अन्य लोगों के हस्ताक्षर भी करवा लिये जाते हैं जो जामिन कहलाते हैं। यदि मुख्य देनदार ऋण वापिस नहीं करता तो यह जामिन ऋण वापिस करते हैं, कभी-कभी प्रण-पत्रों में यह भी लिखवा लिया जाता है कि यदि ऋण की वापसी समय पर नहीं होगी तो और ऊँचा ब्याज का दर लिया जायगा।

[२] रसीद अथवा टीप—जब प्रण-पत्र प्रयोग में नहीं लाये जाते तब ऋण लेने वाले से एक रसीद अथवा टीप लिखवा ली जाती है। इसमें ब्याज की दर भी लिखवा ली जाती है।

[३] दस्तावेज अथवा तमस्सुक—यह सरकारी स्टाम्प लगे हुये कागजों पर लिखे जाते हैं। इसमें ऋण-सम्बन्धी पूरी बातें लिखी होती हैं। प्राय इनमें भी एक निश्चित् तिथि पर ऋण की वापिसी न करने पर ऊँचे दर से ब्याज देने की शर्त रहती है।

[४] टिकट बही—इनमें रकम खाते में डाल दी जाती है और उस पर स्टाम्प लगाकर कर्जदार के हस्ताक्षर करवा लिये जाते हैं। इनमें ऋण सम्बन्धी शर्तों और ब्याज की दर इत्यादि का हवाला देने का चलन नहीं है। यह बातें प्राय॰ मौखिक रूप में ही तै हो जाती हैं।

[५] किस्त—यह बनज, रेहत और रेहाती भी कहलाती है। इसका वर्णन पहिले भी किया जा चुका है। कभी-कभी पहली किस्त तो ऋण देने के समय ही काट ली जाती है। इधर कुछ उधार लेने वालों के मुकर जाने के कारण किसी किताब पर अलग उनके हस्ताक्षर अथवा अँगूठे का निशान लेने की प्रणाली भी चालू हो गई है।

[६] रुजही—यह भी एक प्रकार की किस्त ही है इसमें ३० रु० उधार लेने वाला केवल २८ रु० ही पाता है और उसे १ रु० रोज करके ३० दिन तक अदा करता रहता है।

[७] **हथउधार अथवा दस्तगर्दा**--इसमें कोई लिखित प्रमाण नहीं रहता। उधार केवल जबानी ही दे दिया जाता है और कभी-कभी इस सम्बन्ध की ऋण लेने वाले से शपथ ले ली जाती है।

[८] **गिरवी**--इसमें सोना, चाँदी इत्यादि के आधार पर ऋण दिया जाता है। प्राय: जो माल रक्खा जाता है उसके मूल्य के एक अंश तक ही उधार दिया जाता है। भारतवर्ष के लोगों मे, विशेषत: विधवाओं में यह चलन बहुत है।

[९] **रेहन**--इसमें भूमि अथवा मकान इत्यादि की जमानत पर उधार दिया जाता है। इसके सम्बन्ध में जो कागज लिखा जाता है वह रेहन-नामा कहलाता है और उसे उस जिले के रेहन के रजिस्ट्रार के पास रजिस्टर्ड करवाना पड़ता है जिसमे सम्पत्ति होती है। इसमे ऋण की वापिसी की किस्तो, इत्यादि की तारीखें लिखी रहती हैं। रेहन कई प्रकार के होते हैं और उनमे सब में कोई न कोई विशेष बात होती है। प्रथम तो सादा (Simple) रेहन होता है। इसमे सम्पत्ति उसके स्वामी के ही पास रहती है दूसरे इस्तेमाली रेहन (Usufructuary mortgage) होता है जिसमे सम्पत्ति ऋणदाता के पास आ जाती है। और उसमें उसे जो लाभ होता है वह व्याज के स्थान पर समझा जाता है। प्राय ऋणदाता वह सम्पत्ति ऋण लेने वाले के पास ही छोड़ देता है और उससे किराया लेता रहता है। कभी-कभी यह शर्त भी रहती है कि ऋण लेने वाले के मूलधन एक विशेष समय के अन्दर वापिस न करने पर वह सम्पत्ति फिर ऋणदाता ही की हो जायगी, अर्थात् ऋण लेने वाले का रेहन के छुटकारे का अधिकार नहीं रह जाता। तीसरे, पट्टा पटावन रेहन भी हो सकता है। इसमे सम्पत्ति को एक विशेष समय तक प्रयोग में लाने का अधिकार ऋणदाता को दे दिया जाता है जिससे ऋण के मूलधन की और व्याज की अदायगी हो जाती है और फिर वह सम्पत्ति अपने पहिले स्वामी अर्थात् कर्जदार के पास वापिस आ जाती है।

ऊपर नक़द ऋण की प्रणालियाँ दी हुई हैं। इनके अतिरिक्त जिन्सो के ऋण (Kind loans) होते हैं। इनमे निम्न बहुत ही प्रचलित हैं —

(१) फसल कट जाने पर सवाये, ड्योढे अथवा दूने की वापिसी की शर्त पर बोने के लिये अथवा घर खर्च के लिये अनाज उधार देना।

(२) जमींदार महाजन बोने के लिए बीज और खाने के खर्चे के लिये द्रव्य प्राय इस शर्त पर देता है कि फसल तैयार होने पर वह यह सब वापिस ले लेगा और साथ ही फसल का कुछ और भी हिस्सा लेगा।

नकद और जिन्स के सम्मिलित ऋण का भी चलन है। इसमें बनिया प्राय किसान की सारी आवश्यकतायें पूरी करता है। वह उसे अपनी दूकान से चीजें भी देता है और नकद द्रव्य भी देता रहता है। चीजों की कीमत और नकद उसके हिसाब में पड़ती रहती है और फसल आ जाने पर वह सब बनिया स्वयं खरीद लेता है और हिसाब साफ कर लेता है। फिर यही फसल अधिकांश में वह मण्डियों में भेज देता है। इससे उसे बड़ा लाभ होता है।

कभी-कभी इस शर्त पर भी ऋण दिये जाते हैं कि ऋण लेने वाले फसल तैयार होने पर उसे ऋणदाता को पहले से ही निश्चित मूल्य पर बेच दें। यह उन ऋणदाताओं के यहाँ अधिक होता है जो उसी चीज का व्यापार करते हैं जो ऋण लेने वाले पैदा करते हैं। प्राय यह देखा जाता है कि ऐसी परिस्थिति में जो मूल्य निर्धारित किया जाता है वह बहुत ही थोड़ा होता है और उससे ऋण लेने वाले की हानि ही होती है।

ब्याज तथा अन्य खर्चे—ब्याज स्थानानुसार तथा समयानुसार बदलता रहता है। जिन्सों के ऋण में यह २५ प्रतिशत से लेकर शत प्रतिशत तक होता है। ऊपर जो सवाया, ड्योढ़ा और दूना दिया गया था उसमें यही तो है। फिर यह दर केवल ऋण की अवधि के लिये है जो औसतन छ माह की होती है अत, वार्षिक दर दुगुनी होती है।

नकदी ऋण के लिये यह जमानत रहने पर तो ८ प्रतिशत से १२ प्रतिशत तक रहती है, और जमानत न रहने पर यह १२ से ३७½ प्रतिशत तक होती है। कभी-कभी एक आना प्रति रु० मासिक होता है जो ७५ प्रतिशत वार्षिक पड़ता है।

साहूकारों का पारस्परिक ब्याज ६ प्रतिशत वार्षिक होता है। यह साहूकारी ब्याज कहलाता है।

प्राय चक्रवृद्धि ब्याज लगाया जाता है। ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ मिश्रधन मूलधन का दुगना, तिगुना, चौगुना अथवा पचगुना हो गया है। यह चक्रवृद्धि ब्याज ही के कारण होता है।

ऋणदाता सादे और चक्रवृद्धि ब्याज के अतिरिक्त चलन के अनुसार अन्य खर्चे भी लेते हैं। देहातों मे आसामी महाजन का मुफ्त काम करते पाये

जाते हैं। विवाहादि अवसरों पर यह बहुत होता है। प्राय: नकदी और जिन्सों की भेंट की जाती है। जो हो, अब यह सब विघानत: बन्द कर दिया गया है। ऋणदाता के यहाँ एक धर्म-खाता होता है जिसमें प्रायः ऋण लेने वाला ऋण लेने के समय कुछ अवश्य देता है। कुछ लिखाई के लिये भी काट लिया जाता है जिसे महाजन के मुनीम, आपस में बाँट लेते हैं। अन्य जो खर्चे सुनने में आते हैं उनमें नजराना, थैली की मुँह खुलाई और दस्तूरी बहुत ही प्रचलित हैं। हाँ, अब यह सब बन्द हो रहे हैं।

किन्तु जब अदालतों में नालिश होती है तब न तो ऊँची दर का ब्याज और न यह सब खर्च ही मिलते हैं। किन्तु प्रायः महाजन अदालत नहीं करते, जहाँ तक होता है जोर दबाव से ऋण वसूल लेते हैं। प्रायः सभी प्रान्तों में ऐसे विधान बन गये हैं कि अदालतें ऋण के सम्बन्ध की तमाम बातों पर विचार कर सकती हैं और ऊँची दर के ब्याज और यह सब खर्च काट सकती हैं। किंतु यह उनकी तबियत पर होती है। हाँ, इधर कुछ जगह ऐसा करना उनके लिये आवश्यक कर दिया गया है।

ऋणदाताओं और इण्डीजेनस बैंकरों के काम

यदि हम पहिले केवल ऋणदाताओं को ही लें तो वह उत्पत्ति और उपभोग दोनों के लिये ऋण देते हैं। कभी-कभी तो वह किसानों को अनाज, बीज और जानवर भी उधार देते हैं। वे सभी तरह के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, चाहे गरीब हो अथवा अमीर, किसान हों अथवा अन्य कोई, चाहे वह जमानत दे सके अथवा नहीं। अमीर इनसे अपनी विलासिता की माँग पूरी करने के लिये उधार लेते हैं, गरीब ऐसा अपनी आवश्यकताओं की चीजें लेने के लिये करते हैं, किसान खेती करने के लिये ऐसा करते हैं, और अन्य लोग व्यापार, उद्योग-धन्धे तथा अन्य काम चलाने के लिये ऐसा करते हैं। अत., वह लोगों के आर्थिक जीवन के एक आवश्यक अङ्ग बन गये हैं, और लोग यह जानते भी हैं। शायद यही कारण है कि वे इनका सम्मान भी करते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि उधार लेने वाले आधुनिक बैंकरों की अपेक्षाकृत इन देशी महाजनों को अधिक पसन्द करते हैं। बात यह है कि यह उनकी माँगों पर उसी समय विचार करके उन्हें पूरी कर देते हैं। ये उन्हें अधिक देर तक नहीं ठहराते। फिर, यदि इन्हें यह मालूम हो जाता है कि जिस दिन ऋण की वापिसी होनी है उस दिन ऋणी को उसे वापिस करने में कठि-

जाते हैं या यह उसे उसी दिन वापिस करने पर ज़ोर नहीं देते। ये अपने असामियों के बारे में जानते रहते हैं, अतः, जब वह ऋण लेने आते हैं तब उनके सम्बन्ध में व्यर्थ की पूछ-ताछ नहीं करते। इनका महत्व तो इसी से पता चल जाता है कि इस देश में लोगों ने कितनी रकम इनसे उधार ले रक्खी है। डाक्टर जैक ने सन् १९२८ में यह कहा था कि यद्यपि ठीक ठीक कहना बड़ा कठिन है किन्तु इन्होंने ब्रिटिश भारत में ८०० और ९०० करोड़ रु० के करीब उधार बाट रक्खा है। उसके बाद की दशा तो और भी खराब हो गई थी। हाँ, युद्ध के समय अनाज, इत्यादि के दाम बढ़ जाने के कारण कुछ लोगों का कहना है कि किसान मज़े में हो गये हैं। किन्तु यह बात बड़े-बड़े किसानों के लिये सत्य हो सकती है, छोटों के लिये नहीं। अतः, यह कहा जा सकता है कि इस समय इन्होंने कुल भारतवर्ष में कम से कम १००० अथवा १२०० करोड़ रुपया बाट रक्खा होगा। इसकी तुलना समस्त आधुनिक बैंकों के मिश्रित साधनों से भली-भाँति की जा सकती है।

अब यदि हम इन लोगों को जो उधार देने के अतिरिक्त बैंकिंग के अन्य कार्य भी करते हैं तो हम यह कह सकते हैं कि उनके कार्य अनेक तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। जहाँ तक भारतवर्ष के मुख्य उद्यम कृषि को आर्थिक सहायता पहुँचाने का प्रश्न है, इसके विषय में तो यह कहा जा सकता है कि वह यह अप्रत्यक्ष रूप से करते हैं। बात यह है कि उनके प्रायः शहरों में रहने के कारण वे किसानों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो स्थापित कर ही नहीं सकते। अतः, वह गाँवों में उधार देने वाले लोगों और व्यापारियों को इस काम के लिये पकड़ लेते हैं। ये उनसे सहायता पाते हैं और उसके बदले में उन्हें गाँवों की फसल लाकर देते हैं। किसान दो तरह से अपनी फसलें बेचते हैं। एक तो वह है जो छोटे और बे-पढ़े लोग काम में लाते हैं। ये अपने गाँव में ही किसी व्यापारी के हाथ जिसके प्रायः यह पहले से ही ऋणी रहते हैं, अपनी सारी फसल बेच देते हैं। गाँवों के यह व्यापारी ऋणदाता की रकम काट कर बाकी दाम उन्हें नकद चुका देते हैं। फिर, यह गाँवों में अपने बेचने लायक माल रोककर शेष सब मंडियों में ले जाते हैं। वहाँ पर प्रायः यह सामान उन्हीं महाजनों के हाथ बेचा जाता है जो इन्हें पहले से ही रुपया दिये रहते हैं। इस समय बैंकिंग का बहुत-सा व्यवसाय होता है, जैसे द्रव्य इधर-उधर भेजना, हुण्डियों का बट्टे, पर भुगतान करना और माल की जमानत पर उधार देना इत्यादि। यह सब काम यही मंडियों के व्यापारी महाजन करते हैं। दूसरा

तरीका यह है कि देश में अनेक छोटी छोटी मंडियाँ हैं, जिनमें से प्रत्येक में उनके समीपवर्ती गाँवों का माल आता है। जो किसान किसी के ऋणी नहीं होते, अथवा पढ़े-लिखे और चतुर हैं वह अपने गाँवों में ही माल न बेचकर इन मंडियों में उसे ले आते हैं। इससे उन्हें यह लाभ होता है कि यहाँ पर पूर्ति और माँग के नियमों के अनुसार कीमतों के निर्धारित होने के कारण उनके ठगे जाने की कम सम्भावना रहती है। किन्तु यह उन्हीं लोगों के लिये सम्भव है जो काफी चतुर हैं और अन्य प्रकार से नहीं ठगे जा सकते तथा जिनके पास मंडियों तक माल लाने के साधन हैं। इन मंडियों में कई तरह के खरीदार रहते हैं, जैसे शहरों के व्यापारी, देशी महाजनों के अढ़तिये जो या तो उन्हीं के लिये अथवा उनके ग्राहकों के लिये खरीदारी करते हैं, निर्यात करने वालों के प्रतिनिधि इत्यादि, इत्यादि। यहाँ प्रायः नकद दाम दिये जाते हैं। अतः, एक स्थान से दूसरे स्थान को बराबर रकमें आती-जाती रहती हैं।

जहाँ तक अन्य उद्योग-धन्धों का प्रश्न है, यह लोग ऊँचे पैमाने पर किये जाने वाले धन्धों में तो अवश्य ही अधिक दिलचस्पी नहीं रखते। शायद ऐसा इसीलिये है कि उनके करने के जो ढङ्ग हैं उनके विदेशी होने कारण यह उनसे अनभिज्ञ हैं। किन्तु इधर ये लोग उनमें अधिकाधिक दिलचस्पी ले रहे हैं। बहुत-सी मिलें इन्हीं के उद्योगों के कारण खुल रही हैं, और अनेक इन्हीं के प्रबन्ध के अन्तर्गत हैं। कुछ शहरों में ये अपनी रकम मिलों में भी जमा कर देते हैं। बात यह है कि उन्होंने इनके हृदय में विश्वास पैदा कर लिया है। अतः, वह इनमें अपनी रकम स्थायी खातों में लगा देते हैं और जब यह निश्चित समय जो प्रायः दो महीनों का रहता है समाप्त हो जाता है तब यह या तो उसे फिर वहीं लगा सकते हैं या निकाल सकते हैं। इससे इन्हें इनको आवश्यकता पड़ने पर अधिक लाभ के कामों में भी लगा देने का अवसर मिल जाता है।

किन्तु घरेलू धन्धों की तो एकमात्र यही आर्थिक सहायता करते हैं। वस्तुतः कारीगरों के पास तो स्वयं की पूँजी बहुत ही कम रहती है। ऋणदाता और महाजन इन्हें कच्चा माल देते हैं और उसके बदले में इनसे इस बात का वायदा करवा लेते हैं कि ये अपना बना हुआ माल उन्हीं के हाथ बेचेंगे। इससे इन्हें जो मूल्य मिलते हैं वह बहुत ही कम होते हैं। किन्तु अपनी बेबसी के कारण इन्हें ऐसा करना पड़ता है। प्रायः इनके बनाये हुये माल पर अच्छी फिनिश भी यह ऋणदाता तथा महाजन ही कराते हैं। फिर वह इन्हें स्वयं

बेचते हैं। उदाहरण के लिये हम किसी भी शहर के कोई भी मशहूर घरेलू धंधा ले सकते हैं।

यह तो हम देख ही चुके हैं कि कृषि को इनके बाजारों में ऋणदाताओं तथा महाजनों द्वारा आर्थिक सहायता पहुँचाने के कारण ही आ पाती है। इसके अतिरिक्त अन्य चीजों का वितरण भी इन्हीं की सहायता के कारण हो पाता है। यह अपने ग्राहकों की ओर से केवल अपनी आढ़त में माल रखकर ही नहीं वरन् बेचने वाले और खरीदार के बीच में उनकी हुंडियों का भुगतान करके और अपनी हुंडियों द्वारा उनके द्रव्य इधर से उधर भेज कर भी व्यापार में सहायता पहुँचाते हैं। हाँ यह विदेशी व्यापार में केवल उसका वह अङ्ग छोड़ कर जो माल बन्दरगाहों से मंडियों में और मंडियों से बन्दरगाहों में भेजने से सम्बन्धित है, अन्य किसी तरह से सहायता नहीं पहुँचाते।

ये जनता से बहुत कम जमा प्राप्त करते हैं, और जब करते हैं तब लाभ के विचार से नहीं वरन् अपने मित्रों पर एहसान करने के विचार से ऐसा करते हैं। इनमें परस्पर भी काफी उधार लिया-दिया जाता है। हुंडी का काम जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, अब पहले से कम होता है। किन्तु ऐसा नहीं है कि यह बिल्कुल न होता हो। सर्राफ अब भी हुंडियाँ बट्टे पर खरीद लेते हैं और जब उनके पास द्रव्य नहीं रहता तब वह इन्हें आधुनिक बैंकों से भुनवा लेते हैं। इम्पीरियल बैंक यह काम खूब सुरक्षित समझता है। बात यह है कि इन पर जो सर्राफ के बेचान हो जाते हैं उससे वह भी इनका भुगतान करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। अन्तिम बात यह है कि उनमें से कुछ आधुनिक बैंकों की तरह ही बैंकिंग का व्यवसाय करने लग गये हैं, यद्यपि इनकी संख्या बहुत कम है।

ऋणदाताओं और इन्डीजेनस बैंकरों के संगठन में दोष

ऋणदाताओं और इंडीजेनस बैंकरों के संगठन में बहुत से दोष हैं —

(१) इनमें से अधिकांश लकीर के फकीर हैं और पुराने ढङ्ग से ही काम करना चाहते हैं। हाँ, कुछ अवश्य ऐसे हैं जिन्होंने सुधार कर लिया है और जमा प्राप्त करते हैं, चेकें देते हैं, और अपने ग्राहकों के लिये वह सब काम करते हैं जो आधुनिक बैंक करते हैं, किन्तु इनकी संख्या बहुत ही कम है।

(२) इनमें पारस्परिक ईर्ष्या है जिससे इनका कोई अच्छा संगठन

नहीं है। हॉ, कुछ पुराने और नये सगठन अवश्य हैं किन्तु इनके सदस्यों की सख्या बहुत कम होने के कारण यह सबके प्रतिनिधि नहीं माने जा सकते। महाजन और पचायत जैसे पुराने संगठनों का महत्त्व तो अदालते खुल जाने से समाप्त हो गया है। अत उनके केवल धार्मिक तथा सामाजिक कृत्य अवशेष रह गये हैं। आधुनिक सङ्गठनों में बम्बई के उदाहरणार्थ बम्बई सराफ असोसियेशन, मारवाडी चेम्बर आफ कामर्श, कमीशन एजेन्ट असोसियेशन, मुल्तानी बैंकर्स असोसियेशन के नाम लिये जा सकते हैं। देश के अन्य हिस्सों मे भी कुछ और सङ्गठन हैं। ये अपने सदस्यों में मेल-जोल स्थापित करने में और उनके लाभ के काम करने में बहुत ही लाभदायक सिद्ध हो चुके हैं। किंतु स्थिति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। इनके सदस्यों की सख्या कम होने के कारण इन्हे उनका प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता।

(३) इन्होंने देश के लोगों मे बैंकिंग की आदत नहीं डाली। न ये साख का सृजन करते हैं। इन्होंने चेक और बिलों जैसे साख-पत्रों का प्रयोग प्रोत्साहित नहीं किया। हुडियाँ भी जिनसे यह बहुत दिनों से परिचित है, व्यापार की सहायता करने मे काम मे नहीं लाई जातीं, प्राय वह नकद ही होता है।

(४) इनके मुख्य व्यवसाय अर्थात् उधार देने के काम मे भी अनेक दोष हैं। उत्पत्ति और उपभोग की मॉगो के बीच मे तनिक सा भी भेद नहीं माना जाता। ब्याज की दर बहुत ऊँची रहती है और कुछ विशेषत छोटे-छोटे ऋणदाता बेईमानी भी करते हैं। सक्षेप में यह बहुत ही दूषित है।

(५) छोटे छोटे ऋणदाताओ की तो बात ही क्या है बड़े-बड़े महाजन भी बैंकिंग के साथ-साथ व्यापार भी करते हैं। कुछ मौके बेमौके सरकारी साख पत्रों मे सट्टेबाजी भी करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ अन्य देशो मे भी कुछ निजू बैंकर हैं जो किसी नियम के अनुसार काम नही करते और बैंकिंग के साथ अन्य व्यापार भी करते हैं। किन्तु इसमे जो सबसे बढ़कर दोष है वह यह है कि इनके व्यापार मे नुकसान पहुँचाने पर इनके यहाँ जमा करने वालो का नुकसान हो जाने का डर रहता है। हॉ, भारतवर्ष में इनके यहाँ जमा न होने के कारण ऐसी जोखिम नहीं है। किन्तु तो भी रिजर्व बैंक जैसा कि हम आगे चलकर देखेगे इन्हें अपने से सम्बन्धित करने के लिये तब तक तैयार नहीं है जब तक यह बैंकिंग के साथ अन्य व्यापार करना नहीं बन्द कर देते।

(६) इनमें से कुछ और अधिकतर केवल ऋण देने वाले हिसाब किताब भी नहीं रखते। आडिट से तो यह अनभिज्ञ ही हैं। अत. देश का केन्द्रीय बैंक इनकी सहायता नहीं कर सकता।

(७) इनके व्यवसाय सम्बन्धी कोई अङ्क नहीं प्राप्त हो सकते। वास्तव में यह बात जानने के लिये कि इनका सुधार किस ओर होना चाहिये इस बात की बहुत आवश्यकता है।

(८) इनमें और आधुनिक बैंकों में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। अत, देश में एक दूसरे से बिलकुल भिन्न दो-दो द्रव्य के बाजार हैं। प्राय यह देखा गया है कि जब इन्डीजेनस बैंकरों के पास द्रव्य की कमी होने के कारण वे ब्याज की ऊँची दर लेते हैं दूसरी तरफ आधुनिक बैंकों के पास द्रव्य की अधिकता के कारण वे जमा पर बहुत कम दर का ब्याज देते हैं और इस तरह वह स्रोत बन्द कर देते हैं जिसके द्वारा बैंकिंग की उन्नति होती है।

ऋणदाताओं और इन्डीजेनस बैंकरों के सुधार के लिये कुछ सुझाव

ऋणदाताओं और इन्डीजेनस बैंकरों के सुधार के लिये अनेक सुझाव रक्खे गये हैं। प्राय बैंकिंग सम्बन्धी प्रान्तीय कमेटियाँ इन्हें प्रमाण-पत्र (License) देने के पक्ष में थीं। हाँ, इस बात पर अवश्य मतभेद था कि यह ऐच्छिक अथवा अनिवार्य हो। जो ऐच्छिक के पक्ष में थीं उनका कथन था कि (१) बहुत से महाजन इसका घोर विरोध करेंगे, (२) अपनी मजबूत स्थिति के कारण लगाये हुए प्रतिबन्ध तोड़ देंगे और (३) ब्याज के बिना उधार देने वाले लोग काम बन्द कर देंगे।

इसके विपरीत अनिवार्य रूप में प्रमाण-पत्र देने के पक्षपाती यह कहती थीं कि (१) जब तक ऐसा न होगा बेईमान महाजनों की बेईमानियाँ न रुक सकेंगी, और (२) कानून तथा चिकित्सा के सम्बन्ध में तो प्रमाण-पत्र लेना आवश्यक है और उसमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती तब इसमें कैसे कठिनाई पड़ेगी।

प्रमाण-पत्र के लिये निम्न शर्तों का सुझाव था :—(१) ब्याज पर प्रतिबन्ध (२) हिसाब-किताब एक विशेष प्रकार से रखना और आडिट कराना, (३) प्रत्येक ऋणी को समय-समय पर उसके हिसाब की प्रतिलिपि देना, (४) उसके ऋण की वापिसी पर रसीद देना और उसका प्रतिरूप अपने पास रखना,

और (५) चक्रवृद्धि व्याज लगाने के लिये कम से कम एक वर्ष का समय निश्चित करना ।

उपर्युक्त प्रतिबन्ध मानने पर उसे निम्न अधिकार देना—(१) कृषि सम्बन्धी हुडियों और गोदामों की रसीदों की जमानत पर दिये हुये ऋण की वापिसी के लिये उसे वही अधिकार देना जो सरकार को अपनी वसूल करने के लिये मिले हुये हैं, (२) कृषि सम्बन्धी कागजों पर उधार पाने की सुविधा, इम्पीरियल बैंक और डाकखानों द्वारा उसी प्रकार द्रव्य भेजने के अधिकार जिस प्रकार आधुनिक बैंकों और सहकारी समितियों को मिले हुए हैं, और (४) डाकखानों मे चालू खातों मे रुपया जमा करने और उसे चेकों द्वारा निकालने का अधिकार, इत्यादि ।

किन्तु कुछ कमेटियाँ जिनमें केन्द्रीय कमेटी भी थी किसी प्रकार का प्रमाण-पत्र देने के पक्ष में नहीं थीं। उनका कहना था कि प्रमाण-पत्र की बात तो केवल दो उद्देश्य ही लेकर सुझाई जा रही है, अर्थात् (१) महाजनो द्वारा जो अधिक व्याज लिया जा रहा है उसे कम करने के लिये, और (२) उनमे से कुछ जो अन्य बुरी बाते करते हैं उसे रोकने के लिये। इनका कहना था कि इनमें से पहला उद्देश्य तो जनता को शिक्षित बनाकर, उनमे मितव्ययता और बचत करने की आदत डालकर और महाजनों के ऋण देने के एकाधिपत्य को समाप्ति करके पूरा किया जा सकता है। जहाँ तक दूसरा उद्देश्य पूरा करने का प्रश्न है वह बुरी बातो के लिये अधिकाधिक दण्ड देकर रोका जा सकता है। तब से अब तक बहुत कुछ किया जा चुका है।

बङ्गाल, आसाम, मध्यप्रान्त, बिहार, बम्बई और पजाब में महाजन कानून बन गये हैं जिनके अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक प्रमाणपत्र लेना पड़ता है। कुछ प्रान्तों मे यह अनिवार्य है और कुछ में ऐच्छिक है। जहाँ ऐच्छिक है वहाँ जिन महाजनो के पास प्रमाणपत्र नहीं हैं वे अदालत की सहायता नहीं प्राप्त कर सकते। प्रमाणित महाजनों को नियमानुसार हिसाब रखना पड़ता है, निश्चित समय पर अपने ऋणी को उसके हिसाब की नकल देनी पडती है, रुपये की वापिसी पर रसीद देनी पड़ती है, इत्यादि इत्यादि।

व्याज की दर तो लगभग सभी प्रान्तों में बाँध दी गई है। कुछ प्रान्तों मे ऋणियों को कुछ छुटकारा भी दिया गया है। यहाँ पर एक बहुत पुराना दमदुपत सिद्धान्त है, जिसके अनुसार किसी ऋणी के ऋण की दुगुनी रकम दे देने पर

उस ऋण से छुटकारा मिल जाता है। अब कुछ प्रान्तों में इस सिद्धान्त का सहारा लिया गया है। ऋणी के शरीर और उसकी सम्पत्ति की भी प्राय सभी जगह रक्षा की गई है। ऐसा कहीं नहीं है जहाँ इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ न किया गया हो। किन्तु तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि जो कुछ करने योग्य था वह सभी कर दिया गया है।

कुछ विधानों में तो बहुत से दोष हैं जो समय आने पर दूर करने ही पड़ेंगे। वास्तव में इसके लिये अनुभव की आवश्यकता है। इगलिस्तान और अन्य पश्चिमीय देशों में भी जहाँ ऐसे विधान बहुत पहले से चले आ रहे हैं अब भी अनेक दोष पाये जाते हैं और वह समय-समय पर दूर किये जाते हैं। सच तो यह है कि बेईमानी के सामने विधान का बहुत कम प्रभाव पड़ता है। हाँ, ईमानदार व्यक्ति के लिये अवश्य यह ईमानदारी के प्रमाणस्वरूप हो जाता है।

जो लोग ऋण देने के साथ-साथ बैंकिंग के अन्य काम भी करते हैं वह भी कुछ सुधरने के बाद देश के आर्थिक सङ्गठन के बहुत ही उपयोगी सदस्य बन सकते हैं। उनके रहने की आवश्यकता है। सम्मिलित पूँजी के बैंक, इम्पीरियल बैंक और सहकारी संस्थायें सारे देश के लिये बैंकिंग की सुविधायें नहीं प्रदान कर सकतीं। अत, यह इनका स्थान भी नहीं ले सकती। फिर यह एक बहुत ही उपयोगी काम कर सकते हैं। हमारे देश में बिलों की दलाली और उनकी स्वीकृति का काम बहुत कम होता है। इसे वह पूरा कर सकते हैं। हम जानते हैं कि वह हुंडी का काम बहुत प्राचीन काल से करते आ रहे हैं, अत, उनका यह अनुभव देश में बिलों का बाजार स्थापित करने में जो यहाँ की बैंकिंग प्रणाली के लिये बहुत ही आवश्यक है बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

बैंकिंग सम्बन्धी अनुसन्धान करने के लिये जो केन्द्रीय कमेटी बनी थी उसने इन्हें रिजर्व बैंक से सम्बन्धित करने का सुझाव रक्खा था और इस काम के लिये इन्हें उपयुक्त बनाने के लिये इनके द्वारा कुछ शर्तें पूरी करने की योजना बनाई थी। किन्तु रिजर्व बैंक के संस्थापित हो जाने पर भी अभी तक इस सम्बन्ध में कुछ नहीं हो पाया है। रिजर्व बैंक विधान की ५५ (१) धारा में यह दिया हुआ था कि यह बैंक यथासम्भव शीघ्र अथवा अपनी संस्थापना के तीन वर्ष के अन्दर (अर्थात् ३१ दिसम्बर, सन् १९३७ तक में) सपरिषद् गवर्नर जनरल को निम्न विषयों पर अपनी सम्मति दे —

(अ) इस विधान की जो धाराये तालिका मे सम्मिलित बैंकों (Scheduled Banks) के सम्बन्ध मे दी हुई हैं उन्हें ब्रिटिश भारत में बैंकिंग के काम करनेवाले उन व्यक्तियों और सस्थाओ के ऊपर लागू करने के सम्बन्ध में जो उक्त तालिका मे सम्मिलित नही हैं, और

(ब) कृषि को आर्थिक सहायता पहुँचाने के लिये जो अवलम्बन है उन्हें तथा उस धधे और बैंकिंग के व्यवसाय के बीच मे सम्बन्ध स्थापित करने के लये जो तरीके हैं उन्हें सुधारने के सम्बध मे।

'अ' भाग तो स्पष्ट ही इडोजेनम बैंकरो से सम्बधित है, किन्तु जहाँ तक व कृषि के व्यापार की आर्थिक सहायता करते हैं और कृषकों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे उधार देते हैं, वहाँ तक कृषि को आर्थिक सहायता पहुँचाने का काम करने की हैसियत से उनके सुधार और उनके कार्यों का रिजर्व बैंक से सम्बन्धित करने के प्रश्न 'ब' मे भी सम्मिलित हैं और इसीलिये यह दोनों विषय एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।

बैंक ने उपयुक्त शर्तें पूरी करने के उद्देश्य से सन् १६३६ के दिसम्बर में मे एक प्रारम्भिक रिपोर्ट सन् १६३७ के दिसम्बर मे एक वैधानिक रिपोर्ट प्रकाशित की थी। यह दोनों रिपोर्ट परस्पर पूरक हैं और इस सम्बन्ध मे काफी प्रकाश डालती है। व्याज की दर और उनका काम नियन्त्रण मे लाने के लिये विधान बनाने के सुझाव रक्खे गये थे। ऊपर जिन विधानों का जिक्र किया गया है वह इन्हीं सुझाव के कारण बनाये गये थे। इण्डीजेनस बैंकरों को रिजर्व बैंक से सम्बन्धित होने के लिये जो शर्तें पूरी करनी हैं वह भी उसी समय इनके प्रतिनिधियों को बतला दी गई थीं। वास्तव मे यह कोई नई नहीं थीं। बैंकिंग के विषय में अनुसान्धान करने के लिये जो कमेटियाँ बनाई गई थीं वे भी पहले ही लगभग यही सुझाव रख चुकी थीं। सक्षेप में उन्होंने यह सुझाव रक्खा था कि यदि ये रिजर्व बैंक से सम्बन्धित होना चाहते हैं तो इन्हें अपने व्यवसाय का ढङ्ग सम्मिलित पूँजीवाले बैंकों के ढङ्ग के अनुसार करना पड़ेगा और विशेषत बैंकिंग का जमा प्राप्त करने का व्यवसाय अपनाना पड़ेगा। इन्होंने जो उत्तर दिये थे उनसे यह स्पष्ट है कि वे सब जमा प्राप्त करने का व्यवसाय अपनाने और हिसाब का विज्ञापन करने के विचार से सहमत नहीं थे। जहाँ तक अन्य प्रश्न थे उन सबके लिये वे तैयार थे। उदाहरण के लिये वे अपने हिसाब एक निश्चित रूप में रखने के लिये और सट्टेबाजी छोड़ देने के लिये सहमत थे। वे केवल बैंकिंग का व्यवसाय करने के लिये भी तैयार नहीं

गे। उनका विचार था कि अधिकांश उनके अपने आप दादों के गैर-बैंकिंग के व्यवसाय छोड़ देने से न केवल उनके लाभ का एक स्रोत ही बन्द हो जायगा बल्कि उनकी उस स्थानीय साख को भी धक्का लगेगा जो उनके लिये बैंकिंग का व्यवसाय करने के लिये बहुत ही आवश्यक है। यथार्थ मे यह सत्य ही प्रतीत होता है। फिर, यह बात भी कुछ समझ म नहीं आती कि जब वे बैंकिंग के अन्य व्यवसाय कर रहे हैं तब रिजर्व बैंक उन्हें जमा प्राप्त करने का व्यवसाय अपनाने के लिये क्यों इतना मजबूर कर रहा है। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह अंग्रेजी बैंकिंग प्रणाली की एक व्यर्थ की नकल है। क्या भारतवर्ष के अपने यहाँ विकसित देशी प्रणाली के अनुसार कार्य करने मे कोई बड़ा भारी अपराध है? इण्डीजेनस बैंकर स्वयं ही देश की बैंकिंग प्रणाली में एक बहुत ही ऊँचा स्थान प्राप्त करना चाहते हैं जो उससे किसी दशा मे भी कम न हो जो भूतकाल मे था। यदि कोई कठिनाई अनुभव हो रही है तो यह केवल इसीलिये है कि हमारे गोरे महाप्रभुओं का दृष्टिकोण कुछ विचित्र सा था। अब तो हम लोगों के स्वतन्त्र हो जाने पर रिजर्व बैंक का दृष्टिकोण बदलना ही चाहिये। हाँ, यह भी बहुत ही आवश्यक है कि इण्डीजेनस बैंकर भी समय के परिवर्तन के साथ-साथ अपने काम करने का ढङ्ग बदल दें और अपने को एक केन्द्रीय बैंक के सदस्या के योग्य बना लें।

वैधानिक रिपोर्ट म एक अन्य सुझाव भी है और शायद यह जैसा कि बैंक भी आशा करता है, भविष्य में इन्हें इनके काम का ढङ्ग बदले बिना ही और इनके ऊपर किसी विशेष प्रकार का प्रतिबन्ध लगाये बिना ही उससे प्रत्यक्ष रूप मे सम्बन्धित कर दें। हम जानते हैं कि वे बहुत प्राचीन काल से ही हुन्डियों का प्रयोग करते आ रहे हैं। अत, यदि वे इन्हें प्रोत्साहन दें तो अवश्य ही यहाँ पर एक बिल बाजार स्थापित हो जाय। बैंक ने यह वायदा कर लिया है कि वह बाजार में अपनी खुल्लम खुल्ला तौर पर काम करने की नीति हुन्डियों के सम्बन्ध में भी उसी प्रकार लागू करने के लिये तैयार है जिस तरह से सरकारी कागजों के सम्बन्ध मे करता है। अत., इस तरह से वे अवश्य ही उससे सम्बन्धित हो जायँगे। बहुत दिनों तक तो इन पर इतने अधिक मूल्य के स्टाम्प लगते थे कि इनकी उन्नति असम्भव सी थी, किन्तु सन् १९४० से यह घटा दिया गया है जिससे इसकी उन्नति के सम्बन्ध मे कम से कम एक बाधा तो हट गई है। इस विषय पर और विचार हम किसी अन्य स्थान पर करेंगे।

रिजर्व बैंक स्वीकृत (Approved) इण्डीजेनस बैंकरों की एक तालिका

रखता है और उन्हें द्रव्य इधर से उधर भेजने मे उसी प्रकार की सुविधायें देता है जैसे दूसरे गैरसदस्य बैंकों को मिली हुई हैं।

इन्डीजेनस बैंकरों का रिजर्व बैंक से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित हो जाने से लाभ

अब, प्रश्न यह है कि इन्डीजेनस बैंकरों को रिजर्व बैंक से प्रत्यक्ष रूप मे सम्बन्धित हो जाने से क्या लाभ होगा। कुछ लोगों का यह कहना था कि उनका यह सम्बन्ध सम्मिलित पूँजी के अन्य बैंको तथा इम्पीरियल बैंक द्वारा ही होना चाहिये। उनके पास ऐसे स्वीकृत इन्डीजेनस बैंकरों की तालिका रहती है जिनकी हुन्डियाँ वे एक निश्चित सीमा तक लेने के लिये तैयार रहते हैं। अत यह सुझाव था कि यह काफी है, रिजर्व बैंक को केवल इन हुन्डियों के इन्हीं बैंकों द्वारा लाने पर इन्हे ले लेना चाहिये। किन्तु इस सुझाव का बड़ा विरोध हुआ और अब तो यह छोड ही दिया गया है। बम्बई सर्राफ असोसियेशन के प्रधान चुन्नीलाल बी० मेहता ने जैसा कि रिजर्व बैंक के गवर्नर ने सर जेम्स टेलर को अपने २४ सितम्बर, सन् १६३७ के एक पत्र में लिखा था, यह बैंक अधिकाश इन्डीजेनस बैंकरो की सहायता नहीं करते। बल्कि इन्होंने उनसे प्रतियोगिता करके उनका व्यवसाय छीन लिया है, अत, यह सुझाव उन्हे कदापि नहीं पसन्द आ सकता। प्रत्यक्ष सम्बन्ध के निम्न लाभ हैं :—

(१) प्रथम महायुद्ध के समय से ससार के इतिहास ने यह तो स्पष्ट ही कर दिया है कि यदि किसी देश को आर्थिक दृष्टि से दृढ और स्वतन्त्र रहना है तो उसके यहाँ की बैंकिङ्ग की प्रणाली ऐसी सम्बन्धित होनी चाहिये कि जिसमे देश के बैंकिंग के मुख्य-मुख्य काम पूर्णरूप से सम्मिलित हों और वह अपने केन्द्रीय बैंक के निरीक्षण तथा नियन्त्रण मे भली-भाँति सगठित हों। हम जानते हैं कि इन्डीजेन्स बैंकर भी बैंकिंग का एक मुख्य काम करते हैं और छोटे-छोटे कस्बों तथा गाँवो मे तो केवल यही हैं ही, सम्मिलित पूँजी के बैंक या तो हैं ही नहीं अथवा इनकी तुलना में कुछ भी काम नहीं करते। बडे-बड़े शहरों और बन्दरगाहों में भी, जहाँ ये बहुत महत्वशाली है, वह अवश्य पाये जाते हैं। अत यह आवश्यक है कि वह भी रिजर्व बैंक से उसी भाँति सम्बन्धित हों जिस भाँति आधुनिक बैंक हैं। इससे देश मे जो द्रव्य के देशी बाजार और आधुनिक बाजार हैं उनके कार्यों का पारस्परिक सगठन हो जायगा। साथ ही इससे

इन्डीजेनस बैंकरों का स्तर तथा उनके कार्य करने का ढंग भी ऊँचा उठ जायगा।

(२) इन्डीजेनस बैंकरों के पास पहले जो जमा थे वह भी इधर निकल गये हैं। इसके कई कारण हैं, किन्तु जैसा कि तुलसीदास जी० मेहता ने अपने उस पत्र में कहा था जिसका संकेत ऊपर किया जा चुका है, इसका एक मुख्य कारण सम्मिलित पूँजी के बैंकों और सरकार का अपने ब्याज की दर ऊँची कर देना भी था। प्राचीन प्रणाली के इधर निर्बल हो जाने के चाहे जो कारण रहे हों, किन्तु यह निश्चित है कि यदि यह रिजर्व बैंक से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हो जायँ तो इनके पास अवश्य जमा आने लगेगी। अतः, यह स्पष्ट है कि जमा की प्राप्ति की शर्त सम्बन्धित होने के पहिले नहीं लगानी चाहिये बल्कि यह उसके फलस्वरूप अपने आप पूरी हो जायगी।

(३) ऐसी आशा की जाती है कि सम्बन्धित हो जाने के फलस्वरूप उनका बैंकिंग का व्यवसाय बढ़ जायगा। अतः, यह गैर बैंकिंग के व्यवसाय छोड़ सकेंगे। इससे यह कहा जा सकता है कि यह भी सम्बन्धित हो जाने के फलस्वरूप होगा, पहले से इसे पूरा करने की शर्त एक प्रकार से व्यर्थ सी है।

(४) सम्बन्धित हो जाने का एक अन्य लाभ यह होगा कि इन्डीजेनस बैंकर रिजर्व बैंक से सीधे ऋण ले सकेंगे और अपनी हुण्डियाँ भुना सकेंगे। अब, यदि इसके सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध लगाया जायगा, जैसे केवल विशेष आवश्यकता पड़ने पर ही ऋण मिल सके तो प्रत्यक्ष सम्बन्ध का कोई लाभ नहीं होगा। हाँ, जैसे-जैसे इण्डीजेनस बैंकरों की स्थिति सुधरती जाय, और यह उनके रिजर्व बैंक से सम्बन्धित होने के फलस्वरूप अवश्य होगा, वैसे वैसे ही इस सम्बन्ध में कड़ाई की जा सकती है।

(५) यद्यपि इण्डीजेनस बैंकर अपने हिसाब की विज्ञप्ति के विरुद्ध हैं, किन्तु वह रिजर्व बैंक को उसकी इच्छित सूचनायें देने के लिये तैयार हैं। ये सब एकत्र करके इनकी विज्ञप्ति की जा सकती है और उससे देश की आर्थिक स्थिति का बराबर ज्ञान हो सकता है।

(६) जब इनका बैंक से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो जायगा तब इन्हें द्रव्य भेजने की सुविधायें भी मिल जायँगी। आजकल भी कुछ इण्डीजेनस बैंकरों को निश्चित शर्तें पूरी कर दी हैं और जो बैंक की स्वीकृति तालिका में सम्मिलित हो गये हैं उन्हें यह सुविधायें मिली हुई हैं।

इण्डीजेनस बैंकरो का इम्पीरियल बैंक तथा अन्य व्यापारिक बैंकों से सम्बन्ध

इन्डीजेनस बैंकरों का इम्पीरियल बैंक तथा अन्य व्यापारिक बैंकों से जो सम्बन्ध आजकल है यह बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता। इम्पीरियल बैंक और अन्य व्यापारिक बैंक अपनी स्वीकृत तालिका मे इनमें से जिसका नाम लिख लेते हैं उन्हीं से अपना सम्बन्ध रखते हैं। बैंकिग विषय के अनुसन्धान करने वाली बगाल की कमेटी ने यह कहा था कि इम्पीरियल बैंक इनमे से बहुत ही प्राचीन और प्रसिद्ध लोगों से भी काम करने मे सकोच करता है। इम्पीरियल बैंक और दूसरे व्यापारिक बैंको के व्यवस्थापकों की बराबर इस बात की शिकायतें होती रही हैं कि वे इनसे अच्छा व्यवहार नहीं करते। ऐसा शायद इसलिये भी होता था कि प्रायः यह व्यवस्थापक गैर भारतीय होते थे और इनकी भाषा भी नहीं समझ पाते थे। किन्तु भारतीय व्यवस्थापकों ने भी इनमें वह दिलचस्पी नहीं ली जो उन्हें लेनी चाहिये थी। इसका कारण भी स्पष्ट है। वे बराबर एक शाखा से दूसरी शाखा को बदल दिये जाते हैं जिससे उनमें अपने ग्राहकों के विषय मे यह ज्ञान नहीं प्राप्त हो पाता जो अत्यन्त ही आवश्यक है। यह भारतीय बैंकिग का एक विशेष दोष है और इसी कारण-वश इसके दो अङ्ग देशी और आधुनिक बराबर एक दूसरे से पृथक् चले आ रहे हैं।

जहाँ तक उन इण्डीजेनस बैंकरो का सम्बन्ध है जिनका नाम इनकी स्वीकृत तालिका मे है, उन्हें ये लोग प्रण-पत्रों की जमानत पर जिन पर कम-से-कम दो धनियों के हस्ताक्षर होते हैं और जिनमे से एक व्यापारी भी होता है, नकद साख प्रणाली के अनुसार उधार दे देते हैं। इनकी हुडियाँ भी इनके यहाँ भुन जाती हैं। इन्हें इण्डीजेनस बैंकर पहले तो व्यापारियों से इनका नकद दाम देकर खरीद लेते हैं। प्रायः यह उन्हें अपने पास ही रखते हैं, अथवा परस्पर भुना लेते हैं। किन्तु कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर ये बैंको से भी भुना ली जाती हैं। हाँ, यह उस रकम से अधिक की नहीं होती जो स्वीकृत तालिका मे। उनके नाम के आगे दी रहती है। वास्तव में यह रकम उनकी स्थिति के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ करने के पश्चात निर्धारित की जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि इण्डीजेनस बैंकरों को इम्पीरियल बैंक और अन्य व्यापारिक बैंकों की स्वीकृत तालिका में अपना नाम लिखवा लेने से भी कोई विशेष लाभ

नहीं होता। वे प्रायः साधारण ग्राहकों के समान ही समझे जाते हैं। इनके ऊपर जो चेकें काटी जाती हैं, अथवा इनके पक्ष में यदि रेखांकन किया जाता है तो यह चेक यह बैंक नहीं लेते।

उपसंहार में यह कहा जा सकता है कि स्थिति सन्तोषजनक नहीं है और सभी लोगों को सुधार करना चाहिये। इस सम्बन्ध में जर्मनी के कोमान्डिट सिद्धान्त के अनुसार यह लोग परस्पर साझा बना सकते हैं। इसमें बैंक अपनी शाखायें न खोलकर निजू बैंकों को अपना प्रतिनिधि बना देते हैं और उनकी बराबर मदद करते रहते हैं। इससे जो लाभ होता है उसका दोनों में बँटवारा हो जाता है। निजू बैंकर का ऋण सम्बन्धी दायित्व स्थानीय परिस्थितियों अधिक समझ सकने के कारण अधिक रहता है। उनके अधिकार भी सीमित रहते हैं। किन्तु यह सब यहाँ पर तभी हो सकता है जब इन्डीजेनस बैंकर अपने ढङ्ग का सुधार करें और परस्पर सङ्गठित होकर अपने अधिकार प्राप्त करने के लिये आवाज लगावें। इसी तरह से यह अपने प्रति जनता की, राष्ट्र का रिजर्व बैंक की और इम्पीरियल बैंक तथा अन्य व्यापारिक बैंकों की सहानुभूति आकर्षित कर सकेंगे।

प्रश्न

(१) इन्डीजेनस बैंकिंग और इन्डीजेनस बैंकर्स से आप क्या समझते हैं? क्या आप ऋणदाता और इन्डीजेनस बैंकर के बीच में भेद बता सकते हैं? इन्डीजेनस बैंकर की एक उपयुक्त, परिभाषा दीजिये।

(२) ग्रामीण तथा नागरिक क्षेत्रों में जो भिन्न भिन्न प्रकार के ऋण देने वाले पाये जाते हैं उनका एक संक्षिप्त विवरण दीजिये। उनमें से कौन कौन ऋण देने के अतिरिक्त अन्य बैंकिंग व्यवसाय करते हैं?

(३) ऋणदाताओं और इन्डीजेनस बैंकरों के काम करने के तरीकों, ऋण देने की प्रणाली और खर्चों के विषय में आप जो कुछ जानते हों उसे और इनके सम्बन्ध में जो पद प्रयोग में आते हैं उनके विषय में समझाते हुये लिखिये।

(४) ऋणदाताओं और इन्डीजेनस बैंकरों के जो काम हैं उनका एक संक्षिप्त विवरण देते हुये जनता के लिये उनकी आवश्यकता दिखाइये।

(५) ऋणदाता और इन्डीजेनस बैंकरों में क्या दोष हैं? इन्हें स्पष्ट तौर पर समझाइये।

(६) ऋणदाताओ को प्रमाण-पत्र देने के विषय मे बैंकिङ्ग सम्बन्धी अनुसन्धान करनेवाली भिन्न-भिन्न कमेटियो की क्या सम्मति थी? भिन्न-भिन्न सम्मतियो पर प्रकाश डालिये।

(७) भिन्न-भिन्न प्रातो में ऋणदाताओ के व्यवसाय का नियन्त्रण करने के लिये जो कानून पास किय गये हैं उनका विवरण दते हुये यह बताइये कि इस विषय म क्या विचारधारा है।

(८) ऋणदाताओ और इन्डीजनस बकरो का व्यवसाय सुधारने के लिये अपन सुझाव दीजिये। रिजर्व बैंक से सम्बन्धित हो जाने पर कौन-कौन स लाभ होग, यह बताइये।

(९) रिजर्व बैंक न इन्डीजेनस बैंकरो को अपने से सम्बन्धित करने के लिय जो नाति बरती है उस पर आपके क्या विचार हैं?

(१०) ऋणदाताओ और इन्डीजेनस बैंकरो का इम्पीरियल बैंक तथा दूसरे व्यापारिक बैंको से क्या सम्बन्ध है? उसके सुधार के सम्बन्ध मे अपन सुझाव रखिये।

अध्याय १४

कृषि सम्बन्धी आर्थिक व्यवस्था

कृषि सम्बन्धी आर्थिक व्यवस्था पर हमें न केवल इसलिए विशेष ध्यान देना चाहिये कि इस देश में इस धन्धे का एक विशेष स्थान है बल्कि इसलिये भी कि इसे कुछ विशेष कठिनाइयाँ हैं। वास्तव मे कृषि तथा अन्य धधों के बीच मे कुछ अन्तर है और सत्य तो यह है कि यही कृषि सम्बन्धी आर्थिक व्यवस्था के मूल मे है। प्रथम तो कृषि की उपज की इकाई का सगठन प्राय: एक ही व्यक्ति के हाथ मे होने से उसे जो साख प्राप्त हो सकती है वह बहुत सकुचित है। इसे साख पाने का आधुनिक तरीका अर्थात् सयुक्त प्रणाली उपलब्ध नहीं है। हम जानते हैं कि अन्य धधेवाले भविष्य को पूँजी के रूप में परिवर्तित कर लेते हैं अथवा यो कहिये कि अपनी कल्पित आय की शक्ति के आधार पर द्रव्य एकत्रित कर लेते हैं। किन्तु कृषक ऐसा नहीं कर सकता। उसकी कल्पना की वास्तविकता का साधारण लोगों की दृष्टि में कोई व्यापारिक मूल्य नहीं है। अत. उसके पास साख लेने के लिये केवल अपना

सीमित ही है। दूसरे, व्यापारिक बैंकों का संगठन भी उसके लिये उपयुक्त नहीं है। उसकी मुख्य आवश्यकता तो स्थायी पूंजी की है जिससे वह अपने खेत का विस्तार अथवा उसमें किसी प्रकार का सुधार कर ले और यह दूसरा एक दीर्घकालीन ऋण जिसका भुगतान वह एक फसल अथवा कुछ फसलों की सहायता से नहीं कर सकता। फिर, भूमि तथा अन्य प्रकार की जो चीजें वह जमानत के तौर पर दे सकता है उन्हें कोई व्यापारिक बैंक पसन्द भी नहीं करता। हम जानते हैं कि उन्हें तो अपने को द्रवित अवस्था में रखना है जो इस प्रकार की लागतों में फंसा देने से नहीं रह सकती। अंतिम यह है कि यहां पर कृषि का उद्यम आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद है ही नहीं। कृषि पर जो शाही कमीशन बैठा था उसके कथनानुसार यहाँ पर यह एक लाभप्रद व्यवसाय न होकर केवल एक जीवन निर्वाह का ढंग है। इससे कठिनाइयाँ और भी बढ़ जाती हैं और ऋण की अदायगी असम्भव भी हो जाती है। शाही कमीशन के शब्दों में कृषक ऋण में पैदा होते हैं, ऋण में रहते हैं और अपना बोझ अपने उत्तराधिकारियों को देते हुए ऋण में ही मर जाते हैं। अतः, इसके भुगतान का भी प्रश्न है। संक्षेप में कृषकों की आवश्यकतायें तीन प्रकार की होती हैं — (अ) अल्पकालीन (Shortterm), (ब) मध्यकालीन (Intermediate), और (स) दीर्घकालीन (Long-term)। अब, हम इनकी समस्याओं और उनके हल की ओर ध्यान देंगे।

(अ) अल्पकालीन ऋण की आवश्यकता

भारत में कृषकों की अल्पकालीन ऋण की आवश्यकता उनके कृषि सम्बन्धी दैनिक व्यय के लिये उदाहरणार्थ, बीज के दाम के लिये, श्रम के भुगतान के लिये और जब वह कृषि का काम करते हैं अथवा अपनी उपज बाजारों में ले जाते हैं तब वे उनके और उनके कुटुम्ब के व्यय के लिये और उनके अन्य चालू खर्चों के लिये जैसे लगान तथा व्याज के भुगतान के लिये है। यदि किसी के पास आर्थिक दृष्टि से उचित भूमि है तो साधारणतः उसे यह सब अपनी एक वर्ष की उपज बेच कर दे देना चाहिये। अतः इसमें नौ महीने लग जाते हैं। कुछ लेखक इसमें विक्रय और चलानी के व्यय भी सम्मिलित कर लेते हैं। किन्तु कृषकों का अधिक लाभ तभी हो सकता है जब यह कुछ अधिक समय तक के लिये अर्थात् तीन वर्ष तक के लिये मिल जाय। ऐसी स्थिति में यह मध्यकालीन ऋण के अन्तर्गत आ जाता है। यहाँ पर अधिकतर तो उपज गाँवों में ही बिक जाती है। अधिकांश में कृषकों को अपनी गरीबी के कारण

अपनी उपज को अच्छा मूल्य पाने के समय तक रोक रखने की शक्ति न होने के कारण उसे फौरन ही कम मूल्य पर बेच देना पड़ता है। यदि उसे उचित आर्थिक सहायता मिल जाय तो वह अपनी सब उपज एक साथ न बेचकर धीरे-धीरे बेचे जिससे उसका उचित मूल्य भी प्राप्त हो सके।

हमें यह देखना चाहिये कि उधार देने वाले वर्तमान सगठन किस तरह से कृषकों की यह अल्पकालीन ऋण की आवश्यकता पूरी करते हैं। इस सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि जो सगठन ऐसा कर रहे हैं वह प्राय. भिन्न-भिन्न प्रकार की ऋण की आवश्यकताओं में कोई भेद नहीं करते। हाँ, कुछ अपवाद अवश्य हैं जिनका अध्ययन हम उचित स्थान पर करेंगे।

रिजर्व बैंक आफ इन्डिया

प्रथम तो सन् १९३५ मे रिजर्व बैंक आफ इन्डिया है। यह कृषि को निम्न प्रकार से आर्थिक सहायता दे सकता है :—

(अ) सरकारी कागजों के अथवा स्वीकृत भूमिबन्धक बैंकों के उन स्वीकृत ऋण-पत्रों के आधार पर जिनमे धरोहर रक्खी जा सकती है (Trustee Securities) और जो आसानी से बेचे जा सकते हैं, प्रान्तीय सहकारी बैंकों को और उन केन्द्रीय भूमिबन्धक बैंकों को जो प्रान्तीय सहकारी बैंको के बराबर घोषित कर दिये गये हैं और उनके मार्फत क्रमश सहकारी केन्द्रीय बैंको को तथा प्रारम्भिक भूमिबन्धक बैंको को नौ महीनों के अन्दर देय ऋण के रूप मे,

(ब) केन्द्रीय सहकारी बैंकों के उन प्रण-पत्रों के आधार पर जो कृषी-सम्बन्धी कामों को मौसमी सहायता देने के लिये तैयार किये जाते हैं, प्रान्तीय सहकारी बैंकों को नौ महीनों के अन्दर देय ऋण के रूप मे अथवा डिस्काउण्ट के रूप मे,

(स) स्वीकृत सहकारी विक्रय और माल रखनेवाली समितियों के उन प्रण-पत्रों के आधार पर जिन पर प्रान्तीय सहकारी बैंको के बेचान हो और जो उपज की बिक्री के लिये बने हों उन्हीं को अधिक से अधिक नब्बे दिन के लिये ऋण के रूप मे अथवा यदि वह नौ महीने के अन्दर पकनेवाले हो तो डिस्काउण्ट के रूप में अथवा उन्हीं के उन प्रण-पत्रों के आधार पर जिनके साथ माल रखनेवाली समितियों की रसीदें हों अथवा ऐसे माल की गिरवी रक्खी गई हो जिसके आधार पर इन्होंने विक्रय और माल रखनेवाली समितियों को नगद उधार अथवा जमा की हुई रकम से अधिक रकम निकालने दी हो इनको ऋण के रूप में।

अब यह समझने की बात है कि जो ऋण नब्बे दिन के अन्दर वापिस किये जाने की शर्त पर दिये जाते हैं वह तो कृषि के अधिक काम में आ ही नहीं सकते। इन्हें तो प्रान्तीय सहकारी बैंक अथवा वह केन्द्रीय भूमिबन्धक बैंक जो इनके बराबर घोषित कर दिये गये हैं, यदि उन्हें तीन महीनों के अन्दर अन्दर इनके वापिस कर देने का निश्चय है तो केवल अपनी अल्पकालीन क्षणिक माग पूरी करने के लिये ही प्रयोग में ला सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि वह साधारणतः तो कृषि की अर्थपूर्ति के लिये रिजर्व बैंक का सहारा नहीं ले सकते। हा, अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर थोड़े समय के लिये ऐसा कर सकते हैं। किन्तु केन्द्रीय सहकारी बैंकों के उन प्रण-पत्रों को फिर से डिस्काउण्ट कर देने की शर्त भी है जो कृषि के मौसमी कामों की सहायता करने के लिये लिखे जाते हैं अथवा ऐसे ही स्वीकृत सहकारी विक्रय और माल रखने वाली समितियों के प्रण-पत्रों के सम्बन्ध में भी है, और दोनों स्थितियों में प्रण-पत्र नौ महीनों में पकने वाले हो सकते हैं तथा सहायता प्रान्तीय सहकारी बैंकों ही को प्राप्त हो सकती है। यह अवश्य ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है, किन्तु जहाँ तक सहकारी विक्रय अथवा माल रखनेवाली समितियों के प्रण-पत्रों का प्रश्न है वह तो यहा हो ही नहीं सकते क्योंकि जैसा कि हम जानते हैं इस देश में तो बहुत कम सहकारी विक्रय और माल रखने वाली समितियाँ हैं। उपर्युक्त से यह भी स्पष्ट है कि रिजर्व बैंक सहायता देने के लिये केवल प्रान्तीय सहकारी बैंकों को मानता है, केन्द्रीय सहकारी बैंकों को नहीं मानता। हम जानते हैं कि कृषक प्रारम्भिक समितियों से ऋण लेते हैं और वह केन्द्रीय बैंकों के पास सहायता के लिये जाती हैं। अतः रिजर्व बैंक के केवल प्रान्तीय बैंकों को सहायता देने के कारण वह केवल इन्हीं से सहायता प्राप्त कर सकते हैं। इसमें सचमुच बहुत ही घुमाव-फिराव है। अतः, यह सुझाव रक्खा जा रहा है कि रिजर्व बैंक को उन केन्द्रीय सहकारी बैंकों को भी सहायता देनी चाहिये जो उसके माप के अन्दर आ जायँ।

इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया और अन्य व्यापारिक बैंक

रिजर्व बैंक के बाद इम्पीरियल बैङ्क आफ इन्डिया तथा अन्य व्यापारिक बैंक हैं। इम्पीरियल बैंक आफ इन्डिया प्रान्तीय सहकारी बैंकों को और केन्द्रीय सहकारी बैंकों को क्रमशः केन्द्रीय सहकारी बैंकों के तथा प्रारम्भिक सहकारी

समितियों के प्रण-पत्रों के आधार पर नकद साख अथवा अधिविकर्ष के रूप में ऋण देता है। किन्तु इधर यह ऐसे ऋण कम करता जा रहा है, क्योंकि यह प्रण-पत्र प्राय भूमि के आधार पर लिखे होते हैं और यह भूमि का आधार उपयुक्त आधार नहीं मानता। दूसरे, यह कृषि की सहायता इन्डीजेनस बैंकरों द्वारा भी करता है क्योंकि वे कभी-कभी अपनी हुन्डियाँ इसके यहाँ डिसकाउन्ट कराते हैं अथवा उपज गिरवी रखकर ऋण प्राप्त करते हैं। अन्य व्यापारिक बैंकों में देश के सम्मिलित पूँजी वाले बैंक आ जाते हैं। यह लगभग वैसा ही व्यवसाय करते हैं जैसा इम्पीरियल बैंक करता है। इनमे से कुछ जमीदारो को उनकी जमीन, इत्यादि के आधार पर भी ऋण देते हैं।

साख सहकारी समितियाँ
(Credit Co-operative Societies)

अब हम साख सहकारी समितियों की ओर आते हैं। ये इस आधुनिक रूप में पहले-पहल सन् १८४६ में जर्मनी में खोली गई थीं। आजकल सहकारी समितियों की जो दो प्रणालियाँ हैं उनके चलानेवाले दो व्यक्ति थे जिनके नाम क्रमशः एफ० डब्ल्यू० रैफिसेन (F W Raiffeisen) और फ्रिज हरमन शुल्ज डेलिश (Fiitg Hermann Schulze Delitzsch) हैं। ये प्रणालियाँ क्रमश' रैफिसेन और शुल्ज डेलिश प्रणालियाँ कहलाती हैं। प्रथम में एक ही पड़ोस के अथवा स्थान के रहनेवाले बहुत से किसान अपनी इच्छा से मिल जाते हैं और पारस्परिक सहायता के लिये एक समिति बना लेते हैं। प्रत्येक सदस्य का दायित्व असीमित रहता है। समिति को जमा से, प्रवेश शुल्क से और कभी-कभी सदस्यों के पूँजी देने से और उधार के रूप मे द्रव्य मिलता है और उसे वह अपने सदस्यों को उनकी आवश्यकतानुसार उधार दे देती है। प्रबन्ध प्राय. निशुल्क होता है, केवल लेखकों को वेतन मिलता है। सब की राय से उनमें जो बहुत ही बुद्धिवान् होता है वही मुख्य कार्य सचालन और देख रेख करता है। द्वितीय मे एक ही शहर मे रहनेवाले बहुत से कारीगर जो स्वय अपने लिये काम करते हैं मिल कर एक समिति बना लेते हैं इसमे हर सदस्य को एक जमानती हिस्सा लेना पड़ता है जो काफी ऊँची रकम का होता है। यह कई किस्तों में वसूल की जाती है जिससे वह मितव्ययता सीखते हैं। यह समिति भी जमा और ऋण के रूप मे रकम प्राप्त करती है और यह ऋण की रकम उतनी ही अधिक होती है जितनी जमानती पूँजी होती है। सदस्यों का दायित्व

प्रायः असीमित होता है किन्तु यह सीमित भी हो सकता है। समिति का द्रव्य सदस्यों में ऋण के रूप में बाँट दिया जाता है। प्रबन्धक को प्रतिफल के रूप में उचित रकम भी दी जाती है और लाभ की बँटनी भी होती है तथा उसका एक सुरक्षित कोष भी बनता है। दोनों प्रकार की समितियों की मुख्य-मुख्य बातें संक्षेप में तुलनात्मक रूप में दी जा सकती हैं :—

रेफिसेन समिति	शुल्ज डेलिश
(१) काम करने का क्षेत्र सीमित रहता है।	(१) काम करने का क्षेत्र विस्तृत रहता है।
(२) पूँजी प्राय नहीं होती। यदि वह होती भी है तो बहुत कम होती है।	(२) पूँजी प्राय होती है।
(३) सदस्यों का दायित्व असीमित होता है।	(३) सदस्यों का दायित्व कभी-कभी सीमित होता है।
(४) गैर सदस्यों को ऋण नहीं दिया जाता।	(४) गैर सदस्यों को भी ऋण दिया जा सकता है।
(५) ऋण प्राय उत्पत्ति के कामों के लिये दिया जाता है।	(५) ऋण उपभोग के लिये भी दिया जा सकता है।
(६) लाभ की बँटनी नहीं होती।	(६) लाभ की बँटनी होती है।
(७) प्रबन्ध निशुल्क होता है।	(७) प्रबन्ध के लिये प्रतिफल दिया जाता है।

भारतवर्ष में सहकारिता का विकास

यद्यपि भारतवर्ष में सहकारिता प्रारम्भ करने के लिये पहले भी प्रयत्न किये गये थे किन्तु सरकारी तौर पर यह यहाँ पर सन् १९०४ ही में प्रारम्भ हुआ। इसके सम्बन्ध के पहले वाले सुझाव पर विलियम वैडरबर्न और जस्टिस रान्डे के थे, किन्तु उनके भारत सरकार की स्वीकृति प्राप्त कर लेने पर भी भारत सचिव ने उन्हें स्थगित कर दिया। फिर, सर फ्रेड्रिक निकल्सन ने सन् १८९७ में भारत सरकार को भूमि और कृषक बैंकों सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट पेश की और रेफिसेन प्रणाली की समितियों की स्थापना का सुझाव रक्खा। किन्तु यह भी कार्यरूप में नहीं लाया गया। तत्पश्चात् उत्तर प्रदेश सिविल सरविस के श्री० डुपरनैक्स ने प्रयत्न किया और वह कुछ सफल भी हुये क्योंकि उत्तर

प्रदेश, बङ्गाल और पञ्जाब मे कुछ समितियाँ स्थापित हुई । अन्त में सन् १६०१ में लार्ड कर्जन की सरकार ने एक कमेटी बनाई जिसकी सिफारिशो के फलस्वरूप सन् १६०४ का सहकारी साख समिति विधान बना।

इस विधान मे केवल साख सम्बन्धी समितियों के खुलने का ही प्रबन्ध था, और ग्रामीण समितियो पर नागरिक समितियों की अपेक्षाकृत अधिक जोर दिया गया था। इसके अनुसार एक ही गाँव के अथवा शहर के अथवा वर्ग के अथवा जाति के कोई दस व्यक्ति अपने को एक समिति के रूप मे सगठित करने के लिये आवेदन-पत्र भेज सकते थे। यदि सब सदस्यो के कम से कम ⅘ ग्रामीण होते थे तो वह समिति ग्रामीण साख समिति कहलाती थी, अन्यथा नागरिक कही जाती थी। प्रथम तो रैफिसेन वर्ग की थी और द्वितीय शुल्ज डेलिश वर्ग की। इनके निरीक्षण, आडिट और भङ्ग करने का अधिकार सरकार को दे दिया गया था।

इस आन्दोलन ने खूब ही उन्नति की और सन् १६०४ का विधान अपर्याप्त प्रतीत होने लगा। अत, सन् १६१२ मे एक दूसरा विधान बना। इसने सन् १६०४ के विधान के दोष दूर किये और साख के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों से स्थापित समितियो की सस्थापना के लिये भी नियम रक्खा। इसमे अभी तक समितियों का जो विभाजन था, अर्थात् ग्रामीण तथा नागरिक उसके स्थान पर एक अन्य अधिक वैज्ञानिक विभाजन का नियम बनाया जिसके अनुसार यह परिमित दायित्व वाली तथा अपरिमित दायित्ववाली कहलाई जाने लगी। अतिम बात यह थी कि इसने केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सहकारी बैंकों की भी योजना की और इस तरह से इसका नीचे से ऊपर तक एक मजबूत सगठन बना दिया। किन्तु साख के अतिरिक्त अन्य कामों के लिये समितियाँ बनाने पर जो पहले बन्धन था उसे सन् १६१२ के विधान द्वारा दूर कर देने पर भी आज तक अधिकाश समितियाँ साख समितियाँ ही हैं।

सन् १६१४ में सहकारिता के सम्बन्ध मे मैकलेगन कमेटी नियुक्त हुई। उसने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करने के लिये एक वर्ष लिया। उससे समितियों का पुनर्संगठन हुआ और उसके प्रबन्ध मे बहुत-सा परिवर्तन हो गया। जो अयोग्य थीं वह बन्द भी कर दी गई। ऋण की वापिसी के लिये समय पालन पर जोर दिया जाने लगा और इनके चलाने में जनता का हाथ बढ़ा दिया गया।

सन् १६१६ के सुधारो ने सहकारिता को एक हस्तान्तरित विषय बना

दिया। अतः, इसके मन्त्रियों (Ministers) ने बड़ी दिलचस्पी दिखलाई और शीघ्र ही बहुत-सी समितियाँ स्थापित हो गई। तब से लगभग प्रत्येक प्रान्त में इसके सुधार के लिये कमेटियाँ भी बनीं जिन्होंने अच्छे अच्छे सुझाव रक्खे। रिजर्व बैंक की वैधानिक रिपोर्ट में भी इस सम्बन्ध में काफी प्रकाश डाला गया है और पुनर्संगठन के लिये अच्छे सुझाव रक्खे गये हैं।

देश में साख सम्बन्धी सहकारिता के आन्दोलन की वर्तमान स्थिति—भारतवर्ष में साख सम्बन्धी सहकारिता के आन्दोलन में (१) प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ, (२) केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा (३) प्रान्तीय सहकारी बैंक हैं। एक अखिल भारतवर्षीय सहकारी बैंक की भी आवश्यकता है किन्तु वह अभी तक नहीं बना है।

प्रारम्भिक साख सहकारी समितियाँ ग्रामीण तथा नागरिक दोनों प्रकार की हैं। इनकी संख्या क्रमशः लगभग १½ लाख तथा १८००० है। ग्रामीण सहकारी समितियों की पूँजी प्रवेश शुल्क से, हिस्सों (Shares) से, गैर सदस्यों की जमा अथवा ऋण से, केन्द्रीय और प्रान्तीय सहकारी बैंकों और सरकार के ऋण से तथा अपने कोष से प्राप्त होती है। यह रकम काफी बड़ी है। सन् १९४७--४८ के अन्त में यह लगभग १७१ करोड़ रु० थी। यह किस प्रकार प्राप्त हुई थी यह भी जानने योग्य है —

हिस्सों से प्राप्त पूँजी	रु०	२६८५०००००
सुरक्षित तथा अन्य कोष	रु०	१३८००००००
जमा से प्राप्त पूँजी तथा ऋण	रु०	१,१२,५८०००००

केन्द्रीय सहकारी बैंक प्रायः जिले के मुख्य शहर में स्थित हैं। इनकी संख्या लगभग ४६६ है। इनका काम न केवल प्रारम्भिक समितियों को आर्थिक सहायता देना है बल्कि जिनके पास फालतू रकम है उनकी रकम जिनके पास उनकी कमी है उन्हें देना है और सब का पथ-प्रदर्शन और निरीक्षण करना भी है। इन्हें प्रारम्भिक समितियाँ तथा बाहरी लोग दोनों मिल कर चलाते हैं और इनकी पूँजी इनके हिस्सों से, सुरक्षित कोष से, जमा से और ऋण से प्राप्त होती है।

प्रान्तीय सहकारी बैंक इस समय पंजाब को छोड़कर प्रायः सभी बड़े-बड़े प्रान्तों में हैं। अधिकांश में इनका संगठन मिश्रित रूप से हुआ है, अर्थात् सदस्यता और संचालक मण्डल दोनों में जन साधारण तथा सहकारी समितियों और केन्द्रीय सहकारी बैंकों के प्रतिनिधि हैं। इनकी कार्यशील पूँजी हिस्सों से

सुरक्षित तथा अन्य कोषो से, जनता से, समितियों से, प्रान्तीय और केन्द्रीय बैंकों से और सरकारी ऋण से प्राप्त होती है।

इसकी उन्नति सभी प्रांतों मे एक सी नहीं हुई है। उत्तर प्रदेश १९४८ की २९२६१ समितियों के कारण सबसे आगे है। फिर, हैदराबाद मे १९०४४ और मद्रास में १८६५६ समितियाँ थीं। सन् १९४८ मे प्रारम्भिक समितियों के सदस्यो की सख्या लगभग १ करोड़ थी। यदि हम एक परिवार औसतन ५ व्यक्तियों का मान लें तो यह स्पष्ट है कि यहाँ पर इनसे ५ करोड़ लोगो को फायदा होता है। वास्तव मे और कोई ऐसी सस्था हमारे यहाँ नहीं है जिससे इतने अधिक लोगों का सम्बन्ध हो।

इस आन्दोलन के मुख्य दोष—किसी भी सहकारी समिति की सफलता उसके सदस्यों के अपना ऋण समय पर वापिस करने पर निर्भर रहती है। यह ऋण अल्पकालीन होते हैं। अत., इनका भुगतान उपज के विक्रय के साथ साथ हो जाना चाहिये। किन्तु यहाँ पर ऐसा नहीं हो पाता। यहाँ कृषक समितियो का सन् १९४०-४१ मे १०४१ लाख रु० बाकी था जो कभी का वसूल हो जाना चाहिये था। यदि हम इसकी तुलना पूरी कार्यशील पूँजी से करें तो यह ३४ प्रतिशत होगा। लोगों को जो ऋण दिया गया था और जो २२५० लाख रु० था उसका यह ४६ प्रतिशत है। यद्यपि इधर के अक प्राप्त नहीं हैं तो भी जो कुछ पता लगाया गया है उससे यह ज्ञात होता है कि उपज का मूल्य बढ जाने से इसमे से कुछ ऋण का तो भुगतान हो गया है, जिसका नहीं हुआ है वह नहीं हो सकता। अत, उसे समाप्त करके इन समितियो का पुनर्निर्माण करना चाहिये।

समितियो के अधिकाश सदस्य उनके उद्देश्य नहीं समझ पाते। इनकी सहायता से उन्हे जो अधिकार प्राप्त है और उनके जो दायित्व हैं उन्हें वे नहीं समझते। उन्होंने इनसे मितव्यता और दूरदर्शिता का पाठ भी नहीं सीखा। फिर, सहकारी समितियों को अर्थ के अतिरिक्त अन्य बातों का भी सुधार करना चाहिये। उदाहरणार्थ अच्छी प्रकार रहने का, कृषि करने का, विक्रय का, शिक्षा का, इत्यादि इत्यादि।

केन्द्रीय और प्रान्तीय बैंकों के कार्यों में भी कुछ दोष हैं। इधर केन्द्रीय बैंकों से सम्बन्धित समितियो की सख्या बढती जा रही है। रिजर्व बैंक की वैधानिक रिपोर्ट मे एक ऐसे बैंक का नाम है जिससे ६८० समितियाँ सम्बन्धित थीं। जहाँ पर इतना काम बढ गया है वहाँ अच्छी देख-भाल नहीं हो सकती। न तो

प्रान्तीय बैंकों ने और न केन्द्रीय बैंकों ही ने प्रारम्भिक समितियों के प्रति अपना कर्तव्य पालन किया है। उन्होंने अभी तक अपना ध्यान केवल इन्हें आर्थिक सहायता पहुँचाने की ओर ही रखा है। उन्हें तो इनके उन सभी कामों की ओर ध्यान देना चाहिये जिससे इनका स्तर ऊँचा हो और आन्दोलन दृढ़ होकर बढ़ सके। फिर, इनकी स्थिति भी बहुत ठीक नहीं है। प्रायः इनके साधन उतने द्रवित अवस्था में नहीं हैं जितने होने चाहिये। अन्तिम, यह अपने उधार लेने और देने के ब्याज की दर में इतना भी अन्तर नहीं रखते कि यह अपना खर्च पूरा करने के बाद कुछ सुरक्षित कोष में भी न डाल लें।

सुधार के लिये सुझाव—साख सहकारी समितियों को केवल अल्प-कालीन साख का ही प्रबन्ध करना चाहिये। अधिक से अधिक यह मध्यकालीन साख का भी प्रबन्ध कर सकती हैं। दीर्घकालीन साख का तो प्रबन्ध उन्हें किसी अवस्था में भी नहीं करना चाहिये। जब कभी ऋण के लिये प्रार्थना-पत्र आवे, सदस्यों को यह बात पता लगा लेनी चाहिये कि वह किस काम के लिये चाहिये। सहकारी समितियों को यदि अपना उद्देश्य पूरा करना है और केवल महाजनों का स्थान नहीं लेना है तो उन्हें यह देखना चाहिये कि उनके सदस्य केवल उत्पत्ति के लिये उधार लेते हैं। इसके यह अर्थ नहीं हैं कि उपभोग के लिये ऋण दिया ही न जाय, किन्तु ऐसी आवश्यकता ही कम से कम कर देनी चाहिये। दूसरी बात जो देखने की है वह यह है कि ऋण लेनेवाले में उसे वापिस करने की क्षमता है अथवा नहीं। साख सहकारी समितियों को यह भी देखना चाहिये कि उनके सदस्य अपनी आय से अधिक व्यय नहीं करते। सत्य तो यह है कि उन्होंने अभी तक इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया और इसी से उनके ऋण की वसूली नहीं हो पाती। वास्तव में ऋण का उद्देश्य उतना महत्व-पूर्ण नहीं है जितना यह कि ऋण देनेवाला उसे फसल बिकने के बाद और कुछ परिस्थितियों में अधिक से अधिक तीन वर्षों के अन्दर ही वापिस करने की क्षमता रखता हो।

फिर, जैसा कि रिजर्व बैंक की प्रारम्भिक तथा वैधानिक रिपोर्टों में कहा गया है, जो ऋण वसूल नहीं हो रहे हैं उनका प्रश्न भी लेना चाहिये। चीजें टालने से और बार-बार समय बढ़ाने से कोई लाभ नहीं होता। जहाँ पर ऋण पुराने हो गये हैं सहकारिता का आन्दोलन काम नहीं कर रहा है और सदस्य महाजनों से फिर से ऋण लेने लग गये हैं। ऋण की वसूली न होने से साख की सरिता का बहाव रुक जाता है। अत, इस समस्या को शीघ्र ही क्रियात्मक

रूप से सुलझाना चाहिये। इन्हें इतना घटा देना चाहिये कि वह आसानी से दिये जा सकें और फिर इनका प्रबन्ध भूमि बन्धक बैंको द्वारा करवा देना चाहिये जो दीर्घकालीन साख का प्रबन्ध करने के लिये बने हैं। इनका अध्ययन हम आगे चलकर करेंगे। इससे जो हानि होगी उसे यह समितियाँ न छोड सके तो उसका भी प्रबन्ध करना चाहिये। समस्याओं को साहस के साथ सुलझाने मे ही काम चलता है। जो बातें स्पष्ट हैं उनका सामना तो करना ही चाहिये।

इन समितियो को भविष्य मे अपने ऋण लेने और देने के व्याज की दर के बीच मे काफी अन्तर रखना चाहिये जिससे इनके पास अच्छे कोष सचित हो जायँ। जो ऋण आज-कल वसूल नही हो रहे हैं उन्हे बट्टेखाते छोड़ने मे यही कठिनाई है कि समितियो के प्राप्त काफी सुरक्षित कोष नहीं हैं। बात यह थी कि जैसा पहले भी कहा जा चुका है उन्होंने अभी तक ऋण लेने और देने के व्याज की दर के बीच मे काफी अन्तर रक्खा ही नही। इसके यह अर्थ नहीं हैं कि भविष्य में हम ऐसे ऋण देंगे जो वसूल न होंगे और फिर उन्हें सुरक्षित कोष के सहारे बट्टेखाते मे डाल देंगे। यह केवल उदाहरण के लिये है। सुरक्षित कोष अनेक कामो में खर्च किया जा सकता है। समितियों की स्थिति सुदृढ बनाने का यह एक ढङ्ग है।

अन्तिम बात यह है कि किसी समिति का उद्देश्य ही यही है कि उसके सदस्यों की हर तरह से उन्नति हो। उसे कृषकों के सम्पूर्ण जीवन का ध्यान रखना चाहिये। वास्तव में सदस्यो को सहकारिता का सच्चा महत्व समझाना चाहिये। उसका उद्देश्य केवल ऋण देना ही नहीं है वरन् हर प्रकार से कृषको का जीवन सुधारना है। उनकी आय बढनी चाहिये, कृषि आर्थिक दृष्टि से लाभदायक हो जानी चाहिये। सच तो यह है कि ग्रामीण अर्थ की समस्या उसके बिना सुलझ ही नही सकती। जैसा कि एक लेखक ने कहा है कि जब तक हम कृषि की उत्पत्ति इस प्रकार नही बढा पाते कि एक औसत दर्जे के कृषक को उसके वर्ष भर के परिश्रम के बाद उसने जो कुछ व्यय किया है उससे अधिक मिल जाय तब तक हम ग्रामीण अर्थ का प्रश्न सुलझा ही नहीं पाते।

केन्द्रीय और प्रान्तीय बैंकों के भी सुधार की आवश्यकता है। जिन स्थानो मे एक केन्द्रीय बैंक से बहुत ही अधिक समितियाँ सम्बन्धित हैं, वहाँ पर उन्हें तहसीलो की इकाई के अन्तर्गत लाना चाहिये। इससे निरीक्षण और नियन्त्रण में सुविधा होगी। फिर, केन्द्रीय बैंकों और प्रान्तीय बैंको दोनों को बैंकिंग के

नियमों के अनुसार सुसंगठित होना चाहिये। उन्हें अपनी सम्पत्ति और पावने उचित व्यवस्था में रखने चाहिये। जैसा प्रारम्भिक समितियों के सम्बन्ध में कहा जा चुका है उसी प्रकार इन्हें भी अपने उधार लेने और देने के ब्याज की दर में काफी अन्तर रखना चाहिये। आजकल जो एक वर्ष से दूसरे वर्ष में बट्टे की रकम ले जाने की चाल है उसे ब्याज बढ़ाने से भी बन्द किया जा सकता है। अन्तिम बात यह है कि केन्द्रीय सहकारी बैंक और व्यापारिक बैंकों के बीच में सम्बन्ध बढ़ाने की बहुत आवश्यकता है। केन्द्रीय सहकारी बैंक व्यापारिक बैंकों का प्रयोग उनमें अपने बचे हुये द्रव्य लगाने के लिये और सरकारी साख-पत्रों के आधार पर ऋण लेने के लिये कर सकते हैं। इसके विपरीत व्यापारिक बैंक केन्द्रीय सहकारी बैंकों का प्रयोग उन स्थानों पर अपने बिलों की वसूली करने के लिए कर सकते हैं जिनमें उनके स्वयं के दफ्तर नहीं हैं। इस प्रकार की पारस्परिक सहायता से दोनों लाभ उठा सकते हैं।

सहकारी समितियों और बैंकों को रिजर्व बैंक द्वारा दी गई द्रव्य भेजने की सुविधा—रिजर्व बैंक सहकारी समितियों और बैंकों से १ अक्टूबर सन् १९४० से द्रव्य भेजने के लिए निम्न रियायती व्यय लेता है:—

५०० रु० तक		५००० रु० के ऊपर	
प्रतिशत दर	न्यूनतम व्यय	प्रतिशत दर	न्यूनतम व्यय
१।१६	रु० आ० पा०	रु०	रु० आ० पा०
रु०	०—४—०	१।३२	३—२—०

ऋण देनेवाले और इण्डीजेनस बैंकर

ऋण देनेवाले और इन्डीजेनस बैंकर कृषि की जिस प्रकार आर्थिक सहायता करते हैं उसका हम अध्ययन कर ही चुके हैं। उनके काम करने के ढङ्ग की सादगी और ऋण लेनेवालों से उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध, उनके स्थानीय ज्ञान तथा अनुभव के कारण ऐसा भविष्य में भी बराबर होता रहेगा। निस्सन्देह, सन् १९३७ के बाद जो मन्दी चली थी, कृषक ऋण लेनेवालों की जो रक्षा कर दी गई है, सहकारी समस्थाओं के विकास, डिक्री देने में विलम्ब तथा उनमें से कुछ जो बुरा बर्ताव करते हैं उसके कारण उन सभी के ऊपर सन्देह की दृष्टि के कारण उनकी दशा इधर बहुत बिगड़ गई है। किन्तु इधर उनका सुधार करने के लिये प्रयत्न किये गये हैं और ऐसी आशा है कि वह

भविष्य मे अधिक लाभप्रद साबित होंगे । कृषि की आर्थिक सहायता की, किसी समस्या के हल की तथा उनके सुधार की कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि कृषकों के इस समय के ऋण का निपटारा और उनका भुगतान न हो जाय । आसाम, बगाल, मध्यप्रांत और पञ्जाब मे ऋण के निपटारे के सम्बन्ध मे विधान बन चुके हैं । इनके अनुसार वहाँ की प्रान्तीय सरकारें इसके लिये बोर्ड बना सकती हैं । उनका उद्देश्य ऋणियों और महाजनो के बीच समझौता कराकर ऋण का निपटारा करने का है । कोई भी ऋणी अथवा महाजन उनके यहाँ इस के लिये प्रार्थना-पत्र भेज सकता है । ऐसा होने पर वह महाजन और ऋणियों से क्रमश उनके ऋण, सम्पत्ति तथा पाउने इत्यादि की सूचना माँगते हैं । ऋण के सम्बन्ध में उन्हें प्रमाण भी देने पड़ते हैं । जब सूचना मिल जाती है तब बोर्ड ऋणी का महाजन से समझौता कराने का प्रयत्न करता है । यदि इसमे सफलता मिल जाती है तो समझौते की रकम २०, २५ किस्तों मे देने की योजना बना दी जाती है । महाजनों के बोर्ड द्वारा किया हुआ कोई निपटारा न मानने पर उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । ऐसी स्थिति मे बोर्ड ऋणी को एक प्रमाण-पत्र दे देता है और महाजन के अदालत मे जाने पर उसे न तो उसका खर्च और न ६ प्रतिशत से अधिक ब्याज मिलता है । जो महाजन निपटारा स्वीकार कर लेते हैं उनके ऋण की अदायगी का पहले प्रबन्ध कर दिया जाता है । निपटारे के स्वीकृति के जो लाभ और अस्वीकृति की जो हानियाँ हैं वह सब प्रान्तों म एक सी नहीं हैं । इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं तो जैसे पजाब मे बोर्डो के सामने वकील आ सकते हैं, और कहीं कहीं जैसे मध्य प्रान्त, आसाम, मद्रास और बगाल मे ऐसा नहीं हो सकता । इसी तरह से मध्य प्रान्त, आसाम और बगाल में यह है कि यदि ऋणी कोई किस्त नहीं देता तो वह लगान वसूल करने वाले विभाग के द्वारा वसूल कराई जा सकती हैं । ऋण के निपटारे की योजना उसका उसी समय भुगतान का प्रबन्ध कर देने पर और भी सफल हो सकती है । ऐसा जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे भूमि बन्धक बैंको द्वारा ही सम्भव है । तब भी भिन्न-भिन्न प्रांतों मे ऋण के निपटारे के जो अंक हैं उनसे इनकी लोकप्रियता का पता लग जाता है ।

कहीं-कहीं तो कृषि की उपज की कीमतों मे जो कमी हो गई थी उसी के फलस्वरूप कृषि सम्बन्धी ऋणों के छुटकारे के लिये जो विधान बने थे उनके अनुसार कृषकों के ऋण बहुत कम कर दिये गये थे ।

ग्रामीण दिवाले का जो विधान है उसे उन कृषकों के सम्बन्ध में अवश्य लगाना चाहिये जिनके पास खर्च भर पैदा करने के लिये भी भूमि नहीं है और जिनकी सम्पत्ति और ऋण शोधन क्षमता इतनी भी नहीं है कि वह ऋण बहुत अधिक घटा देने पर भी चुका सकें।

स्वीकृत ऋणदाताओं और महाजनों का कृषकों के ऊपर जितना ऋण है उसका निपटारा करने और उसमें कमी करने पर तथा उसका भुगतान करने और जहाँ आवश्यकता हो उसे समाप्त कर देने के बाद और काम करने के अनुसार देने पर वे बड़े लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। हाँ, वे अल्पकालीन, मध्यकालीन और दीर्घकालीन तीनों प्रकार के ऋण देने का प्रबन्ध नहीं कर सकते। अधिक-से-अधिक जो वह कर सकते हैं वह यह है कि वह फसल और दूसरे ऋण देने का प्रबन्ध कर दें। फिर, इस बात का भी प्रबन्ध करना होगा कि कृषक फिर ऋणग्रस्त न हो जायँ, और यह तभी हो सकता है जब उन्हें इतने असीमित ऋण लेने से रोक दिया जाय। उत्तर प्रदेश के एक विधान (Money Lender's Bill, 1939) में यह दिया हुआ है कि कोई महाजन एक वर्ष में किसी कृषक की उपज का एक चौथाई से अधिक अपने ऋण की अदायगी में नहीं पा सकता और न ही वह ऐसा बराबर चार वर्षों से अधिक कर सकता है। इसके यह अर्थ हुये कि महाजन केवल उपज की कीमत तक ही ऋण दे सकता है। कैलवर्ट कमेटी के सुझाव के अनुसार स्वीकृत ऋणदाताओं और महाजनों को उपज के आधार पर दिये हुये ऋणों के लिये उपज से ऋण वसूल करने का प्रथम अधिकार देना चाहिये।

(ब) मध्यकालीन ऋण की आवश्यकता

कृषि के धन्धे के सम्बन्ध के जो व्यय हैं उनके लिये ऋण की जो आवश्यकता पड़ती है उसके अतिरिक्त कृषकों को मवेशी खरीदने के लिये और खेती में बराबर किये जानेवाले सुधार करने के लिए मध्यकालीन ऋण की आवश्यकता पड़ती है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, इसमें फसल को लाभ पर बेचने के लिए भी जिसे सहायता की आवश्यकता पड़ती है उसे भी सम्मिलित किया जा सकता है। इन कामों के लिए जो ऋण लिया जाता है उसका भुगतान एक वर्ष के अन्दर नहीं किया जा सकता। अतः उसके लिए एक लम्बी अवधि चाहिए जो तीन वर्ष से लेकर पाँच वर्ष तक की हो सकती है। इसके लिए कृषक जो जमानत दे सकता है, वह उसकी चल सम्पत्ति की हो सकती है, जैसे जेवरात अथवा मवेशी अथवा फसल।

मध्यकालीन ऋण देने के लिये वर्तमान संगठन और उनके सुधार के लिये सुझाव

अल्पकालीन ऋण के लिए जो सगठन है वही प्राय' मध्यकालीन ऋण भी देते हैं। यदि हमें फसल बेचने के लिए जो सहायता चाहिए उसे हम ले तो यह वहाँ से प्रारम्भ होती है जब वह खलिहान मे तैयार हो जाती है। कभी-कभी तो यह उससे पहले भी प्रारम्भ हो जाती है, अर्थात्, उसी समय मे जिस समय से कृषक इस शर्त पर ऋण लेता है कि वह उपज तैयार होने पर उसे ऋणदाता के हाथ पहले से निश्चित मूल्य पर बेच देगा। वस्तुत', न तो कृषक ही और न यह ऋणदाता ही यह उपज बहुत दिनों तक अपने पास रख सकते हैं ; अत, वह बड़े बड़े महाजनों के पास पहुँच जाती है। यह प्राय अढतिये होते हैं, और अन्त मे आर्थिक सहायता का बोझ इन्ही के ऊपर पड़ता है। यदि इन्होंने जिससे माल पाया है उसे पहले से ही ऋण दे रक्खा था तो यह केवल किताबी जमाखर्च कर लेते हैं। अन्य स्थितियों मे इन्हे नकदी देनी पड़ती हे। हाँ, यदि यह इन्हे आढत पर रखते हैं तो इन्हें उसका कुछ प्रतिशत व्यापारी से मिल जाता है। इन्हे भी आर्थिक सहायता की आवश्यकता पड़ती है जो निम्न सगठनों से प्राप्त होती है--

(१) दूसरे महाजनों से अथवा इम्पीरियल बैंक और सम्मिलित पूँजी के बैङ्कों से—जिस शर्त पर और जितनी रकम के ऋण इनसे मिल सकते हैं वह उनकी साख पर निर्भर है। कभी-कभी तो उसे प्रण-पत्र लिखना पड़ता है, कभी-कभी हुण्डी से काम चल जाता है और कभी-कभी उसके पक्ष मे एक चालू खाता खोल दिया जाता है। जब ऋण मुद्दती हुण्डी के आधार पर किसी अन्य महाजन से प्राप्त हो जाता है तब कभी-कभी वह हुण्डी फिर किसी व्यापारिक बैंक से भुना ली जाती है।

(२) माल भरती पर ऋण—माल गोदाम मे भरा रहता है, अत', उस पर भी ऋण मिल जाता हे। यदि ऋणदाता कोई महाजन ही होता है तो वह उसके ऊपर ऐसे ही ऋण दे देता है। हाँ, यदि वह इम्पीरियल बैङ्क अथवा कोई अन्य सम्मिलित पूँजीवाला बैङ्क होता है तो वह गोदाम में अपना ताला और अपने नाम की तख्ती भी लगाता है।

(३) माल की चलानी पर ऋण—यदि माल वहीं का वहीं बिक जाता है तो उसका मूल्य नकद अथवा बाजार चलन के अनुसार एक उचित

अवधि के अन्दर मिल जाता है, और यदि वह बाहर जाता है तो भी मूल्य या तो सीधे ही प्राप्त हो जाता है या उसके लिये दर्शनी हुण्डी कर ली जाती है जो खाली हो सकती है, अथवा जिसके साथ बिल्टी भी हो सकती है। खाली हुण्डी होने पर बिल्टी माल व्यापारी के नाम करके वैसे ही उसके पास भेज दी जाती है और जब उसके साथ बिल्टी भी होती है तब वह बैंक को दे दी जाती है, जो अपनी शाखा द्वारा अथवा अपने किसी अन्य आढ़तिये बैंक नोटों से जो लाभ होता है वह इस काम में लगाया जा सकता है। गोदामों का प्रबन्ध भी इनकी देख-रेख में हो सकता है। इससे उनकी रसीद सरलता से साख-पत्र का काम दे सकती हैं।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि आजकल का जो ढंग है उसमें बड़ी अड़चनें हैं जिन्हें दूर करना चाहिए। प्रथम तो कृषक अपनी उपज अधिक दिनों तक अपने पास नहीं रख सकता जिससे उसे ऊँची कीमत नहीं मिल पाती। सहकारी समितियाँ उसका माल लेकर उसे ऋण दे सकती हैं और फिर माल अच्छी कीमत पर बेच सकती हैं। इससे कृषक को न केवल ऊंचे दाम ही मिल जायँगे वरन् उसकी माल बेचने की बहुत सी मुसीबतें भी दूर हो जायँगी। दूसरे, माल रखने की कठिनाइयाँ हैं। कृषक अपना माल मटकों में, बोरों में चटाई के घेरों में, मिट्टी और जालियों के घेरों में, अथवा जमीन के अन्दर की खत्तियों में रखते हैं। बाजार में भी यही सब चीजें हैं। हाँ, वह कुछ बड़ी अवश्य होती हैं। अत, चूहों और घुन से अथवा भूमि के अन्दर की नमी से बड़ी हानि होती है। प्रारम्भ के व्यय अधिक होने के कारण अच्छे तरीकों का प्रयोग तो नहीं हो सकता। हाँ, लाइसेन्स प्राप्त गोदाम अवश्य स्थापित किये जा सकते हैं। विधानत इन्हें हवा सम्बन्धी, मिलावट करने के विरुद्ध, माल के वर्गीकरण की और प्रबन्ध की शर्तों का पालन करना पड़ता है। इन पर सरकार का निरीक्षण और नियन्त्रण भी रहता है। गोदामों की रसीद अच्छे अधिकार पत्र का काम देती हैं, और इसी से ऋण के लिए जमानत का अथवा हुण्डियों के आधार स्वरूप काम देती हैं। तीसरे, अधिकांश व्यापार नकदी का होता है, जहाँ उधार होता भी है वहाँ भी केवल जमा खर्च कर लिया जाता है, साख-पत्र प्रयोग में नहीं लाये जाते। मुद्दती हुण्डियों का चलन बढ़ाने की आवश्यकता है। यह विनिमय साध्य होने के कारण सब जगह स्वीकृत हो जाती हैं और यह साख की बुनियाद का काम करती हैं। चौथे, दर्शनी हुण्डियों के आधार-स्वरूप बिल्टियाँ बहुत कम होती हैं। अब, उपर्युक्त सुधार होने से बैंक हुण्डियों का व्यवसाय अधिक मात्रा में करेंगे।

कुछ प्रान्तो में वहाँ की सरकारे रुपया उधार देकर गोदामों के बनने में बड़ी सहायता कर रही हैं। तो भी यह काम रिजर्व बैंक बड़ी अच्छी तरह से अपने हाथ में ले सकता है और उसमे कृषि सम्बन्धी अन्वेषण करने के लिये जो इम्पीरियल काउन्सिल है वह भी इस सम्बन्ध की माल छाटने और रखने की जो समस्याये हैं उन्हे हल करने मे बड़ी सहायता दे सकती है। नोटों मे जो लाभ होता है वह इस काम में लगाया जा सकता है। गोदामों का प्रबन्ध भी इसकी देख-रेख में हो सकता है। इससे उनकी रसीदे सर्वोच्च साख-पत्र का काम दे सकती हैं।

अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति ऋणदाता और महाजन लोग कर सकते हैं। वे अल्पकालीन ऋण के साथ-साथ मध्यकालीन ऋण भी आसानी से दे सकते हैं।

दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकताये

भारतीय कृषक बहुत से कामो के लिये दीर्घकालीन ऋण लेते हैं। इनकी अवधि २० वर्ष से लेकर ३० वर्ष तक हो सकती है। इनके उद्देश्य सहकारी समितियों और महाजनों के पुराने ऋण का भुगतान करना, ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाना, खेतों का सुधार करना, मकान बनवाना, कुये खुदवाना, सिंचाइ की नालियाँ बनाना और मशीन, इत्यादि खरीदना हो सकते हैं। सहकारी समितियाँ और महाजनों के ऋणों का भुगतान करने की आवश्यकता के विषय मे पहले ही काफी कहा जा चुका है। बढती हुई जन सख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने और खेतो के सुधार करने की भी बड़ी आवश्यकता है। कहीं कहीं पर जहाँ सिचाई का प्रबन्ध नहीं है वहाँ कुयें खुदवाना भी बहुत आवश्यक हो गया है। कृषको के लिये अच्छे मकान बनाने की भी बड़ी आवश्यकता है। फिर, कुछ खेत तो बहुत ही छोटे हैं। अत, बगल की जमीन खरीदने की बहुत आवश्यकता है। कभी-कभी अपने परिवार के ही उन लोगा की जमीन खरीदने की आवश्यकता पड जाती है जो कृषि का उद्यम नहीं करना चाहते। इन्हे खरीद लेने से अपने खेत बड़े हो जाते हैं, अथवा छोटे होने से रुक जाते हैं, और दूसरे लोगों के उन्हे खरीद लेने से जो झगड़े का डर हो जाता है वह नहीं रहता। अंतिम बात यह है कि खेतों के एकीकरण और सुधार के फलस्वरूप मशीन, इत्यादि के प्रयोग की भी आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। इन सब कामो के लिये जो ऋण लिये जाते हैं उनका भुगतान जल्दी नहीं हो सकता। सच तो यह है कि

इनसे उत्पन्न लाभ बहुत दिनों तक चलते हैं अथवा इनका भुगतान भी उसी अवधि के अन्दर होना चाहिये।

भूमि-बन्धक बैंक

दीर्घकालीन ऋण की प्राप्ति के लिये कोई संगठन न होने के कारण कृषकों को अपनी इस माग की पूर्ति के लिये महाजनों का दर्वाजा खटखटाना पड़ता है और उन्हें बड़ी ऊँची दर के हिसाब से ब्याज देना पड़ता है तथा अन्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जिससे उनके ऊपर एक बड़ा भारी बोझ लदता चला जा रहा है। यह सुझाव तो पहले ही रक्खा जा चुका है कि पुराने ऋणों का निपटारा हो जाना चाहिये और उन्हें काफी घटाकर उनका भुगतान हो जाना चाहिये। महाजन कृषकों की सब आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते। उन्हें केवल अल्पकालीन तथा मध्यकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिये। दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भिन्न-भिन्न देशों में वहाँ की सरकारों ने भूमि संस्थायें स्थापित कर रक्खी हैं। इधर हमारे देश में भी कुछ भूमि-बन्धक बैंक स्थापित कर दिये गये हैं, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। सन् १९४७-४८ में यह २७७ थी। इसी वर्ष इनकी कुल कार्यशील पूँजी लगभग ५ करोड़ रु० की थी। इसमें से ३०८५ करोड़ रु० का ऋण दिया गया था। देश का विस्तार देखते हुये यह स्थिति बहुत ही असन्तोषप्रद थी।

यह बैंक मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं :—

(अ) नितान्त सहकारी, (ब) व्यापारिक और (स) अर्ध सहकारी (Quasi co operative)। नितान्त सहकारी भूमि बन्धक बैंक ऋण लेनेवालों के ऐसे संगठन हैं जो ब्याजू देखनहार रेहन-पत्रों के आधार पर द्रव्य एकत्रित करते हैं। व्यापारिक भूमि बन्धक बैंक की हिस्सों की पूँजी होती है और वह लाभ के लिये काम करता है तथा लाभ की बँटनी करता है। अर्ध सरकारी बैंक के ऋण लेनेवाले तथा ऋण न लेनेवाले दोनों प्रकार के सदस्य होते हैं और वे एक बहुत बड़े क्षेत्र में काम करते हैं। इनकी हिस्सों की पूँजी होती है और दायित्व सीमित होता है।

भारतवर्ष में अधिकांश बैंक अर्ध सहकारी हैं। बात यह है कि वे कुछ ऋण न लेनेवाले व्यक्तियों को भी प्रारम्भिक पूँजी प्राप्त करने और उनके व्यापारिक गुणों, का सगठन करने और प्रबन्ध करने की शक्ति पाने के उद्देश्य से अपने सदस्य बना लेते हैं।

मद्रास मे सहकारी भूमि बन्धक बैङ्क सबसे अधिक हैं। सन् १९२५ के लगभग सीमित दायित्व के आधार पर हिस्सों की पूँजीवाले और प्राप्त पूँजी से अठगुना और दसगुना ऋण देने की शक्ति रखनेवाले दस बैङ्क वहाँ पर स्थापित किये गये थे। ऋण देने पर उनके पास जो भूमि रेहन के रूप मे प्राप्त हो जाती थी उसी के आधार पर उन्हें ऋण-पत्र निकालने का अधिकार दे दिया गया था। सरकार ने भी कम-से-कम जनता द्वारा क्रय किये गये ऋण-पत्रों के बराबर और एक बैंक के अधिक-से-अधिक ५०,००० रु० के ऋण-पत्र तथा सारे प्रान्त के अधिक-से-अधिक २½ लाख के ऋण-पत्र खरीदने का वचन दिया था। किन्तु अधिकाश बैङ्क जनता में ऋण-पत्र बेचने मे काफी सफल नहीं हुये। अत, टाउन्सैण्ड कमेटी की सिफारिश के अनुसार एक केन्द्रीय भूमि बन्धक बैङ्क की सस्थापना की गई जो सब बैङ्कों को आर्थिक सहायता देने के लिये और एक की बचत दूसरे को देने लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। ऋण-पत्र निकालने का काम यही करने लगा और इसमे इसे सफलता भी प्राप्त हुई। प्रान्तीय सरकार ने इन पर सूद देने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। उसने १५००० रु० की मुक्त पूंजी भी दी। साथ ही उसके अनुभवी काम करनेवाले भी इसे दिये गये प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैङ्क अपने रेहन इसे दे देते हैं और यह उनके आधार पर ऋण-पत्र निकालता है। सन् १९४२- ४३ मे प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैङ्कों की संख्या ११९ हो गई थी।

अन्य प्रान्तों मे भी भूमि बन्धक हैं। सन् १९४०—४१ मे पञ्जाब में १०, बम्बई मे १८, बङ्गाल मे १० और आसाम मे ४ भूमि बन्धक बैङ्क थे। पञ्जाब के दो बैङ्क तो सारे जिले भर में काम करते थे और शेष केवल एक तहसील ही में काम करते थे। मद्रास को छोड़कर अन्य प्रान्तो मे केन्द्रीय बैङ्क नहीं है। अत, वहाँ प्रारम्भिक बैङ्क ही अपने ऋण-पत्र निकालते हैं। वस्तुत, एक केन्द्रीय सङ्गठन की तो सभी जगह आवश्यकता है इन सहकारी भूमि बन्धक बैङ्कों के ढङ्ग भिन्न-भिन्न स्थानो में भिन्न-भिन्न हैं। साधारणतया तो उनके यहाँ की सरकारों ने ऋण-पत्रों के ब्याज अथवा उनकी पूँजी अथवा दोनों का दायित्व अपने ऊपर ले लिया है और कहीं कहीं तो कुछ को खरीदा भी है।

भूमि बन्धक बैंक और भी उपयोगी बनाये जा सकते हैं। प्रथम तो उनमें काम करने का ढङ्ग एक सा किया जा सकता है। दूसरे, हर प्रान्त मे एक केन्द्रीय बैंक होना आवश्यक है। जहाँ वह नहीं खुल सकते वहाँ बम्बई, बगाल और पञ्जाब की ही तरह प्रान्तीय सहकारी बैंकों ही को ऋण-पत्र निकालने का और

प्रारम्भिक बैंकों की सहायता करने का काम दिया जा सकता है। तीसरे, अधि-कांश कृषकों के भूमि की स्थिति पर गौर है, जिस दशा पर उनके कानून इस प्रकार बदलने पड़ेंगे कि उन्हें भूमि बन्धक बैंकों को आसानी से हस्तान्तरित किया जा सके। चौथे, प्रारम्भ में इनकी सफलता के लिये सरकारी सहायता की आवश्यकता रहेगी, अतः, यह काम धीरे धीरे होगा। वास्तविक बात यह है कि रिज़र्व बैंक भी इनकी कई प्रकार से सहायता कर सकता है :--

(१) यह उन केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंकों को जो प्रान्तीय सहकारी बैंकों के द्वारा घोषित कर दिये गये हैं आवश्यकता पड़ने पर सरकारी सिक्यूरिटियों के आधार पर ९० दिन के लिये ऋण देने के लिये तैयार है।

(२) यदि उनके ऋण-पत्रों पर के ब्याज और उनकी पूँजी का दायित्व प्रान्तीय सरकार ने अपने ऊपर ले लिया है और वे बाजार में आसानी से बिक सकते हैं तो वह उन्हें खरीद भी लेता है।

(३) वह उनके कामों का भी अध्ययन करता रहता है और समय पड़ने पर उन्हें मन्त्रणा भी देता है। उसने उनकी सहायता करने के सम्बन्ध में एक विज्ञप्ति तैयार की है और उसे केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंकों और सहकारी समितियों के प्रान्तीय रजिस्ट्रारों के पास भेजा है। इसमें ऋण-पत्र निकालने के सम्बन्ध में बहुत अच्छे सुझाव हैं। किन्तु बहुत से ऐसे काम हैं जो रिज़र्व बैंक अभी कर सकता है :--

(१) वह उनके ऋण-पत्र बेच सकता है। द्रव्य बाजार से बराबर सम्बन्धित रहने के कारण वह यह जानता है कि इन्हें निकालने का कौन सा समय सबसे उपयुक्त है और इन पर ब्याज की क्या दर देना चाहिये। एक साधारण भूमि बन्धक बैंक की अपेक्षा इसकी शक्ति अधिक अपार है। जब वह ऋण-पत्र निकालेगा तो वह बहुत ही सुरक्षित समझे जायेंगे। (२) इसका भूमि बन्धक बैंकों के ऊपर कुछ नियन्त्रण भी होना चाहिये। उनके हिसाब-किताब का इसी को आडिट करवाना चाहिये। इसे उनके व्यवसाय के सम्बन्ध में मन्त्रणा देनी चाहिये और उनके ऋण देने में भी नियन्त्रण रखना चाहिये। (३) अचल सम्पत्ति के मूल्य आँकने का काम भी बहुत कठिन है। अत, यह इसके लिये भी अपने अनुभवी कर्मचारी दे सकता है।

भूमि बन्धक बैंक केवल कृषकों की ही सहायता कर सकते हैं। किन्तु कृषि से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य लोगों की सहायता करने का भी प्रश्न है और इनमें बड़े-बड़े भूमिपति भी हैं। अभी तक तो वह केवल उपयोग के ही लिये बड़े

ऊँचे व्याज पर ऋण लेते रहे हैं। किन्तु वे उत्पादन सम्बन्धी कामों के लिये भी ऋण ले सकते हैं। उदाहरण के लिये भूमि मे और कृषि के ढङ्ग मे सुधार करने के लिये भी वह ऋण ले सकते हैं। अतः, ऐसी अवस्था में इन्हें कम व्याज पर ऋण मिलने का प्रबन्ध होना चाहिये। बारहवें अध्याय मे बङ्गाल के लोन आफिसों के विषय में बताया जा चुका है। बैंकिंग सम्बन्धी अन्वेषण करने वाली बगाल की और केन्द्रीय कमेटियों ने इनके ऊपर भी नियन्त्रण रखने के सुझाव रक्खे थे। आजकल थोड़ी-थोड़ी पूँजी की ऐसी बहुत सी सस्थायें हैं। इनका एकीकरण और सुधार होना चाहिये। इसके लिये एक अच्छे विधान की आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिये अन्य प्रान्तों में भी सम्मिलित पूँजीवाले भूमि बन्धक बैंक स्थापित किये जा सकते हैं।

रिजर्व बैंक का कृषि-साख-विभाग और कृषि की सहायता सम्बन्धी उसके कार्य

इस अध्याय मे और पिछले अध्यायों मे भी रिजर्व बैंक के कृषि-साख-विभाग का कई बार उल्लेख किया जा चुका है। अतः, हमे यहाँ पर उसके कार्यों का एक साथ अवलोकन कर लेना चाहिये। इस विभाग के तीन अङ्ग हैं :—कृषि साख, बैंकिंग और अङ्क तथा अन्वेषण (Statistical and Research) यहाँ पर हमे केवल कृषि-साख-अङ्ग का अध्ययन करना है, अन्य अगो का अध्ययन हम आगे चलकर उपयुक्त स्थान में करेंगे।

कृषि-साख-अङ्ग के तीन कार्य हैं। प्रथम तो वह ग्रामीण अर्थ की और विशेषतः सहकारिता की समस्याओं का अध्ययन करता है और ग्रामीण ऋण से मुक्ति दिलवाने के सम्बन्ध मे कानून बनवाता है। दूसरे, यह अपने कर्मचारियों द्वारा सहकारिता के आन्दोलन से निकटतम सम्बन्ध रखता है। इसके लिये यह सारे देश मे इसका अध्ययन करते हैं। उनके सुझाव बराबर छपते रहते हैं। तीसरे, यह अपनी सेवाये उन केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के लिये और सहकारी तथा अन्य बैंकों के लिये देता है जो कृषि-साख-सम्बन्धी समस्याओं पर इसकी राय लेना चाहते हैं।

रिजर्व बैंक विधान की ५५ (१) धारा के अनुसार रिजर्व बैंक पर जो दायित्व रक्खा गया था उसके सम्बन्ध में जो प्रारम्भिक और वैधानिक रिपोर्टें निकली हैं उनका उल्लेख भी किया जा चुका है। इन्हें और इण्डीजेनस बैंकरों को रिजर्व बैंक से सम्बन्धित करने के लिये जो योजना तैयार की गई थी उसे

तैयार करने का श्रेय उसके कृषि-साख-विभाग को ही है। कोचिन के बैंकिंग यूनि-यन की रिपोर्ट, सहकारी ग्राम बैंक, बर्मा में सहकारी आन्दोलन की गतिविधि और भारतवर्ष में उसका उपयोग, पंजाब के होशियारपुर जिले की ऊना तह-सील के एक गाँव पजारार में सहकारिता प्रगति सम्बन्धी पत्र भी इसी ने निकाले हैं। भिन्न भिन्न प्रान्तों में ऋण सम्बन्धी जो भिन्न-भिन्न विधान बने हैं वह भी इसकी दोनों रिपोर्टों में दिये हुये सुझावों के आधार पर ही बने हैं। बिलों पर जो स्टाम्प कर लगता है उसमें जो कमी की गई है वह भी इसी के प्रयत्नों के फलस्वरूप है।

किन्तु यह विभाग केवल इतना ही नहीं कर सकता। भारतवर्ष में बिल बाजार का विकास बहुत ही आवश्यक है। अभी तक बैंक ऋण और डिस्का-उण्ट दोनों के लिये एक ही दर रखते हुये हैं। इस विभाग को उन्हें यह सुझाना चाहिये कि ऋण पर की ब्याज की दर डिस्काउण्ट की दर से कुछ ऊँची रखनी चाहिये। इसे उसे यह भी सुझाना चाहिये कि वह सर्राफों और अन्य नागरिक महाजनों को गाँवों के महाजनों की मुद्दती बिलों के आधार पर आर्थिक सहायता करने के लिये प्रोत्साहित करे। ग्रामीण महाजन कृषकों को जो ऋण देते हैं उसमें भी उन्हें उनके रुपये बिल करने के लिये कहा जा सकता है। यह बिल फसल की मुद्दत के होने चाहिये क्योंकि उसी की बिक्री से तो वे लोग इनका भुगतान कर सकते हैं। इस बैंक को भी अन्य केन्द्रीय बैंकों की तरह द्रव्य का व्यापार करनेवाले सभी लोगों से आवश्यकता पड़ने पर सीधा काम करने का अधिकार मिला हुआ है। किन्तु इस विभाग को उसे यह समझाना पड़ेगा कि वह कम से कम कुछ दिनों तक तो यह काम साधारण रूप से भी करता रहे। बात यह है कि बिलों का प्रयोग प्रोत्साहित करने के लिये इसे प्रारम्भ में गांव में ऋण देनेवाली संस्थाओं से अपना सीधा सम्बन्ध रखना पड़ेगा। दूसरे, इसे मूल्यांकन और आडिट के लिये अपने कर्मचारी रखने चाहिये। इससे सहकारी और भूमिबन्धक बैंकों को बड़ा लाभ होगा। तीसरे, इसे रिज़र्व बैंक विधान का इस प्रकार संशोधन करा लेना चाहिये कि उसके अन्त-र्गत देशी रियासतों[1] के सहकारी बैंक भी आ जायँ। आजकल ऐसा नहीं है। चौथे, इसे बंगाल के लोन आफिसों और मद्रास के निधि और चिट फण्ड की समस्याओं का भी अध्ययन करना चाहिये और उन्हें अधिक उपयोगी बनाने के लिये सुझाव रखने चाहिये। पाँचवें, इसे जैसा कि पहले भी बताया जा

[1] किन्तु अब देशी रियासतों की स्थिति ही बदल रही है।

चुका है बैंक को इस बात की आवश्यकता समझानी चाहिये कि वह उन केन्द्रीय बैंकों से सीधे काम करे जिनका काम करने का स्तर काफी ऊँचा है। अन्तिम बात यह है कि इसे जिस प्रकार के गोदामों का पहले भी उल्लेख किया जा चुका है उसी प्रकार के गोदामों की सस्थापना के लिये भी प्रयत्न करना चाहिये। इससे कृषि की आर्थिक समस्या सुलझाने में बड़ी सहायता प्राप्त होगी।

कृषि-साख और सरकार

कृषि को साख देने के लिये सरकार कृषि ऋण विधान और सुधार ऋण विधान के अन्तर्गत काम करती है। यह जो ऋण देती है वह प्रचलित भाषा मे तकावी के नाम से विख्यात है। साधारणतया तो हर साल प्रत्येक प्रान्त में कुछ ही लाख रुपये बाँटे जाते हैं। हाँ, मुसीबत के समय यह करोड़ दो करोड़ तक पहुँच जाते हैं। तकावी अल्पकालीन और दीर्घकालीन दोनों होती है। अल्पकालीन तकावी प्राय. बीज और मवेशियो के क्रय के लिये काम मे आती है और उसी वर्ष की उपज से वसूल कर ली जाती है जिस वर्ष की उपज के लिये वह प्रयोग मे लाई जाती है। इसके विपरीत दीर्घकालीन तकावी स्थायी सुधारों के लिये काम मे लाई जाती है और कई वर्षों में किस्त से वापिस की जाती है। साधारणतया दीर्घकालीन तकावी नहीं बाँटी जाती। अल्पकालीन तकावी में कभी-कभी बीज दिये जाते हैं। जब मुसीबत पडती है तब तकावी बहुत अच्छी समझी जाती है किन्तु साधारणतया तो कृषक ऊँचा व्याज होने पर भी सरकार की अपेक्षा महाजनों से ऋण लेना अधिक अच्छा समझते हैं। निश्चय ही इसका एकमात्र कारण यह है कि तकावी के वितरण में अनेक दोष भरे पड़े हैं। तकावी देने के पहले बहुत सी पूछ-ताछ की जाती है जिसके लिये पटवारी और कानूनगो काम में लाये जाते हैं। उनकी सिफारिशें प्राय सत्य नहीं होती। अत', तकावी अपेक्षित लोगों को न मिलकर उन्हें प्राप्त हो जाती है जो लेते हैं। फिर, इन्हें बाँटने के केन्द्र बहुत कम होने के कारण कृषकों को बहुत समय तो राह चलने मे ही खराब करना पड़ता है। उन्हें यहाँ पर पहुँचकर भी कई दिनों तक पड़ा रहना पडता है। इसमे सब में खर्च पडता है। इसके अतिरिक्त यह समय पर बहुत कम मिल पाती है, और प्रत्येक व्यक्ति को जो रकम मिलती है वह उसकी आवश्यकता से बहुत कम होती है। उसे वसूल करने के तरीके भी बहुत सख्त होते हैं। अत, यह सब बुराइयाँ इन्हें सहकारी समितियो द्वारा वितरण कराने से दूर की जा सकती हैं। वास्तव में सरकार यह काम बहुत अच्छी तरह से नहीं कर सकती।

इधर सरकार ने कृषि-साख का प्रश्न सुलझाने के लिये एक केन्द्रीय कार-पोरेशन के निर्माण के लिये एक बिल बनवाया है। इसके पास हो जाने पर यह प्रश्न बहुत कुछ सुलझ जायगा।

प्रश्न

(१) कृषि सम्बन्धी अर्थ में क्या विशेष कठिनाइयाँ पड़ती हैं? ऋणों की माँग का वर्गीकरण कीजिये और प्रत्येक वर्ग को स्पष्ट तौर पर समझाइये।

(२) रिज़र्व बैंक कृषि सम्बन्धी ऋण किन-किन तरीकों पर देता है? इसमें कौन कौन से मुख्य दोष हैं?

(३) इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया और दूसरे सम्मिलित पूंजी के बैंक कृषि को कैसे सहायता करते हैं, इसे समझाइये।

(४) सहकारी साख समिति से आप क्या समझते हैं? दो तरह की जो समितियाँ होती हैं उनके भेद बताइये।

(५) इस देश में सहकारिता के विकास का इतिहास बताइये। इस समय उसकी क्या स्थिति है?

(६) सहकारी साख समितियों और बैंकों को उनकी पूँजी कहाँ से प्राप्त होती है? वे उसका किस प्रकार उपयोग करते हैं?

(७) इस देश में आजकल के सहकारिता आन्दोलन में कौन-कौन से दोष हैं? इन्हें दूर करने के लिये सुझाव रखिये।

(८) एक ऐसी योजना बनाइये कि जिससे महाजन और अच्छी तरह से कृषि की सहायता कर सकें। इस सम्बन्ध में निपटारे की कार्य-प्रणाली और उनके लाभ के विषय में बताइये।

(९) भारतवर्ष में कृषि की बिक्री की किस प्रकार आर्थिक सहा-यता मिलती है? इसे सुधारने के लिये अपने सुझाव रखिये।

(१०) समस्त भारतवर्ष में भूमि बन्धक बैंकों की संस्थापना की आवश्यकता के विषय में अपनी सम्मति दीजिये। वे किस तरह से और अधिक उपयोगी बनाये जा सकते हैं?

(११) रिज़र्व बैंक का कृषि साख विभाग कृषि के सम्बन्ध में कौन-कौन से कार्य करता है और वह देश को कैसे और अच्छी तरह से लाभ पहुँचा सकता है? इस सम्बन्ध में यह भी बताइये कि वह

यहाँ पर बिल बाजार स्थापित करने के लिये रिजर्व बैंक का ध्यान और किन-किन बातो की ओर आकर्षित करे ?

(१२) तकावी से आप क्या समझते है ? इसके वितरण मे कौन-कौन से दोष है ? क्या इसे किसी तरह से सुधारा जा सकता है ?

अध्याय १५

उद्योग सम्बन्धी आर्थिक व्यवस्था

उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये आर्थिक व्यवस्था का उतना ही महत्व है जितना किसी अन्य वस्तु का हो सकता है। अत, इस सम्बन्ध में अभी तक जो कुछ भी नहीं किया गया है उससे यह स्पष्ट है कि औद्योगीकरण की आवश्यकता यहाँ पर कभी समझी ही नही गई है। अंग्रेजों के समय मे तो उनकी नीति ही यह रही थी कि देश मे उद्योग धन्धों की उन्नति न हो। हाँ, दोनों युद्ध काल में अवश्य यह बात बहुत अखरी, अत. जो कुछ भी किया गया इन्हीं दोनों काल मे किया गया। कांग्रेस का भी इस विषय मे पहले कोई अधिक अच्छा रुख नहीं था। युद्ध के पहले कुछ समय तक इसने जब प्रान्तों में शक्ति ग्रहण की थी तब जो कुछ भी किया था, वह कृषि की आर्थिक व्यवस्था ही के लिये किया था। फिर, हमारे नेतागण जब कभी भी धन्धों की बातचीत करते थे केवल घरेलू धन्धो की ही बातचीत करते थे, फैक्टरी के धन्धों की नहीं। इधर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार से बड़ी-बड़ी आशायें थी किन्तु वह देश के विभाजन से उत्पन्न हुई समस्याओं के कारण कुछ भी नहीं कर सकी है। हाँ, योजनाये बहुत सी हैं, अस्तु होता क्या है यह देखना है।

उद्योग-धन्धों की आर्थिक आवश्यकताएँ

प्रायः उद्योग-धंधो की भी वही आर्थिक आवश्यकताएँ हैं जो कृषि की है, अर्थात् अल्पकालीन, मध्यकालीन और दीर्घकालीन। अल्पकालीन आवश्यकताएँ कच्चे माल और स्टोर्स के क्रय के सम्बन्ध की, उपज के विक्रय के सम्बन्ध की और मजदूरी देने तथा दैनिक व्यय पूरा करने के सम्बन्ध की हैं। मध्यकालीन आवश्यकताएँ भी उपर्युक्त के सम्बन्ध की ही हो सकती हैं और

उनके लिये हुये ऋण का भुगतान एक वर्ष से पाँच वर्ष के अन्दर तक हो सकता है। दीर्घकालीन ऋण प्रारम्भ में तो जमीन की खरीद के लिये कारखाने की इमारत बनाने के लिये और मशीन इत्यादि लगाने के लिये तथा बाद में विस्तार संगठन के लिये लिया जाता है। इसे अंग्रेजी में ब्लाक कैपिटल भी कहते हैं। हिन्दी में यह घिरी हुई पूँजी कही जा सकती है। दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन आवश्यकताओं अथवा घिरी हुई और कार्यशील पूँजी के बीच का अनुपात धन्धों के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। उत्पादन जितना ही पेचीदा होता है उतनी अधिक दीर्घकालीन आवश्यकताएँ अथवा घिरी हुई पूँजी की जरूरत पड़ती है। पाट, रूई, लोहे और स्टील, बिजली और खदान जैसे संगठित धन्धों में घिरी हुई पूँजी बहुत लगती है। औषधियों, प्लास्टिक शीशे, चद्दरों और विशेषतया घरेलू धन्धों में इसका उल्टा है। संक्षेप में यह उपज के मूल्य पर और उसके लिये जो समय लगता है उस पर निर्भर है। इसके अलावा और भी कारण हो सकते हैं, जैसे कच्चा माल खरीदने और बना हुआ माल बेचने के तरीके, मूल्य भुगतान के तरीके इत्यादि। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे जितनी ही अधिक घिरी हुई पूँजी की आवश्यकता पड़ती है उतनी ही अधिक अर्थ की दिक्कत होती है।

भारतवर्ष में वर्तमान स्थिति

भारतवर्ष में वर्तमान स्थिति तनिक भी संतोषजनक नहीं है। अंग्रेजी व्यापारिक बैंकों का तो यह चलन है कि वे दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करते ही नहीं। उनकी यहाँ इसके लिये अलग संस्थायें हैं जैसे सिक्योरिटियों की व्यवस्था करनेवाले ट्रस्ट और बैंकों के औद्योगिक विभाग की कम्पनियाँ। हमारे यहाँ पर अंग्रेजी चलन के ही अनुसार औद्योगिक बैंकों की संस्थापना पर जोर दिया जा रहा है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है इस सम्बन्ध में पहला प्रयत्न टाटा औद्योगिक बैंक की संस्थापना से हुआ था। इसमें संदेह नहीं कि वह बहुत दिनों तक नहीं चल सका, किन्तु उसी तरह के कुछ अन्य बैंक भी चलाये गये थे जिनमें से इन्डस्ट्रियल बैंक आफ वेस्टर्न इण्डिया, कारनानी इंडस्ट्रियल बैंक, रायकुट इंडस्ट्रियल बैंक, शिमला बैंकिंग ऐण्ड इंडस्ट्रियल कम्पनी, लक्ष्मी इंडस्ट्रियल बैंक इत्यादि बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। किन्तु इनमें विदेशी बैंकों की-सी प्रभावोत्पादन संस्थापन शक्ति, ज्ञान की दृढ़ता और संगठन करने की योग्यता नहीं है। देश के विस्तृत क्षेत्र का ध्यान रखते हुये इनकी संख्या भी बहुत कम है। सन् १९१८ के औद्योगिक कमीशन ने भी

सरकारी सहायता प्राप्त और एक निश्चित ढङ्ग पर काम करनेवाले औद्योगिक बैङ्कों की संस्थापना की सिफारिश की थी। किन्तु केवल सन् १९३६ ही में पहले-पहल संयुक्त प्रान्त की सरकार ने औद्योगिक अर्थ कमेटी की वे सिफारिशें मानकर जिनमें उसने बड़े और छोटे धन्धों को अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण देने के लिये एक इंडस्ट्रियल क्रेडिट बैङ्क की संस्थापना करने के लिये सुझाव रक्खे थे इस तरह का एक बैङ्क स्थापित किया। इस बैङ्क ने सरकार से एक समझौता कर लिया है जिसके अनुसार १५ वर्ष तक सरकार ने इसे इसकी प्राप्त पूँजी का ४ प्रतिशत और अधिक से अधिक ६०,००० रु० वार्षिक इसलिये देने का वायदा किया है कि यह प्रतिवर्ष ४ प्रतिशत लाभ की बँटनी कर सके। किन्तु इसका कार्य बहुत प्रशंसनीय नहीं रहा है और इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं है क्योंकि सरकार की इतनी कम मदद के साथ कोई बैङ्क कुछ अधिक कर ही नहीं सकता। सन् १९३७ में बङ्गाल की सरकार ने वहाँ के छोटे-छोटे धन्धों की सहायता करने के लिये एक इंडस्ट्रियल क्रेडिट कारपोरेशन की संस्थापना में हाथ बटाया था। सन् १९४० में यही बम्बई इकानमिक बोर्ड ने भी किया था। किन्तु इन्होंने भी कोई प्रशंसात्मक कार्य नहीं किया। अन्त में सन् १९४६ में एक अखिल भारतीय इंडस्ट्रियल फिनान्स कारपोरेशन की स्थापना के सम्बन्ध में एक बिल पेश हुआ था जो बाद में विधान बन गया। यह कारपोरेशन २ वर्षों से काम कर रहा है, और इसने बहुत से उद्योग धंधों को सहायता भी दी है। किन्तु यह सहायता आवश्यकता से बहुत कम है। जहाँ तक इम्पीरियल बैङ्क और दूसरे व्यापारिक बैङ्कों का सम्बन्ध है, वे दीर्घकालीन ऋण नहीं देते। वे जो कुछ सहायता करते हैं यह केवल मध्यकालीन तथा अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ही होती हैं, और इनका अध्ययन हम आगे चलकर करेंगे।

उपर्युक्त स्थितियों में यहाँ पर दीर्घकालीन पूँजी के लिये केवल तीन ही साधन बच रहते हैं। इनमें से प्रथम तो जो यहाँ के धंधों के प्रारम्भ करने में भी बड़ा सहायक हुआ है, व्यक्तिगत है। इसमें एक परिवार के लोग अथवा उसके कुछ मित्र ही उसकी सहायता करते हैं। इसीसे मैनेजिङ्ग एजेन्सी प्रणाली का सूत्रपात हुआ, अथवा यह कहिये कि वह यही है। दूसरे, कुछ स्थानों में इन्हें जमा प्राप्त हो जाती है जो एक तरह से स्थायी ही है। अंतिम में योजना-पत्र निकालकर जनता में हिस्से और ऋण-पत्र बेचे जाते हैं।

मैनेजिंग एजेन्सी प्रणाली

यदि हम प्रथम को लें तो कुछ ऐसे व्यक्ति अथवा फर्में हैं जिनके पास अच्छी पूँजी है और जो कोई काम चलाने के लिये प्रारम्भिक काम करते हैं, उसकी सहायता करते हैं, उसे आर्थिक सहायता देते हैं अथवा उसका दायित्व ले लेते हैं और प्रायः उसकी व्यवस्था करते हैं। इनके लिए मैनेजिंग एजेन्ट कहते हैं, मुख्य काम नीचे दिए हुए हैं :—

(१) ये स्वयं ही सहायक का काम करते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि एक बात जिस पर किसी औद्योगिक इकाई की सफलता निर्भर है यह है कि उसके सम्बन्ध की योजना बहुत अच्छी बनी हो और वह अच्छी अवस्था में आरम्भ की गई हो। इसके लिये सगठनकर्ता में एक बड़ी रचनात्मक योग्यता होनी चाहिये। भारतवर्ष में आधुनिक धंधे आरम्भ करने का श्रेय केवल दो ही वर्ग के लोगों को है। एक तो अंग्रेज व्यापारी जो अंग्रेजी व्यापारिक कोठियों का प्रतिनिधित्व करने के लिये आये थे और दूसरे बम्बई के और फिर अहमदाबाद तथा अन्य स्थानों के रुई के व्यापारी। जो कुछ भी उन्नति हुई है उसमें से अधिकांश श्रेय प्रत्यक्ष रूप में अथवा अप्रत्यक्ष रूप में इन्हीं को है। इस सम्बन्ध में सर्वश्री टाटा सन्स ऐन्ड कम्पनी, एण्ड्रयू यूल ऐण्ड कम्पनी, मैकिलनेल बर्न ऐण्ड कम्पनी, करीम भाई इब्राहीम ऐण्ड सन्स लिमिटेड, बिरला ब्रदर्स लिमिटेड, शा वालेस ऐण्ड कम्पनी, नौरोजजी वाडिया ऐण्ड सन्स, सी० एन० वाडिया ऐण्ड कम्पनी, बर्ड ऐण्ड कम्पनी, मार्टिन एण्ड कम्पनी, इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ ने तो दर्जनों धंधे स्थापित कर दिखाया है।

(२) ये नये धंधों के हिस्सों की बिक्री की जमानत भी ले लेते हैं। विदेशों में यह काम एक विशेष प्रकार के जमानत लेनेवाले अथवा औद्योगिक और व्यापारिक बैंक करते हैं। इनकी अनुपस्थिति में यहाँ पर यह काम मैनेजिंग एजेण्ट करते हैं। हमारे यहाँ यदि इन लोगों ने बहुत-सी कम्पनियों के हिस्से बेचने की जमानत अपने ऊपर न ली होती तो शायद वह काम आरम्भ ही नहीं कर सकती थीं। जब किसी नई कम्पनी के हिस्से निकाले जाते हैं और उनके बिकने की जमानत के किसी मैनेजिंग एजेण्ट की कोठी के ले लेने की बात जनता के सामने आती है तो लोगों का उस पर विश्वास हो जाता है और यदि इतने पर भी लोग सब हिस्से नहीं ले लेते तो मैनेजिंग एजेण्ट स्वयं वह सब हिस्से ले लेती है।

(३) ये इस संस्था के व्यवस्थापक का काम भी करते हैं और प्राय इनके विस्तृत अनुभव से लाभ भी हुआ है। किन्तु अयोग्य व्यवस्था के भी उदाहरण मिलते हैं। पहले इनके अधिकार पिता से पुत्र को मिल जाते थे, अत', कुछ दिनों में यह अयोग्य व्यक्तियों के हाथ मे पड़ जाते थे। यह वेचे अथवा हस्तान्तरित भी किये जा सकते थे। अब, यह दोनो बाते सन् १९३६ के कम्पनी संशोधन विधान के अनुसार मना कर दी गई हैं। जब कम्पनी की स्थायी पूँजी में इनकी कोई दिलचस्पी नहीं होती तब इनके हिस्सेदारों की हानि कर देने का डर रहता है। अंतिम बात यह है कि यह अपने मित्रों और सम्बंधियों को नौकर रख लेते हैं और यदि वह कार्य कुशल नहीं होते तो कम्पनी की बड़ी हानि होती है।

(४) बैंकिंग और कारबार के बीच मे ये एक प्रकार का सम्बन्ध भी स्थापित कर देते हैं। बात यह है कि सन् १९२० के इम्पीरियल बैंक विधान के अनुसार बैंक को किसी व्यक्ति अथवा साझे की फर्म की किसी हुण्डी पुर्जे पर ऋण देने के लिये उस समय तक मनाही है जिस समय तक कि उस पर कम से कम दो ऐसे व्यक्तियों अथवा फर्म के हस्ताक्षर न हो जिनके बीच में कोई साझा न हो। अतः, कम्पनी की ओर से जिस डायरेक्टर के हस्ताक्षर होते हैं उसके अतिरक्त मैनेजिङ्ग एजेण्ट के भी हस्ताक्षर लेने की प्रथा चल पड़ी है। इससे कम्पनी के ऊपर तो उसके डायरेक्टर के हस्ताक्षर के कारण दायित्व रहता ही है किन्तु मैनेजिङ्ग एजेण्ट के ऊपर भी अलग से दायित्व हो जाता है। यद्यपि दूसरे बैंको के लिये कोई ऐसा विधान नहीं है किंतु वे भी इस बात मे इम्पीरियल बैंक का ही अनुसरण करते हैं। अतः, मैनेजिङ्ग एजेण्ट को हर हालत मे हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। जब माल के ऊपर ऋण लिया जाता है तब भी मैनेजिङ्ग एजेण्ट की जमानत के लिये जोर दिया जाता है।

(५) ये औद्योगिक संस्थाओं को अर्थ सम्बन्धी सहायता भी देते हैं। यहाँ पर हिस्से बहुत अधिक प्रचलित न होने के कारण प्राय. धन्धों की पूँजी कम रहती है और उन्हे ऋण के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। हम यह तो देख ही चुके हैं कि बैंकों से ऋण लेने के लिये मैनेजिङ्ग एजेन्टों को अपने हस्ताक्षर देने पड़ते हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त वे स्वय भी ऋण देते हैं।

ऊपर यह बताया जा चुका है कि कभी-कभी इनकी व्यवस्था खराब हो जाती है। किन्तु सन् १९३६ के कम्पनी संशोधन विधान के अनुसार मैनेजिङ्ग एजेंटों के उत्तराधिकार और उनके अधिकारों के विक्रय तथा हस्तातरित होने की

सरकारी हो जाने के कारण अब ऐसा नहीं हो सकता। हाँ, इसमें एक अन्य दोष है। इसके कारण बैंकों और धन्धों में सीधा सम्बन्ध नहीं है। यह प्रणाली होने से धन्धे के छोटे प्रारम्भ के साथ औद्योगिक उन्नति रुक गई है। एजेन्ट बैंकों के ऊपर निर्भर रहते हैं, कारबार के विषय में उनका विचार पुराना है और वह औद्योगिक योजनाओं की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं देते। धंधे स्थापित करने के लिये उनमें पारस्परिक संगठन भी नहीं है, और इसी कारण उन्हें लाक्षणिक तथा आर्थिक अनुभवों को प्राप्त हो पाते। धंधे का होनहार उसके कार्यान्वित तथा लाभप्रद होने की सम्भावना, इत्यादि का निश्चय इन्हीं द्वारा हो सकता है। फिर इनके आर्थिक साधन सीमित रहने के कारण ये निश्चयात्मकरूप से लाभप्रद धंधे निरंतर नहीं खोले जा सकते। सत्य तो यह है कि इनका लागत लगानेवाली जनता से उतना सम्बन्ध नहीं हो सकता जितना बैंकों का होता है। अब, ये एक के बाद दूसरी कम्पनी के हिस्से न तो बेच ही सकते हैं और न ऐसा करने की जिम्मेदारी ही ले सकते हैं। यह प्रणाली तेजी में तो सफलता प्राप्त कर लेती है, किन्तु मंदी में ऐसा नहीं होता। उस अवस्था में जब मैनेजिङ्ग एजेंटों को अपना कारबार सुदृढ़ बनाने के लिये द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है तब उन्हें द्रव्य नहीं प्राप्त हो पाता। जैसा प्रायः होता है यदि किसी मैनेजिङ्ग एजेंट का कोई एक कारबार बुरी अवस्था में पड़ जाता है तब उनके अन्य कारबारों में भी दिक्कत हो जाती है। सन् १९३६ के कम्पनी संशोधन विधान में इस सम्बन्ध की कुछ बचत कर दी गई है। उसके अनुसार किसी कम्पनी के रुपये किसी ऐसी दूसरी कम्पनी के हिस्से लेने में अथवा उसे ऋण देने में नहीं प्रयोग में लाये जा सकते जो एक ही मैनेजिङ्ग एजेन्ट के प्रबन्ध में है। हाँ, यदि कम्पनी लागत लगानेवाली कम्पनी है तो यह रुकावट नहीं है। फिर, यदि खरीदनेवाली कम्पनी के सब डाइरेक्टर निर्विरोध ऐसा करने के लिये निश्चित कर देते हैं तब भी ऐसा हो सकता है। किन्तु यह स्पष्ट है कि एक कम्पनी की कमजोरी का दूसरे पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा। अंतिम दोष यह है कि बम्बई में सूती मिलों के हिस्सों में मैनेजिङ्ग एजेन्टों के कारण सट्टेबाजी होती है। प्रायः ऐसा होता है कि मैनेजिङ्ग एजेन्ट जिस कम्पनी को अपने हाथ में लेते हैं प्रारंभ में उसके अधिकांश हिस्से स्वयं खरीद लेते हैं। किन्तु कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो कम्पनी अपने हाथ में लेना चाहते हैं। अतः, जब वे यह देखते हैं कि मैनेजिङ्ग एजेन्ट की आर्थिक अवस्था कमजोर है तब वह हिस्सों की कीमत चढ़ाकर उन्हें स्वयं खरीद लेते हैं। संक्षेप में यह है कि वे तनिक सी कमजोरी देखने के साथ ही उसका लाभ उठाने के लिये तैयार रहते हैं और इससे बम्बई की

सूती मिलों के हिस्सों में बड़ी सट्टेबाजी होती है। यदि मिलें द्रव्य के लिये मैनेजिङ्ग एजेन्टों पर इतना निर्भर न होवीं तो उनके हिस्सों में इतनी सट्टेबाजी न होती और जनता की जो उससे हानि होती है वह रुक जाती।

सन् १६३६ के भारतीय कम्पनी संशोधन विधान में मैनेजिङ्ग एजेन्सी प्रणाली के दोष दूर करने के लिये जो व्यवस्था कर दी गई है उसका थोड़ा-सा अध्ययन तो हम कर ही चुके हैं। इस सम्बन्ध की जो अन्य धारायें हैं वह निम्न आशय की हैं —

(१) विधान प्रारम्भ होने के बाद से कोई भी मैनेजिङ्ग एजेन्ट २० वर्ष से अधिक के लिये यह पद नहीं पा सकता।

(२) नियमावली में चाहे जो कुछ लिखा हो अथवा परस्पर चाहे जो कुछ तै हुआ हैं किन्तु यह विधान पास होने के पहले भी यदि कोई मैनेजिङ्ग एजेन्ट २० वर्ष से अधिक के लिये नियुक्त हुआ है तो यह विधान पास होने के बीस वर्ष के बाद वह मैनेजिङ्ग एजेन्ट नहीं रह सकता। हाँ, उसकी फिर से नियुक्ति हो सकती है। जब किसी मैनेजिङ्ग एजेन्ट का समय समाप्त होने को हो तो वह कम्पनी से वह सब खर्च ले सकता है जो उसने उसके लिये किये हो।

(३) यदि किसी मैनेजिङ्ग एजेन्ट ने कम्पनी के सम्बन्ध मे किसी ऐसे अपराध के लिये सजा पाई है जो भारतीय पिनल कोर्ड के अनुसार दण्डनीय है और जिसकी जमानत नहीं है तो कंपनी उसे निकाल सकती है। यदि मैनेजिङ्ग एजेन्ट कोई फर्म अथवा कम्पनी है तो यदि उसके किसी साझी अथवा डाइरेक्टर ने उपर्युक्त अपराध किया है और वह ऐसा अपराध करने के ३० दिन के अन्दर नहीं निकाला जाता है तो वह अपराध उस फर्म अथवा कंपनी का समझा जायगा।

(४) यदि कोई मैनेजिङ्ग एजेन्ट दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो वह भी अपने पद से च्युत कर दिया जायगा।

(५) कोई मैनेजिङ्ग एजेन्ट उस समय तक अपना अधिकार हस्तान्तरित नहीं कर सकता जब तक कम्पनी की साधारण सभा मे वह पास न हो जाय।

(६) यदि मैनेजिङ्ग एजेन्ट ने अपना प्रतिफल अथवा उसका कोई अंश किसी को हस्तान्तरित कर दिया है तो उसके सम्बन्ध का दायित्व कम्पनी के ऊपर नहीं पड़ सकता।

(७) किसी कम्पनी की इतिक्रिया होने पर मैनेजिङ्ग एजेन्ट का प्रतिफल, इत्यादि वैसे तो कम्पनी से वसूल किया जा सकता है। किन्तु यदि यह इतिक्रिया मैनेजिङ्ग एजेन्ट की भूल से हुई है तो ऐसा नहीं किया जा सकता।

को मिलों के लिये पूँजी के सदृश्य प्रयोग में लाने में एक और दोष है और वह यह है कि इससे हिस्सों और ऋण-पत्रों का जो लागत के अच्छे रूप हैं अधिक प्रचार नहीं हो पाता। तीसरे, मिलें जमा प्राप्त करके एक ऐसा काम कर रही हैं जो उनके योग्य नहीं है और यदि यह कभी इन्हें माँग पर न दे सकेंगी तो उनमें जनता का विश्वास घट जायगा और वह न तो हिस्से ही खरीदेगी और न बैंक ही में जमा करेगी। चौथे, यह प्रणाली पुरानी है। आजकल जब आधुनिक बैंक हैं जमा उन्हीं में होना चाहिये। अन्तिम बात यह है कि बैंकों के अधिक लोकप्रिय हो जाने पर शायद यह जमा बैंकों में चली जाय, अतः, इस पर मिलों को निर्भर नहीं रहना चाहिये।

हिस्से और ऋण-पत्र निकालना

अब हम हिस्से और ऋण-पत्र ले सकते हैं। सारी पूँजी एक ही ढङ्ग से नहीं प्राप्त हो सकती। मिलों और लागत लगानेवाली जनता दोनों की दृष्टि से यह अच्छा है कि इसके लिये कई ढङ्ग अपनाये जायँ। यह सब ढङ्ग ऐसे होने चाहिये कि जो भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों को पसन्द हों। प्रथम तो सपक्ष हिस्से (Preference shares) होते हैं, दूसरे साधारण हिस्से (Ordinary shares) और तीसरे संस्थापकों के हिस्से (Founders or Deferred shares) होते हैं। सपक्ष हिस्से साझे के सपक्ष हिस्से (Participating Preference shares) अथवा वर्धमान सपक्ष हिस्से (Cumulative Preference shares) अथवा साधारण सपक्ष हिस्से (Noncumulative Preference shares) हो सकते हैं। कभी-कभी स्थायी पूँजी का कुछ अंश ऋण-पत्र निकालकर भी इकट्ठा किया जाता है। इससे एक तरफ तो लागत लगाने वालों को व्याज मिलता रहता है और दूसरी तरफ हिस्सेदारों को उन्हें अपने लाभ में से बहुत अधिक नहीं देना पड़ता। हिस्से और ऋण-पत्र निकालकर जनता से प्रत्यक्ष तौर पर पूँजी पाने के इस तरीके में हमारे यहाँ तथा अन्य देशों में भी यह दोष है कि कभी तो लोग अच्छी आशा होने के कारण इन्हें आसानी से ले लेते हैं और कभी इसके विपरीत स्थिति के कारण इन्हें नहीं लेते। इधर के इतिहास में सन् १९२०-२१ और सन् १९३५-३७ के वर्ष पहली तरह के और बीच के वर्ष दूसरी तरह के थे। इसी तरह से द्वितीय युद्ध काल में हिस्सों की अच्छी बिक्री थी किन्तु युद्धोत्तर काल में अब नहीं है। ध्यान तो यह था कि राष्ट्रीय सरकार आ जाने से स्थिति सुधरेगी

किन्तु ऐसा हुआ नहीं। वैसे तो प्रधान मन्त्री और उद्योग मन्त्री बराबर देश के पूँजीपतियों में विश्वास उत्पन्न कराने का प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु मजदूरी की स्थिति इतनी बिगड़ गई है और साम्यवाद का भूत इतना परेशान कर रहा है कि यह विश्वास उत्पन्न हो ही नहीं पाता। इसके अतिरिक्त उद्योग-धन्धों को अन्य कठिनाइयाँ भी नजर आ रही हैं, जिनमें नये-नये कर, रेल की कठिनाइयाँ, सर्वत्र फैली हुई घूस खोरी मुख्य हैं। फिर यहाँ पर ऐसे होशियार लागत लगानेवालों की भी कमी है, जो अच्छी और बुरी योजनाये समझ सकें। पश्चिमी देशों में भी लोगों को इस सम्बन्ध की उचित सलाह देने के लिये कुछ सस्थायें हैं। अत., भारतवर्ष में तो जहाँ शिक्षा की बहुत कमी है इनका होना बहुत ही आवश्यक है।

इम्पीरियल बैंक और दूसरे व्यापारिक बैंकों द्वारा उद्योग-धन्धों की आर्थिक सहायता

हमे यह तो ज्ञात हो ही गया है कि भारतवर्ष मे आधुनिक उद्योग धन्धो की सस्थापना मैनेजिङ्ग एजेन्टो के कारण ही हुई है। बहुत दिनों तक तो केवल यही इन्हें आर्थिक सहायता भी देते रहे। उनकी स्वय की अच्छी आर्थिक स्थिति और साथ ही उनके मित्रों की सहायता के कारण वे बैङ्कों की सहायता बिना यह काम करते रहे। किन्तु धीरे धीरे और विशेषकर जब प्रथम युद्ध के बाद मन्दी आई तब जनता का उन पर से विश्वास उठ गया और उन्हें अपने मित्रों की सहायता मिलनी बन्द हो गई। अतः, उन्हें बैङ्कों से सहायता लेने की आवश्यकता पड़ी। किन्तु इनके दायित्व ऐसे थे कि ये उन्हें दीर्घकालीन पूँजी नहीं दे सकते थे। हाँ, ये उनकी अल्पकालीन आवश्यकतायें अवश्य पूरी कर सकते थे, किन्तु वह भी सब नहीं। अल्पकालीन आवश्यकताओं के लिये भी कुछ ऐसी पूँजी होती है जो हमेशा चाहती है। अत., वह स्थायी पूँजी का ही धारण कर लेती है। कच्चे माल का, तैयार और अर्ध तैयार माल का स्टाक एक न्यूनतम सीमा से कम रह ही नहीं सकता। अत., इन्हे रखने के लिये जितनी पूँजी की आवश्यकता पड़ती है वह स्थायी ही के सदृश्य होती है। अतः, घिरी हुई पूँजी के साथ-साथ इसका भी प्रबन्ध करना पड़ता है। यदि ऐसा नही किया जाता तो बड़ी जोखिम का सामना करना पड़ता है। सच तो यह है कि इस देश मे बहुत से लोग यह सोच लेते है कि उनकी सारी कार्यशील पूँजी उन्हें अल्पकालीन ऋण के रूप मे मिल जाने से उनका काम चल जायगा

और इसीलिए वे सफल नहीं होते। बैङ्क यदि इसके लिये तैयार नहीं होते तो हमें उन्हें दोष न देना चाहिये। हमें तो यह देखना चाहिये कि वे कार्यशील पूँजी का यह भाग देने के लिये तैयार हैं अथवा नहीं जो बराबर आती जाती है और इस तरह से सदैव समय पर बैङ्क को वापिस की जा सकती है। किन्तु ध्यान से देखने पर यह पता लगता है कि बैङ्क यह भी सहायता प्रसन्नता से और कम ब्याज पर नहीं करते। इम्पीरियल बैङ्क और दूसरे बैङ्क या तो (अ) उनके पास माल असबाब और किसी योग्य जमानत गिरवी के तौर पर रखने से या (ब) ऋण लेनेवाले के ऐसे प्रण-पत्र जिसके ऊपर किसी अन्य धनी के भी हस्ताक्षर हों लेकर ऋण देने के लिये तैयार रहते हैं। किन्तु अधिकांश मिलमालिक ऋण नहीं लेते। बात यह है कि उनका अपना माल बैङ्क में गिरवी रखने से उनकी साख मारी जाती है। अतः, वे इसे पसन्द नहीं करते। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि वे विशेषतः अहमदाबाद में जनता से जमा प्राप्त करते हैं। अतः, उनकी साख मारी जाने से इस पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। इसके उनके ऐसा न करने के दो कारण हैं। बैङ्क ने प्रण-पत्रों पर जो दो धनियों के हस्ताक्षर लेने की प्रथा चला रक्खी है इससे मैनेजिङ्ग एजेन्टों का रहना बहुत जरूरी हो गया है। बैङ्क जो ऋण देते हैं उनका रूप या तो नकद साख का या अधिविकर्ष का होता है। बैङ्क और ऋण लेनेवाले दोनों यही पसंद करते हैं। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि ऋण लेनेवालों को उनके दैनिक ऋण पर ब्याज देना पड़ता है। हाँ, हर हालत में एक न्यूनतम रकम अवश्य देनी पड़ती है। दूसरे, बैङ्क जब चाहे तब यह सुविधा बन्द कर सकता है। किन्तु बिल डिस्काउण्टिङ्ग पर अधिक जोर देना चाहिये। हाँ, इसके लिये एक तो यहाँ पर लाइसेन्स प्राप्त गोदाम होने चाहिये और दूसरे बिलों के प्रयोग की आदत बढ़नी चाहिये। फिर, बैङ्क ऋण देते समय ऋण लेनेवाले की वैयक्तिक जमानत का जरा भी ख्याल नहीं करते और अतिरिक्त जमानत अवश्य माँगते हैं। वे अतिरिक्त जमानत न माँगें इसके लिये यह आवश्यक है कि भारतीय कम्पनी विधान की उस धारा में संशोधन कर दिया जाय जिसके अनुसार उन्हें अपनी बेलन्स शीट में जमानती और गैरजमानती ऋण अलग-अलग दिखाने पड़ते हैं। फिर, यह इस तरह से भी हो सकता है कि बैङ्क मिलवालों की अधिक जानकारी प्राप्त करें। अन्तिम, ब्याज की दर भी बहुत ऊँची रहती है। छोटे छोटे बैङ्क तो १२ से १८ प्रतिशत तक लेते हैं।

बैङ्कों के उद्योग-धन्धों की अधिकाधिक सहायता करने के लिये सुझाव

इम्पीरियल बैङ्क और दूसरे बैङ्क, विशेषत वह जिनकी स्थिति काफी अच्छी है, निम्न ढङ्ग से उद्योग-धन्धो की अधिकाधिक सहायता कर सकते हैं .

(१) उन्हे पुरानी और नई दोनो प्रकार की कपनियों के निकाले हुये हिस्सो का बीमा कर देना चाहिये। इसके लिये उनके यहॉ ऐसे अनुभवी कर्मचारियों की आवश्यकता पडेगी जो प्रत्येक धन्धे के विषय मे, जानते हों और उसके सम्बन्ध में अपनी सम्मति दे सके। इससे ऐसी कपनियॉ कम खुलेगी जिनका भविष्य अच्छा नहीं होगा। हमारे यहॉ जो बहुत-सी कपनियॉ असफल हो गई हैं वह उपर्युक्त व्यवस्था होने पर शायद खुलती ही नहीं और इस तरह से उनमें लागत लगानेवालों की जो हानि हुई है वह भी अवश्य बच जाती।

(१२) बैंक जिन हिस्सों का बीमा कर देंगे प्रायः उन सबको जनता ले ही लेगी। इससे उसका उन पर विश्वास जम जायगा। किन्तु यदि कुछ हिस्से बच रहेंगे तो बैंको को उन्हें लेना पडेगा। किन्तु यह बहुत दिनों तक उनके पास नहीं रहेंगे, क्योंकि कम्पनियों की उन्नति के साथ-साथ वह बिक जायँगे।

(३) बैंकों के प्रतिनिधि सचालक मडलों मे रहकर उन्हे बराबर साव-धानी से काम करने के लिये कहते जायँगे।

(४) उन्हें वैयक्तिक जमानतो पर अल्पकालीन ऋण देने चाहिये।

(५) लाइसेन्स प्राप्त गोदाम अवश्य स्थापित किए जाने चाहिये। इससे तैयार माल उनके यहॉ रखने की परिपाटी चल जायगी और उनके यहॉ की रसीदों के आधार पर बैंक ऋण दे सकेंगे।

(६) बिल भुनाने की प्रथा को उस पर कम ब्याज लेकर प्रोत्साहित करना चाहिये। इससे बैंको की वह लागत मिल जायगी जो उनके लिये बड़ी लाभप्रद है। उनके न होने के कारण इस समय वे अपनी लागत सरकारी साख-पत्रों मे लगाते हैं। उनका यह काम नही है। उन्हे पहले उद्योग-धन्धों और व्यापार की सहायता करनी चाहिए और फिर सरकार के साख-पत्र खरीदने चाहिए। हॉ, इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इधर वे ऐसा ही कर रहे हैं। यदि यह बात होती रहे तो बहुत ही अच्छा है।

सरकार का कर्तव्य

कुछ लोगों का यह कहना है कि भारतवर्ष में व्यावसायिक बैंकों की इस समय जो स्थिति है उसमें उन्हें उद्योग धन्धों को दीर्घकालीन ऋण बिल्कुल ही नहीं देना चाहिये। उनका कहना है कि उनके स्थान पर सरकार को आगे आना चाहिये। इस सुझाव को समाचारपत्रों के प्रचार से बड़ा प्रोत्साहन मिला है। इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रान्तों की सरकारों ने जो कुछ किया है उसे तो हम देख ही चुके हैं। यहाँ पर हम अभी हाल ही में खुले अखिल भारतवर्षीय औद्योगिक अर्थ कारपोरेशन के विधान, काम और सम्भावनाओं का विशेष रूप से अध्ययन करेंगे।

उपर्युक्त कारपोरेशन संयुक्त राज्य (U K) के एक ऐसे ही कारपोरेशन के सदृश है। इसका मुख्य ध्येय नये धन्धों को स्थिर पूँजी देना है। इसकी स्वयं की पूँजी पाँच करोड़ है जो ५,००० रुपयों के १०००० हिस्सों में विभाजित है जो पूर्णरूप से प्राप्त है। आगे चल कर यह पूँजी १० करोड़ रु० हो जायगी। इस समय केन्द्रीय सरकार और रिजर्व बैंक ने दो-दो हजार हिस्से लिये हैं। स्वीकृत बैंकों तथा बीमा कम्पनियों और स्वीकृत इन्वेस्टमेन्ट ट्रस्ट्स ने ढाई-ढाई हजार हिस्से और सहकारी बैंकों ने एक हजार हिस्से लिये हैं। सरकार ने पूँजी वापिस करने और ढाई प्रतिशत वार्षिक प्रतिफल (आय कर सहित) देने का दायित्व लिया है। लाभ की बँटनी अधिक से अधिक ५ प्रतिशत हो सकती है और यह भी पाँच करोड़ का सुरक्षित कोष बन जाने के बाद होगी। कारपोरेशन के लाभ पर न तो आय कर लगता है और न अतिरिक्त कर। कारपोरेशन के ग्यारह संचालकों में से तीन केन्द्रीय सरकार द्वारा, दो रिजर्व बैंक द्वारा, दो स्वीकृत बैंकों द्वारा और दो बीमा कम्पनियों और इन्वेस्टमेन्ट ट्रस्ट्स द्वारा और दो सहकारी बैंकों द्वारा नियुक्त होते हैं। कारपोरेशन के चार दफ्तर हैं, एक बम्बई में, दूसरा कलकत्ते में, तीसरा दिल्ली में और चौथा मद्रास में। कारपोरेशन कम्पनी पूँजी जमा प्राप्त करके और बाण्ड तथा ऋण-पत्र निकाल करके भी बढ़ा सकता है। आकस्मिक दायित्व (Contingent Liabilities) मिलाकर सारे ऋण की रकम उसकी प्राप्त पूँजी के चतुर्गुण से अधिक नहीं हो सकती दस वर्ष के पहले जो जमा की रकम देय न होगी वह दस करोड़ रुपये से अधिक की नहीं हो सकती।

कारपोरेशन उद्योग-धन्धों को अधिक से अधिक २५ वर्षों के अन्दर वापिस होने वाले दीर्घकालीन ऋण देता है। यह कम्पनियों के हिस्से और

ऋण-पत्र निकालने का बीमा भी करता है, किन्तु इसे इन्हे अधिक से अधिक सात वर्षों में जनता के हाथ बेच देना पडता है। यदि कोई कम्पनी बाजार में ऋण लेना चाहती है तो यह कुछ निश्चित कमीशन लेकर उसकी जमानत भी कर लेता है। यदि किसी कम्पनी को विदेशी करन्सी चाहिये तो इसे अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank of Reconstruction and Development) से ऋण लेने का अधिकार दे दिया गया है। इसे किसी कम्पनी से दूसरे ऋणदाताओ की अपेक्षा अपने ऋण की वसूली का प्रथम अधिकार भी प्राप्त है।

यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष की सरकार ने अब तक जो कुछ भी यहाँ के औद्योगीकरण के लिये किया है उसमे इस कारपोरेशन की संस्थापना सबसे प्रधान है। इसके काम धीरे-धीरे बढ जायेंगे और यह अनुभव प्राप्त करने के बाद अवश्य ही और कार्य कुशल हो जायगा। प्रारम्भ मे इसे कुछ अधिक सावधान रहना पड रहा है। हाँ, बाद में यह कुछ ढील दे सकेगा। यह बहुत ही आवश्यक हे क्योंकि इसी के ऊपर इसकी जमा की प्राप्ति और ऋण-पत्रों की बिक्री निर्भर है।

भविष्य में यदि प्रान्तीय कारपोरेशन न स्थापित किये गये तो यह कारपोरेशन अपने ढङ्ग का अकेला कारपोरेशन रहेगा। अतः, इसके यहाँ माँग भी अधिक रहेगी। किन्तु यदि प्रान्तीय कारपोरेशन भी स्थापित हो गये तो इसे उनके बीच मे सहयोग उत्पन्न कराना पड़ेगा। प्रान्तीय कारपोरेशनों के बन जाने पर इसे उन उद्योग-धन्धो की सहायता करनी पडेगी जो अन्तर्प्रान्तीय हें और अखिल भारतीय महत्त्व के हैं जैसे स्टील के, इञ्जीनियरिङ्ग के और भारी रसायनों के, इत्यादि।

यद्यपि केन्द्रीय और छ० प्रान्तीय बैंकिंग की कमेटियों ने सरकार से सहायता प्राप्त प्रान्तीय औद्योगिक कारपोरेशन की संस्थापना के सुझाव रक्खे थे, किन्तु उनके विरुद्ध जो राय है उसके कारण उनकी संस्थापना असम्भव हे। प्रथम तो इनका बोझ कर देनेवाली जनता पर पडेगा। अत', वह इसके पक्ष में नहीं हो सकती। दूसरे, यदि सरकार के पास इनके लिये धन है तो वह उसे अन्य उपयोगी कामों में लगा सकती है। तीसरे, यह भी अच्छा नहीं मालूम पड़ता कि सरकार से सहायता प्राप्त संस्था अन्य ऐसी ही संस्थाओं से प्रतियोगिता करें। किन्तु ये उन धन्धों को सहायता करने के लिये अवश्य ही स्थापित किये जा सकते हैं जो जनता के लिये अत्यन्त ही उपयोगी हैं। इन्हें सहायता देनेवाली संस्थाओं की आवश्यकता कुछ प्रान्तों में अच्छी तरह से प्रतीत हो चुकी है।

मद्रास में बिजली कम्पनियों, शक्तिदायक योजनाओं और सिंचाई के कामों को सरकार ने सहायता दी है। किन्तु इसके लिए जिस ढंग से काम लिया गया था वह ठीक नहीं था। पंजाब में भी यही हुआ था। इन उद्योगों के उपयोगी कामों में एक विशेष बात है और वह यह कि इनमें जो रुपया लगाया जाता है उसका प्रतिफल मिलने में कुछ समय लगता है। अतः, कम्पनियों को आर्थिक सहायता देने का जो साधारण ढंग है वह इसके लिये उपयुक्त नहीं है। किन्तु यदि कोई विशेष ढंग अपनाया जाय तो उनको रुपया अवश्य मिल सकता है। अतः, नये आविष्कारवाले धंधों को आर्थिक सहायता देने के लिये सरकारी औद्योगिक कारपोरेशन की संस्थापना करना बहुत ही आवश्यक है। बैंकिंग कमेटियों की सहायता के लिये जो विदेशी अनुभवी आये थे उनकी भी यही सम्मति थी। हाँ, पहले अवश्य इनके विषय में कुछ मतभेद था किन्तु बाद में वह ठीक हो गया था। केन्द्रीय और इन दो कमेटियों की राय के विरुद्ध जो प्रान्तीय औद्योगिक कारपोरेशन की संस्थापना के पक्ष में थीं वे एक अखिल भारतवर्षीय कारपोरेशन की संस्थापना करना चाहते थे। मि० दुबेदार तथा कुछ अन्य लोगों की भी यही सम्मति थी। सत्य तो यह है कि दोनों पक्ष की दलीलें बड़ी सारगर्भित थीं। प्रान्तीय कारपोरेशनों के पक्ष में निम्न दलीलें थीं —

(१) उद्योग-धन्धों का विषय प्रान्तीय विषय है। अत, इनके सम्बन्ध की सभी योजनायें प्रान्तीय सरकारों के नियन्त्रण में होनी चाहिये।

(२) केन्द्रीय सरकार के एक अखिल भारतवर्षीय कारपोरेशन की सहायता करने के अपेक्षा भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारों का अपने-अपने प्रांतीय कारपोरेशनों की सहायता करना अधिक आसान होगा।

(३) अखिल भारतवर्षीय कारपोरेशन के लिये पूँजी इकट्ठा करना कठिन होगा किन्तु प्रांतीय कारपोरेशनों के लिये यही आसान होगा। बात यह है कि वह अपने प्रांत के लोगों की प्रांतीयता का लाभ उठा सकेंगे।

(४) प्रांतीय कारपोरेशन अपने-अपने प्रांतों के उद्योग-धंधों की आवश्यकतायें आसानी से समझ सकेंगे। किन्तु एक अखिल भारतीय कारपोरेशन को सारे देश के उद्योग-धंधों की आवश्यकतायें समझना कुछ कठिन-सा हो जायगा।

(५) प्रांतीय कारपोरेशनों के पास उनके अपने-अपने प्रांतों के धंधे जाननेवाले अनुभवी रह सकते हैं, किन्तु एक अखिल भारतीय कारपोरेशन के पास सारे देश के धंधे समझनेवाले अनुभवी नहीं रह सकते।

जो लोग एक अखिल भारतीय कारपोरेशन की सस्थापना के पक्ष मे थे उनकी निम्न दलीले थीं :—

(१) प्रातीय सरकारो की आर्थिक स्थिति ऐसी नही है कि वह प्रान्तीय कारपोरेशन सस्थापित कर सके। हाँ, केन्द्रीय सरकार की ऐसी स्थिति अवश्य है कि वह एक अखिल भारतीय कारपोरेशन स्थापित कर ले। यदि वह सारा बोझ स्वय न भी उठा सकेगी तो उसे प्रान्तीय सरकारो की सहायता मिल सकती है।

(२) एक अखिल भारतीय कारपोरेशन के हिस्सो और ऋण-पत्रो पर जनता का कहीं अधिक विश्वास होगा और विशेषत जब केन्द्रीय सरकार द्वारा ही वह संस्थापित होगा। फिर, उसके निकाले हुए साख-पत्र विदेशों में भी बिक सकेंगे। इसके अतिरिक्त उसके सचालक भी देश के किसी हिस्से से भी लिये जा सकेंगे। अत, उसमें योग्य व्यक्तियो के रहने की विशेष सम्भावना होगी।

(३) एक अखिल भारतीय कारपोरेशन की रकम भिन्न-भिन्न प्रकार के धधों में लगी होगी। अत, सकट के समय उसे कुछ कम जोखिम रहेगी।

(४) अखिल भारतीय कारपोरेशन की केन्द्रीय सरकार में भी आवाज होगी। अत वह यहाँ के धधों को उचित सहायता भी दिलवा सकेगा।

(५) अखिल भारतीय कारपोरेशन के कर्मचारी भी समस्त भारतवर्ष में से लिये जा सकेंगे। अतः, वह बहुत अनुभवी होंगे। फिर, एक प्रात के धधों को दूसरे प्रात के धधों के अनुभवी व्यक्तियो के अनुभव का भी लाभ प्राप्त हो सकेगा। इसे विदेशियों की सेवाएँ भी प्राप्त हो सकेंगी।

(६) इस देश में इस समय बहुत से काम किये जा सकते हैं किन्तु उन सबका एक साथ लेना तो असम्भव होगा। अत., उनमे से जो अधिक लाभप्रद हैं वही पहले लिये जायँगे।

किन्तु जैसा पहले भी कहा जा चुका है, अत मे इस विषय पर सब की एक ही सम्मति हो गई और वह यह थी कि प्रत्येक प्रात मे उसका एक प्रातीय कारपोरेशन होना चाहिये और उनके सबके ऊपर एक अखिल भारतीय कारपोरेशन भी होना चाहिये जो उनमें सहयोग स्थापित करेगा और अखिल भारतीय प्रश्न सुलझावेगा। इसके भिन्न काम बतलाये गये थे —

(१) प्रान्तीय कारपोरेशनों को उनके हिस्से और ऋण-पत्र बेचने मे सहायता देना।

(२) प्रान्तीय कारपोरेशनों मे सहयोग उत्पन्न कराना और यह बात देखना कि वह उपयोगी धधे ही सर्वप्रथम लेते हैं।

( ) प्रान्तीय कारपोरेशनों के पथ प्रदर्शन के लिये कुछ साधारण सिद्धान्त बनाना ।

(४) केन्द्रीय सरकार से उनके लिये सुविधायें दिलाना ।

औद्योगिक बैंकों की संस्थापना के लिये आवश्यक सुझाव

जैसा पहले ही कहा जा चुका है देश के क्षेत्रफल को देखते हुये इस समय औद्योगिक बैंकों की जो संख्या है वह बहुत ही कम है। हां, यदि इम्पीरियल बैंक तथा अन्य व्यापारिक बैंक इस तरीके को अपना कर देश के उद्योग-धन्धों की सहायता करने लग जायें तथा अखिल भारतीय औद्योगिक अर्थ कारपोरेशन और प्रान्तीय औद्योगिक कारपोरेशन उद्योग धन्धों के लाभ दृष्टि में रखते हुये काम करें तो अन्य औद्योगिक बैंकों की स्थापना की आवश्यकता नहीं रहेगी। किन्तु यदि यह नहीं होता है तो औद्योगिक बैंकों की स्थापना बहुत ही आवश्यक होगी। हां, ऐसी स्थिति में उनके काम वही होंगे जो इंपीरियल बैंक और अन्य बैंकों के लिए बताये जा चुके हैं। जो औद्योगिक बैंक इस समय स्थित हैं उनको भी इन्हीं ढङ्गों पर काम करना चाहिये। इस सम्बन्ध में ब्रिटेन में एक कमेटी बैठी थी जिसने इस विषय में निम्न सुझाव रक्खे थे :—

(१) वर्तमान औद्योगिक कम्पनियों को अर्थ सम्बन्धी मन्त्रणा देना ।

(२) स्थायी पूँजी की प्राप्ति, उसकी रकम और उसके भेदों के विषय में मन्त्रणा देना ।

(३) कम्पनियों के साख-पत्रों को निकालने पर उनका बीमा करना और जब तक वह जनता द्वारा न लिये जा सकें तब तक के लिये उन्हें अल्पकालीन ऋण देना ।

(४) देश तथा विदेशों में कम्पनियों के दीर्घकालीन कन्ट्राक्ट पूरा करने के लिये आर्थिक सहायता देना और स्थित कम्पनियों की उन्नति के लिये भी ऐसा ही करना ।

(५) नये धन्धों के लिये कम्पनियाँ स्थापित करना ।

(६) एकीकरण के सम्बन्ध में मध्यस्थ का काम करना और अर्थ सम्बन्धी मन्त्रणा देना, तथा प्रतिस्पर्धी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से समझौता करना, और

(७) सब तरह के आर्थिक सहायता के काम करना ।

ऐसे बैंकों की पूँजी अवश्य ही दीर्घकालीन ऋण के रूप में होगी न कि अल्पकालीन ऋण के रूप में। इन्हें व्यापारिक बैंकों से प्रतियोगिता नहीं करने देना चाहिये ।

औद्योगिक कम्पनियो के हिस्सों और ऋण-पत्रों को जनता में प्रचलित करने के लिये सुझाव

(१) प्रथम महायुद्ध के बाद के तेजी के काल में यहाँ पर बहुत-सी औद्योगिक कंपनियाँ खुली थीं। किन्तु बाद मे मदी के समय जब वह फेल हो गईं तब जनता का इन पर से विश्वास उठ गया। अतः, लोग अपनी बचत पड़ोसियों को उधार देने, अचल सम्पत्ति मे, सरकारी, म्युनिसिपैलिटियो के और बन्दरगाहो के ट्रस्ट के साख-पत्रो में लगाना अधिक पसद करते हैं। यदि वर्तमान बैंक और जिनकी सस्थापना के लिये सुझाव रक्खे गये हैं वह नई कपनियों की योजनायें पहले ही से समझ लिया करे तो उनके फेल होने की सम्भावना कम हो जाय और इससे जनता मे उनके प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाय।

(२) केन्द्रीय कमेटी के सामने जिन लोगों ने साक्षी दी थी उनमें से कुछ ने यह भी कहा था कि यहाँ पर लोगो का यहाँ के धन्धों पर इसलिये भी विश्वास नहीं है कि वह जानते हैं कि यहाँ की विदेशी सरकार उनकी तनिक भी सहायता न करेगी और इसी कारण वह सफल न हो सकेंगे। हमारी अपनी सरकार अब यह डर दूर कर सकती है। किन्तु इधर साम्यवाद का जो डर फैल गया है उससे अवश्य कुछ अड़चन पड़ेगी।

(३) हमारे यहाँ ऐसी संस्थायें भी नहीं के बराबर हैं जो यहाँ के लोगों को और विशेषकर ग्रामीण लोगों को इस प्रकार के लागत से अवगत करें। वास्तव मे इस सम्बन्ध के विज्ञापन की यहाँ पर बड़ी आवश्यकता है।

(४) प्रायः लोग पढे-लिखे नहीं हैं और पूँजी एकत्रित करने के आधुनिक तरीके नहीं जानते। इनके विषय की शिक्षा देने की यहाँ पर बहुत ही आवश्यकता है।

(५) साख-पत्रों के क्रय और विक्रय में सुविधा देने के लिये यहाँ पर कोई भी सस्था नहीं है और यदि है तो वह शहरों मे ही है। अत, इनके विश्वासपात्र दलालो की बड़ी आवश्यकता है।

(६) कुछ साख-पत्रों के हस्तातर करने मे बड़ा ऊँचा स्टाम्प लगाना पड़ता है। इसे भी घटा देना चाहिये।

(७) जिन लोगो के पास थोड़ी सख्या के हिस्से होते हैं उन्हें कभी-कभी उनके बेचने मे बड़ी कठिनाई पड़ती है। अत, थोड़ी सख्या में भी हिस्से बेचने का प्रबन्ध होना चाहिये।

(८) हमारे यहाँ औद्योगिक कठिनाई यह भी है कि माल-स्टॉकों की जमानत पर ऋण देने के लिए कोई भी संस्था तैयार नहीं होती। हालाँकि अब भी सरकारी माल-पत्र [illegible], इसमें इधर कुछ परिवर्तन हो रहा है।

(९) [illegible] इसी प्रकार हमारे यहाँ भी हमारी सरकार सन् १९[illegible] से [illegible] बाजार में से ऋण कम्या लेती है। अत: इससे उद्योग-धंधों को [illegible] नहीं मिलता। सरकार को इतना कम ब्याज पर ऋण लेना चाहिये।

घरेलू धन्धों को आर्थिक सहायता देने के सम्बन्ध में सुझाव

घरेलू धंधों को भी आर्थिक सहायता की आवश्यकता पड़ती है; और अब तक वह महाजनों के ऊपर ही निर्भर रहते हैं। वास्तव में उनकी लघुता और उनकी तितर-बितर होने की अवस्था के कारण बैंकों तथा अन्य बड़े-बड़े अर्थ की व्यवस्था करनेवाले लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो ही नहीं सकता। किन्तु इन्हीं कारणों से यह सहकारिता के लिये बहुत ही उपयुक्त हैं। भिन्न-भिन्न कमेटियों ने यही राय भी दी है। ऐसे धंधे जर्मनी और जापान में सहकारिता की सहायता से ही फल-फूल रहे हैं। अत, कोई कारण नहीं कि भारतवर्ष में ऐसा न हो सके। किन्तु इसके लिये सहकारिता का सिद्धांत केवल साख के लिये ही नहीं सीमित रखना चाहिये। जैसे कृषि में वैसे ही यहाँ पर भी उसे दूसरे कामों के लिये भी प्रयोग में लाना चाहिये। हाथ से काम करने वालों और दूसरे छोटे पैमाने पर काम करनेवालों को बड़े पैमाने पर काम करनेवालों की प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिये सहकारिता की जो आवश्यकता है यह स्वयं सिद्ध है।

यद्यपि सन् १९०४ के सहकारिता विधान में ही नागरिक समितियों की संस्थापना की व्यवस्था कर दी गई थी तो भी ये बहुत दिनों तक नहीं खुलीं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है यह अपनी रचना और कार्य-प्रणाली में कृषक समितियों से बहुत ही भिन्न हैं। नागरिक सहकारी समितियाँ भी अनेक प्रकार की होती हैं, उदाहरण के लिये कर्मचारियों की समितियाँ, उपभोक्ताओं के सहकारी स्टोर, हाथ से काम करनेवाले तथा जुलाहों की समितियाँ, दुग्ध इकाइयाँ और समितियाँ, बीमा समितियाँ, विद्यार्थी स्टोर्स इत्यादि। किन्तु यहाँ पर हमारा विशेष प्रयोजन तो हाथ से काम करनेवालों और जुलाहों की समितियों से ही है। जुलाहों पर इसलिये विशेष जोर दिया गया है कि यहाँ

पर कपडे का काम बहुत महत्त्वपूर्ण है। सन् १९३९-४० के अंत में बम्बई में जुलाहों की ३० समितियाँ थीं, मद्रास में यही १९१ थीं और पंजाब में ३५० से अधिक थीं। अन्य प्रान्तों के यह अङ्क नहीं मिलते किन्तु प्रत्येक में ऐसी कुछ समितियाँ हैं अवश्य। इनके अतिरिक्त अन्य कारीगरों की समितियाँ भी हैं जिनके सम्बन्ध के भी अंक प्राप्त नहीं हैं। इधर युद्धकाल में घरेलू धन्धों को जो प्रोत्साहन मिला था उसके कारण भी अब इनकी संख्या और बढ़ गई होगी। इसमें सन्देह नहीं कि आजकल की समितियाँ केवल साख की ही व्यवस्था करती हैं, किन्तु वे कच्चे माल के क्रय में और तैयार माल के विक्रय में तथा औजारों इत्यादि के रखने में बड़ी सहायक सिद्ध हो सकती हैं। इस समय महाजन लोग यह सब काम करते हैं। प्रायः सभी शहरों में कुछ घरेलू धन्धे हैं और कुछ महाजन व्यापारी जो ऊँचे दामों पर कच्चे माल देते हैं और नीचे दामों पर तैयार माल लेते हैं। यदि यह काम सहकारी समितियाँ अपने हाथ में ले लें तो अवश्य ही इन कारीगरों की दशा बहुत कुछ सुधर जाय। अतः, जितनी ही जल्दी यह किया जाय उतना ही अच्छा है।

उद्योग एक प्रान्तीय विषय है। अतः, प्रत्येक प्रान्तीय सरकार अपने सीमित क्षेत्र में इसकी उन्नति के लिये जो कुछ कर सकती थी वह करती आ रही है। इनमें से कुछ तो भिन्न भिन्न धन्धों की आर्थिक सहायता करती हैं और इनमें छोटे पैमाने के धन्धे विशेष तौर पर महत्त्वपूर्ण हैं। यह सहायता थोड़े ब्याज पर ऋण देने के रूप में अथवा किराये और खरीद पर मशीनरी की पूर्ति के रूप में अथवा भूमि अथवा अन्य कोई सरकारी सम्पत्ति देने के रूप में होती है। ये प्रोपेगेण्डा करती हैं, धन्धों का कार्य क्रियात्मक रूप में दिखाती हैं और उनके सम्बन्ध की मन्त्रणा देती हैं, किन्तु जो रिपोर्टें निकली हैं उनसे स्पष्ट है कि इन्हें अभी कोई विशेष सफलता नहीं मिली है। ये जो आर्थिक सहायता देती हैं वह बहुत कम होती है और प्रायः वास्तविक काम करनेवालों को नहीं मिलती। शायद यही कारण है कि उसमें से बहुत-सा बट्टे खाते डालना पड़ता है। सत्य तो यह है कि सरकार यह काम कर ही नहीं सकती। यदि इसे यह काम करना है तो इसे यह सहकारी समितियाँ अथवा प्रान्तीय सहकारी बैंकों द्वारा करना चाहिये। प्रान्तीय सहकारी बैंक घरेलू धन्धे के लिये बहुत ही सिद्ध हो सकते हैं। फिर, सरकार यदि धन्धों की सहायता ही करना चाहती है तो वह चाहे बड़े पैमाने के हों अथवा छोटे के, अन्य तरीकों से सहायता कर सकती है। उसकी क्रय नीति भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कर सकती है।

उपसंहार

वास्तव में औद्योगिक अर्थ के विषय में कोई बात निश्चित रूप से कही ही नहीं जा सकती देश में चतुर्मुखी उन्नति की आवश्यकता है। शुद्ध औद्योगिक बैंकों के और खुलने की जरूरत है। उन्हें जैसे सुझाव अब तक अनुभव प्राप्त करके दिए गए हैं उन्हीं के अनुसार काम करना चाहिये। इम्पिरियल बैंक और दूसरे बड़े बैंकों को उद्योग-धन्धों को आर्थिक सहायता देनी ही चाहिए। फिर, यदि आवश्यकता हो तो जनता के लिए जो उपयोगी धन्धे हैं उनको करनेवाली संस्थाओं की आर्थिक सहायता करने के लिए प्रान्तीय कारपोरेशन भी खुलने चाहिये। जहाँ तक सरकार के उद्योग-धन्धों के प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहायता देने का प्रश्न है, वहाँ तक यदि यह सहायता अन्य तरह ही की हो तो भी यथेष्ट है। औद्योगिक बैंक, व्यापारिक बैंक तथा प्रान्तीय कारपोरेशन किसी उद्योग-धन्धे को केवल उसके प्रारम्भ से उसके एक स्तर तक पहुँच जाने के काल में ही सहायक हो सकते हैं। अन्त में तो इसका बोझ जनता को ही उठाना पड़ेगा। अतः, इसके लिए हिस्से और ऋण-पत्र अधिक प्रचलित करने चाहिए। हाँ, इम्पीरियल बैंक और दूसरे व्यापारिक बैंकों को इनकी अल्पकालीन आवश्यकताओं की तो अवश्य ही पूर्ति करनी पड़ेगी। घरेलू धन्धों की सहायता के लिये तो सहकारी समितियों को ही प्रोत्साहन देना पड़ेगा। यथार्थ में उनकी मुक्ति तो इन्हीं के हाथ में है।

प्रश्न

(१) उद्योग-धन्धों की किस प्रकार की आर्थिक आवश्यकतायें होती हैं? प्रत्येक का तुलनात्मक महत्व बताइये और यह भी स्पष्ट कीजिये कि उनका पारस्परिक अनुपात किन बातों पर निर्भर रहता है?

(२) इस देश में उद्योग-धन्धों की दीर्घकालीन आवश्यकताओं की कौन पूर्ति करता है? उनके गुण और दोष बताइये। भारतीय औद्योगिक बैंकिंग ने अब तक इस सम्बन्ध में क्या किया है?

(३) इम्पीरियल बैंक तथा दूसरे व्यापारिक बैंक किस तरह से यहाँ के उद्योग-धन्धों की आर्थिक सहायता करते हैं? इन्हें और अधिक उपयोगी बनाने के लिये अपने सुझाव रखिये।

(४) प्रान्तीय औद्योगिक कारपोरेशनों की संस्थापना के विषय में आपकी क्या सम्मति है? इस सम्बन्ध में जो एक अखिल भारतीय

सस्था स्थापित हो चुकी है उसके उपयोगो के सवन्ध में भी प्रकाश डालिये।

(५) औद्योगिक कम्पनियो के हिस्से और ऋण-पत्र जनता मे अधिक चालू करने के लिये क्या करना चाहिये ? अभी तक वे यहाँ पर क्यो अधिक प्रिय नही हो सके है।

(६) आपकी राय मे यहाँ के औद्योगिक वैको को किस प्रकार काम करना चाहिये ? क्या आप उनकी सस्थापना के पक्ष मे है ?

(७) मैनेजिङ्ग एजेण्टो की शक्ति सीमित करने के सबध में सन् १६३६ के भारतीय कम्पनी विधान में क्या-क्या बातें रक्खी गई है ? आपकी राय मे क्या उनकी यहाँ पर अब भी आवश्यकता है ?

(८) घरेलू धन्धो को आर्थिक सहायता देने की यहाँ पर जो व्यवस्था है उसमे क्या दोष है ? उसे सुधारने के लिये अपने सुझाव रखिये।

(९) भिन्न-भिन्न प्रांतीय सरकारे अपने यहाँ के उद्योग-धन्धो को आर्थिक सहायता देने के लिये क्या करती है ? आपकी सम्मति में वे उनके लिये और किस प्रकार अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है ?

(१०) भारतीय उद्योग-धन्धो को आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिये एक अच्छी योजना रखिये। इस सबध मे अब तक जो कुछ किया गया है उसका भी वर्णन कीजिये।

अध्याय १६

व्यापारिक बैंक

वैसे तो इस शीर्षक मे सम्मिलित पूँजी के भारतीय बैंक, इम्पीरियल बैंक तथा विदेशी बैंक सभी आ जाते हैं, क्योंकि वे सभी अन्य कामो के साथ-साथ व्यापारिक बैंकिंग के काम भी करते हैं, किन्तु सुविधा के लिये हम यहाँ पर केवल सम्मिलित पूँजी के भारतीय बैंक ही लेंगे। इम्पीरियल बैंक तथा विदेशी बैंकों के विषय मे हम अगले दो अध्यायों में पृथक् पृथक् अध्ययन करेंगे। हाँ, इसमें वर्तमान औद्योगिक बैंक भी आ जायँगे। सच तो यह है कि वह जो कुछ औद्योगिक बैंकिंग के काम करते हैं, उनके साथ-साथ व्या-

रह गई। फिर, सरकार ने भी ऐसे नियम बना दिये कि बैंक बहुत सी चीजों की गिरवी पर ऋण नहीं दे सकते थे। किन्तु इनकी जमा बराबर बढ़ती गई। सत्य तो यह है कि भारतवर्ष में बैंकिंग की उन्नति बड़ा से इसी कारण ही हुई है। युद्ध की व्यवस्था के लिये इस देश को केन्द्र बनाने का महत्व इस बार युद्ध प्रारम्भ होने ही प्रतीत होने लगा था। इससे सरकार को अपनी ओर अन्य मित्र-राष्ट्रों की ओर से यहाँ पर काफी व्यय करना पड़ा। अत फल यह हुआ कि यहाँ की करन्सी विशेषतः नोट करन्सी बढ़ती गई और इसी कारण बैंकों के जमा भी बढ़ते गये। निस्सन्देह कभी-कभी युद्ध के विपरीत परिस्थितियों के कारण जमा घटी भी, किन्तु उससे बैंक को केवल अपनी स्थिति दृढ़ करने में सहायता ही मिली।

जब से युद्ध प्रारम्भ हुआ अर्थात् सितम्बर १९३९ से, तब से सदस्य बैंकों की संख्या बढ़ती ही गई। सन् १९४७ के अन्त तक में कम से कम इस अवधि के बीच में ४२ नये सदस्य बैंक बन चुके थे। निस्सन्देह, इसमें से कुछ तो यहाँ पहले ही से काम कर रहे थे। किन्तु कुछ नये बैंक भी थे। इस बीच में कुछ गैरसदस्य बैंक भी स्थापित हुये।

सदस्य बैंकों और गैरसदस्य बैंकों की शाखायें भी बढ़ती गई। जब सन् १९३९ में सब सदस्य बैंकों के १२५० दफ्तर थे, मार्च, सन् १९४७ में यह ३५७६ थे। उपर्युक्त में से यदि इम्पीरियल बैंक की ४४७ और विनिमय बैंकों की ८० संख्या घटा भी दें तो भी यह काफी थी। यह भी बहुत सन्तोष की बात है कि इनमें से कुछ दफ्तर तो उन स्थानों में खुले जिनमें पहले कोई बैंक था ही नहीं। दफ्तरों की संख्या में यह वृद्धि नये बैंकों की स्थापना और उनके तथा पहले से ही स्थापित बैंक के सदस्य बैंक बन जाने के कारण और पुराने सदस्य बैंकों के अपने दफ्तरों की संख्या बढ़ा लेने के कारण हुई। नवम्बर, सन् १९४६ में एक ऐसा प्रतिबन्ध पास किया गया कि जिसके कारण रिजर्व बैंक की आज्ञा बिना नये दफ्तर खुलने बन्द हो गये।

इस अवधि के बीच में सदस्य तथा गैरसदस्य बैंकों की जमा भी बढ़ती गई। सदस्य बैंकों की जमा सन् १९३९ के सितम्बर में २३६ ६० करोड़ रु० थी और गैरसदस्य बैंकों की उसी दिसम्बर में १५.९९ करोड़ रु० थी। इसकी तुलना में इन दोनों की जमा क्रमश १०८७ ६१ (अप्रैल, १९४८ में) और ७८ ४४ (सन् १९४६ के अन्त में) करोड़ रु० थी। निस्सन्देह, प्रथममें इम्पीरियल बैंक और विनिमय बैंकों की जमा भी सम्मिलित है। किन्तु यह किसी संकोच के बिना कहा जा सकता है कि जो भी वृद्धि हुई थी वह सभी के यहाँ हुई थी।

बैंकों ने अपनी पूँजी भी बढ़ा ली बड़े बैंकों ने तो ऐसा जमा में पूँजी का अनुपात बढ़ाने की दृष्टि से किया। ऐसा करने में उन्होंने बाजार की आर्थिक स्थिति से लाभ उठाया और अपने हिस्से आर्थिक मूल्य पर बेचकर अपना सुरक्षित कोष भी बढ़ा लिया। छोटे बैंकों ने ऐसा सदस्य बैंक बनने के लिये किया। सन् १९३६ के विधान की (६) धारा के अनुसार उनका सुरक्षित कोष भी बढ़ता रहा। इस तरह से पूँजी बढ़ाने की इस प्रथा पर भी एतराज किये गये। जमा में पूँजी का जो अनुपात होना चाहिये उसके विषय में कोई निश्चित तो बात है नहीं। कम अनुपात होने से किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिये। अधिक पूँजी होने से अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करना पड़ता है। अत, इससे अनुचित लागत लगाने का भी डर रहता है। नये बैंकों में भारत बैंक की पूँजी (२ करोड़ रु० से भी अधिक) पाचों बड़े बैंकों की पूँजी से अधिक थी, हिन्दुस्तान कामर्शियल बैंक की (१½ करोड़ रु०) केवल सेन्ट्रल बैंक को छोड़कर अन्य सब से बड़े बैंकों की पूँजी से अधिक और यूनाइटेड कामर्शियल बैंक की सेन्ट्रल बैंक और बैंक आफ इण्डिया को छोड़कर अन्य सब बैंकों की पूँजी से अधिक थी।

इनका नकद कोष भी बढ़ता रहा। युद्ध के पहले यह प्राय जमा का १० प्रतिशत रहता था, किन्तु युद्ध काल में यही प्राय' १५ प्रतिशत रहता था।

जहाँ तक स्थायी और अस्थायी जमा के अनुपात का प्रश्न था प्रथम का अनुपात युद्ध पूर्व काल मे भी घटता जा रहा था। बस, यह युद्ध काल में भी घटता गया। सन् १९३६ से जब से इनका पता चलता है, ये क्रमश. निम्नांकित है :—१९३६ में ४३ ४ ५४ ६ : १९३८ में ४३'२ · ५४ ८ १९४० मे ४२'९ · ५७ १ १९४२ मे २३ ८ ७६ २ १९४४ मे २७ ०१ · ७२ ९९ और १९४६ में २८ ४ . ७१ ६। १९४६ में युद्ध समाप्त हो चुका था, अतः, तब से यह कुछ बढ़ने लगा है, किन्तु भविष्य मे यह पहले की तरह तो हो ही नहीं सकता। युद्ध काल मे लोग माग पर देय जमा इसलिये रखते थे कि जब चाहें तब उन्हे निकाल ले। साथ ही जैसे जैसे स्थायी जमा पर ब्याज की दर घटती जाती है वैसे-वैसे ही उसका अनुपात भी घटता जाता है। यही कारण है कि भविष्य मे भी उसके बढ़ने की विशेष सम्भावना नहीं है। बैंकिंग की दृष्टि से यह अच्छा भी है।

युद्ध-काल मे बैंको की अधिकतर लागत सरकारी साखपत्रों में थी। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है उद्योग-धन्धों और व्यापार मे लागत लगाने का अवसर तो कम ही होता जा रहा था। अत. यह स्वभाविक ही था।

इनके कार्य

ये बैंक प्रायः वे सभी काम करते हैं जो व्यापारिक बैंकों को करने चाहिये। ये खाते चालू में, सावधि खातों में, बचत के खातों में, परन्तु बचत के खातों में स्थायी डिपॉजिट जमा प्राप्त करते हैं। साथ ही ये व्यापार और उद्योग-धन्धों को कुछ आर्थिक सहायता पहुँचाते रहते हैं, अर्थात् नकद साख (कैश-क्रेडिट) खोलते हैं, बिल और हुंडी डिस्काउंट करते हैं, द्रव्य को एक स्थान से दूसरे स्थानों में पहुँचाने की सुविधा देते हैं और जनता की अन्य दूसरे प्रकार से सेवायें करते हैं। कृषि और उद्योग-धन्धों को आर्थिक सहायता देने में उनका जो भाग रहता है उसके विषय में तो हम पहले ही अध्ययन कर चुके हैं। आगे के अध्याय में हम यह भी देखेंगे कि यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को कहाँ तक आर्थिक सहायता देते हैं। हाँ, यहाँ पर यह कह देना भी शायद अनुचित न होगा कि यह इस सम्बन्ध में भी कोई सन्तोषजनक काम नहीं करते। इधर उनका जो कुछ भी काम है, वह माल को बन्दरगाहों से उनके उपभोक्ताओं तक और मण्डियों से बन्दरगाहों तक पहुँचाने के सम्बन्ध में है। इधर भी यह उतना काम नहीं करते जितना इन्हें करना चाहिये। बात यह है कि विदेशी बैंकों ने अपनी शाखायें देश के भीतरी शहरों में भी खोल रक्खी हैं अथवा कुछ भारतीय बैंकों के मार्फत अपना काम करवा लेते हैं। अत, इन्हें पूरा काम नहीं मिलता। इसके फलस्वरूप इनकी अधिकांश लागत सरकारी साख-पत्रों में रहती है। वास्तव में सरकारी साख-पत्र यही खरीदते ही हैं। यह बात विशेषत: इम्पीरियल बैंक तथा बड़े-बड़े बैंकों के लिये तो बिल्कुल ही सत्य है। यह अच्छा नहीं है। इन्हें ऋण और बिल डिस्काउंटिङ्ग में अधिक लागत लगानी चाहिये।

जहाँ तक जमा पर ब्याज का प्रश्न है, सेन्ट्रल बैंक को छोड़कर अन्य किसी बैंक के उन ब्याज के दरों के विषय में कोई लेख नहीं मिलता। हाँ, प्राय सभी बैंकों की स्थायी जमा एक साथ लेने पर उनके ब्याज की औसत दर का पता चल जाता है। जहाँ तक हो चालू खाते में ब्याज नहीं देना चाहिये और यही प्रथा अन्य देशों में है भी। लोग चालू खातों में तो जमा केवल अपनी सुविधा के विचार से करते हैं न कि वह उसे लाभप्रद लागत समझते हैं। अत, ब्याज की दर का इन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पडता। फिर, ब्याज देने का प्रभाव बैंकों के ऊपर भी अच्छा नहीं पडता। इससे

उन्हे आय करने की आवश्यकता अनुभव होती है, अतः, वह मन्दी में लागत लगाने का प्रयत्न करते हैं जिसका फल अच्छा नहीं होता। इससे वे फेल भी हो जाते हैं। किन्तु यहाँ, विदेशी बैंक भी चालू खातों पर व्याज देते हैं। इम्पीरियल बैंक अवश्य ऐसा नहीं करता। सम्मिलित पूँजीवाले बैंकों में से कुछ बड़े बैंको को छोड़कर और उन्होने इधर ही ऐसा करना शुरू किया है। अन्य सभी कुछ न कुछ व्याज देते ही हैं। यह केवल इसलिये ही है कि वह जानते हैं कि वह इम्पीरियल बैंक और विदेशी बैंको तथा बड़े बड़े बैंको के सामने व्याज दिये बिना नही ठहर सकते। सन् १६३१ तक सेन्ट्रल बैंक माँग पर देय जमा पर औसतन २०१ से २५३ प्रतिशत तक व्याज देता था। इधर उसने यह बन्द कर दिया है। किन्तु स्थायी खातों पर व्याज देना एक दूसरी ही बात है। इस पर व्याज की दर के अनुसार इसकी रकम भी घटती-बढती रहती है। स्थायी और अस्थायी खातों के बीच में भी यह बात है कि स्थायी खातों पर बहुत थोडी दर से व्याज मिलने पर लोग स्थायी खातों में जमा न करके अस्थायी खातो में ही जमा रखना अधिक पसन्द करते हैं। इधर हमारे यहाँ यही हुआ है, स्थायी जमा अस्थायी हो गई है।

स्थायी और चालू खातो में दोनों में इधर जो व्याज की दर कम हो गई है उससे कुछ लोग यह कह रहे हैं कि कहीं लागत के स्रोत शुष्क न पड जायँ, किन्तु ऐसा है नहीं। व्यापारिक बैंकों को तो अस्थायी खाते ही रखने चाहिये। अतः, उनको व्याज देने का प्रश्न तो नहीं उठता। उन्हे तो अपने ग्राहको का अन्य सुविधायें देकर इन्हें खींचना चाहिये। हाँ, स्थाई खातो की तो बात ही दूसरी है। उन पर व्याज देकर ही उन्हें खींचना चाहिये। जो हो, यह काम व्यापारिक बैंकों का नहीं है। अतः, यदि व्यापारिक बैंको की स्थायी जमा कम होती जा रही है तो कोई बुरा नही है। इसके लिये तो अन्य संस्थायें होनी चाहिये। हमारे यहाँ डाकखाने, बीमा कम्पनियाँ इत्यादि हैं। भूमि बन्धक बैंक भी इन्हे खीच सकते हैं। अन्तिम, औद्योगिक बैंकों को इनसे लाभ उठाना चाहिये।

जहाँ तक व्यापार की आर्थिक सहायता करने का प्रश्न है, यह कई रूप में की जाती है। दीर्घकालीन और अल्पकालीन ऋण में से चूँकि आजकल अल्पकालीन ऋण पर व्याज की दर बहुत अच्छी है और व्यापारिक बैंक के दायित्व अल्पकालीन होते हैं, इसलिये वह अल्पकालीन ऋण देना पसन्द करते

है। इनमें से यदि हम मुख्य ऋण (Loans & Advances) पहले लें, तो जैसा कि द्वितीय युद्धकाल शीर्षक में दी हुई तालिका से पता चलता है अन्य की तुलना में यह इतने अधिक नहीं है जितने कुछ अन्य देशों में पाये जाते हैं। ऋण व्यापार, कृषि, उद्योग-धन्धों इत्यादि सभी को दिये जाते हैं। किन्तु हम यह नहीं कह सकते हैं कि इनका वास्तविक अनुपात क्या है। तो भी यह अवश्य है कि यद्यपि ठीक से काम किया जाय तो सभी तरफ सुविधायें दी जा सकती हैं।

हमें इन ऋणों के रूप भी मालूम कर लेने चाहिये। देश में चैक का चलन बहुत कम है। अतः, इनमें से अधिकांश ऋण नकदी के रूप में दिये जाते हैं। इनके लिये जो जमानतें दी जाती हैं वह प्रायः जमीन, मकान, जेवर, सोना चाँदी तथा सरकारी कागज़ातों की होती हैं। ऐसे ऋण देने के लिये अब बैंक कम तैयार होते हैं। जहाँ तक सम्भव होता है, वह ऋण लेने वाले से अपने यहाँ एक चालू खाता खोल लेने को कहते हैं और उसमें ओवरड्राफ्ट की आज्ञा दे देते हैं। प्रायः जमानत पर ३० प्रतिशत की गुञ्जाइश रक्खी जाती है। इन सब में नकद साख के रूप का ऋण बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह बैंक और ग्राहक दोनों की दृष्टि से लाभप्रद है। बैंक तो जैसा कि हम जानते हैं, जब चाहें तब और ऋण देना बन्द कर सकते हैं और ग्राहक उनके ऊपर जितनी दैनिक बाकी निकलती है उसी पर ब्याज देते हैं। इस ऋण की जमानत प्रायः व्यापार सम्बन्धी माल ही की होती है जो या तो व्यापारी के गोदाम में ही छोड़ दिया जाता है या बैंक के गोदाम में रख दिया जाता है। प्रथम स्थिति में तो बैंक उसमें अपना ताला लगा लेता है और उस पर अपने नाम की तख्ती भी टाँग देता है और द्वितीय स्थिति में वह गोदाम भाड़ा भी लेता है। दोनों स्थितियों में बीमा भी करवा लिया जाता है, अतः, उसका खर्च भी ऋण लेने वाले के ऊपर ही पड़ता है। वैयक्तिक जमानतों पर बहुत कम ऋण दिये जाते हैं और वह यदि दिये भी जाते हैं तो उनके लिये दो धनियों के हस्ताक्षर के प्रणपत्र लिखवा लिये जाते हैं।

यदि हम डिस्काउन्टिंग लें तो यह कहा जा सकता है कि यह बहुत चालू नहीं है। सदस्य बैंकों ने मार्च सन् १९४७ में केवल २२.०७ करोड़ रुपयों के बिल डिस्काउण्ट कर रक्खे थे। यह उनके कुल दायित्व (८६३.७४ करोड़ रुपये) की तुलना में कुछ भी नहीं है। बैंकों की दृष्टि से इसके बहुत अच्छे होने के कारण इसे बढ़ाने के लिये प्रयत्न करने चाहिये। नये बैंकों में से

डिस्काउण्ट बैंक, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक और भारत बैंक यह व्यवसाय काफी करते हैं।

अन्त में हम सरकारी तथा अन्य प्रकार के साख-पत्रों में लगी हुई लागत ले सकते हैं। इस सम्बन्ध के जो अंक हैं उनमें एक बैंक की दूसरे बैंकों में जो स्थायी जमा रहती है वह भी सम्मिलित है। अतः, इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु इससे कुछ अनुमान तो लग ही सकता है। लागत की वसूली की दृष्टि से 'सरकारी साख पत्रों में लागत लगाना बहुत ही अच्छा है, किन्तु व्यापार की सहायता करने की दृष्टि से तो यह उतना अच्छा नहीं है। अतः, इन बैंकों को इसमें से रुपया खींच कर व्यापारियों को देना चाहिये।

सम्मिलित पूँजी के भारतीय बैंक रुपया एक स्थान से दूसरे स्थानों को भेजने में भी बहुत सहायता पहुँचाते हैं तथा अन्य प्रकार से भी लोगों की सेवायें करते हैं। जहाँ तक रुपया एक स्थान से दूसरे स्थानों को भेजने का सम्बन्ध है, इसके लिये वे बड़ी ऊँची दर चार्ज करते हैं और विशेषतः उन स्थानों में जहाँ उनकी प्रतियोगिता करने वाले दूसरे बैंक नहीं हैं। अत, उन्हें इसे कम करना चाहिये।

इनका भविष्य

इस देश मे सम्मिलित पूँजी वाले बैंकों का भविष्य बहुत कुछ यहाँ की सरकार की नीति पर निर्धारित रहेगा। वैसे तो लोग स्वतन्त्रता मिल जाने पर भी बहुत उत्साहित नहीं हैं। साम्प्रदायिक और खाद्य स्थिति बिगड़ जाने के कारण भविष्य पर उनका कोई विश्वास नहीं रह गया है। फिर, लड़ाई चाहे न हो किन्तु उसके बादल तो घिरे ही हुए हैं। छोटी-मोटी लड़ाइयाँ चल भी रही हैं। घूसखोरी और अनाचार, व्यापार तथा औद्योगीकरण के रास्ते में खड़े हैं। प्रथम युद्ध के बाद बहुत से बैंक फेल हुये थे, अत', इसी बात की आशंका इस बार भी थी। जब-जब कोई बैंक अथवा बैंक की शाखा किसी नये स्थान में खुलती थी तब-तब वहाँ के लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखते थे। यहाँ पर अब तक बैंकिंग की प्रत्येक तेजी के बाद उसकी मन्दी आयी है। किन्तु शायद इस बार ऐसा न हो। प्रथम तो जितने बैंक युद्धकाल में स्थापित हुये हैं उनमें से अधिकाश यथेष्ठ पूँजी के साथ हुये हैं। हमें ज्ञात है कि

सन् १९३६ के भारतीय कम्पनी विधान की (४) धारा के अनुसार किया कि इस प्रकार के पहले भी कहा जा चुका है, कोई भी बैंक कहीं पर ५०,००० रु० से कम पूँजी से स्थापित ही नहीं हो सकता था। फिर भारतीय रक्षा सम्बन्धी नियमों के (९४ अ) नियम के अनुसार १७ मई सन् १९४२ को जो बैंक निकालने के नियन्त्रण का आर्डिनेन्स निकाला गया था उसने ऐसी कम्पनियों की स्थापना रोक दी थी जिनके कुछ दिन बाद चलने की कोई सम्भावना नहीं दिखलाई पड़ती थी। अब, कम से कम भी नये बैंक के खुलने से पहले सरकार की आज्ञा प्राप्त करने के लिये एक आवेदन-पत्र देना पड़ता था और सरकार उस पर रिजर्व बैंक की सम्मति लेकर अपनी अनुमति देती थी। अब नये विधान के अनुसार रिजर्व बैंक की अनुमति बिना कोई बैंक खुल ही नहीं सकता। दूसरे, पहले से स्थापित बैंकों ने भी अपनी पूँजी इत्यादि बढ़ाकर अपनी स्थिति दृढ़ कर ली है। तीसरे, अब रिजर्व बैंक का भी सहायक हाथ है। सदस्य बैंकों के साथ तो इसका सम्बन्ध इधर युद्धकाल में और भी दृढ़ हो गया है। यहाँ की बैंकिंग प्रणाली के ऊपर सरकार का भी नियन्त्रण अब बहुत बढ़ गया है। चौथे, जैसा कि हम पहले भी देख चुके हैं, बैंकों की नकद स्थिति भी अच्छी हो गई है। ये रिजर्व बैंक के पास जो कोष रखते हैं वह प्रायः न्यूनतम से अधिक रहता है। गैरसदस्य बैंकों की भी नकद स्थिति बहुत अच्छी है। अन्तिम बात यह है कि अब इन्हें उन्नति करने का बहुत अवसर मिलेगा, विशेषतः इसलिये कि भविष्य में हमारी राष्ट्रीय सरकार इनकी सहायता ही करेगी न कि इनके रास्ते में जैसा कि विदेशी सरकार पहले किया करती थी, रोड़े अटकायेगी।

ऊपर जो बातें कही गई हैं उनका प्रमाण भी अभी हाल ही में मिल चुका है। नवम्बर, सन् १९४६ में बंगाल के कुछ छोटे-छोटे बैंकों के कठिनाई में पड़ जाने की सूचना प्राप्त हुई थी। किन्तु सभी के लिये यह बहुत ही प्रशंसा की बात हुई कि संकट टल गया और उससे किसी की भी हानि नहीं हुई। प्रथम तो रिजर्व बैंक ने और भारत सरकार ने व्यर्थ की बातों का खण्डन किया। दूसरे, रिजर्व बैंक ने सब बैंकों से उनके सरकारी साख पत्र खरीद करके उन्हें रुपया देने की घोषणा कर दी। इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा और स्थिति शीघ्र ही सँभल गई। हाँ, कुछ गैरसदस्य बैंकों को कठिनाई उठानी पड़ी जो केवल इसलिये थी कि उनकी व्यवस्था खराब थी। उन्होंने व्यर्थ के लिये बहुत सी शाखायें खोल ली थीं, उन्होंने ऋण भी समझे-बूझे बिना दे रक्खे थे, वे

स्टाक एक्सचेञ्जों में सट्टेबाजी करते थे और उनके यहाँ विशेष शिक्षित कर्मचारी नहीं थे। ऐसे बैंक सचमुच हमारी बैंकिंग-प्रणाली के लिये बहुत ही शर्म की बात हैं। अतः, उन्हें आपस में अथवा बड़े-बड़े बैंकों से मिलकर अपनी स्थिति सुदृढ़ बनानी चाहिये। फिर, देश के विभाजन के बाद पञ्जाब, सीमा प्रान्त तथा सिंध इत्यादि में जो गड़बड़ी हुई उससे भी वहाँ के बैंकों की स्थिति बहुत बिगड़ गई। उनके ऋण डूब गये और उनके यहाँ की जमा निकालने जाने लगी। ऐसे समय में उनके फेल हो जाने की आशंका थी। अत, २७ सितम्बर १९४७ को एक विशेष आदेश द्वारा सरकार ने ऐसे बैंकों को तीन महीने तक अपना दायित्व पूरा न कर सकने की छूट देने का अधिकार ले लिया। इस अवधि में ऐसे बैंक को प्रत्येक साख में अपनी कुल जमा का अधिक से अधिक १ प्रतिशत अथवा २५० रु० जो भी कम हो देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ऐसे बैंक को उचित ऋण देकर मदद भी कर सकती थी। १३ दिसम्बर, १९४७ को इस आदेश में संशोधन किया गया जिसके अनुसार ड्राफ्ट का ३० प्रतिशत अथवा ७५० रु० जो भी कम हो, देने का दायित्व रक्खा गया। २७ मार्च, १९४८ को इसकी आवश्यकता नहीं रह गई अत., यह समाप्त हो गया। इससे बैंक सँभल गये, किन्तु उनकी पूरी हानि का अभी तक पता नहीं चला है। बहुत से बैंकों ने अपनी पाकिस्तानी शाखायें बन्द कर दी हैं और हेड आफिस वहाँ से हटा लिये हैं। पञ्जाब नेशनल बैंक की बड़ी हानि हुई, किन्तु वह सँभल गया।

उन्नति के लिये क्षेत्र

इन बैंकों की शाखाये लगभग १५०० शहरों में हैं। इसके यह अर्थ हैं कि लगभग १००० शहरों में अब भी कोई आधुनिक बैंक नहीं है। किन्तु ये व्यापार की दृष्टि से किसी महत्त्व के नहीं हैं। अत, उन्हें इस समय छोड़ा जा सकता है इस समय जो आवश्यकता है वह वर्तमान बैंकों और उनकी शाखाओं के ठोस बनाने की है। इंगलैण्ड में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में और इस शताब्दी के आरम्भ में यही किया गया था। वहाँ के केवल १६ बैंकों की तुलना में हमारे देश में कई सौ बैंक हैं। छोटे बैंकों को परस्पर अथवा बड़े बैंकों से मिल जाना चाहिये। कुछ शहरों में तो बैंकों की बहुत बड़ी संख्या है। उदाहरणार्थ-कलकत्ते में ३८८, बम्बई में १८३, लाहौर में ९५, मद्रास में ८५, दिल्ली में ८०, अहमदाबाद में ५२, ढाका में ४७, कोयम्बटूर और अमृतसर में से प्रत्येक में

८२ [illegible] में ३५। इसमें शक नहीं कि कहीं-कहीं तो यहाँ का व्यवसाय देखते हुए इन शाखाओं की संख्या उचित जान पड़ती है, किन्तु कुछ स्थानों पर यह अत्यधिक है। अतः, यहाँ पर संगठन द्वारा घटाई जा सकती है जैसा कि हो भी रहा है। इससे न केवल प्रतियोगिता कम हो जाती है बल्कि व्यवसाय के अनुपात में खर्च भी घट जाता है। भविष्य में जितना जनता के हित में उतना ही इन बैंकों के हित में भी यह आवश्यक है कि इनमें व्यवसाय की खींचातानी, नई शाखाओं की अनुचित स्थापना और जमा के ब्याज की दर में प्रतियोगिता बन्द हो जाय और यह तभी हो सकता है जब इनमें पारस्परिक एकीकरण हो। इनके मतानुसार प्रतियोगिता के स्थान पर पारस्परिक सम्मिलन की नीति अपनाने से सभी को लाभ होगा। कुछ बैंक माँग पर देय जमा पर भी ब्याज देते हैं। इसे रोकना चाहिए। कुछ लोग यह समझते हैं कि जमा प्राप्ति के लिये ब्याज देना जरूरी है किन्तु ऐसा नहीं है। जरूरत तो यह है कि बैंक विश्वासपात्र बनें। बैंकिंग की आदत काफी बढ़ गई है। बहुत से लोगों ने सरकारी सुरक्षा के और बचत के प्रमाण-पत्रों में रुपये जमा कर अथवा लगा रखे हैं। वे सब बैंकों के सम्भावित ग्राहक हैं। अतः बैंकिंग की उन्नति के लिये बहुत बड़ा क्षेत्र है। बैंकों को ऋण और बिल डिस्काउंटिंग के सम्बन्ध में भी कुछ अधिक उदारता की नीति अपनानी चाहिये। उनके रहने से तभी लाभ हो सकता है जब वह व्यापार और उद्योग-धन्धों में रुपया लगावें, न कि केवल सरकारी साख-पत्र ही खरीद कर रक्खें युद्ध काल में उन्होंने सरकारी साख पत्रों में बहुत रुपया लगा दिया है। रिजर्व बैंक जैसे-जैसे उन्हें व्यापार और उद्योग-धन्धों की सहायता करने के लिये रुपयों की आवश्यकता पड़े वैसे-वैसे इन्हें खरीद कर उन्हें इनसे मुक्त कर सकता है। किन्तु यह तभी सम्भव है जब युद्धोत्तर काल की योजना कार्यरूप में परिणत की जाय। वे लागत लगानेवालों और उद्योग-धन्धों के बीच में मध्यस्थ का कार्य भी कर सकते हैं। उन्हें पहले तो उद्योग-धन्धों की कम्पनियों के हिस्से खरीद लेने चाहिये और फिर उन्हें लागत लगानेवाले लोगों के हाथ बेच देना चाहिये। वे अवश्य ही ऐसा कर सकते हैं। उनके पास, विशेषत इम्पीरियल बैंक और सात बड़े बैंकों के पास अच्छी पूँजी भी है। यदि हम इनके और औद्योगिक कम्पनियों के सञ्चालक मण्डल की ओर दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होगा कि बहुत से सञ्चालक तो दोनों में एक ही हैं। अत, उन्हें उद्योग धन्धों का अनुभव भी है और इससे वे नये उद्योग-धन्धों की सम्भावनाओं

पर भी अपनी सम्मति दे सकेंगे। इससे उन उद्योग-धन्धो की संस्थापना भी रुक जायगी जिनकी सफलता के लिये कोई आशा नहीं की जा सकती है। बैंकों द्वारा पास किये धन्धो के हिस्से और ऋण-पत्र बड़े प्रिय हो सकेंगे और उन्हें जनता हाथो-हाथ ले लेगी। और यदि उन्हें पहले इन्हे लेना भी पड़ेगा तो बाद मे वे इन्हें जनता के हाथों बेच भी सकेंगे।

कठिनाइयाँ और दोष

भारतीय बैंक अनेक कठिनाइयो और दोषों के होते हुये भी काम कर रहे है। अत, यदि यह दूर हो जायँ तो इनकी उन्नति हो सकती है।

(१) विदेशी सरकार और उसके अफसर भारतीय बैंको को अपना काम नहीं देते थे। उनका सम्बन्ध इम्पीरियल बैंक तथा विदेशी बैंको से रहता था। ऐसी आशा की जाती है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार उन्हे काम देगी और सबों को देगी न कि केवल इम्पीरियल बैंक को।

(२) इन्हे बड़े-बड़े शहरो मे विदेशी बैंकों की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। अत., वहाँ पर इनकी हानि ही होती है। केवल छोटे शहरों मे ही जहाँ उनकी शाखाये नही हैं इनका व्यवसाय अधिक चलता है और लाभ प्राप्त होता है। इधर बड़े-बड़े शहरों की शाखाये वहाँ की अपनी हानि पूरी करने के उद्देश्य से छोटे-छोटे शहरों मे भी अपनी उपशाखाये खोलने लग गये हैं।

(३) अधिकाश उद्योग-धन्धे और व्यापार, 'विशेषत' विदेशी व्यापार विदेशियों के आधिपत्य मे हैं। अत., वे इस देश में अपने-अपने देशों के बैंकों की शाखाओ से ही सम्बन्ध रखना अधिक पसन्द करते हैं।

(४) बहुत से भारतीय व्यापारी भी विदेशी बैंकों ही मे अपने हिसाब रखते हैं। उनमें देश प्रेम का अभाव है। अन्य देशों मे यह प्रेम बड़ा काम करता है।

(५) इम्पीरियल बैंक पहले तो देश के मुख्य बैंक की हैसियत से और अब केन्द्रीय बैंक के एक मात्र अढतिये की हैसियत से, अन्य बैंकों से बड़ी आसानी से प्रतियोगिता कर लेता है। अत, उन्हें इसके सामने कठिनाई पड़ती है।

(६) इनके बारम्बार फेल होने के कारण इनमे विश्वास भी नहीं जम पाता है।

(७) कुछ वैधानिक कानूनों के कारण बैंकों को अपने ऋण की वसूली में भी बहुत कठिनाइयाँ पड़ती हैं। कुछ उत्तराधिकार के नियम ऐसे हैं कि कुटुम्ब के विभिन्न सदस्य भी सम्पत्ति पर अधिकार पाते हैं। अतः, प्रायः ऐसा होता है कि जो व्यक्ति बैंक से ऋण लेता है उस पर बाद में उसका पूर्ण अधिकार नहीं मिल पाता उसके लिए कई हिस्सेदार खड़े हो जाते हैं।

(८) सारे देश—रेलवे रसीद—बिना किसी प्रकार रजिस्ट्री कराये बिना केवल अधिकार पत्र दे देने से जो बेचन होता है उसका कुछ ही स्थानों में नियमित होने के कारण अन्य स्थानों में रजिस्ट्री करा के बेचन कराना पड़ता है। अतः, उसके सुविधाजनक न होने के कारण इस पर ऋण नहीं दिया जाता। इससे बैंकों का काम-काज कम होता है।

(९) मिलों की कमी होने के कारण और उनके [illegible] स्वीकृत किये जाने की प्रथा न होने के कारण बैंकों को अपनी रकम अधिकांश में सरकारी साख-पत्रों में लगानी पड़ती है। यह अच्छी बात नहीं है। उनका होना तो तभी सार्थक हो सकता है जब वह व्यापार और उद्योग धन्धों की सहायता करें न कि सरकारी साख-पत्रों में लागत लगायें।

(१०) यहाँ बैंकों को अपने जमानत पर दिये हुये और जमानत के बिना दिये हुये ऋण बैलन्स शीट में पृथक पृथक दिखाने पड़ते हैं। फिर, यहाँ पर इंगलिस्तान के सीड्स की तरह की और अमेरिका के डन्स और ब्रेड स्ट्रीट्स की तरह की संस्थायें नहीं हैं जो ऋण माँगने वालों की आर्थिक स्थिति के विषय में बतला सकें। अतः यहाँ के बैंक पश्चिमीय देशों के बैंकों की तरह वैयक्तिक जमानतों पर ऋण नहीं दे पाते हैं।

(११) सभी बैंक अपना काम अंग्रेजी में करते हैं। सिर्फ कुछ ही यहाँ की भाषाओं में लिखी हुई चेक और हस्ताक्षर ठीक मानते हैं। अतः, देश में अंग्रेजी जानने वाले लोगों की संख्या कम होने के कारण बैंकिङ्ग की प्रथा नहीं बढ़ पाती।

(१२) भारतीय बैंक अंग्रेजी बैंकों की तरह पर बने हुये हैं। बहुतों के खर्चे बहुत बढ़े हुये हैं। उन्होंने अंग्रेजी बैंकों की कार्य कुशलता के साथ-साथ यहाँ के महाजनों की सादगी और मितव्ययता का मिश्रण नहीं किया है।

(१३) प्रायः भोली भाली जनता को बेवकूफ बनाने की दृष्टि से बैंकों के संचालक मण्डलों में राजनैतिक और सामाजिक नेता रख लिये जाते हैं।

किन्तु एक तो न ये बैंकिंग का व्यवसाय समझते ही हैं और न इनके पास समय ही रहता है। अत., ऐसे बैंकों का कार्य सुचारू रूप से नहीं चलता है।

(१४) कुछ दिनों पहले तक भारतीय बैंकों के अपने सगठन नहीं थे। इसका स्वाभाविक फल यह था कि उनमे पारस्परिक ईर्ष्या रहती थी और सहयोग का लेशमात्र भी नाम नहीं मिलता था। इधर भारतीय बैंकों का सगठन बन गया है।

(१५) कुछ विदेशी बैंकों के बड़े-बड़े कर्मचारी प्राय. भारतीय बैंको को बदनाम करते रहते हैं। इससे सेन्ट्रल बैंक की बड़ी हानि हुई है, किन्तु वह उन्नति करता ही जा रहा है।

(१६) बैंकिंग शास्त्र के विशेषज्ञों की कमी है। अत., साधारण लोग ही इस काम के लिये रक्खे जाते हैं। इधर बैंको मे अनुभवी लोगो को रखने की काफी होड़ रही है जिससे बैंको के कर्मचारी इधर से उधर चले जाते है।

(१७) बैंकों की और उनकी शाखाओं की संख्या इधर बढ़ती रही है। अत, उनके एकीकरण और सुदृढ होने की आवश्यकता है। हमारे बैंकों का और विशेषत गैरदस्य बैंको का औसत डील-डौल बहुत छोटा है। अतः, उन्हें परस्पर अथवा बड़े-बड़े बैंकों से मिल जाना चाहिये।

अतः, उपर्युक्त कठिनाइयाँ और दोष दूर करने के लिये निम्न बातें की जा सकती हैं—

(१) देश की सरकार को सब भारतीय बैंक अपनाने चाहिये, केवल इम्पीरियल बैंक को ही नहीं। इसने इन बैंकों के ऊपर सुरक्षा के विचार से कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये है। इनके साथ-साथ इन्हे कुछ रियायतें भी देनी चाहिये और उनमे सबसे महत्वपूर्ण रियायत यही है कि सरकार को इन्हें अपनाना चाहिये। उसे सारे भुगतान चेक से ही करने चाहिये और उसके नियन्त्रण मे जितनी सस्थायें हैं उन सबों को भी ऐसा करने के लिये बाध्य करना चाहिये।

(२) विदेशी बैंकों के खुलने और काम करने पर प्रतिबन्ध लगा देने चाहिये। उन्हे देश के भीतरी शहरों मे शाखाएँ खोलने की आज्ञा नहीं प्रदान करनी चाहिये और परिमित जमा से अधिक जमा भी नहीं लेने-देने चाहिये। इस बात के लिये भी व्यवस्था कर देना चाहिये कि उनके और भारतीय बैंकों के बीच मे प्रतियोगिता न हो।

(३) एक्सचेंज बैंकों के अनियमित आचरण के साथ भारतीय बैंकों ने होड़ न करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को आर्थिक सहायता पहुँचाने का काम अपने हाथ में लेना चाहिये।

(४) अधिकतर शाखाओं में माल रेहन की आज्ञा दे देनी चाहिये। बैंकों के लिए यह बहुत ही सुविधाजनक है।

(५) रिकाउन्टिंग अधिक प्रिय बनाने के उद्देश्य से बिल और हुण्डियों का प्रयोग बढ़ाना चाहिये। ऐसा करने के लिये कुछ बातें करनी पड़ेंगी जिनका अध्ययन हम आगे चलकर करेंगे।

(६) बैंकों को वैयक्तिक ऋण अधिक देने चाहिये। ऐसा तभी किया जा सकता है जब बाजार के लोगों से अधिक सम्बन्ध बढ़ाया जाय और इसके लिये बैंक प्रबन्धक उसी स्थान के होने चाहिये न कि बाहर के। यह प्रायः देखा गया है कि स्थानीय प्रबन्धक बाहरी प्रबन्धकों की अपेक्षा अधिक व्यवसाय बढ़ा लेते हैं।

(७) बैंकों को उन्हीं भाषाओं में काम करना चाहिये जिन्हें उनके ग्राहक जानते हैं। इससे उन्हें काम करने में सुविधा पड़ेगी और काम भी अधिक मिलेगा।

(८) उन्हें देशी महाजनों की सादगी और मितव्ययता का अनुकरण करना चाहिये। उन्हें इनके साथ 'कमाण्डिट' सिद्धान्त पर साझा कर लेना चाहिये। उन्हें अपने नियमों के पालन पर भी बहुत कड़ाई करनी चाहिये। भारतीय बैंक चेकों का भुगतान करने में जो देर लगाते हैं वह तो सभी जानते हैं। ग्राहकों को किसी भी बैंक से किसी भी चेक का भुगतान लेने में बड़ा समय गँवाना पड़ता है।

(९) जो लोग बैंकिंग के सिद्धान्त समझते हैं और उसका काम देख-भाल सकते हैं केवल उन्हीं को बैंकों के सचालक मंडलों में लेना चाहिये। बैंकों के लिये केवल बड़े-बड़े नामों का ही आकर्षण नहीं होना चाहिये।

(१०) अभी हाल में ही जो भारतीय बैंकिंग संघ बना है उसका प्रत्येक भारतीय बैंक को सदस्य बन जाना चाहिये।

(११) रिजर्व बैंक को आवश्यकता पड़ने पर उन सभी बैंकों की किसी हिचकिचाहट के बिना सब प्रकार से सहायता करनी चाहिये, जो सहायता पाने के योग्य हैं। इससे उसके ऊपर उनका विश्वास बढ़ जायेगा।

(१२) बैंकों को विश्वविद्यालयों के स्नातकों को लेकर उन्हें विशेष शिक्षा देनी चाहिये। बेंकिंग की उन्नति के लिये ऐसा कोई काम करना बहुत ही आवश्यक है। बैंकिंग की योग्यतावाले वाणिज्य-शास्त्र के स्नातक हैं। वे भी बड़ा काम कर सकते हैं।

(१३) उन्हें अंग्रेजी बैंकों की तरह परस्पर एकीकरण कर लेना चाहिये।

सम्मिलित पूँजी के मुख्य-मुख्य भारतीय बैंक

सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया

सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया की सस्थापना सन् १९११ म हुई थी। इसका श्रेय मुख्यत. सोराबजी पुचखानवाला को था। यह बड़े ही योग्य व्यक्ति थे और आजीवन कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर रहे। सन् १९३८ मे उनकी मृत्यु हो जाने मे भारतीय बैंकिंग को साधारणः और सेन्ट्रल बैंक को मुख्यत. बड़ा धक्का लगा। यह बैंक प्रत्येक दृष्टि से, चाहे पूँजी और सुरक्षित कोप, जमा, शाखाओं की संख्या अथवा बैंकिंग व्यवसाय का कोई काम ले लिया जाय, सम्मिलित पूँजी के सब भारतीय बैंको में प्रमुख हैं। सन् १९२३ इसके लिये विशेष महत्व का था। उस वर्ष इसने टाटा इण्डस्ट्रियल बैंक को अपने मे सम्मिलित कर लिया था। जिससे इसकी पूँजी और इसका सुरक्षित कोष मिलाकर ८० लाख रु० से २६८ लाख रु० हो गया, जमा १४ करोड रु० से १८ करोड़ रु० हो गई और पूँजी और सुरक्षित कोप मिलकर जमा का ५.७ प्रतिशत से १७.१८ प्रतिशत हो गया। बैंक ने प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ-काल मे अपनी पहली शाख कराची मे खोली थी। युद्ध समाप्त होते-होते इनकी सख्या पाँच हो गई। सन् १९३४ मे इसके दफ्तरों की सख्या ६८ थी, सन् १९३७ में यह ८९ हो गई। सन् १९३८ में यह २०१ थी, सन् १९४० मे यह १३२ थी, सन् १९४२ मे यह २१७ थी और सन् १९४५ में यह ३०८ थी। किसी भी भारतीय बैंक ने इतनी कठिनाइयों का सामाना नहीं किया जितनी इस बैंक को करनी पड़ी है। इसकी सस्थापना के प्रथम २० वर्षों के अन्दर ही इसके ऊपर नौ आक्रमण हुये थे जिसे इसने सफलतापूर्वक सँभाला।

यह बैंक इम्पीरियल बैंक की तरह सभी प्रान्तों मे है। स्थाई और अस्थायी जमा पर यह जो व्याज देता है उसकी दर अन्य बैंकों की दरों की अपेक्षाकृत कम है। सन् १९२१ से यह चालू खातो और स्थायी खातों पर दिये गये व्याज की रकम पृथक्-पृथक् दिखलाता है। पहले तो स्थायी

बैंक आफ बड़ौदा

बैंक आफ बड़ौदा सन् १९०८ में स्थापित हुआ था। इसकी पहली शाखा सन् १९१९ में खोली गई थी। सन् १९५० में इसके कुल दफ्तरों की संख्या ४६ थी और उनमें से अधिकांश काठियावाड़ और गुजरात में थे। यह नकद का अनुपात बहुत अधिक रखता है—प्रायः ५ या १५ प्रतिशत रहता है। गणना की दृष्टि से यहाँ के सम्मिलित पूंजी के बैंकों में इसका पाँचवाँ स्थान है। इसके ग्रास लाभ (Gross Profit) की दर बहुत कम है। जिस क्षेत्र में यह काम करता है उसमें द्रव्य बहुत है। अतः, बैंकों और महाजनों में परस्पर बड़ी प्रतियोगिता रहती है जिससे ऋण पर कम ब्याज मिलता है।

भारत बैंक

भारत बैंक की रजिस्ट्री सन् १९४२ में हुई थी। अतः, अन्य बड़े बैंकों के आगे यह अभी बच्चा ही है। किन्तु इसकी पूँजी इनमें सबसे अधिक है। यह २ करोड़ रु० से भी ऊँची है। इसके दफ्तरों की संख्या भी बहुत है। सन् १९४५ में यह २१४ थी। इसके पास जमा भी अच्छी है। इस समय यहाँ के बैंकों के बीच में इसका स्थान छठा है। इसने अच्छे अच्छे बैंकों को पछाड़ दिया है। इसकी संस्थापना के पहले इण्डियन बैंक और सेंट्रल बैंक का स्थान क्रमशः छठा और सातवाँ था। इस प्रकार चलने से भविष्य में शायद यह पाँच बड़े बैंकों में से कुछ और को पछाड़ दे और उनका स्थान ले ले।

यूनाइटेड कमर्शियल बैंक

यूनाइटेड कमर्शियल बैंक सन् १९४३ में स्थापित किया गया था। इसकी पूँजी भी सेन्ट्रल बैंक को छोड़कर पाँचों बड़े बैंकों की पूँजी से अधिक थी। यह भी होनहार बैंक मालूम होता है। सन् १९४५ में इसके ६२ दफ्तर थे।

इण्डियन बैंक

इण्डियन बैंक का स्थान यहाँ के बैंकों में छठा था। किन्तु अब यह स्थान भारत बैंक ने ले लिया है। इसकी रजिस्ट्री सन् १९०७ में हुई थी। यह अब भी दक्षिणी भारत का सबसे बड़ा बैंक है। इसका प्रधान दफ्तर मद्रास में है और इसके सब दफ्तरों की संख्या सन् १९४५ में ६१ थी। इसके अधिकांश

दफ्तर सन् १६३५ के बाद खुले गये हैं। इसके अधिकाश हिस्से नट्टूकोटाई चट्टियों के हाथ में हैं। अतः इसे उन्हीं का बैंक कहा जा सकता है। अधिकाश ऋण भी इन्हीं लोगो को दिया जाता है। चट्टी लोग स्वय महाजन हैं और बैंक तथा ऋण लेनेवालों के बीच मे मध्यस्थ का कार्य करते हैं। यह बैंक इनके वैयक्तिक दायित्व पर ऋण देना अधिक पसन्द करता है। माल की जमानत से यह यही जमानत अच्छी समझता है। यही कारण है कि यह सरकारी साख-पत्रों मे भी अधिक रकम नहीं लगाता। इसकी अधिकाश लागत ऋण के रूप में है। इससे इसकी कभी कोई विशेष हानि भी नहीं हुई है। दूसरे बैंक इससे इस बात का सबक सीख सकते हैं। वे भी देशी महाजनों को मध्यस्थ बनाकर काम कर सकते हैं।

बैंक आफ मैसूर

बैंक आफ मैसूर सन् १६१२ मे स्थापित हुआ था। यद्यपि इसके साधन बहुत बड़े हैं किन्तु इसे रिजर्व बैंक की तालिका में केवल सन् १६४३ मे ही सम्मिलित किया गया था। इसके पहले शायद ऐसा इसलिये नहीं हुआ था कि इसकी ब्रिटिश भारत में कोई शाख नहीं थी। इधर कई वर्षो से यह १४ प्रतिशत लाभ की बँटनी करता आ रहा है।

अन्य बैंक

कुछ अन्य बैंक भी बड़े महत्वपूर्ण हैं, जैसे कोमिला बैंकिंग कारपोरेशन, कोमिला यूनियन बैंक, बैंक आफ जैपुर, डिस्काउण्ट बैंक आफ इण्डिया, एक्सचेञ्ज बैंक आफ इण्डिया ऐण्ड अफ्रीका, हबीब बैंक, हिन्दुस्थान कमर्शियल बैंक, पजाब ऐण्ड सिन्ध बैंक, ट्रेडर्स बैंक और यूनियन बैंक।

सदस्य बैंकों के दायित्व

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि कौन से बैंक सदस्य बैंक बन सकते हैं। इनके कुछ दायित्व होते हे :—

(१) प्रथम तो प्रत्येक सदस्य बैंक को रिजर्व बैंक में अपनी चालू जमा का कम से कम ५ प्रतिशत और स्थायी जमा का २ प्रतिशत बैलन्स रखना पड़ता है। इसके लिये इसे रिजर्व बैंक के उस दफ्तर का नाम बताना पड़ता है जहाँ यह अपना मुख्य खाता रक्खेगा। सदस्य बैंक अपने हिसाब रिजर्व बैंक के उन सभी दफ्तरों मे रख सकते हैं जो ऐसे स्थान मे हो जहाँ उनके भी दफ्तर

है। यदि किसी सदस्य बैंक का दफ्तर किसी ऐसे स्थान में नहीं है जहाँ रिजर्व बैंक के दफ्तर हैं तो वह रिजर्व बैंक के किसी दफ्तर में भी अपना हिसाब रख सकता है।

(२) दूसरे, सदस्य बैंक को रिजर्व बैंक विधान की ४२ (२) धारा में जो फार्म दिया हुआ है उसी के अनुसार अपनी स्थिति की एक साप्ताहिक रिपोर्ट रिजर्व बैंक के पास और एक केन्द्रीय सरकार के पास भेजनी पड़ती है। जहाँ के लिये रिजर्व बैंक यह समझता है कि वहाँ की भौगोलिक स्थिति के कारण साप्ताहिक रिपोर्ट नहीं आ सकती, वहाँ पर वह मासिक रिपोर्ट ही मँगा सकता है। यह रिपोर्ट उसी दफ्तर को जाती है जहाँ मुख्य खाता रहता है।

यदि (२) में दी हुई रिपोर्ट समय पर नहीं भेजी जाती अथवा (१) में दिया हुआ न्यूनतम बैलन्स रिजर्व बैंक के पास नहीं रक्खा जाता तो सजा दी जाती है। यदि रिपोर्ट नहीं भेजी जाती तो जितने दिनों की देर होती है उतने दिनों तक १०० रु० प्रति दिन के हिसाब से जुर्माना लगता है। और यदि न्यूनतम बैलन्स नहीं रक्खा जाता तो एक सप्ताह तक तो जितना बैलन्स कम होता है उस पर बैंक दर से ३ प्रतिशत अधिक ब्याज लगता है और यदि वह दूसरी रिपोर्ट भेजने की तारीख के बाद भी कम रहता है तो बैंक दर से ५ प्रतिशत अधिक ब्याज लगता है। यह दोनों जुर्माने माँगने पर उसी समय देने पड़ते हैं और इन्हें वही दफ्तर माँगता है जिसमें उस सदस्य बैंक का मुख्य खाता होता है। यह जुर्माना न देने पर वह अदालत द्वारा भी वसूल किया जा सकता है। कुछ बैंक न्यूनतम बैलन्स न रख कर ब्याज दे देते थे। अत, यह रोकने के लिए रिजर्व बैंक के सन् १९४० के एक विधान से रिजर्व बैंक को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह अपराधी बैंक को और अधिक जमा प्राप्त करने से रोक सकता है और उन कर्मचारियों को भी सजा दे सकता है जिनकी जानकारी से यह अपराध किया जाता है।

उनके अधिकार

सदस्य बैंकों को कुछ अधिकार भी प्राप्त हैं :—

(१) उन्हें अच्छे बिलों की डिस्काउण्टिंग के रूप में अथवा अच्छे साख-पत्रों की जमानत पर ऋण के रूप में रिजर्व बैंक से आर्थिक सहायता प्राप्त हो सकती है। कौन से बिल अच्छे हैं और कौन से साख पत्र अच्छे हैं यह बात स्पष्ट रूप से रिजर्व बैंक विधान की १७वीं धारा में दी हुई है। रिजर्व बैंक

की ऋण देने की नीति और जिस प्रकार की आर्थिक सहायता वह सदस्य बैंकों को दे सकता है, वह सब उसके ७ दिसम्बर, सन् १६३८ के एक स्मरण-पत्र में दिये हुये हैं। संसार के अन्य देशों में जो नीति बरती जाती है, उसी के अनुसार और इस देश में बैंकिंग का उचित ढङ्ग से विकास करने के उद्देश्य से सदस्य बैंकों को उधार देने के समय रिजर्व बैंक केवल उन साख-पत्रों पर ही ध्यान नहीं देगा, जिनके आधार पर ऋण माँगा जा रहा है बल्कि इन बातों पर भी ध्यान देगा कि प्रार्थी बैंक की लागतें साधारणतः किस प्रकार की हैं, उसका व्यवसाय कैसे किया जाता है। उदाहरणार्थ वह जमा प्राप्त करने के लिये ब्याज की बहुत ऊँची दर तो नहीं देता, जब बाजार में रुपये की टान नहीं रहती तब वह रिजर्व बैंक से उधार तो नहीं लेता, अपनी शक्ति से अधिक व्यवसाय तो नहीं करता और चीजों पर तथा साख-पत्रों पर सट्टे के लिए ऋण तो अधिक नहीं देता अथवा बिना जमानती काम तो बहुत नहीं करता। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि रिजर्व बैङ्क केवल अल्पकालीन ऋण ही दे सकता है। फिर इस बात का विश्वास मिल जाने के लिये कि वह जो ऋण की सुविधा दे रहा है उसका दुरुपयोग तो न किया जायगा, वह मनचाही कोई भी बात पूछ सकता है अथवा किसी प्रकार की कोई भी शर्त लगा सकता है और ऋण लेने वाले बैङ्क को यह बात बतानी पड़ेगी तथा शर्त पूरी करनी पड़ेगी। अन्तिम यह कि अन्य बैङ्कों की तरह रिजर्व बैङ्क भी अपने विवेक के अनुसार कोई कारण बताये बिना ही किसी बैङ्क के बिल डिस्काउण्ड करने की अथवा उसे साख-पत्रों पर ऋण देने की मनाही कर सकता है। किन्तु यदि सदस्य बैङ्क उचित ढङ्ग पर काम करते हैं तो आवश्यकता पड़ने पर उचित जमानत पर उन्हें रिजर्व बैङ्क से अवश्य ही अल्पकालीन आर्थिक सहायता मिल सकती है। सन् १६४५ में बङ्गाल में जो बैङ्कों के ऊपर सकट पड़ा था और १६४७ में उन पर जो पंजाब में सकट पड़ा था, उस समय उसने उनकी सहायता की थी। इसने कुछ निम्न श्रेणी की जमानतों पर ऋण देने के लिये सरकारी आज्ञा प्राप्त कर ली थी।

(४) उन्हें जो दूसरा अधिकार प्राप्त है, वह रियासती दर पर इधर से उधर रुपया भेजने के सम्बन्ध का है। रिजर्व बैङ्क ने १ अक्टूबर, सन् १६४० को रुपया भेजने की सुविधा नाम की जो योजना घोषित की थी, उसके दूसरे परिशिष्ट के अनुसार कोई भी सदस्य बैङ्क रिजर्व बैङ्क के किसी भी दफ्तर, साख अथवा एजेन्सी में उसके किसी भी दफ्तर, शाखा, उपशाखा इत्यादि या जो,

जाता है, उनके बीच में डाक से अथवा तार से आगे में निम्न प्रकार से रुपया भेजा सकता है —

(१) (अ) रिज़र्व बैंक के दफ्तर और शाखा में उसके जो खाते हैं उनके बीच में कोई भी खर्च दिये बिना १०००० रु० अथवा उससे गुणित कोई भी रकम,

(ब) अपने किसी भी दफ्तर से अथवा शाखा से अथवा उपशाखा इत्यादि से यदि वहां रिज़र्व बैंक की कोई एजेन्सी है तो उसके द्वारा रिज़र्व बैंक के अपने मुख्य खाते में सप्ताह में केवल एक बार ५००० रु० अथवा उससे गुणित कोई भी रकम किसी भी खर्च के बिना।

(स) मुख्य खाते ही को कोई भी रकम एक पैसा रु० सैकड़ा के खर्च पर, किन्तु न्यूनतम खर्च १ रु० से कम नहीं मिलना चाहिये।

(द) रिज़र्व बैंक में अथवा उसकी एजन्सियों में जो दूसरे खाते हों उनके बीच में।

५,००० रु० तक १ आ० प्रतिशत व्यय पर न्यूनतम व्यय १ रु०।

५,००० रु० से ऊपर दो पैसा प्रतिशत व्यय पर न्यूनतम व्यय ३ रु० २ आना।

(२) रिज़र्व बैंक के खजानों के ऊपर अन्य व्यक्तियों के पक्ष में टी० टी० और ड्राफ्ट निम्न व्यय पर दिये जाते हैं —

५,००० रु० तक १ आना प्रतिशत व्यय पर न्यूनतम व्यय १ रु०।

५,००० रु० से ऊपर दो पैसा प्रतिशत व्यय पर न्यूनतम व्यय ३ रु० २ आ०।

तार का व्यय इसके अतिरिक्त लिया जाता है।

गैर सदस्य बैंकों के दायित्व

वैसे तो सन् १९४९ के भारतीय कम्पनी विधान में जो नियम दिये हुये हैं उनका पालन सभी बैंकों को करना पड़ता है। किन्तु सदस्य बैंकों की तरह ही

नियत रिपोर्ट देने और न्यूनतम बैलन्स रखने के सम्बन्ध में उनके भी कुछ दायित्व हैं जिन्हे हमे यहाँ पर विशेष रूप से समझ लेना चाहिये —

(१) गैर सदस्य बैंको को सन् १६३८ के पहले तक तो अपनी रिपोर्टें प्रान्तीय रजिस्ट्रारो के पास भेजनी पडती थीं। किन्तु उस वर्ष के फरवरी महीने से प्रत्येक रजिस्ट्रार को इन सब रिपोर्टों को एक लिपि रिजर्व बैङ्क के पास भेजनी पड़ने लगी और बैङ्क रजिस्ट्रार के पास एक लिपि न भेजकर तीन लिपियाँ भेजने लगे। किन्तु १६४८ से रिजर्व बैङ्क सीधे यह रिपोर्ट मँगवाने लगा है।

(२) वे अपने चालू जमा की और स्थायी जमा की कम से कम क्रमशः ५ प्रतिशत और २ प्रतिशत नकदी अपने पास रखते हैं। नया विधान पास होने के पहले २ प्रतिशत के स्थान पर १½ प्रतिशत ही था।

यहाँ पर यह भी कह देना आवश्यक है कि इनको रिपोर्टें मासिक होती हैं, सदस्य बैङ्कों की तरह साप्ताहिक नहीं और वह प्रतिमास के अंतिम शुक्रवार की होती हैं न कि प्रति सप्ताह के शुक्रवार की।

उनके अधिकार

(१) १ अक्टूबर, सन् १६४० से रिजर्व बैङ्क ने रुपया भेजने की जो योजना घोषित की है उसके तीसरे परिशिष्ट के अनुसार उन गैर-सदस्य बैङ्कों को जिनके नाम रिजर्व बैङ्क की स्वीकृति तालिका मे दिये हुये हैं और जो उपयुक्त प्रांतीय सरकारों की सम्मति से बनी है केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों द्वारा स्वीकृत रियायती दरों पर रुपया भेजने का अधिकार दिया गया है। सन् १६४७ के अंत मे ऐसे ७८ बैङ्क थे। १६४८ के अंत में भारतीय यूनियन मे यह संख्या ६६ थी, जब की जनता के लिए ५,००० रु० तक भेजने के लिए २ आ० प्रति सैकड़ा दर है और ५,००० से ऊपर के लिए १ आ० प्रति सैकड़ा दर है, तब इनके लिए यही क्रमश १ आ० प्रतिशत और २ पैसा प्रतिशत है। न्यूनतम व्यय सभी के लिए, कुछ न कुछ निर्धारित है। स्वीकृति तालिका मे आने के लिए इन बैङ्को को निम्न शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं :—

(अ) इन्हे भारतीय कम्पनी विधान के अनुसार रजिस्टर्ड कम्पनियाँ होना चाहिये।

(ब) इन्हे भारतीय कम्पनी विधान में दिये हुये नियमो के अनुसार व्यवसाय करना चाहिये।

(ड) इनकी पूँजी इनका कोष मिलाकर कम से कम ५०००० रु० होनी चाहिये।

(२) गैर सदस्य बैङ्कों को अपने सम्बन्ध की सभी बातों पर रिज़र्व बैङ्क की सम्मति भी प्राप्त हो सकती है।

(३) १५ फरवरी, सन् १६४५ से कोई भी गैरसदस्य बैङ्क निम्न शर्तों के साथ रिज़र्व बैङ्क के यहाँ अपना हिसाब भी खोल सकता है :—

(१) उसे अपने व्यवसाय के विस्तार के अनुसार कम से कम कुछ बैलन्स अवश्य रखना चाहिये और यह १०००० रु० से कम तो होना ही नहीं चाहिये।

(२) यह खाता साधारण खाता नहीं है अर्थात् इस पर चेकें नहीं काटी जा सकतीं। हाँ, इसे रुपया भेजने के लिए और बैङ्कों के अन्य पारस्परिक कामों के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

प्रश्न

(१) सम्मिलित पूँजी के बैंकों का किस प्रकार वर्गीकरण किया गया है? सदस्य बैंकों के विषय में आप क्या जानते हैं?

(२) सम्मिलित पूँजी के भारतीय बैंकों की वर्तमान स्थिति क्या है? उनके कार्यों का एक विस्तृत वर्णन दीजिये और उनके सम्बन्ध की विशेषतायें बताइये।

(३) द्वितीय महायुद्ध का भारतीय बैंकिंग पर क्या प्रभाव पड़ा है? यह प्रभाव आपकी समझ से अच्छा हुआ है अथवा बुरा? इनके भविष्य के विषय में आप क्या सोचते हैं?

(४) सम्मिलित पूँजी के भारतीय बैंकों की क्या कठिनाइयाँ हैं और उनके क्या दोष हैं? उनके सुधार के लिए अपने सुझाव रखिये।

(५) सम्मिलित पूँजी के कुछ महत्वपूर्ण भारतीय बैंकों के विषय में टिप्पणियाँ लिखिये।

(६) सदस्य बैंकों के कौन-कौन से दायित्व और अधिकार हैं?

(७) रिजर्व बैंक गैरसदस्य बैंकों से किस तरह से अपना सम्बन्ध रखता है? उसने उन्हें कौन-कौन सी सुविधायें दे रक्खी हैं।

अध्याय १७
इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया

जिन स्थितियों में इम्पीरियल बैङ्क स्थापित हुआ था और जिस तरह से यह बैङ्क रिजर्व की संस्थापना के पहले तक काम कर रहा था, उनका अध्ययन तो हम १२वें अध्याय में ही कर चुके हैं। किन्तु कुछ अन्य बातें भी ऐसी हैं जिन्हें हमें अब समझ लेना चाहिये और उनमें मुख्य तो यह है कि यह बैङ्क स्वयं ही पूर्ण रूप से केन्द्रीय बैङ्क क्यों नहीं बनाया गया और एक नया बैङ्क क्यों स्थापित किया गया। अतः, पहले हम इसी का अध्ययन करेंगे और फिर अन्य बातें लेंगे।

इम्पीरियल बैङ्क को पूर्णरूप से केन्द्रीय बैङ्क न बनाने के कारण

(१) प्रथम तो केन्द्रीय बैङ्क का राष्ट्रीय दृष्टिकोण होना चाहिये। ऐसा न होने से वह देश की आर्थिक स्थिति नहीं सुधार सकता और न वह उसमें राष्ट्रीय बैङ्किंग का विकास ही कर सकता है। इम्पीरियल बैङ्क की कभी भी राष्ट्रीय दृष्टि नहीं रही। इसके विपरीत हिल्टन यंग कमीशन के सामने कुछ ऐसे उदाहरण रक्खे गये थे, जिनसे यह साबित होता था कि इसने सरकारी साख-पत्र होते हुये भी कुछ भारतीय बैङ्कों को सहायता देने से इन्कार कर दिया था। एक ओर तो यह विदेशियों को ऋण देता था और दूसरी ओर भारतीयों को उसके लिये इन्कार कर देता था।

(२) भारतीय बैङ्कों को यह प्रतियोगिता की दृष्टि से देखता था। उन्हें प्राय, यह यहाँ की बैङ्किङ्ग का एक आवश्यक अङ्ग न समझ कर अपना शत्रु समझता था। अत', यदि इसे केंद्रीय बैंक बना भी दिया जाता तो भी इसकी नीति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो पाता।

(३) इम्पीरियल बैङ्क की जो बहुत सी शाखायें थीं, वह किसी केन्द्रीय बैङ्क के लिये अनावश्यक बोझ समझी जाती थीं, क्योंकि एक केन्द्रीय बैङ्क तो अपनी इनी-गिनी शाखाओं द्वारा ही द्रव्य बाजार को नियन्त्रण में ला सकता है। केन्द्रीय बैङ्क तो जितना काम अपनी उपस्थिति से ही कर लेता है, उतना काम करके नहीं करता। अन्तिम यह कि बहुत सी शाखायें होने से इसकी सारी

शक्ति उन्हीं की व्यवस्था करने में लगी हो जाती और वह देश की बैंकिंग प्रणाली को अपने नियन्त्रण में न ला सकता।

(४) बैंक के सञ्चालक मण्डल और व्यवस्थापकों में से अधिकांश के यूरोपीय होने के कारण, इनके देश की आवश्यकताएँ समझ सकने और उनके अनुसार काम करने की, विशेषतः जब ऐसा करने से उनके अपने देश की हानि होती, आशा नहीं की जा सकती थी।

(५) इसे केन्द्रीय बैंक बनाने के लिये इसके कार्यों में बहुत अदला-बदली करनी पड़ती जो शायद इसके हिस्सेदार पसन्द न करते। अतः उनके और राज्य के बीच में मनमुटाव उत्पन्न हो जाता जो एक केन्द्रीय बैंक के प्रारम्भ के लिये अनुचित होता।

(६) इम्पीरियल बैंक तो एकमात्र लाभ कमाने के ही उद्देश्य से ही स्थापित किया गया था किन्तु एक केन्द्रीय बैंक को तो प्रायः देश के हित में लाभ का बलिदान कर देना पड़ता है। अतः यह कैसे हो सकता था? हम जानते हैं कि जब तेजी रोकनी होती है, तब केन्द्रीय बैंक को ब्याज की दर बढ़ाकर ऋण देने से इन्कार कर देना पड़ता है। भला कोई व्यापारिक बैंक ऐसा कैसे कर सकता है? जब मंदी रोकनी है तब इसका उल्टा करना पड़ता है। बाजार में खुले ढंग से काम करने में भी यही कठिनाई है। केन्द्रीय बैंक को तेजी में साख-पत्र कम मूल्य पर बेचने और मंदी में उन्हें अधिक मूल्य पर खरीदने पड़ते हैं।

(७) फ्रांस में तो फ्रांस का केन्द्रीय बैंक, केन्द्रीय बैंकिंग के कार्यों के साथ-साथ व्यापारिक बैंकिंग के कार्य भी करता है। किन्तु हर देश में ऐसा नहीं किया जा सकता। सब देशों में एक ही सी स्थितियाँ नहीं हैं। फ्रांस के निर्यात में ऐसी वस्तुएँ बहुत कम हैं जिनके मूल्य बहुत जल्दी घटते-बढ़ते हैं। अत., उनका निर्यात भी बहुत जल्दी नहीं घटता-बढ़ता। साथ ही उसका बहुत कुछ द्रव्य विदेशों में लगा रहता है। अत उसकी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में जल्दी फर्क नहीं पड़ता। इसके विपरीत भारत के निर्यात में ऐसी वस्तुएँ अधिक हैं जिनका मूल्य बहुत घटता-बढ़ता है, अतः, उनका निर्यात भी घटता-बढ़ता रहता है। फिर, उसके यहाँ विदेशी रुपया लगा हुआ है। (हाँ, अब स्थिति बदल गई है।) अत इम्पीरियल बैङ्क को केन्द्रीय बैङ्किंग के कार्यों के साथ-साथ व्यापारिक बैंकों के कार्य करने की आज्ञा नहीं दी जा सकती थी। साथ ही इसके अन्य बैंकों से प्रतियोगिता करने का भी प्रश्न था। कुछ बैंक इसके विरोध में आवाज

उठा ही रहे थे। यदि इससे इसके व्यापारिक बैङ्किग के कार्य करने की शक्ति छीने बिना, इसे केन्द्रीय बैङ्क भी बना दिया जाता तो यह बड़ा शक्तिवान हो जाता और अपने कुछ प्रतियोगी बैङ्को को तो समाप्त ही कर देता। यह तो उचित ही है कि जिसके पास सब का कोष हो उसे जनता से काम करने का अधिकार नही दिया जाना चाहिये। नहीं तो वह दूसरो के द्रव्य से बहुत लाभ कमा सकता है। फिर यह बैंको का बैंक कैसे बन सकती थी। उनका प्रतियोगी होने के नाते, यह उन्हें मदद ही कैसे कर सकता था और वही अपने सकट के समय इससे किसी प्रकार की सहायता पाने की आशा कैसे कर सकते? वे तो इसे अपना प्रतियोगी समझते थे और इसके अधिकारो की ईर्ष्या की दृष्टि से ही देखते। फिर यह बैङ्क करन्सी की व्यवस्था अपने हित में करता न कि देश के हित मे। अन्तिम यह कि बहुत बोझ हो जाने के कारण न तो यह केन्द्रीय बैंकिंग के कार्य और न व्यापारिक बैंकिंग के कार्य भली प्रकार से कर सकता।

(८) यद्यपि इसे रुपये की टान होने पर उसके ब्याज की दर बहुत बढने से रोकने के उद्देश्य से अपने बिलो और हुन्डियो की जमानत पर करन्सी विभाग से ४ करोड़ रुपया बैंक दर पर और न्यूनतम ६ प्रतिशत पर और इसके ऊपर ८ करोड़ रुपया ७ प्रतिशत पर उधार लेने का अधिकार प्राप्त था, किन्तु यह भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न भिन्न ब्याज की दर एक-सी करने मे और तेजी के समय उसे अत्यधिक बढने से रोकने मे सफल नहीं हो सका। इसमे सन्देह नहीं कि करन्सी का अन्तिम नियन्त्रण तो सरकार के हाथ मे रख कर और ब्याज की दर के एक सीमा पर पहुँचने पर उसमे से कुछ ऋण प्राप्त कर सकने का अधिकार इम्पीरियल बैंक को देकर, स्थिति बहुत नहीं सम्भाली जा सकती थी। किन्तु, तो भी इम्पीरियल बैंक ब्याज की दर के अन्तर मे कुछ तो कमी कर ही सकता था, लेकिन इससे राष्ट्रीय हित की अपेक्षाकृत अपने ही हित का अधिक ध्यान रख कर तेजी के समय की माँग से पूरा लाभ उठाया और करन्सी विभाग से करन्सी लेकर दर ऊँचा उठने से नही रोका। यह एक उदाहरण है। सच तो यह है कि इसे जो केन्द्रीय काम मिले हुये थे उनके ही द्वारा इसने कभी ऐसी कोई बात नहीं की कि जिससे राष्ट्र का लाभ होवा।

इससे व्यापारिक बैंकिग के काम छीन लेने के फल-स्वरूप संभावित आशंकायें

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट ही हो गया है कि इम्पीरियल बैंक से उसके

व्यापारिक बैंकिंग के काम करने के अधिकार छीन लेने से स्थिति बहुत कुछ ठीक हो जाता, किन्तु इसका फल अन्य तरफों से बहुत बुरा होता। वे निम्नाङ्कित हैं :

(१) बहुत सी ऐसी जगहें थीं जहाँ पर इम्पीरियल बैंक ही की अकेली शाखा थी। अतः, यदि उससे उसके व्यापारिक बैंकों के काम करने का अधिकार ले लिया जाता तो वहाँ के लोगों को बैंकिंग की सुविधा न रह जाती।

(२) जिन स्थानों में इसकी शाखा के साथ किसी अन्य बैंक की भी शाखा थी, वहाँ पर इसके काम न करने से उस बैंक का एकाधिकार हो जाता जिससे वह लोगों से अधिक खर्चा लेता। इसमें जनता की हानि ही होती।

(३) जनता का इम्पीरियल बैंक के ऊपर विश्वास है। लोगों ने अपनी बचत उसके यहाँ जमा कर रक्खी है। अतः, यदि उसे जमा प्राप्त करने के लिये मना कर दिया जाता और स्थायी जमा प्राप्त करने के लिये तो उसे अवश्य ही मना कर दिया जाता क्योंकि उस पर तो ब्याज दिया जाता है और इसके लिये अन्य बैंकों से प्रतियोगिता होने की आशंका रहती, तो स्थायी जमा तो अवश्य ही उसके यहाँ से निकल जाती। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि रिजर्व बैंक को भी स्थायी जमा लेने का अधिकार नहीं दिया गया है। अब जो लोग इम्पीरियल बैंक में स्थायी जमा रखने हुये थे उनमें बहुत ने शायद किसी अन्य बैंक में जमा रखते ही नहीं। उनका इसे छोड़ कर किसी पर विश्वास ही नहीं है। फिर, इसके चालू खातों की अधिकांश जमा भी निकल जाती, क्योंकि यह तो प्रायः इसीलिये रक्खी जाती है कि इसमें बैंकिंग की अन्य सुविधायें प्राप्त होती हैं। अतः, यदि इम्पीरियल बैंक वह सुविधायें न दे पाता तो उसके यहाँ से वह जमा भी निकल जाती। यदि इसकी बहुत सी शाखायें बन्द कर दी जातीं, तो स्थिति और भी बिगड़ जाती और ऐसा होना सम्भव भी था क्योंकि इतनी अधिक शाखाओं के बोझ के साथ इसे केन्द्रीय बैंकिङ्ग के काम दिये ही नहीं जा सकते थे। अतः, जिन लोगों को इम्पीरियल बैंक से जमा निकालनी पड़ती, शायद वह उसे और कहीं जमा न करते। इससे बैंकिङ्ग की आदत कम हो जाती।

(४) इम्पीरियल बैंक को अपनी काम करने की प्रणाली से व्यापारिक बैंकिङ्ग का स्तर ऊँचा हो गया है। यदि यह बैंक व्यापारिक बैंकिङ्ग के काम करना बन्द कर देता तो शायद अन्य बैंक अपना स्तर इतना अच्छा न रख सकते। उनके सामने कोई आदर्श न रह जाता।

सन् १९३४ का इंपीरियल बैंक (संशोधन) विधान

इम्पीरियल बैङ्क पूर्ण रूप से केन्द्रीय बैङ्क नहीं बनाया गया वरन् उसके स्थान पर एक नया रिजर्व बैङ्क खोल दिया गया। इससे इम्पीरियल बैङ्क विधान में कुछ संशोधन करने पड़े जो सन् १९३४ के विधान से किये गये। इसके फलस्वरूप यह पूर्णरूप से व्यापारिक बैङ्क बन गया और इसके ऊपर के कुछ प्रतिबन्ध भी हटा लिये गये। १२वें अध्याय में यह बताया जा चुका है कि अपने विधान के अनुसार यह कुछ व्यवसाय नहीं कर सकता था। अतः, इस विधान द्वारा इसे उनमें से कुछ व्यवसाय करने की आज्ञा दे दी गई। हाँ, सब प्रतिबन्ध तो नहीं हटाये जा सके। इसकी स्थिति तो अच्छी रखनी ही थी। अन्य कारणों के साथ-साथ इसका एक विशेष कारण यह भी था कि इसे उन स्थानों के लिये जहाँ इसके दफ़्तर थे और रिजर्व बैङ्क के नहीं थे, उसका अढ़तिया बनाया गया है। उक्त विधान से इसे निम्न सुविधायें प्राप्त हो गईं :—

(१) इसके लन्दन के दफ्तर में इसे सब प्रकार के व्यवसाय करने की आज्ञा मिल गई—इसके पहले यह वहाँ पर केवल उन्हीं लोगों के हिसाब खोल सकता था, जो इसके अथवा प्रेसीडेंसी बैङ्कों के भारतवर्ष में ऐसा हिसाब खोलने की तारीख की पिछले तीन वर्षों में ग्राहक रहे हों।

(२) यह लन्दन के अतिरिक्त अन्य बाहरी स्थानों में भी अपनी शाखा खोल सकता है—इसके पहले इसकी शाखा बाहर केवल लन्दन ही में थी। अन्य किसी स्थान में वह उसे खोल ही नहीं सकता था। किन्तु इस संशोधन से यह रोक हटा ली गई।

(३) देश में ही पहले से अधिक स्वतन्त्रता के साथ व्यवसाय कर सकना—इस संशोधन से यह, यहाँ पर पहले से अधिक स्वतन्त्रता के साथ व्यवसाय कर सकता है। जब से रिजर्व बैङ्क खुल गया है तब से यह उसके हिस्सों पर भी ऋण दे सकता है। इसी प्रकार यह म्युनिसिपैलिटियों के ऋण-पत्रों पर भी ऋण दे सकता है। फिर, यह देशी राजाओं द्वारा निकाले हुये उन ऋण-पत्रों पर भी ऋण दे सकता है, जिन्हें निकालने की स्वीकृति सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने दे दी है। इसी तरह से यह सीमित दायित्व वाली कम्पनियों द्वारा निकाले हुये ऋण-पत्रों पर भी ऋण दे सकता है। जहाँ तक

माल की गिरवी पर नकद साख देने का प्रश्न है, वह तो यह पहले भी दे सकता था। किन्तु अब यदि इसके यहाँ कोई ऐसा विशेष प्रस्ताव पास हो जाय और इसका केन्द्रीय मण्डल उसे मान ले तो यह केवल माल अपने नाम पर करवा कर भी, चाहे वह कहीं भी क्यों न रखा हो, नकद साख दे सकता है। इसके अतिरिक्त जब पहले यह सभी ऋण अधिक-से-अधिक केवल छः ही महीनों के लिये दे सकता था, इस संशोधन से यह कृषि सम्बन्धी कामों के लिये नौ महीनों तक के लिये ऋण दे सकता है। अन्तिम यह कि अब यह कुछ शर्तों के साथ अचल सम्पत्ति भी ऋण की जमानत के तौर पर स्वीकृत कर और रख सकता है।

(४) अपना काम करने के लिये भारतवर्ष से बाहर ऋण ले सकना— इस संशोधन से यह अपने काम के लिये भारतवर्ष के बाहर भी ऋण ले सकता है। इसके पहले यह ऐसा नहीं कर सकता था।

इस पर सरकार का भी बहुत कम नियन्त्रण रह गया है। एक तो यह कि इसके केन्द्रीय मण्डल में सपरिषद गवर्नर-जनरल केवल अपने दो ही गैर-सरकारी संचालक भेज सकता है। हाँ, एक अन्य अफसर भी रहता है किन्तु वह अपना मत नहीं दे सकता। दूसरे इसके पुराने विधान का ५४ वाँ नियम भी हटा दिया गया जिसके अर्थ यह है कि सपरिषद गवर्नर-जनरल न तो इसे कोई आज्ञा दे सकता है न इससे कोई बात पूछ सकता है, न जिस रूप में चाहे उस रूप में ही इससे इसकी सम्पत्ति और पावने तथा दायित्व छापने के लिये कह सकता है। हाँ, आवश्यकता पड़ने पर वह इसके यहाँ अपना आडीटर भेज सकता है और उससे इसके कामों की रिपोर्ट माँग सकता है।

इम्पीरियल बैङ्क की कार्यकारिणी

देश के भिन्न-भिन्न भागों के हित की रक्षा के लिये और उन्हें उनके यहाँ की बैंकिंग का व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता देने के लिये इसके तीन स्थानीय दफ्तर रखे गये हैं, जो पहले के तीनों प्रेसीडेन्सी बैङ्कों के मुख्य स्थानों में हैं। फिर, प्रत्येक स्थानीय दफ्तर का एक स्थानीय मण्डल भी है। इसके लिये प्रत्येक क्षेत्र के हिस्सेदारों के नाम के पृथक् पृथक् रजिस्टर हैं। जिस क्षेत्र के स्थानीय मंडल के सदस्यों का चुनाव होता है, उसी क्षेत्र के हिस्सेदार उस चुनाव में भाग लेते हैं। प्रत्येक स्थानीय मंडल में एक तो उसका सभापति,

एक उपसभापति, एक मन्त्री और कम से कम तीन सदस्य होते हैं। इस मडल को केन्द्रीय मडल के बनाये हुये उपनियमों के अनुसार अपने यहाँ की बैंकिग का व्यवसाय चलाने का अधिकार है। साथ ही यह स्थानीय दफ़्तरों में रखे हुये शाख रजिस्टरों की जाँच करते हैं। उनकी अदला-बदली की और हिस्सों के हस्तान्तरित होने की स्वीकृति अस्वीकृति देते हैं और उनके प्रमाण-पत्र तैयार करते हैं।

फिर, एक केन्द्रीय मडल है जिसके निम्न सचालक होते हैं :—

(१) स्थानीय मडलों के सभापति, उपसभापति और मन्त्री—सब मिलाकर नौ सचालक,

(२) प्रत्येक स्थानीय मडल के सदस्यों में से, उन्हीं के द्वारा उन्हीं मे से चुना हुआ एक-एक सदस्य—३ सचालक,

(३) एक व्यवस्था सचालक (Managing Director)—इसे केन्द्रीय मंडल स्वय ही मनचाही शर्तों पर अधिक-से-अधिक पाँच वर्षों के लिये चुनता है। इनके बाद फिर भी यह प्रत्येक बार, अधिक से अधिक पाँच वर्षों के लिये चुना जा सकता है।

(४) सपरिषद गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त अधिक-से-अधिक ऐसे दो सचालक जो उसके यहाँ के अफसर न हों। ये प्रति वर्ष नियुक्त किये जाते हैं। हाँ, इनकी पुनर्नियुक्ति भी हो सकती है,

(५) केन्द्रीय मडल के द्वारा निर्वाचित एक उप-व्यवस्था सचालक (Deputy Managing Director);

(६) सपरिषद गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त एक सरकारी अफसर।

(५) में दिया हुआ उप व्यवस्था सचालक, (१) मे दिये हुये मन्त्री और (६) में दिया हुआ अफसर—ये लोग प्रत्येक बैठक मे सम्मिलित तो हो सकते हैं किन्तु अपने मत नहीं दे सकते। हाँ व्यवस्थापक सचालक की अनुपस्थिति में उप-व्यवस्थापक सचालक भी मत दे सकता है।

केन्द्रीय मडल बैंक के सभी कामो पर दृष्टि रखता है। फिर, उसकी जितनी भी शक्तियाँ हैं, उन सबका यही प्रयोग करता है। सक्षेप मे यह बैंक के वे सभी काम करता है, जिन्हे विधान द्वारा अथवा इसने स्वय स्थानीय मडलो को नहीं सौंप दिया है। अपनी और स्थानीय मडलो की सुविधा के लिये इसने इन सब कामों के सम्बन्ध मे कुछ उपनियम भी बना लिये हैं।

समस्त हिस्सेदारों की साधारण तथा विशेष बैठक बुलाने के लिये भी विधान बने हुए हैं। इसी तरह से प्रत्येक क्षेत्र के हिस्सेदारों की बैठक भी बुलाने के लिये नियम हैं।

बैंक के करने योग्य व्यवसाय

बैंक निम्न व्यवसाय कर सकता है :—

(१) यह निम्न जमानतों के आधार पर ऋण और नकद साख दे सकता है :—

(क) स्थानीय सरकार अथवा सीलोन की सरकार के अथवा अन्य संस्थाओं के स्टाक, फन्ड तथा ट्रस्टी सिक्योरिटियों के और रिजर्व बैंक के हिस्सों के आधार पर,

(ख) सरकार द्वारा सहायता प्राप्त उन रेलों की सिक्योरिटियों के आधार पर, जिन्हें सपरिषद गवर्नर-जनरल ने लागत लगाने के योग्य मानो-नीत कर दिया है उनके आधार पर,

(ग) उन ऋण पत्रों इत्यादि के आधार पर, जिन्हें निम्न संस्थाओं ने निकाले हो :—

ब्रिटिश भारत[1] के किसी भी व्यवस्थापिका मंडल द्वारा पास किये गये विधान के अनुसार किसी भी संस्था द्वारा निकाले हुये अथवा;

किसी जिला अथवा म्युनिसपल बोर्ड अथवा कमेटी द्वारा निकाले हुये अथवा

किसी देशी रियासत के राजा द्वारा निकाले हुये और परिषद गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृति हुये अथवा,

किसी सीमित दायित्व वाली कम्पनी द्वारा निकाले हुये किन्तु केन्द्रीय मंडल द्वारा निर्धारित शर्तें पूरा करने पर,

(घ) गिरवी रखे हुए माल के आधार पर अथवा केन्द्रीय मंडल की स्वीकृति पर एक विशेष प्रस्ताव द्वारा पास करा कर, माल अपने नाम कराकर उसके आधार पर अथवा उनके आधार पत्रों पर जमा करा कर अथवा उन पर बेनाम करा कर, उनके आधार पर,

(ङ) स्वीकृति किये बिलों के आधार पर और पाने वाले धनियों द्वारा

---

[1] भारत।

बेचान किये गये प्रण-पत्रों के आधार पर और दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के अथवा फर्मों द्वारा लिये हुए संयुक्त और पृथक् प्रण पत्रों के आधार पर। दो व्यक्ति तभी पृथक्-पृथक् माने जायेंगे जब यह साझे से सम्बन्धित नहीं, और

(च) सीमित दायित्व वाली कम्पनियों के हिस्सों के आधार पर अथवा जब (क) से (घ) तक दी हुई जमानतें तो पहले दी गई हैं और फिर अचल संपत्ति अथवा उसके सबन्ध के अधिकार पत्र दिये गये हैं, तब उनके आधार पर और यदि पहले (ङ) में दी हुई जमानत दी गई है तब केन्द्रीय मण्डल द्वारा स्वीकृत शर्तों ऊपर पर दी हुई जमानतों के आधार पर।

भारत सचिव[1] को बगैर जमानत के भी ऋण दिया जा सकता था।

(२) यदि किसी ऋण के सम्बन्ध में कोई प्रण-पत्र, ऋण-पत्र, स्टाक (माल), रसीद बाण्ड (Bond), वार्षिक भत्ता (Annuity), स्टाक, हिस्से सिक्योरिटियाँ अथवा माल अथवा माल सम्बन्धी अधिकार-पत्र बैंक के हाथ मे आ जाते हैं तो, ऋण की वापिसी न होने पर वह उन्हें बेच और उनके मूल्य वसूल कर सकता है।

(३) वह कोर्ट आफ वार्ड्स को उनके हाथ में अथवा उनकी व्यवस्था में जो स्टेट हों, उनके आधार पर उन्हें ऋण दे सकता है और उसे व्याज सहित वसूल कर सकता है। किन्तु ऐसे ऋण उस स्थान की स्थानीय सरकार की स्वीकृति पाने के बाद ही और कृषि के कामों के लिए तो नौ महीनों के लिए और अन्य कामों के लिए छः महीनों से अधिक के नहीं होने चाहिये।

(४) यह विनिमय बिल और दूसरी हस्तान्तरित होने वाली सिक्योरिटियाँ लिख, स्वीकृति कर, भुना, क्रय और विक्रय कर सकता है।

(५) यह प्रथम में (क) से (ग) तक मे दी हुई जमानतों में अपनी लागत लगा सकता है और उन्हें वहीं पर दी हुई अन्य तरह की जमानतों में बदल भी सकता है।

(६) यह आर्डर बैंक, पोस्ट बिल और साख-पत्र (Letters of credit) अथवा यही सब देखनहार और माँग पर देय शर्त के अतिरिक्त बना, निकाल और चला सकता है।

---

[1] भारत सरकार

(७) यह मुद्रा के रूप में अथवा ऐसे ही सोना और चाँदी खरीद और बेच सकता है।

(८) यह जमा प्राप्त कर सकता है और किसी भी शर्त पर हिसाब रख सकता है।

(९) यह प्लेट, जवाहिरात, अधिकार-पत्र अथवा अन्य मूल्यवान वस्तुओं को किसी भी शर्त पर धरोहर के रूप में रख सकता है।

(१०) यदि कोई चल अथवा अचल सम्पत्ति इसके हाथ में आ जाती है तो यह उसे बेच कर उसके मूल्य की वसूली कर सकता है। साथ ही यदि इसके पास इनके कोई अधिकार आ जायँ या इन्हें भी यह ले, रख और इस प्रकार से प्रयोग में भी ला सकता है।

(११) यह कमीशन पर कोई अर्थ सम्बन्धी आढ़ती काम कर सकता है और जमानत पर अथवा बिना जमानत के ही किसी प्रकार की क्षति पूर्ति का प्रतिभू (Surety-ship) का दायित्व ले सकता है।

(१२) यह किसी भी स्टेट की शासक (Executor) की, धरोहरी (Trustee) की अथवा किसी अन्य स्थिति में व्यवस्था कर सकता है। साथ ही यह किसी सार्वजनिक कम्पनी के साख पत्रों और हिस्सों को कमीशन पर खरीद, बेच, हस्तान्तरित कर और अपने पास रख सकता है। यह उनके मूल्य, ब्याज, लाभ की बँटनी प्राप्त भी कर सकता है। अन्तिम, वह उपर्युक्त रकम को देश में अथवा बाहर कहीं भी सार्वजनिक अथवा निजी बिलों द्वारा पहुँचा भी सकता है।

(१३) यह विदेशों में देय विनिमय के बिलों को लिख और ऐसे ही साखपत्र निकाल भी सकता है।

(१४) यह विदेशों में देय विनिमय बिल चाहे वह किसी भी अवधि के ही क्यों न हों (किन्तु यदि वह कृषि के सम्बन्ध के हैं तो नौ महीनों से अधिक के बाद देय न हों और यदि अन्य किसी व्यवसाय के सम्बन्ध के हैं तो छः महीनों से अधिक के बाद देय न हों), बेच सकता है।

(१५) यह अपने व्यवसाय के लिए अपनी सम्पत्ति और अपने पावने की जमानत पर अथवा बिना जमानत के ही द्रव्य उधार भी ले सकता है।

(१६) समय समय पर यह प्रेसीडेन्सी बैंकों के पेन्सन कोष में रकम डाल सकता है।

(१७) ऊपर जिन व्यवसायों के विषय में कहा गया है, उन्हें करने में अन्य जिन कामों के करने की आवश्यकता प्रसङ्गवश आ जाय, उन्हें भी यह बैङ्क कर सकता है।

जो काम यह नहीं कर सकता है

ऊपर जो काम दिये गये हैं, उनके अतिरिक्त यह बैङ्क अन्य काम और विशेषतः निम्न काम यह नहीं कर सकता --

(१) (३) और (४) में जैसा दिया हुआ है उसके अनुसार यह छः महीनों अथवा नौ महीनों से अधिक के लिये ऋण नहीं दे सकता। साथ ही ये इसके स्वय के स्टाक और हिस्सों पर भी नहीं दिये जा सकते। इसी तरह से (३) मे दिया हुआ है, उसके अतिरिक्त अचल सम्पत्ति अथवा उनके पत्रों की जमानतों पर भी ये नहीं जा सकते।

(२) प्रत्येक व्यक्ति अथवा साझे को जितने तक का ऋण देने के लिए इसकी स्वीकृति तालिका में अथवा बिल भुनाने के लिए लिखा हुआ है उससे अधिक का ऋण नहीं दिया अथवा बिल नहीं भुनाया जा सकता। हाँ, यह ऋण प्रथम मे (क) से (घ) तक दी गई जमानतों पर दिया जा सकता है।

(३) किसी व्यक्ति के अथवा साझे के ऐसे किसी अच्छा अधिकार देने वाले साख-पत्रों की जमानत पर न तो नकद साख दी जा सकती है, न ऋण दिया जा सकता है, न उसे खरीदा अथवा भुनाया जा सकता है जो उसी शहर मे देय हो जहाँ वह भुनाया जा रहा हो और जिसमें कम से कम ऐसे दो व्यक्ति अथवा साझों के पृथक पृथक दायित्व न हों, जिनमें परस्पर साझे का सम्बन्ध नहीं है।

(४) ऐसे विनिमय साध्य साख पत्रों की जमानत पर न तो नकद साख खाता खोला जा सकता है, न ऋण दिया जा सकता है, न उन्हें खरीदा जा सकता है और न उन्हें भुनाया जा सकता है जिनमें धरोहर की रकम नहीं लगाई जा सकती अथवा जो यदि कृषि की सहायता के लिए लिखे गए हैं, तो नौ महीनों के बाद और जो किसी अन्य काम के लिये लिखे गये हों तो छः महीनों के बाद पकते हों।

रिजर्व बैङ्क का इम्पीरियल बैङ्क से समझौता

रिजर्व बैङ्क विधान की ४५वी धारा में रिजर्व बैङ्क और इम्पीरियल बैङ्क

के बीच में एक समझौते की बात लिखी हुई थी और उसके तीसरे परिशिष्ट में यह शर्तें दी हुई थीं, जिनका उसमें होना आवश्यक था। अत, यह समझौता किया गया और सपरिषद गवर्नर जनरल की स्वीकृति के बाद इस पर दोनों पार्टियों के हस्ताक्षर हुये। इसके अनुसार इम्पीरियल बैंक, उन सब स्थानों में रिजर्व बैंक का अपना अढ़तिया नियुक्त किया गया, जहाँ इम्पीरियल बैंक का दफ्तर तो था किन्तु, रिजर्व बैंक के बैंकिंग विभाग का कोई दफ्तर नहीं था। इम्पीरियल बैंक के रिजर्व बैंक की ओर से उन कामों के करने के प्रतिफलस्वरूप जिन्हें यह उन स्थानों पर पहले ही से सपरिषद गवर्नर जनरल की ओर से करता आ रहा था, रिजर्व बैंक को उसे उस तमाम रकम पर जो यह उस खाते में वर्ष भर में पाता है अथवा देता है, एक कमीशन देना पड़ता है। प्रारम्भ में पहले के दस वर्षों में जो यह पहले के २५० करोड़ रुपये तो १ आना प्रतिशत था और बाकी रकम पर दो पैसा प्रतिशत था। यह अवधि बीत जाने पर अगले पाँच वर्षों के लिए, इस कमीशन का निश्चय इम्पीरियल बैंक के यह काम करने में जो कुछ वास्तविक व्यय हुआ था, उसे जाँचने के बाद करने के लिए हुआ था। अत., यह सन् १९४५ में हुआ। उसके अनुसार कमीशन की दर प्रथम १५० करोड़ रुपये के लिये १ आना प्रतिशत, दूसरे १५० करोड़ रु० के लिये २ पैसा प्रतिशत तथा ३०० करोड़ रु० के ऊपर ३०० करोड़ रु० के लिए एक पैसा प्रतिशत और शेष के लिये १/८ प्रतिशत निश्चित हुआ था। साथ ही रिजर्व बैंक ने इम्पीरियल बैंक को उसकी उतनी ही शाखायें खुली रहने देने के लिये, जितनी रिजर्व बैंक के खुलने के समय थीं। प्रथम पाँच वर्षों तक ९ लाख रुपये प्रति वर्ष, दूसरे पाँच वर्षों तक ६ लाख रु० प्रति वर्ष और तीसरे पाँच वर्षों तक ४ लाख रु० प्रतिवर्ष देने का वायदा किया था। इम्पीरियल बैंक अपनी कोई ऐसी शाखा बन्द करके, जो इस समझौते को करने के समय थीं, कोई नयी शाखा नहीं खोल सकता। हाँ, रिजर्व बैंक किसी भी जगह पर, चाहे वहाँ उस समय तक इम्पीरियल बैंक उसके अढ़तिये का काम क्यों न करता रहा हो, अपनी शाखा जब चाहे तब खोल सकता है।

यह समझौता १५ वर्षों के लिये हुआ है। इसके बाद इसे कोई भी पार्टी ५ वर्षों की सूचना देकर समाप्त कर सकता है। साथ ही यह इस बात पर भी निर्भर है कि इम्पीरियल बैंक अपनी स्थिति बराबर अच्छी रक्खे। यदि रिजर्व बैंक के केन्द्रीय मंडल के विचार में किसी समय में यह आ जाता है

कि वह ऐसा नहीं कर रहा है अथवा समझौते की शर्तों का पालन नहीं कर रहा है तब वह सपरिषद गवर्नर जनरल के पास जा सकता है और वह इम्पीरियल बैङ्क को इस समझौते के सम्बन्ध मे अथवा सरकारी द्रव्य की अथवा रिजर्व बैङ्क के नोट चलाने वाले विभाग के सम्पत्ति और पाउने की रक्षा के सम्बन्ध मे कोई भी आदेश दे सकता है और उसे न पालन करने पर समझौता समाप्त कर सकता है।

इम्पीरियल बैङ्क से होने वाले लाभ

इम्पीरियल बैङ्क से अनेकों लाभ हुये हैं। वे निम्नांकित हैं :—

(१) जब प्रेसीडैन्सी बैंकों को मिलाकर इम्पीरियल बैङ्क बना था तब प्रेसीडैन्सी बैङ्कों की कुल मिलाकर ५९ शाखाये थीं। इम्पीरियल बैंक तथा भारत सचिव के बीच में इस सम्बन्ध का जो समझौता हुआ था उसके अनुसार इम्पीरियल बैङ्क को प्रथम पाँच वर्षों के अन्दर १०० नयी शाखाओं की सस्थापना करने के लिये बाध्य किया गया था। मार्च सन् १९२६ तक इसने अपना दायित्व पूरा कर दिया था और कुल मिलाकर १०२ नयी शाखाये खुल चुकी थीं। सन् १९४७ के अन्त मे इसके ४४४ दफ़्तर थे। इसने बहुत से स्थानों में जब अपने दफ़्तर खोले थे, तब वहाॅ पर कोई भी आधुनिक बैंक नहीं था। हाॅ, उसके बाद कहीं-कहीं अन्य बैंकों के भी दफ़्तर खुल गये हैं। किन्तु अब भी लगभग १०० के ऐसी जगहें हैं जहाॅ केवल इम्पीरियल बैंक के ही दफ़्तर हैं। इसके यह अर्थ हैं कि इन स्थानों को केवल इम्पीरियल बैंक के ही होने के कारण बैंकिंग का लाभ मिल रहा है।

(२) इसमें जनता का विश्वास पैदा हो गया है। हम जानते हैं कि सम्मिलित पूँजी वाले बैंक बराबर फेल होते रहते हैं। अतः, लोगों का उन पर कोई विश्वास नहीं रह गया है। इम्पीरियल बैंक सन् १९३४ तक तो सरकार का भी बैङ्क था। अत, लोग समझते थे कि यह फेल नहीं होगा। देश के प्रमुख बैङ्क अर्थात् रिजर्व बैङ्क के इसके अकेले अढतिये होने के कारण आज भी इसकी एक विशेष स्थिति है। इसके कारण इसमें द्रव्य जमा होता रहता था और है। फिर, इसने कुछ बैंकों की तो उनके सकट के समय सहायता की ही है, अत', इससे इसने उन्हें फेल होने से भी बचाया है। इसका फल यह हुआ कि लोगों का उन सब पर भी कुछ न कुछ अधिक विश्वास तो अवश्य ही जमा। इससे

इम्पीरियल और दूसरे बैंकों में जमा बढ़ी। जिन स्थानों में इसने अपनी शाखायें खोलीं उनमें बहुत कुछ जमा इसके यहाँ आ गई। अतः हम यह कह सकते हैं कि इम्पीरियल बैंक ने देश की पूँजी चलायमान करके उसे अवश्य लाभ पहुँचाया है।

(३) जिन स्थानों में इसने अपनी शाखायें खोलीं वहाँ के लोगों ने इसके ऋण भी पाया। इतना ही नहीं वहाँ ब्याज की दर भी बहुत कुछ कम हो गई। इसके अतिरिक्त जहाँ पर इसकी शाखायें नहीं हैं, वहाँ पर भी उनके खुलने के डर के मारे अन्य बैंकों ने कम दर का ही ब्याज लिया। केवल देशी महाजनों ही ने नहीं वरन् आधुनिक बैंकों ने भी यही किया। चूँकि इम्पीरियल बैंक के पास ही सरकार का द्रव्य भी रहता था, अतः वह उसे भी प्रयोग में ला सकता था। जैसा कि हम जानते हैं इसे १२ करोड़ रु० की अतिरिक्त करेन्सी प्राप्त कर लेने का अधिकार भी दे दिया गया था। इससे तेजी के समय ब्याज की दर अवश्य बहुत कुछ बढ़ने से तो रुक ही जाती थी।

(४) इसकी शाखाओं की बहुत अधिक संख्या होने के कारण यह द्रव्य भेजने की भी बहुत सुविधा दे सकता था। केवल यही नहीं वरन् अन्य बैंक भी इसी कारण इस काम में अधिकाधिक सुविधा दे सकते थे। साथ ही द्रव्य भेजने का खर्च भी बहुत कम लिया जाता था।

(५) ऐसा सोचा गया था कि यह बिलों को अधिकाधिक संख्या में डिस्का-उंट करके उनका प्रयोग भी बढ़ा सकेगा। किन्तु यह नहीं हो सका। दूसरे बैंक इसे अपने बिलों के विवरण नहीं बताना चाहते थे। उनका यह ध्यान था कि यह उससे लाभ उठाकर उनकी प्रतियोगिता करेगा। यह माल पर उधार देकर बिल डिस्काउंट करके और माँग पर देय ड्राफ्टों और टी० टी० खरीद करके कृषि की उपज के व्यापार में बड़ी सहायता करता है। इसने अपनी हुंडी की दर और बाजार के ब्याज के दर में भी बहुत कुछ अन्तर मिटा दिया है। इसी तरह से इसने बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के बाजारों के ब्याज की दरों के अन्तर को भी बहुत कुछ कम कर दिया है।

(६) इसने प्रान्तीय और जिला सहकारी बैंकों से भी बहुत घना सम्बन्ध उत्पन्न कर लिया है और यह उन्हें जमा से अधिक निकालने, इत्यादि की भी सुविधा देता है।

(७) इसने अपनी बड़ी-बड़ी शाखाओं में निकासगृह भी स्थापित कर दिये

थे, जिससे बैंकों को इस सम्बन्ध की सुविधा प्राप्त हो सकी। इसके फलस्वरूप बैंकों का प्रयोग भी बढ़ा।

(८) यह सरकारी ऋण निकालता था और उसकी व्यवस्था करता था। अत, जिन-जिन शहरों में इसकी शाखाये थीं, उन-उन शहरों के लोग सरकारी साख-पत्रों मे रुपया लगाने लगे।

(९) इसकी साख लन्दन में भी थी। अत, इसके ग्राहकों की ससार के मुख्य अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से सम्बन्ध रखने का अवसर प्राप्त हो सका।

रिजर्व बैंक की स्थापना का इसकी उपयोगिता पर प्रभाव

रिजर्व बैंक की स्थापना का इसकी उपयोगिता पर तनिक भी प्रभाव नही पड़ा। जनता का अब भी इस पर पूर्ण विश्वास है। सच तो यह है कि इसके अब बहुत से बन्धनों से मुक्त हो जाने के कारण यह जनता के लिये और भी उपयोगी हो गया है। अब यह अधिक दिनों तक के लिये और बहुत सी जमानतो पर ऋण दे सकता है। फिर, अब यह विनिमय का व्यवसाय भी कर सकता है।

इम्पीरियल बैंक तथा जनता

उपर्युक्त से यह तो स्पष्ट ही है कि इम्पीरियल बैंक जनता के लिये, अपने ग्राहकों के लिये, सम्मिलित पूँजी वाले और सहकारी बैंकों के लिये तथा सरकार के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। यदि हम प्रथम को अर्थात् साधारण जनता को ही पहले ले लें, तो बैंकिंग के व्यवसाय के बढ जाने से उसको भी बहुत लाभ हुआ है। हमें यह तो ज्ञात ही है कि इसने किस तरह से अपनी नयी-नयी शाखाये खोलकर और सरकार का बैंकर बन कर तथा जब से रिजर्व बैंक स्थापित हुआ है, तब से उसका एकमात्र अढतिया बनकर और सबमे मुख्य तो सम्मिलित पूँजी वाले बैंकों को सहायता देकर साधारण जनता का विश्वास अपने ऊपर जमा लिया है और उसमे बैंकिंग की आदत डाल दी है। इसके अतिरिक्त इसकी बहुत सी शाखाओं के होने के कारण इसको जो बहुत से कर्मचारियो की आवश्यकता पड़ी, उससे देश के बहुत से बैंकिंग का काम सीख गये हैं। इस तरह से इस देश में बैंकिंग का धन्धा भी चल निकला है और उससे लोगो की जीविका का प्रश्न भी कुछ हल हो गया है।

इम्पीरियल बैंक तथा उसके ग्राहक

सरकार की रकम के इसके पास होने के कारण और इसके द्वारा उसे अपने प्रयोग में लाने के कारण यह अपने ग्राहकों को अधिक सूद देकर और उनसे कम ब्याज लेकर उनको अधिक लाभ पहुँचा सकता था। फिर, आवश्यकता पड़ने पर यह सरकार के करेन्सी विभाग से [illegible] करेन्सी लेकर तेजी और मन्दी के समय में ब्याज की दर को बहुत कुछ सम कर सकता था। इसके अतिरिक्त इसकी एक शाखा लन्दन में है। इससे इसको यह लाभ है कि इसके ग्राहकों का इसके द्वारा लन्दन के मुख्य द्रव्य बाजार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। दूसरे, यह अंग्रेज व्यापारियों की स्थिति के सम्बन्ध में स्वयं पता लगा करके इसे अपने उन ग्राहकों को बता सकता है जो उनसे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। तीसरे, यह स्थानीय संस्थाओं के लिये लन्दन में माल उधार कर सकता है और अपने भारतीय ग्राहकों की बचत को वहाँ लगा सकता है। चौथे और अन्तिम, अपनी बहुत सी शाखाओं के होने के कारण यह अपने ग्राहकों को बैंकिंग की अधिकाधिक सुविधायें दे सकता है।

इम्पीरियल बैंक तथा सम्मिलित पूँजी वाले बैंक

इम्पीरियल बैंक सम्मिलित पूँजी वाले बैंकों के बिलों को फिर से डिस्काउंट करके तथा उनकी अन्य प्रकार से सहायता करके उनके मित्र तथा संरक्षक का काम करने के उद्देश्य से स्थापित किया गया था। किन्तु इसमें यह बिल्कुल भी सफल नहीं हो सका। उनका प्रतियोगी होने के कारण यह उनके हृदय में अपनी ओर से विश्वास नहीं जमा सकता और इसी कारणवश यह उपर्युक्त कामों में सफल भी नहीं हो सकता। सम्मिलित पूँजी वाले बैंक इसलिये अपने बिल इससे नहीं डिस्काउंट कराते थे कि ऐसा करने से इसे उनके सम्बन्ध की सब बातें मालूम हो जायँगी और इससे यह उनके काम छीन लेगा। साथ ही वह इससे अन्य प्रकार से भी ऋण लेने में डरते थे। उन्हें यह आशंका थी कि यह जनता में कहीं उन्हें बदनाम न कर दे। कभी कभी तो इस पर उन बैंकों का पक्षपात करने का भी दोषारोपण किया जाता था जिनकी व्यवस्था विदेशियों के हाथ में थी। किन्तु इसने अन्य बैंकों की भी कई बार सहायता की और इससे अवश्य ही उन्हें फेल होने से बचाया। अलायन्स बैंक आफ

शिमला के फेल होते ही इसने उसकी समस्त जमा का ५० प्रतिशत उसी समय देकर उसके ग्राहकों की बड़ी ही मदद की। इसने उनकी अन्य प्रकार से भी सहायता पहुँचाई। इसने उन्हें द्रव्य भेजने की और चेकों के पारस्परिक निपटारे की भी सुविधायें दीं। इसके अतिरिक्त इसने उनके सामने अपने काम करने का ढङ्ग इतना ऊँचा रक्खा कि जो अन्य बैंको के लिए आदर्श स्वरूप था और जिसे उनमे से कुछ ने तो अपनाने का भी प्रयत्न किया।

इम्पीरियल बैंक तथा सहकारी बैंक

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इम्पीरियल बैंक सहकारी बैंकों को जो जमा से अधिक रकम निकालने की आज्ञा देकर तथा अन्य प्रकार से ऋण देकर उनकी सहायता करता है। उनसे इसका बहुत अच्छा सम्बन्ध रहा है।

इम्पीरियल बैंक तथा सरकार

इम्पीरियल बैंक तथा भारत सचिव के बीच में जैसे ही समझौता हो गया वैसे ही सरकार ने उन स्थानों पर अपने खजाने बन्द कर दिये, जिनमे इसके दफ़्तर थे। फिर, यह दफ़्तर बराबर बढते गये। अत, जैसे-जैसे यह बढे वैसे वैसे ही सरकार के खजाने बन्द होते गये। इससे उसका बहुत कुछ व्यय बच गया। दूसरे, सरकार उन स्थानो के बीच मे हुंडियाँ (Currency transfers) निकालने की झंझट से भी बच गई, जिन स्थानों मे इसके दफ़्तर थे। तीसरे, यह उसे अपने सभी दफ़्तरों में उसकी आवश्यकता के अनुसार रुपये देने लगा। अन्तिम यह कि इसके उसके ऋण की व्यवस्था करने के कारण उसमें बहुत ही सुविधा होने लगी। छोटे-छोटे लोग भी उसमे रुपया लगाने लगे।

इम्पीरियल बैंक तथा विदेशी बैंक

इम्पीरियल बैंक की सस्थापना से विदेशी बैंकों की तनिक भी हानि नहीं हुई जैसा कि हम पहले से ही जानते हैं, सन् १६३४ के पहले तो यह विनिमय का व्यवसाय कर ही नहीं सकता था, अत. इसका उनसे प्रतियोगिता करने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। किन्तु इसके बाद भी जब से इसे विनिमय का व्यवसाय करने की आज्ञा मिल गई है, तब से भी इसने इस व्यवसाय को

काम प्रारम्भ नहीं किया है। अत, इनकी प्रतियोगिता नहीं थी। फिर, इसके संस्थापकों और उनके व्यवस्थापकों के बीच में सदा बहुत अच्छे सम्बन्ध रहते थे।

इम्पीरियल बैंक की वर्तमान स्थिति और उनके काम

इम्पीरियल बैंक अपनी संस्थापना के समय से ही बहुत ही उच्च तथा गौरवमय स्थिति में है। सन् १९३४ तक तो यह सरकार का और बैंकों का बैंक था और इसके बाद से यह देश के प्रमुख बैंक अर्थात् रिज़र्व बैंक का एकमात्र अढ़तिया है। इससे जनता का इस पर बड़ा विश्वास जम गया है और इसी से इसके पास अन्य बैंकों की अपेक्षाकृत बहुत ही अधिक जमा है। दफ्तरों की संख्या की दृष्टि से (सन् १९४९ में ३७७), पूँजी की दृष्टि से (५६२,५०,००० रुपये) सुरक्षित कोष की दृष्टि से (६ करोड़ रुपये से अधिक), जमा की दृष्टि से (२२८६६ करोड़ रुपये) और प्रत्येक दृष्टि से यह देश के बड़े से बड़े बैंकों से भी यहाँ तक की स्वयं प्रमुख बैंक से भी बड़ा है। यदि हम किसी एक वर्ग के सब बैंकों को भी एक साथ ले लें तो शायद यह उनमें से भी कुछ ने भी बहुत बड़ा है।

इसके अपरिमित साधनों के कारण सम्मिलित पूँजी वाले बैंक इसे अपना बहुत भयानक प्रतिद्वन्दी समझते हैं। इसने बहुत सी शाखायें खोल ली हैं और इससे वहाँ पर उनका एकाधिपत्य जाता रहा है। इसने मण्डियों में भी अपनी उपशाखायें खोल ली हैं और यहाँ पर यह कृषि के व्यापार की सहायता करने पर भी उनका प्रतिद्वन्दी बन गया है। इसके पहले यह केवल छः महीना तक के लिये ही ऋण देता था किन्तु जैसा कि हमको पहले ही से ज्ञात हो चुका है अब यह नौ महीनों के लिये भी ऋण दे सकता है। फिर, अब यह सब तरह की जमानतों पर ऋण देता है। उदाहरणार्थ माल, अचल सम्पत्ति, उनके अधिकार पत्र, सिक्योरिटियाँ इत्यादि। यह जो व्याज लेता है उसकी दर भी अन्य बैंकों की व्याज की दर से कम है।

अब यह विनिमय का व्यवसाय भी कर सकता है। किन्तु अभी तक इसने यह काम प्रारम्भ नहीं किया है। अत, इसकी विनिमय के बैंकों से कोई प्रतियोगिता नहीं पड़ी है। किन्तु यह उससे बहुत अच्छी तरह से प्रतिद्वन्द्विता कर सकता है।

इसकी व्यवस्था बहुत कुछ गैरभारतीयों के हाथ मे है। इसने भारतीयो को ऊँची-ऊँची जगहें बहुत कम दी हैं। इससे केवल इसका व्यय ही बहुत अधिक नहीं है, वरन् यह भारतीयों की दृष्टि में गिर गया है। किन्तु विश्वास-पात्रता की दृष्टि से यह उनमे बहुत ही प्रिय है।

इम्पीरियल बैंक की भविष्य के लिये नीति

इम्पीरियल बैंक की भविष्य के लिये यही नीति होनी चाहिये कि उसका दृष्टिकोण राष्ट्रीय हो। इसके कर्मचारियों को जनता की दृष्टि से यह निकाल देना चाहिये कि यह भारतीयों के प्रति उदासीन है। यदि ऊँचे-ऊँचे पद भारतीयो को दे दिये जायें तो शायद स्थिति बहुत कुछ सुधर जाय और इधर सुधर भी रही है। इससे उन लोगों के लोगो से अधिक सम्बन्ध मे आने से इसका व्यवसाय भी बढ जायगा। फिर, इससे इसके व्यय में भी कमी पड़ेगी। इसे भारतीय भाषाओं को भी प्रोत्साहन देना चाहिये। इसके अतिरिक्त इसे भारतीय बैंक की व्यर्थ की प्रतिद्वन्द्विता नहीं करनी चाहिये। ऐसे अन्य बहुत से काम हैं जिन्हें यह कर सकता है। प्रथम तो अब जब कि इसे विनिमय का काम करने की आज्ञा मिल गई है, तब इसे यह काम अवश्य करना चाहिये। जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा विदेशी बैंक जिनके हाथ में इसका एकाधिपत्य है, देश के हित के विरुद्ध काम करते हैं। वे अपने अपने देशों के व्यवसायियों का पक्ष करते हैं और भारतीयों के हित की अपेक्षाकृत उन्हीं के हित का अधिक ध्यान रखते हैं। कुछ ऐसे भारतीय बैंकों की बहुत बडी आवश्यकता है जो उनके एकाधिपत्य को तोड सकें और इम्पीरियल बैंक को छोड़कर कोई अन्य बैंक ऐसा कर नहीं सकता। इसे उद्योग-धन्धों की सहायता करने में भी बडी दिलचस्पी दिखानी चाहिये। भारतीय बैंकिंग में जो ऐसा काम करने वाले बैंकों की कमी है, उसे यह बहुत ही अच्छी तरह से पूरी कर सकता है।

बैंक जो कुछ करता है, उसी मे बहुत कर सकता है। प्रथम तो इसे देशी महाजनों के बिल और उदारता से डिस्काउण्ट करके, उनकी कमी पूरी करनी चाहिये। इसके लिए इसे अपना डिस्काउण्ट दर की ब्याज दर से कुछ कम रखना पडेगा। दूसरे, इसे देशी महाजनों के प्रति अधिक उदार होना पड़ेगा। इसे बिलो और चेकों की वसूली के लिये उन पर उसी प्रकार विश्वास करना

चाहिये जिस प्रकार यह दूसरे बैंकों पर करता है। जहाँ-जहाँ इनके स्वयं के दफ्तर नहीं खुल सकते, वहाँ वहाँ यह उनसे लाभ उठा सकता है।

इसका राष्ट्रीयकरण

रिज़र्व बैंक के राष्ट्रीय करण की माँग के साथ-साथ इसके राष्ट्रीयकरण की माँग भी उठी थी और सरकार ने यह कहा भी था कि ऐसा होगा। किन्तु फरवरी, १९४९ में राज्य सचिव ने यह कह दिया कि ऐसा करना मुनासिब नहीं होगा। हाँ, इसे और लाभदायक बनाने के लिये इसके विधान में कुछ संशोधन किये जायेंगे। आशा है कि इन संशोधनों से इसके दोष दूर हो जायेंगे।

प्रश्न

(१) इम्पीरियल बैंक पूर्णरूप से केन्द्रीय बैंक क्यों नहीं बनाया गया ? इस सम्बन्ध में यह भी बताइये कि उनसे इसके व्यापारिक बैंकों के काम करने के अधिकार छीन लेने से किन-किन बातों का डर था।

(२) इम्पीरियल बैंक जो काम कर सकता है, इसके जो व्यवस्थापक मण्डल हैं उनकी रचना में तथा इसके कामों में सपरिषद गवर्नर जनरल के हस्तक्षेप करने की शक्ति में, इसके सन् १९३४ के विधान से कौन-कौन से परिवर्तन कर दिये गये हैं ?

(३) इम्पीरियल बैंक के केन्द्रीय मडल की रचना कैसे होती है ? इसके स्थानीय मण्डलों के विषय में भी आप जो जानते हों उसके विषय में भी लिखिये।

(४) इम्पीरियल बैंक कौन कौन काम कर सकता है और कौन नहीं कर सकता ?

(५) इम्पीरियल बैंक और रिज़र्व बैंक में जो समझौता हुआ था उसमें कौन-कौन सी बातें थीं ? इस सम्बन्ध में आपको क्या कहना है ?

(६) इम्पीरियल बैंक की संस्थापना से कौन-कौन से लाभ हुये हैं ? रिज़र्व बैंक की संस्थापना का इसकी उपयोगिता पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

(७) इम्पीरियल बैंक जनता के लिये, अपने ग्राहकों के लिये, सम्मिलित पूँजीवाले बैंकों के लिये, सरकार के लिये और विदेशी बैंकों के लिये कहाँ तक उपयोगी सिद्ध हुआ है ?

(८) इम्पीरियल बैंक की वर्तमान स्थिति के विषय में अपनी सम्मति दीजिये। भविष्य में इसकी क्या नीति होनी चाहिये ?

अध्याय १८

विनिमय बैंक

विनिमय बैंकों के प्रधान दफ़्तर भारतवर्ष के बाहर हैं। यद्यपि इनका विशेषण यह बतलाता है कि यह केवल विनिमय का ही काम करते हैं किन्तु ऐसा नहीं है। विनिमय का व्यवसाय करने के अतिरिक्त ये साधारण व्यापारिक बैंकों के काम भी करते हैं। इसके यह अर्थ हुये कि ये माँग पर वापिस होने की शर्त पर रुपया उधार भी देते हैं; लागत लगाते हैं, अन्य प्रकार से ऋण देते हैं। व्यापारिक साख-पत्र निकालते हैं, जमा प्राप्त करते हैं और आढ़त के अन्य कार्य करते हैं। किन्तु विशेषतः ये विदेशी बिल खरीदते और डिस्काउण्ट करते हैं तथा विदेशी मुद्रायें देते हैं और यही एक ऐसी बात है जिससे यह देश के अन्य बैंकों से भिन्न हैं। भारतवर्ष के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सहायता करने का काम इन्हीं के हाथ है। प्रेसीडैन्सी बैंक यह काम कर ही नहीं सकते थे अतः इन्हें इसमें विशिष्टता प्राप्त करने का बड़ा अच्छा अवसर मिल गया। फिर इम्पीरियल बैंक भी इसे सन् १९३४ तक नहीं कर सकता था और आज तक भी वह ऐसा नहीं करता। जहाँ तक सम्मिलित पूँजी वाले बैंकों का प्रश्न है, उनमें से तो कोई भी कुछ दिनों पहले तक तो इसे कर ही नहीं सकता था। यह काम तभी किया जा सकता है जब इसके करने वाले के साधन बहुत अच्छे हों। हाँ, अब कुछ सम्मिलित पूँजी वाले बैंक अवश्य ऐसे हैं जो इसे कर सकते हैं, किन्तु विनिमय बैंक जो इसे बहुत दिनों से करते आ रहे हैं, इससे ये उनकी बराबरी नहीं कर सकते। सेन्ट्रल बैंक ने कुछ वर्षों पहले इसे करना प्रारम्भ किया था, किन्तु वह इसमें कोई विशेष उन्नति नहीं कर सका। कुछ अन्य बैंकों ने भी इसे किया था, किन्तु उन्हें भी कोई विशेष सफलता नहीं

मिली। इस समय बैंक आफ इण्डिया अपनी जापानी और लन्दन की शाखाओं द्वारा कुछ विनिमय का काम कर रहा है जिन स्थितियों में विनिमय बैंक यहाँ खुले थे उन्हें तो हम पूर्वाध्याय में लिख चुके हैं। अब हम उनकी वर्तमान अवस्था, उनके कार्य करने के तरीके और उनमें जो दोष हैं उन्हें दूर करने के तरीके देखते हैं।

वर्तमान स्थिति

इस देश में जो विदेशी बैंक काम कर रहे हैं उनकी संख्या १५ है, उनके कुल मिलाकर भारतवर्ष में ६५ दफ्तर हैं। काम में सबसे अधिक काम लायड्स बैंक के हाथ में है। दूसरा स्थान ग्रिन्डलेज बैंक का, नेशनल बैंक आफ इण्डिया का, चौथा चार्टर्ड बैंक आफ इण्डिया, आस्ट्रेलिया और चाइना का और पाँचवा मर्केण्टाइल बैंक का तीसरा है। इसके अतिरिक्त चार्टर्ड बैंक आफ इण्डिया, आस्ट्रेलिया और चाइना से इलाहाबाद बैंक के सम्बन्धित होने के कारण जिसके बहुत से दफ्तर हैं, यहाँ का बहुत कुछ काम ले गया है।

क्योंकि ये बैंक अपनी भारत की स्थिति के सम्बन्ध में पहले कोई अंक नहीं निकालते थे अत, इनकी यहाँ की पूँजी और सुरक्षित कोष के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु नये बैंकिंग विधान ने परिस्थिति बदल दी है। अत, अब यह अंक उपलब्ध होने लगेंगे तो भी सम्मिलित पूँजी वाले बैंकों और इम्पीरियल बैंक के जमा की तुलना में इनकी जमा भी कम नहीं है। ये माँग पर देय जमा पर भी ब्याज देते हैं। अत, भारतीय बैंकों को भी ऐसा ही करना पड़ता है जिससे हम यह कह सकते हैं कि इस दोष का दायित्व इन्हीं के ऊपर है।

नकद में इनकी जमा का प्रायः २८.५ प्रतिशत रहता है।

भारतवर्ष में पहले इनकी लागत का पता नहीं था। अतः, हम इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते।

उनके कार्य के तरीके

इनमें हमें केवल उनके यहाँ के विदेशी व्यापार को सहायता देने के तरीके देखना है। इनके अन्य काम करने के तरीके तो वही हैं जो अन्य बैंकों के हैं। विदेशी व्यापार की सहायता में दो काम आते हैं। (१) भारतीय बन्दरगाहों से विदेशी बन्दरगाहों और विदेशी बन्दरगाहों से भारतीय बन्दरगाहों के बीच में

जो व्यापार होता है उसकी सहायता करना, और (२) भारतीय बन्दरगाहों से अन्दरूनी शहरों और अन्दरूनी शहरों से भारतीय बन्दरगाहों के बीच में जो व्यापार होता है उसकी सहायता करना। प्रथम के सम्बन्ध का सारा काम और दूसरे के सम्बन्ध का कुछ काम इन्हीं बैंकों के हाथ मे है। इनकी अन्दरूनी शहरों मे बहुत-सी शाखायें हैं और इनसे यहाँ के कुछ बैंक भी सम्बन्धित हैं। अतः, यह दूसरे प्रकार का काम उन्ही से कराते हैं।

भारत और विदेशों के बीच के व्यापार के हिसाब का निपटारा बिलों से ही होता है। जब यहाँ से माल बाहर भेजा जाता है, तब विदेश मे आयात करने वाले पर एक बिल लिखा जाता है अथवा जब वह अपनी साख लदन की बिल स्वीकृत करने वाली किसी कोठी म अथवा वहाँ के किसी बैंक मे खोल लेता है तब यह बिल उस कोठी अथवा बैंक पर ही लिखा जाता है। फिर, इसे तो यहाँ पर काम करने वाला कोई विदेशी बैंक खरीद लेता है अथवा उससे इसे भुना लिया जाता है। ऐसे बिल की रकम प्राय. स्टर्लिङ्ग मे होती है। अत, यह बैंक उसका मूल्य उस दिन के विनिमय की दर से यहाँ की करन्सी मे देते है। प्राय यह बिल अधिकार पत्रों के साथ और ६० दिन के दर्शनी होते हैं। कभी-कभी बिलकुल दर्शनी अथवा ६० दिनों से अधिक के दर्शनी बिल भी लिखे जाते हैं। फिर प्राय' यह स्वीकृति पर अधिकार पत्र देने की शर्त के होते हैं, भुगतान पर अधिकार पत्र देने की शर्त के नही होते। यहाँ पर प्राय सभी देशों के बैंक हैं जो अपने यहाँ के लोगों का अच्छा हवाला देते हैं जिससे वह स्वीकृति पर अधिकार पत्र देने की शर्त पर आयात कर सकते हैं। फिर, जब यह लोग किसी लदन की कोठी अथवा बैंक के यहाँ साख खोल लेते हैं तब तो हवाले की भी आवश्यकता नहीं रहती और स्वीकृति पर अधिकार पत्र देने की शर्त के ही बिल लिखे जाते हैं। अत, जब न तो अच्छा हवाला मिलता है और न वह लदन की किसी कोठी अथवा बैंक मे साख ही खोल सकते हैं, तभी भुगतान पर अधिकार पत्र देने की शर्त के बिल लिखे जाते हैं और ऐसा बहुत कम होता है। दर्शनी बिल की अपेक्षाकृत तीन महीनों की अवधि के बिलों की दर अधिक होती है। उसमे उतने दिन का ब्याज भी सम्मिलित रहता है।

विदेशी बैंक खरीदे हुये अथवा डिस्काउण्ट किये हुये बिल माल के आयात करने वाले के अथवा जिस के यहाँ साख खुल जाती है, उसके यहाँ भेज देते हैं और वहाँ पर उसकी स्वीकृति हो जाती है। इसके बाद अधिकारी बैंक इसे

खुले बाजार में डिस्काउण्ट करा सकते हैं और इस तरह से यहाँ पर उनकी शाख से जितना रुपया लिया है उसके बराबर का स्टर्लिङ्ग उन्हें मिल जाता है। हाँ, यदि उन्हें द्रव्य की आवश्यकता नहीं होती अथवा जब उसे अधिक लाभ के कामों में नहीं लगा सकते तो उन्हें अपने ही पास रखते हैं, भुनाते नहीं।

आयात की भी दो प्रकार से सहायता की जाती है। एक तो प्रायः भारतीयों के आयात करने पर और दूसरी विदेशियों के आयात करने पर होती है। पहले में विदेशी निर्यातकर्ता इस देश के आयातकर्ता पर ६० दिनों का दर्शनी बिल लिखकर उसे किसी ऐसे बैंक से डिस्काउण्ट करा लेते हैं जिसका काम भारत में होता है। जो बैंक डिस्काउण्ट करते हैं उन्हें निर्यातकर्ता गिरवी पत्र (Letters of Hypothecation) भी दे देते हैं, जिससे वे इन बिलों के पूर्ण अधिकारी हो जाते हैं। फिर, यह उन्हें अपनी यहाँ की शाख द्वारा यहाँ के आयातकर्ता के यहाँ भेजवा देते हैं जो उन पर अपनी स्वीकृति दे देते हैं किन्तु उन्हें माल के अधिकार पत्र नहीं प्राप्त होते। वह तो बिलों की शर्तों के अनुसार केवल उनके भुगतान पर ही दिये जा सकते हैं। किन्तु उन्हें इन्हें प्राप्त करना तो आवश्यक ही रहता है क्योंकि इनके बिना माल तो छुड़ाया नहीं जा सकता और माल न छुड़ाने पर क्षति (Demurrage), इत्यादि देनी पड़ती है। अतः वह इन्हें बैंकों से धरोहर (Trust) पर ले लेते हैं, और माल पाने पर भी उसे धरोहर की तरह ही रखते हैं। इसके लिये ये बैंकों को धरोहर की रसीद (Trust Receipt) दे देते हैं। अतः, जब तक बिलों का भुगतान नहीं हो जाता तब तक यह माल बैंक का ही समझा जाता है। इन सुविधा को दे कर ये बैंक आयात कर्ताओं से काफी लाभ उठा लेते हैं।

दूसरा तरीका प्रायः विदेशियों के सम्बन्ध में प्रयोग में लाया जाता है। भारतीयों के लिये तो बहुत कम अच्छा हवाला दिया जाता है। अतः, वह लन्दन की किसी कोठी अथवा वहाँ के किसी बैंक के यहाँ साख भी बहुत कम खोल पाते हैं। जहाँ ऐसा हो जाता है वहाँ यह तरीका भारतीयों के लिये भी प्रयोग में आता है। इस तरीके में विदेशी निर्यातकर्ता लन्दन की उस कोठी अथवा वहाँ के उस बैंक के ऊपर बिल कर लेते हैं जिसके यहाँ का आयातकर्ता साख खोल लेता है। यह साख किसी विनिमय के बैंक के यहाँ भी खोली जा सकती है। विदेशी निर्यातकर्ता के यहाँ जब इण्डेन्ट भेजा जाता है, तभी यह

साख खोलने की सूचना भी उसके यहाँ भेज दी जाती है। ऊपर वाला धनी माल सम्बन्धी अधिकार पत्र पा जाने पर इस पर अपनी स्वीकृति दे देता है। अत॰, निर्यातकर्ता अब इसे भुना भी सकता है। आयातकर्ता बिल पकने की तारीख के पहले बिल का मूल्य ऊपर वाले धनी के यहाँ भेज देता है जिससे वह उचित समय पर उसका भुगतान कर देता है।

यहाँ के आयात के सम्बन्ध के बिल प्राय॰ स्टर्लिङ्ग ही मे होते हैं। जब वह यहाँ के आयातकर्ता के ऊपर लिखे जाते हैं तब उनमे लिखने की तारीख से उनका धन वहाँ पहुँचने की सम्भावित तारीख तक का व्याज भी सम्मिलित कर लिया जाता है। यदि वह लन्दन की किसी कोठी के अथवा बैंक के ऊपर के होते हैं तब उन्हें वहीं पर वहाँ के डिस्काउण्ट की दर पर भी भुना लिया जाता है। डिस्काउण्ट की यह दर प्रथम तरह के बिलो मे जो व्याज सम्मिलित होता है, उसकी दर की अपेक्षाकृत कम होती है। फिर डिस्काउण्ट तो केवल उसी अवधि के लिये जाता है जो इनके पकने में बाकी रहती है। इस सबसे यह स्पष्ट है कि गैरभारतीय आयातकर्ता और ऐसे भारतीय आयातकर्ता भी जो लन्दन में साख खुलवा सकते हैं, अन्य भारतीयों की अपेक्षाकृत बहुत लाभ मे रहते हैं। इस सम्बन्ध में यह भी है कि जिन भारतीयों की साख लन्दन मे खुल जाती है उन्हें साख खोलने वाले को साख के धन का १५ से २० प्रतिशत पहिले से दे देना पड़ता है। गैरभारतीयों को ऐसा नहीं करना पड़ता। अत॰, इसका यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय आयातकर्ता हर हालत में गैरभारतीय आयातकर्ता की अपेक्षाकृत हानि ही मे रहता है।

हमारे प्राय सभी आयात और निर्यात के बिल स्टर्लिङ्ग मे लिखे जाते हैं। केवल चीन और जापान से जो व्यापार होता है उसके सम्बन्ध में ही वह अन्य करन्सियो में लिखे जाते हैं। चीन के व्यापार होने पर तो वे रुपयों में और जापान से व्यापार होने पर वे येन मे लिखे जाते हैं।

साधारणतया तो भारत के व्यापार की विषमता (Balance of trade) भारत ही के पक्ष मे रहती है। अत, इन बैंकों के पास स्टर्लिङ्ग बच जाता है और उसे रिजर्व बैंक खरीद लेता है। वह इनके आधार पर यहाँ नोट निकालता है। जब कभी यहाँ के व्यापार की विषमता यहाँ के विपक्ष मे होती है तब विनिमय बैंक रिजर्व बैंक से स्टर्लिङ्ग खरीद सकते हैं और रिजर्व बैंक स्टर्लिङ्ग सिक्योरिटियाँ बेचकर उन्हें स्टर्लिङ्ग दे देते हैं। इससे नोट वापिस हो जाते हैं। इस सम्बन्ध मे यह यदि रखना चाहिये कि रिजर्व बैंक को कोई भी बैंक १००००

अथवा उससे अधिक पाउण्ड जब चाहे तब दे सकता है और इतना ही जब चाहे तब उससे ले सकता है। इधर स्टर्लिङ्ग के स्थान पर अन्य करन्सियाँ भी दी-ली जा सकती हैं।

विदेशी बैंकों के यहाँ के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सहायता करने के तरीकों में दोष

विदेशी बैंकों के यहाँ के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सहायता करने के तरीकों में जो दोष हैं वह तो ऊपर के वर्णन से स्पष्ट ही हैं —

(१) हमारे निर्यात तथा आयात दोनों के बिल स्टर्लिङ्ग में लिखे जाते हैं। अतः उनका लन्दन के द्रव्य बाजार में भुनाया जाना आवश्यक हो जाता है। यदि बिल रुपयों में लिखे जाने लगें तो यहाँ के द्रव्य बाजार को अवश्य ही काफी प्रोत्साहन मिल जाय।

(२) भारतीय आयात कर्ताओं को प्राय बिलों के भुगतान पर अधिकार पत्र मिलने की शर्त पर आयात करना पड़ता है। यह इस कारण है कि विनिमय बैंक उनका अच्छा ख्याल नहीं देते। इससे उनकी जो हानि होती है उससे तो हम अवगत हो ही चुके हैं।

(३) जिन भारतीयों की लन्दन में साख खुल जाती है, उन्हें भी इसके लिये १५ से २० प्रतिशत तक की रकम पहिले से ही देना पड़ती है। गैरभारतीय आयातकर्ताओं को ऐसा नहीं करना पड़ता।

(४) बिलों के साथ जो अधिकार-पत्र होते हैं, उन्हें उनकी जाँच के लिये गैरभारतीयों के तो दफ्तरों में भेज दिया जाता है, किन्तु भारतीयों को इसके लिये बैंकों के दफ्तरों ही में बुलाया जाता है।

(५) विदेशी बैंक यहाँ के आयातकर्ताओं को अपने-अपने यहाँ के जहाजों से माल मँगाने के लिये विवश करते हैं।

(६) बीमे के लिये भी वह उन्हें गैरभारतीय कम्पनियों ही के यहाँ बीमा कराने को कहते हैं।

(७) विनिमय के कन्ट्राक्टों के देर में पूरा करने पर भारतीय आयातकर्ताओं को जुर्माना देना पड़ता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त इनमें कुछ अन्य दोष भी हैं —

(१) यद्यपि ये लोग यहाँ पर बहुत दिनों से काम करते चले आ रहे हैं तो भी इन्होंने अभी तक ऊँचे-ऊँचे पदों पर भारतीयों की नियुक्ति नहीं की है।

(२) यहाँ के बैंकों ने जब-जब विनिमय का काम करना प्रारम्भ किया तब-तब इन लोगो ने उन्हें असफल बनाने का प्रयत्न किया।

(३) इन्होंने अपनी शाखायें देश के भीतरी शहरों में भी खोल दी हैं, जिससे यह भारतीय बैंकों से अन्य कामों मे भी होड करते हैं।

(४) इन्होंने सम्मिलित पूँजी वाले भारतीय बैंकों से भी अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, जिससे ये उन्हें अपने लाभ के लिये काम मे लाते हैं।

विनिमय बैंकों को लाइसेन्स देने और उन पर अन्य प्रतिबन्ध लगाने का प्रश्न

इन बैंकों के ऊपर जो उपर्युक्त बातों का दोषारोपण किया जाता था उसके कारण इन्हें लाइसेन्स देने और इन पर अन्य प्रतिबन्ध लगाने का प्रश्न कई बार उठा। बैंकिंग विषयक अनुसधान करने वाली केन्द्रीय कमेटी ने इनके सम्बन्ध मे मुक्तद्वारनीति का बड़ा विरोध किया था। जर्मनी, जापान, कनाडा आदि बहुत से देशों मे विदेशी बैंकों को लाइसेन्स देने का चलन है। अस्तु १९४९ के बैंकिंग विधान के अनुसार अन्य बैंकों की तरह अब इन्हे भी रिजर्व बैंक से लाइसेन्स लेना पड़ता है। जो बैंक उक्त विधान पास होने के समय यहाँ पर काम कर रहे थे, उन्हें तो लाइसेन्स मिल ही गया है। नये बैंको को यह मिलने में अवश्य रुकावट पड़ेगी। पुराने बैंको के उचित व्यवहार न करने के कारण वे रद्द भी किये जा सकते हैं। लाइसेन्स की शर्तों मे एक शर्त यह भी है कि यहाँ का हिसाब अलग रक्खें, इससे भविष्य में इनके विषय मे बहुत सी बाते मालूम हो सकेगी। दूसरे अब कोई बैंक भारतवर्ष में अपनी नयी शाख तब तक नहीं खोल सकता, जब तक कि रिजर्व बैंक उसकी आज्ञा न दे दे। नये बैंकिंग विधान के अनुसार रिजर्व बैंक इनके ऊपर अन्य बैंकों की तरह अन्य कई नियन्त्रण लगा सकता है। अतः आशा है कि भविष्य में यह यहाँ के लोगों की कोई विशेष हानि नहीं कर सकेंगे। रिजर्व बैंक को इस बात पर विशेष तौर से ध्यान रखना चाहिये कि यह यहाँ के भारतीय बैंकों को खरीद

न सकें। फिर, यह बैंक अपने काम में स्वयं ही कुछ सुधार करके देश में प्रिय पात्र बन सकते हैं।

विदेशी बैंकों के काम करने के सम्बन्ध में सुझाव

(१) इन्हें भारतीय आयातकर्ताओं के सम्बन्ध के वैसे ही हवाले देने चाहिये जैसे ये गैरभारतीय आयातकर्ताओं के सम्बन्ध के देते हैं।

(२) इन्हें भारतीय आयातकर्ताओं को लन्दन की बिल स्वीकार करने वाली कोठियों और बैंकों के यहाँ उनसे १५ या २० प्रतिशत पेशगी दिलाये बिना ही साख खोलने की व्यवस्था कर देना चाहिये और यदि वे ऐसा न कर सकें तो इन्हें स्वयं ही उनके ऊपर के बिल स्वीकार कर लेना चाहिये।

(३) इन्हें बिलों के रुपयों में लिखे जाने में कोई रुकावट नहीं डालनी चाहिये। रिजर्व बैंक की बैंक दर बहुत दिनों से तीन प्रतिशत है। अत, यदि यह बिल रुपयों में लिखे जाने लगें तो देश में बिल बाजार अवश्य ही बन जायँ।

(४) इन्हें अपने यहाँ भारतीयों को ऊँचे-ऊँचे पद देने चाहिये। उससे न केवल इनका काम ही बढ़ जायगा बल्कि भारतीयों से अच्छा सम्बन्ध भी स्थापित हो जायगा।

(५) इन्हें भारतीय बैंकों के साथ सहयोग से काम करना चाहिये और भारतीय चीजों का वहिष्कार नहीं करना चाहिये। इन्हें भारतीय बीमा कम्पनियों के साथ समझौता कर लेना चाहिये। भारतीय जहाज चलाने का भी प्रबन्ध हो रहा है। अतः, इन्हें उनकी भी सहायता करनी चाहिये।

भारतीयों के विनिमय के व्यवसाय करने के लिये सुझाव

किन्तु इतना सब होने पर भी भारतीयों को विनिमय का व्यवसाय अपने हाथ में तो लेना ही पड़ेगा। हम जानते हैं कि यहाँ पर बहुत से ब्रिटिश बैंक स्थापित हो चुके थे तो भी अमेरिका, जापान, फ्रान्स, डच इत्यादि के बैंक यहाँ पर स्थापित किये गये। इसका एक मात्र कारण यह है कि किसी देश के लोगों का उस देश के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कितना हाथ रहेगा। यह सब इस बात पर निर्भर है कि उनके बैंक उन देशों में हैं अथवा नहीं जिनसे उनका व्यापार होता है। यह स्वाभाविक ही है कि किसी देश के बैंक ही उस देश के

लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायता पहुँचा सकते हैं। जर्मन और जापानियों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इसी तरह से बढ़ सका था। बैंकिंग सम्बन्धी अन्वेषण करने वाली केन्द्रीय कमेटी और उसकी सहायता को आये हुये विदेशी अनुभवी व्यक्तियों ने भी यही बात कही थी। हमारा जो व्यापारिक मिशन सन् १९४६ में चीन गया था, उसने यह कहा था कि वहाँ पर भारतीय बैंकों की बड़ी आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त अन्य लोगों ने अन्य सुझाव भी रक्खे हैं। उनमें से प्रथम तो यही था कि इम्पीरियल बैंक को यह व्यवसाय करना चाहिये। इस सम्बन्ध का उस पर जो प्रतिबन्ध लगा हुआ था उसका लोग बहुत विरोध करते थे। प्रेसीडैन्सी बैंकों के ऊपर तो यह प्रतिबन्ध इसलिये लगाया गया था कि इस व्यवसाय मे उस समय बड़ी जोखिम थी, किन्तु जब से देश में विनिमयमान हो गया था तब से यह डर नहीं था। जो हो सन् १९३४ से इम्पीरियल बैंक के ऊपर यह प्रतिबन्ध नहीं है। जैसा कि बैंक के व्यवस्था शासक ने बैंकिङ्ग सम्बन्धी अन्वेषण करने वाली कमेटी के सामने कहा था, यह काम करने की शिक्षा देना भी बहुत आसान था। किन्तु बैंक ने अभी तक ऐसा करना प्रारम्भ नहीं किया है। कुछ लोग ऐसे हैं जो कहते हैं कि बैंक की नीति भारतीय विरोधी होने के कारण उसके ऐसा करने से भी कोई लाभ नहीं होता, वह विदेशी बैंकों से मिल जाता, किन्तु अब तो स्थिति बदल गई है। फिर, इम्पीरियल बैंक विधान में संशोधन होने वाला है। अतः, उसे अधिक लाभप्रद बनाया जा सकता है।

बैंकिङ्ग सम्बन्धी अन्वेषण करने वाली केन्द्रीय कमेटी ने एक सरकारी विनिमय बैंक की स्थापना करने की सिफारिश की थी। किन्तु ऐसा करने के लिये तभी कहा गया था जब इम्पीरियल बैंक यह काम न करे। सरकारी बैंक की पूँजी सम्मिलित पूँजी वाले भारतीय बैंकों द्वारा खरीदी जाने की बात थी और उसकी कमी सरकार द्वारा पूरी करने की बात थी। कुछ सदस्यों की यह राय थी कि सरकार को ही सब हिस्से लेने चाहिये। इसके अतिरिक्त वे इस बात के विरुद्ध थे कि इम्पीरियल बैंक से विनिमय का व्यवसाय करने को कहा जाय क्योंकि उनका यह विचार था कि उसके हिस्से अधिकांश गैर-भारतीयों के हाथों मे होने के कारण वह भारतीयों के हित मे काम कर ही नहीं सकता है। वह सब हिस्सों के सरकार द्वारा खरीदे जाने के लिये इसलिये कहते थे कि विनिमय बैंकों ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि

किसी भी भारतीय बैंक का इसमें सफलता प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि उसके साथ में सरकार की पूरी सहायता हो। इस बैंक के द्वारा साधारण बैंकिंग का व्यवसाय करने की मनाही कर देने में भी विचार रक्खा गया था जिससे कि उससे अन्य भारतीय बैंकों से किसी प्रकार की प्रतियोगिता न हो।

कुछ लोग सरकार द्वारा विनिमय बैंक खोले जाने के पक्ष में नहीं थे। कमेटी के एक सदस्य श्री सूबेदार ने यह काम रिज़र्व बैंक के एक विभाग द्वारा करवाने का सुझाव रक्खा था। उनके अनुसार इस व्यवसाय का हिसाब अलग रखने की ओर इसकी हानि पूरी करने के लिये इसका एक अलग सुरक्षित कोष रखने की आवश्यकता थी। उनका यह विचार था कि सरकार विनिमय का बैंक न खोलेगी। फिर, वह सरकार का कोई भी व्यवसाय देने के विरुद्ध थे। उनका विचार था कि रिज़र्व बैंक यह काम भली-भाँति कर सकता है।

बैंकिंग सम्बन्धी अन्वेषण करने वाली कमेटी का एक सुझाव और था कि यह व्यवसाय करने के लिये एक ऐसा बैंक होना चाहिये जिसका नियन्त्रण भारतीयों के हाथ में भी हो और उन देशों के लोगों के हाथों में भी हो जिनसे उनका व्यापार है। वे कहते थे कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भिन्न भिन्न देशों के लोगों के बीच में होता है। अतः, उसकी सहायता करने वाले बैंक के लिये यह आवश्यक है कि उसके नियन्त्रण में सब देशों के लोगों के प्रतिनिधियों का हाथ हो। ऐसे बैंक की रुपयों की पूँजी भारतीयों की और अन्य करन्सियों की पूँजी विदेशियों की होती और इसका लाभ सभी में बँटता।

एक मत यह भी था कि जिन ब्रिटिश बैंकों के हाथ में भारतवर्ष की विनिमय की बैंकिङ्ग का काम है उन्हें अपनी रजिस्ट्री यहीं करा लेनी चाहिये और अपनी कुछ पूँजी रुपयों में कर लेनी चाहिये। साथ ही उन्हें यहाँ पर अपना एक प्रधान कार्यालय भी रखना चाहिये। इससे ब्रिटिश हिस्सेदारों का यह लाभ होता कि वह यहाँ के व्यवसाय का लाभ उठा सकते अन्यथा उन पर प्रतिबन्ध लग जायँगे और उनका व्यवसाय बन्द हो जायगा। इसमें इस बात की भी आवश्यकता थी कि आधे से अधिक हिस्से भारतीयों के हाथ में आ जायँ। किन्तु ब्रिटेन के लोगों को यह योजना क्योंकर स्वीकृत हो सकती थी। हाँ, परिस्थिति बदल जाने से अब ऐसा हो सकता है।

भविष्य में चाहे जो योजना हो इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि इधर भारतीय निर्माणी विदेशों से मशीनें मँगवायेगी। उनके दाम प्रायः वे

एक साथ न दे सकेगी। अत जो भी सस्था हो उसे यहाँ पर एक निर्यात आयात साख योजना का प्रबन्ध करना पड़ेगा। ग्रेट ब्रिटेन मे निर्यात साख योजना चालू है। इससे यहाँ के लोग किस्त पर दाम दे सकेंगे। दूसरे, भविष्य मे सोवियत रूस से भी हमारा व्यापार काफी बढेगा। किन्तु वहाँ की जैसी राज्य प्रणाली है उसके लिये यहाँ का प्रचलित ढङ्ग काम न देगा। वहाँ से तो हमारी सरकार को ही स्वय व्यापार करना पडेगा। इसके लिये सयुक्त राज्य की यू० के० सी० सी० नामक सस्था की तरह एक सस्था की आवश्यकता पडेगी अथवा जो काम यह सस्था करती है वही काम यहाँ के विनिमय बैंक को करना पडेगा।

युद्ध काल में विनिमय व्यवसाय

युद्ध काल मे हमारे आयात और निर्यात दोनों पर नियन्त्रण लगा हुआ था। जैसे-जैसे युद्ध क्षेत्र बढ रहा था। वैसे-वैसे हमारे माल की माँग भी बढती जा रही थी। अत सरकार का पूर्ति विभाग यहाँ से माल खरीदता और उसे वाहर भेजता था। इसके लिये वह विक्रेताओ को आर्थिक सुविधाये देता था जिससे विनिमय व्यवसाय बैंकों के हाथ मे न रह कर स्वय सरकार के अथवा उसके प्रतिनिधि रिज़र्व बैंक के हाथ मे आ गया था। इसी तरह से आयात भी सरकार द्वारा ही होता था। बहुत सा सामान तो सयुक्त राष्ट से उधार पट्टे समझौते के अन्तर्गत आता था, अत उसके भुगतान का तो प्रश्न ही नहीं था। फिर, जिस माल के आयात का भुगतान करना होता था उसका भुगतान भी सरकार ही अपने डालर कोष से करती थी। साम्राज्यान्तर्गत देशों से जो आयात होता था उसका भुगतान भी सरकार ही करती थी। वह जो माल युद्ध के लिये भेजती थी उसके बदले में उसे स्टर्लिङ्ग मिलते थे। बस, इन्हीं से वह आयात का भुगतान करती थी। इस तरह से विनिमय बैंको के हाथ मे बहुत कुछ कम काम रह गया था।

प्रश्न

(१) विदेशी बैंको के हाथ मे विनिमय के व्यवसाय का एकाधिपत्य क्यो है? क्या उनको विनिमय के बैंक कहना न्याय सगत है?

(२) विदेशी बैंको का यहाँ के भीतरी व्यवसाय में क्या हाथ है और भारतीय बैंकिग पर उनका क्या प्रभाव है?

(३) भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आर्थिक सहायता

कैसे की जाती है? इस सम्बन्ध में जो मत हो उसका विवरण दीजिये?

(४) यहाँ के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को आर्थिक सहायता देने का जो व्यवसाय है उसमें क्या दोष है? उन्हें समझाइये।

(५) जो विदेशी बैंक यहाँ पर काम कर रहे हैं उनके विरुद्ध कौन सी शिकायतें हैं? उनके सुधार के लिये अपने सुझाव रखिये।

(६) विनिमय के बैंकों को लाइसेन्स देने और उन पर अन्य प्रतिबन्ध लगाने के विषय में आपकी क्या राय है? इस सम्बन्ध में अपने सुझाव रखिये। आपकी राय में इन्हें अपने को किस प्रकार से सुधारना चाहिये?

(७) भारतीयों को विनिमय के काम में कैसे भाग लेना चाहिये? इस सम्बन्ध में आप को जो कहना हो कहिये। अन्य लोगों की भी इस सम्बन्ध में जो राय हो वह बतलाइये।

अध्याय १६

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया सन् १६३४ के अपने विधान के अनुसार १ अप्रैल, सन् १६३५ को स्थापित किया गया था। प्रारम्भ में यह हिस्सेदारों का बैंक था, किन्तु बैंक आफ इङ्गलैण्ड के राष्ट्रीयकरण के बाद इसके राष्ट्रीयकरण का भी प्रस्ताव पास हुआ। अतः, १ जनवरी, १६४६ से यह हमारी महासभा के ३ सितम्बर, १६४८ के विधान के अनुसार जिसकी विज्ञप्ति १८ अक्टूबर को हो चुकी थी, सरकारी बैंक हो गया। इसकी पूँजी ५ करोड़ रुपये है जो १००-१०० रु० के हिस्सों में बँटी थी और पहले हिस्सेदारों के पास थी। किन्तु राष्ट्रीयकरण होने पर प्रत्येक १०० रु० के हिस्से के लिये सरकार ने हिस्सेदारों को ११८ रु० १० आने का, जो उस समय इनका बाजार भाव था १६७०-७५ तीन प्रतिशत प्रथम विकास ऋण का एक सरकारी ऋण पत्र दे दिया। इसके बाद ही सरकार ने नये केन्द्रीय और स्थानीय मंडल के संचालकों के नाम घोषित कर दिये। केन्द्रीय मंडल में अब सरकार द्वारा नियुक्त एक शासक और दो उपशासक चारों स्थानीय मंडलों में से एक एक संचालक, छः अन्य संचालक तथा एक सरकारी कर्मचारी हैं। स्थानीय मंडलों में प्रत्येक में सरकार द्वारा

नियुक्त तीन संचालक हैं। राष्ट्रीयकरण के पहले इन मडलों की व्यवस्था भिन्न थी। उस समय केन्द्रीय मडल के आठ सदस्य और स्थानीय मडलों के पॉच-पॉच सदस्य हिस्सेदारों द्वारा चुने जाते थे। केन्द्रीय मडल के शासक और उपशासक उसी की सिफारिश पर सपरिषद गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किये जाते थे। इनके अतिरिक्त चार अन्य सचालक और एक सरकारी अफसर भी सपरिषद गवर्नर-जनरल द्वारा ही नियुक्त किये जाते थे। स्थानीय मडलों में तीन-तीन सदस्य केन्द्रीय मडल द्वारा नियुक्त किये जाते थे। हिस्से बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास तथा जब तक बर्मा भारतवर्ष से पृथक् नहीं हुआ था तब तक रगून क्षेत्र के हिसाब से बँटे हुये थे। प्रत्येक क्षेत्र के हिस्सेदारों के अलग-अलग रजिस्टर थे और प्रत्येक रजिस्टर में दर्ज हिस्सेदार केन्द्रीय मडल के और अपने अपने स्थानीय मडलों के अपने पृथक्-पृथक् प्रतिनिधि चुनते थे। हिस्से भी कुछ लोगों को नहीं मिल सकते थे। यह इसलिये था जिससे साम्राज्य के बाहर के लोग रिजर्व बैंक के मालिक न हो सकें।

नये विधान के अनुसार केन्द्रीय सरकार बैंक शासक की सम्मति से बैंकों को कोई भी ऐसी आज्ञा दे सकती है जो वह दरों के हित में आवश्यक समझती है। वैसे तो बैंक तथा सरकार के बीच में प्रारम्भ ही से पूर्ण एकता थी, किन्तु इस विधान से यह बात पूर्णत. स्पष्ट कर दी गई है कि अन्त में सरकार की राय ही चलेगी। हॉ वैसे आशा यही है कि बैंक के अनुभवी कर्मचारियों की राय ही मानी जायगी।

राष्ट्रीयकरण के पहले बैंक की आय में से हिस्सेदारों को उनके हिस्सो पर तीन प्रतिशत लाभ की बॅटनी हो जाती थी और शेष सरकार को मिल जाता था। अब सभी लाभ सरकार का होगा।

स्थानीय मन्डल कुछ विशेप कार्य और कुछ वह कार्य जो केन्द्रीय मन्डल उन्हें सौपता है करते हैं। केन्द्रीय मन्डल की बैठके साल में कम से कम छः बार और प्रत्येक तिमाही में कम से कम एक बार होनी आवश्यक है।

इसके काम

इसके काम दो प्रकार के हैं—(१) केन्द्रीय और (२) साधारण।

[१] केन्द्रीय

(१) भारतवर्ष में नोट निकालने का एकमात्र अधिकार—इस बैंक को भारतवर्ष में नोट चलाने का एकमात्र अधिकार दिया

गया है। नोट चलाने के लिये इसका एक अलग विभाग है जिसके सम्पत्ति और दायित्व बैंकिंग विभाग से अलग रक्खे जाते हैं। नोट विभाग की सम्पत्ति सोने के सिक्के और सोने में, विदेशी सिक्योरिटियों में, रुपयों में (जुलाई सन् १६४० से रुपयों के नोट भी सम्मिलित हैं) रुपये की सिक्योरिटियों में और व्यापारिक बिलों में रक्खी जाती है। इसका नियम है कि ४० प्रतिशत सोने में और विदेशी सिक्योरिटियों में रहना चाहिये और उसमें भी सोना कम से कम ४० करोड़ रुपये का रहना चाहिये। सोना २१ रु० ३ आ० १० पाई प्रति तोला के हिसाब से लगाया जाता है। विदेशी सिक्योरिटियों में उन सभी देशों की सिक्योरिटियाँ सम्मिलित हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष के सदस्य हैं। पहले केवल स्टर्लिङ्ग सिक्योरिटियाँ ही रह सकती थीं। यद्यपि गवर्नर जनरल की स्वीकृति से ये पहले तो तीस दिन के लिये कम की जा सकती हैं और फिर इसी तरह से पन्द्रह-पन्द्रह दिन के लिये और भी कम की जा सकती हैं। किन्तु जो कुछ कमी हो उसके लिये बैंक को ढाई प्रतिशत तक की कमी के लिये अपितु गवर्नर जनरल को बैंक दर से ऊँचा-ऊँचा रुपये प्रतिशत ऊपर कर देना पड़ता है। किन्तु यह किसी स्थिति में भी छः प्रतिशत से कम नहीं हो सकता। शेष सम्पत्ति रुपयों में भारत सरकार की रुपये की सिक्योरिटियों में और देशी बिलों और प्रण पत्रों में रहती है।

बैंक अभी तक चालीस प्रतिशत से अधिक सोने और विदेशी सिक्योरिटियों में रखता है।

(२) सदस्य बैंकों की नकदी रखने का अधिकार—प्रत्येक सदस्य बैंकों को इसके पास अपनी चालू जमा का कम से कम पाँच प्रतिशत और स्थायी जमा का दो प्रतिशत रखना पड़ता है। इसका उद्देश्य यह है कि यह आवश्यकता पड़ने पर उसे सदस्य बैंकों की सहायता के लिए काम में ला सके। इससे यह खुले बाजार की नीति अपना कर अर्थात् सरकारी सिक्योरिटियों और बिल सीधे ही खरीद और बेच कर सदस्य बैंकों की जमा घटा-बढ़ा कर उनकी साख देने की नीति भी प्रभावित कर सकता है। ऐसा बैंक दर नीति द्वारा भी किया जा सकता है, किन्तु बैंक ने आज तक ऐसा नहीं किया है। २८ नवम्बर, सन् १६३५ से बैंक दर ३ प्रतिशत चला आ रहा है। व्यापारिक बैंकों को उधार देने की जो इसकी नीति है उसका संकेत तो पहले ही किया जा चुका है। अन्तिम यह कि यह कृषि सम्बन्धी साख भी उन्हीं शर्तों पर दे सकता जिनका वर्णन कृषि सम्बन्धी साख के अध्याय में किया जा चुका है।

(३) रुपये का अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य स्थिर रखने के उद्देश्य से एक निश्चित दर पर विदेशी करन्सियों का क्रय-विक्रय करने का दायित्व--प्रथम तो जो कोई इससे लन्दन की सुपुर्दगी के लिए तैयार स्टर्लिङ्ग माँगता था और उसका क्रय मूल्य कानूनन ग्राह्य करन्सी में देता था उसे तो इसे प्रति रुपया कम-से-कम एक शिलिंग ५४⁄६४ पे० देना अनिवार्य था। दूसरे, इसे प्रति रुपये अधिक-से-अधिक १ शि० ६३⁄१६ पे० के हिसाब से स्टर्लिङ्ग खरीदना भी पड़ता था। हाँ, प्रत्येक हालत में कम-से कम दस हजार पौंड का काम होना चाहिये था। इधर जब से भारत अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष का सदस्य बन गया है तब से इस पर सरकार की निश्चित शर्तों पर किसी भी करन्सी के क्रय विक्रय का दायित्व रख दिया गया है। इसे सरकार की विनिमय की आवश्यकतायें भी पूरी करनी पड़ती हैं। अत, इसके लिये पहले तो यह प्रति सप्ताह स्टर्लिङ्ग क्रय के लिए टेन्डर माँगता था, किन्तु युद्धकाल से यह सीधे ही स्टर्लिङ्ग खरीदने लगा था।

(४) भारतवर्ष में सरकारी काम करने और बिना ब्याज बैलन्स रखने का अधिकार--इसके लिए अप्रैल ५ सन् १६३५ को इसके और केन्द्रीय सरकार के बीच में एक समझौता हुआ था। यह सरकार के हिसाब में रुपया प्राप्त करता है और जो उसका बैलन्स होता है, उसमें से उसके हिसाब में भुगतान देता है और उसके विनिमय भेजने के और बैंकिङ्ग के दूसरे काम कुछ चार्ज लिए बिना ही करता है। जिन स्थानों पर उसकी शाखा अथवा आढ़त नहीं हैं, उनमें सरकार के लगभग १३०० खजानों और उपखजानों द्वारा यही काम होता है। यह सरकारी ऋण की भी व्यवस्था करता है और नए ऋण निकालता है। इसके लिए इसे प्रति करोड़ सरकारी ऋण पर २०० रुपया वार्षिक छमाही कमीशन मिलता है। अपने दफ्तरों, शाखाओं, आढ़तों, खजानों तथा उपखजानों में यह नोट विभाग का करन्सी चेस्ट रखता है। इनमें यह सरकार के काम के लिए और जनता का रुपया इधर-से उधर भेजने के लिए काफी नोट और रुपया रखता है।

सरकारी ऋण दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन दोनों हो सकते हैं। रिजर्व-बैंक करन्सी और फाइनेन्स की अपनी वार्षिक रिपोर्ट में इसका विस्तृत विवरण देता है। दीर्घकालीन ऋण जिन कागजों के रूप में निकाले जाते हैं, वे अनेक प्रकार के होते हैं और उन सबको सरकारी सिक्योरिटियाँ कहते हैं।

अल्पकालीन ऋण ट्रेजरी बिलों के रूप में निकाले जाते हैं और ये प्रायः तीन महीने की अवधि के होते हैं। दिल्ली को छोड़कर रिज़र्व बैंक के अन्य सभी दफ़्तरों में और बैंकिंग विभाग की शाखाओं में इनके क्रय की व्यवस्था टेण्डर पर अथवा बीच वाली दर पर की जाती है। टेण्डर माँगने का जब निश्चय हो जाता है तब टेण्डर मांगने की तारीख, टेण्डर के धन, उनकी अवधि और उनकी स्वीकृति हो जाने पर उनका रुपया जिस तारीख को देना पड़ेगा वह तारीख, इत्यादि यह सब एक विज्ञप्ति द्वारा निकाल दिये जाते हैं और मुख्य-मुख्य बैंकों दलालों तथा कोठियों को भेज दिये जाते हैं। टेण्डर में बिल की शर्तें, टेण्डर देने वाला जितने के बिल लेना चाहता है, प्रति बिल वह जितना रुपया, आना और पैसा प्रत्येक १०० रु० के लिये देना चाहता है, दिये रहते हैं। ट्रेजरी बिल केवल २५०००, ५००००, १ लाख, ५ लाख, १० लाख और ५० लाख रुपयों के होते हैं। जब बीच की दर पर ट्रेजरी बिल बेचने का निश्चय होता है तब प्रायः टेण्डर की स्वीकृति की विज्ञप्ति के साथ यह विज्ञप्ति भी दे दी जाती है। प्रायः ट्रेजरी बिल इम्पीरियल बैंक और बड़े-बड़े बैंक ही ले लेते हैं।

यदि और थोड़े समय के लिये रुपयों की आवश्यकता होती है तो यह रिज़र्व बैंक से वेजेज़ ऐन्ड मीन्स के रूप में (Wages & Means Advances) ले लिये जाते हैं।

१ अप्रैल, सन् १९३७ को प्रान्तीय स्वराज्य के प्रादुर्भाव के साथ-साथ ही रिज़र्व बैंक का भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारों के साथ एक समझौता हुआ था। उसी वर्ष भारतवर्ष और ब्रह्मा की सरकार के बीच में भी एक समझौता हुआ था। कुछ बातें छोड़कर जैसे अन्तर्प्रान्तीय भुगतान के सम्बन्ध में रुपया भेजने और वेज ऐन्ड मीन्स के रूप में ऋण देने के सम्बन्ध में शेष सभी बातों में यह समझौते वैसे ही थे जैसा केन्द्रीय सरकार के बीच का समझौता था। स्वतन्त्र प्रान्तों को जो अधिकार प्राप्त हैं उनके अनुसार उन्हें उसी प्रकार दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन ऋण लेने का भी अधिकार है जिस प्रकार केन्द्रीय सरकार को है। हाँ, प्रान्तीय सरकारों को बैंक के पास एक कम-से-कम बैलन्स भी रखना पड़ता है जो उनके और बैंक के बीच में समय-समय पर निश्चित होता रहता है। इसमें यदि कोई कमी हो जाती है तो वह वेज एन्ड मीन्स से पूरी की जाती है। एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जब रुपया भेजा जाता है तब बैंक उसी दर से कमीशन लेता है जिस दर से वह कमीशन सहकारी समितियों

और बैंकों से लेता है। उसी प्रान्त के अन्दर रुपया भेजने के लिए कोई कमीशन नहीं लिया जाता।

यह बैंक भिन्न-भिन्न सहकारों को आर्थिक समस्याओं पर अपनी सम्मति भी देता है।

(५) कुछ साधारण काम करने का दायित्व—उपर्युक्त काम केन्द्रीय बैंकिंग के मुख्य काम हैं। इनके अतिरिक्त कुछ साधारण काम भी हैं जिन्हें यह बैंक करता है। इसमे निम्न काम हैं :—(१) भिन्न-भिन्न प्रकार की करन्सी देना, (२) रुपया भेजने की सुविधा देना, (३) निकासगृह की व्यवस्था करना, (४) आर्थिक मामलों मे मन्त्रणा देना, (५) बैंकिंग के अङ्क एकत्रित करके उन्हे जनता के सम्मुख रखना, इत्यादि।

यदि हम पहले (१) अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकार की करन्सी देने को लें तो बैंक को नोट के लिये रुपये और रुपयों के लिये नोट देना आवश्यक है। जुलाई, सन् १६४० से रुपयों में भारत सरकार के एक एक रुपये के नोट भी सम्मिलित हैं। इसे रेजगारी भी निकालनी और वापिस लेनी पड़ती है। चूँकि रुपया, रुपये के नोट और रेजगारी बनाने का अधिकार केवल सरकार को ही है, अत., ऐसा नियम है कि सरकार बैंक की आवश्यकता के अनुसार नोटों के विनिमय मे इन्हे दे और यदि यह उसके पास अधिक हो तो उससे वापिस ले ले।

अब यदि हम (२) अर्थात् रुपया भेजने की सुविधा लें तो इसके लिये यह अपने नोट चलाने के विभाग के दफ़्तरों, शाखाओं, आढ़तों, खजाना तथा उपखजानों मे करन्सी के बक्स रखता है और इसमें काफी नोट और सिक्के रखता है जिससे सरकारी लेन-देन हो सके और रुपया इधर से उधर भेजा जा सके। पहली अक्टूबर, सन् १६४० से इसने जनता, सहकारी बैंकों और समितियो, सदस्य बैंकों, कुछ गैरसदस्य बैंकों तथा देशी महाजनो का रुपया रियायती कमीशन लेकर इधर से उधर भेजने की एक योजना निकाली है। सहकारी बैंकों के लिये सदस्य बैंकों और गैरसदस्य बैंकों के लिये कमीशन के जो दर हैं उन्हें तो हम पीछे देख ही चुके हैं। देशी महाजनों के लिये भी वही दर हैं जो गैरसदस्य बैंकों के लिये हैं।

जनता के लिए निम्न दर हैं :—

५००० रु० तक		५००० रु० के ऊपर	
प्रतिशत दर	न्यूनतम चार्ज	प्रतिशत दर	न्यूनतम चार्ज
२ आ०	४ आ०	१ आ०	रु० ६—८—०
टिकट, इत्यादि के लिये रु० १—०—०			
डा० टा० के लिये (तार खर्च अलग)			

जहाँ तक (३) अर्थात् निकासघर की व्यवस्था का प्रश्न है, उसे इसने कलकत्ता और कानपुर छोड़कर उन सभी स्थानों में ले लिया है जहाँ इसके दफ्तर और शाखायें हैं। कलकत्ते में इसकी व्यवस्था क्लियरिंग हाउस एसो-सियेशन की साधारण कमेटी द्वारा नियुक्त एक निरीक्षक के हाथ में है और कानपुर में यह इम्पीरियल बैंक के हाथ में है। अन्य स्थानों में भी जहाँ रिजर्व बैंक के दफ्तर अथवा शाखायें नहीं हैं, उन स्थानों में भी यह काम इम्पीरियल बैंक ही के हाथ में है। यद्यपि रिजर्व बैंक को निकासघरों के सम्बन्ध में नियम बनाने के अधिकार प्राप्त हैं तो भी उसने उसकी आवश्यकता नहीं समझी गई है और सब निकासघर अपने-अपने नियमों के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक काम कर रहे हैं।

इसके बाद (४) अर्थात् आर्थिक मामलों पर मन्त्रणा देने का काम है। रिजर्व बैंक भिन्न भिन्न सरकारों, सदस्य बैंकों और गैरसदस्य बैंकों, सरकारी समितियों और बैंकों और भूमि-बन्धक संस्थाओं को आर्थिक मामलों पर मन्त्रणा देता है। सक्षेप में यह सबों को मन्त्रणा देने के लिये तैयार है।

अन्त में (५) अर्थात् बैंकिंग सम्बन्धी अंक एकत्रित करने और उसे जनता के सम्मुख रखने का काम है। प्रथम तो यह अपने नोट विभाग और बैंकिंग विभाग का साप्ताहिक हिसाब केन्द्रीय सरकार के पास भेजता है और उन्हें पत्रों में निकालता है। दूसरे, यह सदस्य बैंकों से प्राप्त सूचना भी एक में करके उनकी एक साप्ताहिक रिपोर्ट निकालता है। फिर, इसने अब करन्सी और अर्थ सम्बन्धी वार्षिक रिपोर्ट तथा यहाँ के बैंकों की अंक सम्बन्धी तालिका निकालने का काम भी अपने हाथ में ले लिया है। अन्तिम यह है कि यह अंकों का एक मासिक विवरण (Monthly statistical summary) और अपनी वार्षिक रिपोर्ट (Annual Report) भी निकालता है।

२. साधारण बैंकिंग के काम

(१) बिना व्याज जमा प्राप्त करना और उसे वसूल करना।

(२) भारतवर्ष मे ही लिखे हुये और देय **विनिमय के बिलों और प्रणपत्रों का क्रय, विक्रय तथा फिर से डिस्काउण्ट करना:—** ये (१) व्यापारिक लेन देनों से (२) खेती के कामों मे अथवा कृषि के विक्रय से और (३) भारत सरकार की अथवा किसी स्थानीय सरकार की अथवा किसी ऐसी रियासत की सिक्योरिटियो को जिन्हे सपरिषद गवर्नर जनरल ने केन्द्रीय मण्डल की सिफारिश से स्वीकार किया है, रखने से अथवा उनमे लेन-देन करने से उत्पन्न होते हैं। इनमे से प्रथम का क्रय, विक्रय और फिर से डिस्काउण्ट तो तभी किया जा सकता है जब उन पर दो या दो से अधिक ऐसे हस्ताक्षर हों जिनमे से एक किसी सदस्य बैङ्क का है, दूसरे का तब किया जा सकता है जब एक हस्ताक्षर किसी सदस्य बैङ्क का अथवा किसी प्रांतीय सरकारी बैङ्क का है और तीसरे का तब किया जा सकता है जब केवल किसी सदस्य बैङ्क का ही हस्ताक्षर हो। इनमे पकने की अवधि रियायती दिन छोड़ कर ६० दिन से अधिक की नही होनी चाहिये।

(३) (अ) सदस्य बैंकों से कम से कम एक लाख रुपये की बराबरी के खरीदना और बेचना। अब स्वीकृत करन्सियाँ खरीदना और बेचना।

(ब) अंतर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष के सदस्य देशों मे लिखे हुये अथवा उनके ऊपर किये हुये उन बिलों का क्रय-विक्रय और फिर से डिस्काउट करना जो क्रय की तारीख से ६० दिनों के अन्दर पकने वाले हों। हाँ, यदि इनका क्रय-विक्रय और फिर से डिस्काउट भारतवर्ष मे किया जाता है, तो वह सदस्य बैंक से होना चाहिये।

(स) अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष के सदस्य बैंकों के पास बैलान्स रखना।

(४) भारतवर्ष में देशी राज्यो, स्थानीय अधिकारियो, सदस्य बैंकों और प्रान्तीय सहकारी बैंको की मॉग पर देय अथवा अधिक से अधिक नब्बे दिन की अवधि पर देय ऋण देना। ये स्टाकों, कोष (Funds) और धरोहर की सिक्योरिटियों की जमानत पर (अचल सम्पत्ति की जमानत पर नहीं), सोने अथवा चादी अथवा उनके अधिकार-पत्रों पर, उसके द्वारा लिये जाने योग्य बिलों पर और किसी सदस्य बैंक अथवा प्रान्तीय सहकारी बैंक के उन प्रण-पत्रों

पर जो माल के हक़ अधिकार-पत्रों के आधारस्वरूप हैं और जो नकद माल लेने के लिये अथवा वास्तविक व्यापार के लेन-देनों के सम्बन्ध में जमा से अधिक रकम निकालने के लिये अथवा कृषि सम्बन्धी कामों अथवा कृषि की चीजों के विक्रय के लिये या तो उसे हस्तान्तरित कर दिये गये हैं अथवा उसके नाम कर दिये गये हैं अथवा उसके पास गिरवी रख दिये गये हैं, उनकी जमानत पर ही दिये जा सकते हैं।

(५) सपरिषद गवर्नर जनरल को अथवा किसी ऐसी सरकार को ऋण देना जिनको स्वयं की प्रान्तीय आय है। किन्तु यह ऋण देने की तारीख से तीन महीनों के अन्दर वापिस हो जाना चाहिये।

(६) अपने दफ़्तरों पर देय दर्शनी ड्राफ्ट देना अथवा बैंक पोस्ट बिल निकालना।

(७) ऐसी विदेशी सरकारी सिक्योरिटियों का क्रय और विक्रय करना जो क्रय की तारीख से दस वर्षों के अन्दर पकने वाली हों।

(८) भारत सरकार की अथवा किसी स्थानीय सरकार की किसी भी अवधि की सिक्योरिटियाँ अथवा ब्रिटिश भारत के किसी ऐसे अधिकारी अथवा भारतवर्ष की किसी ऐसी देशी रियासत की सिक्योरिटियाँ खरीदना और बेचना जिन्हें केन्द्रीय मण्डल की सिफारिश पर सपरिषद गवर्नर जनरल ने इस योग्य स्वीकार कर लिया है। यदि उपर्युक्त अधिकारी किसी सिक्योरिटियों के मूलधन और ब्याज के भुगतान का दायित्व ले लेते हैं तो यह उन्हें भी खरीद और बेच सकता है। इन सब सिक्योरिटियों का सम्मिलित मूल्य किसी एक समय पर बैंक के हिस्सों की पूँजी, सुरक्षित कोष और उसके बैंकिंग विभाग के जमा के दायित्व के ३/५ से अधिक और नहीं हो सकता। जो सिक्योरिटियाँ एक वर्ष के बाद पकने वाली हैं वह पूँजी तथा सुरक्षित कोष और बैंकिंग विभाग के जमा के दायित्व के २/५ से अधिक और जो सिक्योरिटियाँ दस वर्ष के बाद पकने वाली हैं वह पूँजी तथा सुरक्षित कोष और बैंकिंग विभाग के जमा के दायित्व से १/५ से अधिक की नहीं हो सकती हैं।

(९) द्रव्य, सिक्योरिटियाँ तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुयें रखना तथा उनका मूल्य ब्याज इत्यादि सहित वसूल करना।

(१०) यदि बैंक के हाथ कोई चल अथवा अचल सम्पत्ति उसके पाउने के सम्बन्ध में आ जाय तो उसे बेचना और उसका मूल्य वसूल करना।

(११) सपरिषद् गवर्नर जनरल अथवा किसी स्थानीय सरकार अथवा अधिकारी अथवा भारतवर्ष की देशी रियासत की तरफ से सोना अथवा चाँदी खरीदने और बेचने के लिये, बिल, सिक्योरिटियाँ अथवा किसी कम्पनी के हिस्से खरीदने बेचने हस्तान्तरित करने अथवा सुरक्षित रखने के लिये, किसी सिक्योरिटियों के मूलधन, व्याज अथवा लाभ की बँटनी वसूल करने के लिये, और वसूल की हुई रकम उसके मालिक की आज्ञानुसार भारत मे अथवा कहीं भी बिलों से भेजने के लिये तथा सरकारी ऋण की व्यवस्था करने के लिये अदतिये के तौर पर काम करना।

(१२) सोने के सिक्के और सोना खरीदना और बेचना।

(१३) किसी अन्य देश के केन्द्रीय बैंकों के यहाँ अथवा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के यहाँ एकाउण्ट खोलना, उनसे आढत के सम्बन्ध स्थापित करना, उनके अदतिया का काम करना और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के हिस्से खरीदना।

(१४) एक महीने के अन्दर के लिये ऋण लेना और उसके लिये जमानत देना। यह ऋण भारतवर्ष मे केवल किसी सदस्य बैंक से अपनी पूँजी की रकम तक का और बाहर किसी केन्द्रीय बैंक से किसी भी रकम तक का लिया जा सकता है।

(१५) बैंक नोट बनाना और चलाना।

(१६) कोई ऐसा काम करना जो इसके उपर्युक्त कामों के सम्बन्ध मे होने चाहिये।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि यह बैंक जनता से इस तरह से काम नहीं कर सकता कि जिससे उसकी और किसी सदस्य बैंक की प्रतियोगिता हो सके। हाँ, वह ऐसा तभी कर सकता है जब उसके केन्द्रीय मण्डल की अथवा किसी ऐसे अधिकारी की सम्मति में जिसे केन्द्रीय मण्डल ने अपनी शक्ति दे दी है देश के व्यापार, व्यवसाय, उद्योग धन्धों और कृषि के हित में साख का नियन्त्रण करने के लिये ऐसा करना आवश्यक है। इसे कुछ काम करने की मनाही भी कर दी गई है।

यह बैंक जो काम नहीं कर सकता

(१) यह बैंक व्यापार नहीं कर सकता और न किसी व्यावसायिक, औद्योगिक, किसी अन्य प्रकार की संस्था में कोई सीधा हित ही उत्पन्न कर [illegible] । यदि किसी ऋण की वसूली मे यह उसके पास आ जाय तो इसे [illegible] ही बेच देना चाहिये।

(२) यह अपने हिस्से अथवा किसी अन्य बैंक अथवा किसी कम्पनी के हिस्से न तो खरीद सकता है और न उनकी जमानत पर ऋण ही दे सकता है।

(३) यह अचल सम्पत्ति और उसके अधिकार-पत्रों के रेहन पर अथवा उनकी किसी अन्य प्रकार की जमानत पर न तो ऋण ही दे सकता है और केवल अपने काम के लिये छोड़कर न कोई अचल सम्पत्ति खरीद ही सकता है।

(४) माँग पर चुकाये जाने की शर्त के अतिरिक्त यह न तो ऋण ले सकता है, न बिल पर सकता है अथवा स्वीकार कर सकता है और न चालू खातों पर ब्याज ही दे सकता है।

बैंक के संगठन

यह बैंक १ अप्रैल, सन् १९३५ को स्थापित हुआ था। हाँ, इसके विधान की तो गवर्नर जनरल की स्वीकृति ६ मार्च, सन् १९३४ ही को प्राप्त हो चुकी थी, किन्तु स्थापना के पहले बहुत कुछ काम करना था, इसी से इतनी देर लगी। १० दिसम्बर सन् १९३४ को सपरिषद् गवर्नर जनरल ने इसके प्रथम शासक और उपशासक नियुक्त किये और तीन दिन बाद सञ्चालकों का केन्द्रीय मण्डल बना। यह प्रथम केन्द्रीय मण्डल भी सपरिषद् गवर्नर जनरल ने ही बनाया था। फिर इसके हिस्से निकाले गये और इसके साथ ही अन्य प्रारम्भिक कार्य किये गये। इसमें इसके दफ्तर और शाखाओं के लिये उपर्युक्त इमारतों की व्यवस्था की गई और सरकार के केन्द्रीय विभाग से तथा इम्पीरियल बैंक से इसके लिये कुछ कर्मचारी लिये गये। फिर इसके और सरकार के और इम्पीरियल बैंक के बीच में वह समझौते हुये जिनके विषय में पहले ही बताया जा चुका है और कार्य करने के लिये नियम बनाये गये। इनमें बैंक के साधारण नियम थे, चुनाव के नियम थे, हिस्सेदारों की बैठकों, सदस्य बैंकों, नोटों की वापिसी, खर्च और कर्मचारियों के लिये नियम थे। जिस दिन यह संस्थापित हुआ उसी दिन से इसने नोटों का, सुरक्षित कोष रखने का, स्टर्लिङ्ग क्रय का और सिक्योरिटियों की व्यवस्था का काम करन्सी कन्ट्रोलर से ले लिया और सरकार के भिन्न हिसाब रखने, सरकारी ऋण और निकासगृह का काम इम्पीरियल बैंक से ले लिया। ४ जुलाई, सन् १९३५ को बैंक की पहली दर घोषित की गई और दूसरे दिन सदस्य बैंकों ने अपनी जमा का आवश्यक अंश इसके पास भेजा। हाँ, बैंक के अपने नोट पहले-पहल सन् १९३८ में ही निकल सके।

बैंक का मुख्य दफ्तर जिसे केन्द्रीय दफ्तर भी कहा जाता है अब स्थायी रूप से बम्बई में ही है। हाँ, मन्त्री का विभाग शासक के साथ-साथ कलकत्ते और बम्बई दोनों मे अदलता-बदलता रहता है। इस विभाग का सम्बन्ध मण्डल की और कमेटी की साधारण वार्षिक बैठकों से रहता है। यह केन्द्रीय सरकार से करन्सी और विनिमय, भिन्न भिन्न सरकारो के ऋण और ट्रेजरी बिल निकालने और उनकी व्यवस्था और वेज और मीन्स के ऋण सम्बन्धी प्रश्नों पर लिखा-पढ़ी करता है। इसके अन्य विभाग मुख्य अकाउण्टेण्ट का विभाग, कृषि सम्बन्धी साख विभाग और विनिमय नियन्त्रण विभाग हैं और इनमें से प्रत्येक के उपविभाग हैं। कृषि सम्बन्धी साख के उपविभागो और कृषि सम्बन्धी साख उपविभाग के कामों का वर्णन तो पहले ही किया जा चुका है। बैंकिंग विभाग सदस्य तथा गैर सदस्य बैंकों की समस्त समस्याओं की व्यवस्था करता है, बैंकों और सरकार को आर्थिक समस्याओं पर सम्मति देता है और आवश्यकता पड़ने पर इनके सम्बन्ध की रिपोर्टें तैयार करता है। अङ्क और आविष्कार विभाग भिन्न-भिन्न अक एकत्रित करके छपाता है। यह भिन्न-भिन्न समस्याओ पर आविष्कार भी करता है। अब, केवल मुख्य अकाउण्टेण्ट का उपविभाग और विनिमिय नियन्त्रण विभाग रह गये हैं।

मुख्य अकाउण्टेण्ट का उपविभाग नोट विभाग का हिसाब रखता है और उसका निरीक्षण करता है। यह बैंक के व्यय की व्यवस्था भी करता है, नोटों की वापिसी की अपीलें सुनता है, रुपया इधर-से-उधर भेजता है और बैंक की अन्य सब प्रकार की व्यवस्था करता है। विनिमय नियन्त्रण विभाग युद्धकाल मे बना था और भारत रक्षा विधान के अनुसार बैंक को जो मुद्राओं, सोना, चादी, सिक्योरिटियों और विदेशी विनिमय का नियन्त्रण करने का काम दिया गया था उसे करता है। इधर इसके लिये एक पृथक् नियम बन गया है।

बैंक के दूसरे दफ्तर और शाख या तो बैंकिंग विभाग के दफ्तर अथवा शाख हैं या नोट विभाग के शाख हैं। बैंकिंग विभाग के वर्तमान दफ्तर बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास मे हैं तथा शाख कानपुर और नागपुर मे हैं। इसी तरह से नोट विभाग की शाख बम्बई, कलकता, कानपुर, दिल्ली और मद्रास में हैं। अप्रैल, सन् १६३६ से इसका एक दफ्तर लन्दन मे भी है जो भारत सरकार के रुपये के उस ऋण की व्यवस्था करता है जो लन्दन में है और यहाँ के वहाँ के राजदूत का हिसाब रखता है। इम्पीरियल बैंक उन सब स्थानो मे जहाँ उसके दफ्तर तो हैं, किन्तु रिजर्व बैंक के दफ्तर नहीं हैं रिजर्व

बैंक का प्रतिनिधि है। सन् १९४७ ई० में इम्पीरियल बैंक के ४४८ दफ्तर थे। सन् १९४८ में केवल भारतवर्ष में यही संख्या ३६८ थी। शेष पाकिस्तान में थे। इसके अतिरिक्त लगभग १३०० * सरकारी खजाने तथा उपखजाने थे जहाँ इसके करन्सी चेस्ट थे।

बैंक की सफलतायें

यह बैंक बड़ी बड़ी आशायें लेकर स्थापित किया गया था। अत, हमें यहाँ पर यह भी देख लेना चाहिये कि वह सब आशायें पूरी हुईं अथवा नहीं। प्रथम तो इसे नोट निकालने का एकाधिकार केवल इसीलिये दिया गया था कि जिससे इसका देश की करन्सी और साख पर पूरा नियन्त्रण हो। इम्पीरियल बैंक इसमें इसी कारणवश सफल नहीं हो सका था कि उसे यह एकाधिकार नहीं दिया गया था। किसी देश में उसकी द्रव्य-प्रणाली का नियन्त्रण तभी हो सकता है जब उसके क्रय-शक्ति पर नियन्त्रण हो। अत, क्योंकि कुछ देशों में तो यह क्रय-शक्ति केवल नोटों अथवा नोट और सिक्कों की ही होती है, अत, नियन्त्रणकर्ता का इनके निकालने पर भी पूरा अधिकार होना चाहिये। बस, भारतवर्ष इसी तरह का देश है। हाँ, जहाँ तक नोटों और सिक्कों के तुलनात्मक महत्व का प्रश्न है, वह यह है कि इधर कुछ दिनों में नोटों का चलन तो बढ़ रहा है और सिक्कों का घट रहा है। अत., यह कहा जा सकता है कि आजकल यहाँ पर नोटों का चलन सिक्कों की अपेक्षाकृत बहुत अधिक है। अत, नियन्त्रणकर्ता का नोटों पर आवश्यक नियन्त्रण होना चाहिये। जहाँ तक जमा की करन्सी (Cheques) के नियन्त्रण का प्रश्न है, वहाँ तक इसकी भी व्यवस्था की जा रही है। किन्तु इतना सब होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि बैंक ने इस सम्बन्ध में जिस नीति का अनुसरण किया है वह देश के बहुत हित में नहीं रही है। इसके स्वयं के लिए यह बहुत भाग्य की ही बात समझनी चाहिये कि यह ऐसे समय में स्थापित किया गया था जब मन्दी का समय बीत चुका था। यदि सन् १९२७ का बिल पास हो जाता तो सन् १९२८ में बैंक स्थापित हो जाता और शायद इसने भी सरकार की ही तरह मुक्त द्वारा नीति का पालन करते हुये उस समय का संकट असहाय दृष्टि से देखा होता और उसकी बुराई अपने ऊपर ली होती। किन्तु सन् १९३५ में भी यहाँ की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और सन् १९३६-३७ में इस सम्ब-

---

*इनकी भी यह संख्या भारतवर्ष और पाकिस्तान दोनों को मिलाकर है।

~~ मे काफी वाद-विवाद था जिसमें अधिकांश सम्मति रुपये का मूल्य घटाने (Devaluation) के पक्ष मे थी।

सन् १९३८ मे भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी और विनिमय की बहुत मॉग थी जिससे हमारा स्टर्लिङ्ग कोष कम होता गया। किन्तु रिजर्व बैंक ने उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। द्रव्य की स्थिरता के सम्बन्ध मे युद्धकाल में जो स्थिति रही है उसके विषय मे भी कुछ कहना व्यर्थ ही है। करन्सी के पृष्ठ पर गिरे हुये मुल्य का स्टर्लिङ्ग रखकर इसने जो ब्रिटेन के युद्ध व्यय का बोझ भारतवर्ष के ऊपर डाल कर मुद्रा-प्रसार किया था, वह तो किसी से छिपा ही नहीं है। वास्तव मे इसने अपने करन्सी का कोष ऐसे रूप में एकत्रित होने दिया जिसकी अन्तर्राष्ट्रीय क्रय शक्ति समाप्त हो चुकी थी। इसके विपरीत केन्द्रीय बैंकिंग का तो यह सिद्धान्त है कि उसे अपना सम्पूर्ण कोष द्रवित स्थित में ही रखना चाहिए। फिर जहॉ तक विधान ने ही नोटों के सम्बन्ध के कोष के विषय मे नियम बना रक्खे हें उसमे रुपये के विनिमय का मूल्य स्थिर रखने का अधिक ध्यान दिया गया है। नोटों के भुगतान का उतना विचार नहीं रक्खा गया है। शायद ऐसा मान लिया गया है कि यहॉ की जनता का उन पर पूरा विश्वास है, किन्तु यह सत्य नहा है। वास्तव मे बात तो यह है कि उसका उन पर विश्वास न होने के कारण ही यहॉ पर लोगो मे सोना चादी रखने का अधिक चाव है। इससे यहॉ की बैंकिंग प्रणाली को यथेष्ट उन्नति नहीं हो पाई है। फिर, नोटों के और बैंकिंग के विभागों के अलग-अलग होने मे भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है। यह तो केवल अंग्रेजी प्रणाली की ही नकल है जिसे सन् १८४४ से जब यह वहॉ पर अपनाई गयी थी। इधर ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर किसी देश ने भी अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी है। वास्तव मे अब करन्सी सिद्धान्त और बैंकिङ्ग सिद्धान्त की कोई लड़ाई है ही नहीं।

जहॉ तक जमा की करन्सी के नियन्त्रण का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि इस सम्बन्ध की केन्द्रीय बैंक की शक्ति एक तो इस बात पर निर्भर है कि बैंक अपनी नीति से इस पर कितना प्रभाव डाल सकते हैं और दूसरे उन पर केन्द्रीय बैंक का कितना प्रभाव पडता है। हमारे यहॉ बैंकों का जमा की करन्सी निर्धारित करने मे तनिक भी प्रभाव नहीं है, वास्तव में यह साख की उत्पत्ति पर निर्भर रहता है। यहॉ पर बाजार प्राय बैंकों से ऋण नहीं लेता। अत:, साख की उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता और फिर जमा की करन्सी के निर्धारित होने का प्रश्न भी नहीं उठता। जहॉ तक रिजर्व बैंक और सदस्य बैंकों के

...नियन्त्रण का प्रश्न है, उस पर इस समय कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि रिज़र्व बैंक के उद्घाटन के समय से ही देश के द्रव्य बाजार की स्थिति मन्दी रही है और द्रव्य सस्ता रहा है। परीक्षा का समय तो अब आने जा रहा है और जब वह आवेगा तो क्या होगा यह देखना है। हाँ, बैंक के पास इसके लिए, उचित हथियार हैं जैसे बैंक दर नीति और बाजार में खुले काम करना इत्यादि।

इसी प्रकार बैंक के ऊपर अच्छी नीति काम में लाने का दबाव डालना चाहिये था और यह इसने अपने गत दिसम्बर १९३८ के उस परिपत्र पर लागू किया है जो सब अनुसूचित बैंकों को डिस्काउन्ट और ऋण देने के सम्बन्ध में निकाला गया था और जिसमें यह कहा गया था कि जब बैंक उनको ऋण देगा तो केवल इसी बात का ध्यान नहीं रखेगा कि वह कैसी जमानत दे रहे हैं बल्कि यह भी देखेगा कि प्रार्थी बैंक के लागत कैसे हैं, उनके काम कैसे होते हैं, उदाहरण के लिए वह जमा प्राप्त करने के लिए अधिक ब्याज तो नहीं देता है। साधारण स्थिति में भी जब बाजार में [illegible] रहता है तब इससे ऋण तो नहीं लेता है, और वह अपनी स्थिति से अधिक व्यवसाय तो नहीं करता है और माल और माल-पत्रों के सट्टे के लिए ऋण तो नहीं देता है अथवा बहुत अधिक बिना जमानती व्यवसाय तो नहीं करता है। इससे स्थिति तो बहुत कुछ सुधर गई है। फिर, यह जब चाहे तब किसी भी बैंक से कोई भी सूचना माँग सकता है और उसका निरीक्षण कर सकता है। इधर इसने गैर-अनुसूचित बैंकों से भी कुछ सूचना लेना प्रारम्भ कर दिया है और कुछ से तो इसका सीधा सम्बन्ध भी हो गया है।

इस बैंक से यह भी आशा की जाती थी कि यह देशी महाजनों को भी अपने नियन्त्रण में ले आवेगा और कृषि के अर्थ की मशीनरी का सुधार कर लेगा। साथ ही इससे यह भी आशा की जाती थी कि यह कृषि के और अपने कामों के बीच में निकट सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ गुंजाइश कर सकेगा। वास्तव में ५५वीं धारा से इसे ऐसा करने के लिए आवश्यक कर दिया गया था। किन्तु इसने इस ओर सिवाय अपनी प्रारम्भिक और वैधानिक रिपोर्ट देने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं किया है।

इसके खुलने के पहले तेजी और मन्दी के समय के ब्याज के दरों में बड़ा अन्तर रहता था। इम्पीरियल बैंक को इस बात का अधिकार होते हुये भी कि वह सरकार के करन्सी विभाग से आवश्यकता पड़ने पर १२ करोड़ रु० की

करन्सी निकलवा ले वह यह अन्तर दूर नहीं कर सका। किन्तु यह बैंक अवश्य इसमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सका है। इसका बैंक दर नवम्बर सन् १९३५ से ही ३ प्रतिशत रहा है और यह तेजी के समय की करन्सी की सारी माँग अपने बैंकिंग विभाग की नोटों की सम्पत्ति कम करके पूरी कर लेता है। यह ऐसा कहाँ तक करता है, इस बात का पता उसके नोटों की अधिक से अधिक और कम से कम रकम के बीच की अन्तर का पता लगाकर मालूम किया जा सकता है। वास्तव मे यह उस १२ करोड रुपये से अधिक रहता है जितने का अन्तर इन दोनों समयों में मन्दी के पहले के काल मे अर्थात् सन् १९२१-२९ के बीच मे इम्पीरियल बैंक की नकदी के बैलन्स मे हो जाया करता था।

यह बैंक बैंकों का फेल होना रोकने के उद्देश्य से भी स्थापित किया गया है। ऐसी आशा की जाती है कि यह आवश्यकता पड़ने पर उन बैंको की रक्षा करेगा जो हमेशा अपनी स्थिति अच्छी रखते हैं। इसके पास जो केन्द्रित कोष हैं और नोट निकालने के अधिकार हैं उनसे यह ऐसा बहुत असानी के साथ कर सकता है। किन्तु इसने त्रावकोर नेशनल ऐन्ड क्विलन बैंक के सम्बन्ध मे जिसके ऊपर सन् १९३८ मे सकट पड़ा था, ऐसा नहीं किया और वह फेल हो गया। उसके फेल होने के कुछ दिन पहले उसने इससे आर्थिक सहायता माँगी थी और इसने उसे यह देने से इसलिये अस्वीकृत कर दिया था कि यह इसके पहले उसके हिसाब-किताब इत्यादि का निरीक्षण करना चाहता था। इसमे सन्देह नहीं कि यह केवल उसके बड़े-बडे ऋणों की ही जाँच करता। किन्तु जैसा कि उक्त बैंक की तरफ से कहा गया था और वह ठीक ही था, ऐसा करने से उसकी बदनामी हो जाती जिससे और भी बुराई पैदा हो जाती। यहाँ पर यह कह देना भी आवश्यक है कि अब तो बैङ्क जब चाहे तब किसी बैङ्क की भी जाँच कर सकता है। फिर, इसने उसे इसलिये भी ऋण नहीं दिया कि इस बात का भी निश्चय नहीं था कि उसके कौन से पाउने ब्रिटिश भारत के लेन-दारों के ऋण के भुगतान मे और कौन से देशी रियासत के लेनदारों के ऋण के भुगतान में काम मे आ सकेंगे। हाँ, अब तो स्थिति बहुत ही बदल गई है। उन रियासतों के बैङ्क भी इसके नियन्त्रण मे आ गये हैं जो भारत के यूनियन मे सम्मिलित हो गई हैं।

युद्ध काल मे भिन्न भिन्न आदेशों से और अब १९४९ के नये बैंकिंग विधान से इसे बड़े अधिकार प्राप्त हो गये हैं। इधर इसने बंगाल के बैङ्कों के आर्थिक सकट और देश के विभाजन से उत्पन्न हुई स्थिति से पजाब और

[illegible] ऐसा [illegible] नोट [illegible] सहायता की। [illegible]
[illegible] और [illegible] सिक्योरिटियाँ [illegible]
[illegible] तथा [illegible] पर [illegible]
किया। इससे इनके [illegible] में [illegible]। हाँ, इम्पीरियल बैंक ने [illegible]
माल [illegible] इस बात का प्रयत्न किया कि [illegible] इस भाग में पूरा [illegible]
रहा और [illegible] पर इस प्रकार होता रहा जिससे यहाँ के लोगों को बड़ी हानि
नहीं उठानी पड़ी। इसके अतिरिक्त उसने कागज़ नोट का प्रयोग भी [illegible]
किया कि जिससे यहाँ के लोगों को बड़ी हानि हुई। फिर, उसने ब्रिटिश
साम्राज्य के और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के सोने के व्यापारियों का प्रतिनिधि
बन कर यहाँ पर सोना [illegible] ऊँचे दामों पर बेचा। संक्षेप में यह कहा जा
सकता है कि वह सरकारी आज्ञा बड़ी अच्छी तरह से मानता रहा। इसने उसे
अच्छी [illegible] और यदि [illegible] तो मानी नहीं गई। वास्तव में
ऐसा नहीं होना चाहिये था। व्यापार का प्रतिनिधि तो कोई भी बन सकता है,
इम्पीरियल बैंक ही यह काम करता चला गया था।

बैंक दर नीति

साख नियन्त्रण के लिये यहाँ पर बैंक दर नीति का प्रयोग केवल इम्पी-
रियल बैंक के गुजरने पर ही पहले-पहल इसे किया गया था। किन्तु कई कारणों
से यह बहुत उपयोगी नहीं सिद्ध हो सका। प्रथम तो इम्पीरियल बैंक स्वयं ही
इसे साख-नियन्त्रण के लिए काम में नहीं लाना चाहता था। वह तो लाभ कमाने
का उद्देश्य ही सामने रखता था और यदि अपनी बैंक दर में कुछ हेर-फेर
करता था, तो उसी दृष्टि से करता था। फिर, इस नीति का प्रभाव तभी पड़ता
है जब बैंक केन्द्रीय बैंक के ऊपर साख उत्पन्न करने के लिये निर्भर रहते हैं।
किन्तु यहाँ यह बात नहीं थी। यहाँ के बैंक तो इम्पीरियल बैंक से बहुत कम
ऋण लेते थे क्योंकि न तो वह इसे अपने बिल ही देना चाहते थे और न इससे
वैसे ही ऋण लेना चाहते थे। बिलों से इसे उनके ग्राहकों का नाम मालूम हो
जाता था और ऐसा होने से इसके उन ग्राहकों का व्यवसाय अपने हाथ में ले
लेने की आशंका रहती थी। जहाँ तक ऋण का प्रश्न था, ऐसा करने से उन्हें
इस बात की आशंका रहती थी कि कहीं यह उन्हें बदनाम न कर दे। फिर, यह
उनमें से बहुतों की तो संकट के समय सहायता भी नहीं करता था। अन्तिम
बात यह कि यहाँ पर बाजार भी बैंकों से बहुत सहायता नहीं लेते थे। जहाँ तक

होता था, वह स्वय अपनी आवश्यकता पूरी कर लेते थे। फिर, इनमे से प्रत्येक के व्याज की दर उसकी अपनी स्थिति के अनुसार रहती थी और उसमे भी चलन का बड़ा हाथ रहता था। द्रव्य की मॉग और पूर्ति का बहुत कम प्रभाव पड़ता था। इगलिस्तान मे जैसा कि ७वे अध्याय मे बताया जा चुका है कि बैंक दर और व्याज की अन्य दरो का बड़ा घनिष्ठ सबध रहता है, किन्तु भारत-वर्ष मे न तो यह पहले ही था और न अब ही है।

फिर, हम यह भी देख चुके हैं कि विदेशो मे बैंक दर वह दर है जिस पर केन्द्रीय बेंक प्रथम श्रेणी की जमानतो पर ऋण देते है अथवा प्रथम श्रेणी के बिल डिस्काउन्ट करते हैं। किन्तु इम्पीरियल का दर केवल प्रथम प्रकार का ही दर था। हुन्डियॉ डिस्काउन्ट करने के लिये एक दूसरा दर था जिसे डिस्काउन्ट दर कहते थे। यह दर कभी कभी तो बैंक दर से ऊँचा और कभी-कभी नीचा रहता था। बैंक दर सप्ताह मे एक बार निर्धारित होता था और प्राय. उसके बीच मे बदलता नहीं था, किन्तु हुण्डी दर बाजार की दैनिक स्थिति के अनुसार बदलता-बदलता रहता था।

हॉ, रिजर्व बैंक का बैङ्क दर अवश्य ऐसा है जिस पर वह प्रथम श्रेणी की जमानतो पर ऋण देने के लिये तैयार रहता है और साथ ही प्रथम श्रेणी के बिल भी डिस्काउन्ट करता है। यह अवश्य ही अन्य देशों के बैंक दर की तरह है, किन्तु यहॉ स्थिति भिन्न है। हमारे यहॉ बिल तथा हुन्डियॉ बहुत नहीं चलतीं। अतः, उन्हें चलाने के लिये यह आवश्यक है कि डिस्काउन्ट की दर व्याज की दर से भिन्न हो और कुछ कम भी हो। यह प्रचलित प्रथा के विपरीत तो अवश्य होगा किन्तु देश के लिये लाभप्रद होने के कारण अवश्य ही माना जाना चाहिये।

जब रिजर्व बैङ्क खुला था, यह सोचा गया था कि कई कारणों से इसका बैङ्क दर इम्पीरियल बैङ्क के बैङ्क दर की अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली होगा। प्रथम तो सदस्य बैङ्कों को इसके पास अपनी स्थाई तथा चालू जमा का क्रमशः कम से कम ५ प्रतिशत तथा २ प्रतिशत अवश्य बैलन्स के रूप मे रखना पड़ता है और यदि वह ऐसा नहीं कर पाते हैं तो उन्हें कमी पर बैङ्क दर से कुछ अधिक दर के हिसाब से व्याज देना पड़ता है। इससे यह सोचा गया था कि बैंक बैंक दर से नीची दर पर ऋण नहीं देंगे और साथ ही इससे ऊँची दर पर जमा नहीं प्राप्त करेंगे। फिर इन बैङ्को को इससे अपने बिल भुनाने में जरा भी

खुले बाजार में काम करने की नीति

रिजर्व बैंक खुले बाजार में भी काम कर सकता है, अर्थात् देश के व्यापार, व्यवसाय, उद्योग-धन्धों और कृषि के हित में साख नियन्त्रण करने के उद्देश्य से आवश्यकता पड़ने पर बाजार में प्रत्यक्ष रूप से काम कर सकता है। किन्तु ऐसा करने की आवश्यकता अभी तक नहीं पड़ी है। हमें इस सम्बन्ध के नियम तो भली-भाँति समझ लेने ही चाहिये ताकि हमें यह मालूम हो सके कि इनका यह अधिकार अपने उद्देश्य तक पहुँचने में कहाँ तक सफल हो सकता है।

खुले बाजार में काम करने की नीति का प्रभाव इस बात पर निर्भर रहता

है कि केन्द्रीय बैङ्क इस काम के लिये कितने साधन एकत्रित कर सकता है, कितनी और किस तरह की सम्पत्ति वह रख सकता है और जिस बाजार में काम करता है। उसका कैसा सगठन है।

रिजर्व बैङ्क के पास जो साधन हैं वह (१) पूँजी और सुरक्षित कोष (२) सरकार की नकदी, (३) सदस्य बैङ्को की नकदी, (४) बिलो की वसूली और द्रव्य इधर से उधर भेजने के लिये जिस सीमा तक इसका प्रयोग किया जाता है उनके और (५) नोटो के चलाने के हैं। जहाँ तक (१) पूँजी और सुरक्षित कोष का सम्बन्ध है, वह १० करोड़ रुपया है। इम्पीरियल बैङ्क की पूँजी और सुरक्षित कोष इससे अधिक है। हाँ, इसकी पूँजी और कोष भी आवश्यकता पड़ने पर बढाई जा सकती है। जहाँ तक (२) सरकारी नकदी का प्रश्न है, वह तो प्रत्येक वर्ष, माह, दिन बदलती रहती है। उसके पूर्ण धन और समय का खुले बाजार में काम करने की शक्ति पर बड़ा भारी प्रभाव पड सकता है। जहाँ तक (३) सदस्य बैंकों की नकदी का प्रश्न है, वह भी बराबर बदलती रहती है। प्राय बैङ्को को जितनी नकदी इसके पास रखनी चाहिये उससे अधिक वे इसके यहाँ नकदी रखते हैं। किन्तु ऐसा भी होता था कि बैंक कम नकदी रखकर जुर्माना देकर काम चला लेते थे। अत, इधर ऐसे नियम भी बन चुके हैं कि यह बैंक जब चाहे तब ऐसे बैको को अधिक जमा लेने से रोक दे। जहाँ तक (४) का अर्थात् इस बात का प्रश्न है कि बिलो की वसूली तथा द्रव्य इधर से उधर भेजने के लिए इसका कहाँ तक प्रयोग किया जाता है, बैंक ने इधर द्रव्य भेजने की बड़ी सुविधायें दे दी है। किन्तु बिलों के प्रयोग की आदत बढाने का अब भी प्रश्न है। प्राय द्रव्य टी० टी० से भेजा जाता है, दर्शनी ड्राफ्ट कम प्रयोग मे आते हैं। वास्तव मे दर्शनी ड्राफ्टों से ही द्रव्य भेजे जाने पर ही बैंक की खुले बाजार में काम करने की शक्ति निर्भर है और इस समय इस मद में इसके पास उतना द्रव्य नही रहता है जितना कि इस काम मे सहायता पहुँचा सकता है। जहाँ तक (५) अर्थात् नोट निकालने का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि इसके विधान मे इसे काफी लोचप्रद बना दिया गया है।

बैंक के पास जो सम्पत्ति रह सकती है वह निम्नांकित है :—(१) कुछ विदेशी सरकारों के वह साख पत्र जो क्रय के दस वर्षों के अन्दर पकने वाले हों (यह कितने रुपयो के ही रक्खे जा सकते हैं) और (२) भारत सरकार

बैंक के पास जितने भी साख-पत्र रहते हैं अथवा बाज़ार में मिल पाते हैं उतनी ही करन्सी का परिमाण घट-बढ़ सकता है। इस युद्ध में करन्सी इसी लिए बढ़ पाई थी कि स्टर्लिंग और रुपया दोनों के साख-पत्र प्राप्त थे। इसी प्रकार से इन्हें बाज़ार में बेचकर द्रव्य सङ्कुचन भी किया जा सकता है।

अब, हमें उस बाज़ार के विषय में समझना है जिसमें बैंक काम कर सकता है। यहाँ के मुख्य स्टाक एक्सचेंज बम्बई और कलकत्ते के हैं। किन्तु इनके कुल सदस्यों की संख्या लन्दन और न्यूयार्क के स्टाक एक्सचेंज के सदस्यों की संख्या की तुलना में कुछ नहीं है। अतः, इनमें काम करने का उतना प्रभाव नहीं पड़ सकता है। हाँ, यह अवश्य है कि बैंक की बहुत कुछ सम्पत्ति के स्टर्लिंग साख पत्रों में होने के कारण जितने विदेशों में भी काम किया जा सकता है, कुछ कठिनाई कम हो जाती है।

बैलन्स शीट

रिज़र्व बैंक की बैलन्स शीट दो भागों में विभक्त रहती है—(१) नोट विभाग में और (२) बैंकिंग विभाग में। यह साप्ताहिक होती है। नीचे एक नमूना दिया हुआ है —

रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया

(अ) मार्च २५, १९४९

नोट विभाग

(करोड रुपयो मे)

दायित्व		पाउने	
निकाले हुये नोट :—		सोना	४० ०२
बाहर	११६६ ३५	विदेशी साख-पत्र	७४१ ६२
बैंकिंग विभाग मे	२१ ७६		
			७८१ ६४
		रुपये—	
		भारतवर्ष के	४२ ०२
		रुपयो के साख-पत्र	३६७ ४५
		देशी बिल, इत्यादि	.
	११९१ ११		११९१ ११

सोने और विदेशी साख-पत्रो का सम्पूर्ण दायित्व में अनुपात

६५ ६२ प्रतिशत

बैंकिंग विभाग

(करोड रुपयो मे)

पूँजी	५		
सुरक्षित कोष	५	नकद	२१ ८८
जमा—			
(अ) केन्द्रीय सरकार की	१८३ ९३	क्रय किये हुए और डिस्काउण्ट किये हुये बिल—	
(ब) अन्य सरकारो की	२८ ५६	(अ) देशी	० ३८
		(ब) विदेशी	
(स) बैंकों की	५५ ०४	(स) सरकारी ट्रेजरी बिल्स	१ ७५
		विदेशों मे बैलन्स	२०२ ५२
		सरकार के ऋण	
		अन्य ऋण	६ ३६
		विनियोग	१३५ ९७

प्रश्न

(१) रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कैसे हुआ? इससे उत्पन्न परिवर्तन समझाइये।

(२) रिज़र्व बैंक के केन्द्रीय और व्यापारिक बैंकिंग के कार्य बताइये। यह कौन से कार्य नहीं कर सकता है?

(३) रिज़र्व बैंक की स्थापना के पहले कौन कौन से प्रारम्भिक काम करने पड़े थे। इसके दफ्तरों और विभागों के संगठन के विषय में आप जो कुछ जानते हों बताइये।

(४) रिज़र्व बैंक ने अब तक क्या क्या किया है? आपकी समझ में अब इसे क्या करना चाहिये?

(५) आपकी समझ में रिज़र्व बैंक को साख नियन्त्रण के लिए जो अधिकार दिए गए हैं वह काफी हैं या नहीं? इस सम्बन्ध में आपके क्या सुझाव हैं?

(६) रिज़र्व बैंक की एक कल्पित बैलन्स शीट बनाइये और उसकी प्रत्येक मद समझाइये।

अध्याय २०

बैंकिंग विधान

सन् १९४९ के पहले भारतवर्ष में कोई पृथक बैंकिंग विधान नहीं था। हाँ, एक बैंकिंग कम्पनी को एक साधारण कम्पनी से पृथक करने के लिये १९१३ के कम्पनी विधान में कुछ अनुच्छेद अवश्य थे --

(१) जब साझे के साधारण संगठन में साझियों की संख्या २० हो सकती है तब बैंकिंग के संगठन में यह केवल १० ही हो सकती है।

(२) बैंकिंग के काम करने वालों को रजिस्ट्रार के यहाँ अपने काम करने के सभी स्थानों का नाम भेजना आवश्यक है।

(३) बैंकिंग कम्पनी को रजिस्ट्रार के यहाँ नियत समय पर अपनी बैलन्स शीट भेजनी आवश्यक है और उसमें जमानत पर दिये गये ऋण और जमानत के बिना दिये गये ऋण अलग-अलग दिखाना अनिवार्य है।

(४) दूसरा काम करने वाली कम्पनियों का निरीक्षण तो उनके १० प्रतिशत सदस्यों की प्रार्थना पर किया जा सकता है, किन्तु बैंकिङ्ग की कम्पनियों में ऐसा तभी हो सकता है जब कम से कम २० प्रतिशत सदस्यों की ऐसा करने की प्रार्थना हो।

किन्तु देश में यह राय थी कि बैंकिङ्ग के नियन्त्रण के लिये इतना ही यथेष्ट नहीं है। केन्द्रीय कमेटी तो एक विशेष विधान के पक्ष में थी। हॉं, विदेशी विशेषज्ञों ने कुछ संशोधन मात्र करने की ही सलाह दी थी। अत, भारत सरकार ने उन्हीं की राय के अनुसार सन् १९३६ में कम्पनी विधान में निम्न संशोधन किये —

(१) बैंकिङ्ग कम्पनी की एक परिभाषा दी। किन्तु यह संतोषजनक नहीं थी। रिजर्व बैङ्क के कार्यकर्ताओं ने यह शिकायत की थी कि ब्रिटिश भारत में ऐसे बहुत से गैरसदस्य बैंक थे जो उक्त परिभाषा के अनुसार बैंकों की श्रेणी में नहीं आते थे। अत, वह रिजर्व बैंक को वह सूचना नहीं देते थे जिसे देना उनके लिये अनिवार्य कर दिया गया था।

(२) कोई बैंकिङ्ग कम्पनी तब तक रजिस्टर्ड न हो, जब तक वह अपने योजना-पत्र में उद्देश्यों के अन्तर्गत यह न लिख दे कि वह केवल जमा प्राप्त करने के तथा बैंकिङ्ग कम्पनी की परिभाषा में दिये हुये कामों में से कुछ अथवा सब काम ही करेगी, जो कम्पनियॉं पहिले काम कर रही थीं, उन्हें यह विधान पास होने के दो वर्षों के अन्दर ही अपने गैर बैंकिङ्ग के कार्य बन्द कर देने होंगे।

(३) उक्त विधान पास होने के दो वर्षों के बाद से कोई बैंकिङ्ग कम्पनी किसी भी ऐसे मेनेजिङ्ग एजेण्ट द्वारा नहीं चलाई जा सकेगी जो बैंकिङ्ग का काम न करता हो।

(४) कोई बैंकिङ्ग कम्पनी तब तक अपना व्यवसाय नहीं प्रारम्भ कर सकती जब तक कि उसके इतने हिस्से न बिक जायॅं कि उसके पास कम से कम पचास हजार रुपये आ जायॅं। संचालकों को इस सम्बन्ध का एक प्रमाण-पत्र भी देना होगा।

(५) कोई बैंकिङ्ग कम्पनी अपनी अप्राप्त पूॅंजी पर कोई ऋण नहीं ले सकेगी।

(६) रिजर्व बैंक के सदस्य बैंकों को छोड़कर प्रत्येक बैङ्क को लाभ की बॅंटनी करने के पहले उसमें से उस समय तक कम से कम २० प्रतिशत सुर-

[illegible] मे लगाना होगा [illegible] यह [illegible] इसकी प्राप्त [illegible] न हो जाय। [illegible] [illegible] मे [illegible] अथवा [illegible] बैंक [illegible] रिज़र्व बैंक के पास रखना पड़ेगा। [illegible] बैंकिंग कम्पनी [illegible] [illegible] निश्चय विधान [illegible] जायगा।

(७) [illegible] बैंक के [illegible] को रिज़र्व बैंक को अपनी माँग [illegible] देनदारियों का कम से कम ५ प्रतिशत और म्यादी देनदारियों का कम से कम २ प्रतिशत अपने पास रखना आवश्यक होगा। यदि इसका उल्लंघन किया जायगा तो कम्पनी के प्रत्येक डाइरेक्टर कर्मचारी पर जितने दिन तक यह उल्लंघन रहेगा, उतने दिन का प्रतिदिन जुर्माना लगेगा।

(८) कोई बैंकिंग कम्पनी केवल अपनी सहायक कम्पनी को छोड़ कर न तो अन्य कोई सहायक कम्पनी बना सकेगी और न उसके हिस्से ले सकेगी।

(९) यदि कोई बैंकिंग कम्पनी अपना ऋण नहीं दे सकती है तो यदि वह इस बात की प्रार्थना करती है और उसके साथ ही रजिस्ट्रार की रिपोर्ट भी है तो अदालत यह आज्ञा दे सकती है कि कुछ दिनों तक उसके ऊपर कोई कार्यवाई न की जाय। रजिस्ट्रार की आज्ञा बिना भी उसे थोड़े दिनों की छूट दी जा सकती है।

(१०) कोई ऐसा व्यक्ति जिसके ऊपर कम्पनी का ऋण चाहिये उसका आडीटर भी नहीं नियुक्त किया जा सकता। न यदि किसी के आडीटर नियुक्त होने के बाद वह कम्पनी का ऋणी हो जाय तो वह कम्पनी का आडीटर ही रह सकता है। आडीटरों को उस बैठक में भी उपस्थित होने की आज्ञा दे दी गई जिसमें उनके द्वारा आडिट किया हुआ हिसाब रक्खा जाय। ऐसी बैठक मे वह हिसाब के विषय मे बोल भी सकता है। यदि कोई आडीटर विधान मे दिये हुये किसी नियम का उल्लंघन करता है तो उस पर १००) तक जुर्माना लग सकता है।

(११) प्रत्येक कम्पनी को, चाहे वह बैंकिंग की हो अथवा अन्य किसी तरह की, अपने सदस्यों के रजिस्टर के साथ साथ उनकी सूची भी रखनी पड़ेगी।

(१२) जिस एफ (F) फार्म पर कम्पनियों को अपनी बैलन्स शीट तैयार करनी पड़ती है उसमें भी बैंकिंग कम्पनियों के लिये कुछ अधिक ब्योरे भरने पड़ेंगे। लागत के मूल्याकन का ढङ्ग भी लिखना पड़ेगा अर्थात् वह क्रय मूल्य अथवा बाजार मूल्य है। फार्म जी (G) में भी उन्हें अपनी आर्थिक स्थिति के

विषय मे एक विशेष सूचना देनी पडेगी और उसे बैलन्स शीट की लिपि के साथ-साथ दफ़्तर मे दिखलाना पडेगा। विदेशी बैंको को भी फार्म एच (H) मे कुछ सूचनाये देनी पडेगी।

(१३) प्रत्येक कम्पनी सचालक को चाहे वह बैंकिंग की हो अथवा अन्य किसी व्यवसाय के सम्बन्ध की हो, हिस्सो के हस्तावरित करने के आवेदन-पत्रों पर अपनी स्वीकृति की सूचना अधिक-से-अधिक दो मास के अन्दर दे देनी पड़ेगी।

फिर, १९३९ मे रिजर्व बैंक ने कुछ सशोधन पास करने के लिये सुझाव दिये। किन्तु प्रथम सशोधन १९४३ मे पास हुआ। यह रिजर्व बैंक की वह शिकायत दूर करने के उद्देश्य से किया गया जो बैंको के उसे वह सूचना न भेजने के सम्बन्ध की थी जो उन्हे उसके पास भेजना अनिवार्य था। अत, तब से कोई भी ऐसी सस्था जो अपने नाम के आगे 'बैंक' शब्द लगाती थी, बैंक मानी जाने लगी।

सन् १९४४ मे निम्न सशोधन पास हुये :—

(१) कोई बैंकिंग कम्पनी चाहे वह ब्रिटिश भारत मे गठित हुई हो अथवा बाहर किन्तु यदि भारतवर्ष मे काम करती है तो यह विधान पास होने के दो वर्ष बाद किसी मैनेजिङ्ग एजेण्ट द्वारा नहीं चलाई जा सकती। न वह कोई ऐसा व्यक्ति ही रख सकती है जिसका प्रतिफल अथवा जिसके प्रतिफल का कुछ भी अश कमीशन के रूप मे अथवा कम्पनी के लाभ के प्रतिशत के रूप मे देने का निश्चय हुआ हो। न वह किसी से एक बार मे पॉच वर्षों से अधिक तक उसे चलाने का कोई समझौता कर सकती है।

(२) जिस बैंकिग कम्पनी का इस विधान के अनुसार सन् १९४७ की १५ जनवरी को अथवा उसके बाद सगठन हुआ है। वह इस सन् १९४४ के विधान के लागू होने के दो वर्ष बाद ब्रिटिश भारत में उस समय तक व्यवसाय नही कर सकती जिस समय तक वह निम्न शर्तें पूरी नहीं कर देती :—

(१) उसकी क्रीत पूँजी उसकी अधिकृत पूँजी की आधी है और उसकी प्राप्त पूँजी भी उसकी क्रीत पूँजी की आधी है।

(२) उसके हिस्से केवल साधारण हैं अथवा यदि सपक्ष भी हैं तो वह यह सशोधन पास होने के पहिले के हैं।

(३) प्रत्येक हिस्सेदार का मताधिकार उसकी पूँजी के अनुपात मे है।

किन्तु एक पृथक बैंकिंग विधान की आवश्यकता के कारण सन् १९४८ के नवम्बर में एक बैंकिंग बिल यहॉ की व्यवस्थापिका सभा मे रक्खा गया और

(२) और वे लगातार हुण्डी प्रपत्र न निकाल सकें। कुछ बैंक ऐसा करने लग गये थे जिनसे वे करन्सी नोट का काम करते थे।

(३) कोई बैंक, रिज़र्व बैंक की आज्ञा बिना न तो कोई नई शाखा खोल सकेगा और न कोई शाखा बदल सकेगा। रिज़र्व बैंक आज्ञा देने के पहले प्रार्थी बैंक की आर्थिक दशा, व्यवस्था, शाखा की स्थिति लाभ की सम्भावना जन-हित इत्यादि का ध्यान रखेगा।

१९४६ का बैंक बिल १९४७ में केन्द्रीय सभा में आया। किन्तु उसी वर्ष स्वतन्त्रता बिल पास हो गया। अतः सरकार ने एक नया बिल रखने का निश्चय किया जो १९४८ में रक्खा गया और १९४९ में पास हुआ। १९४७ के एक आदेश द्वारा रिज़र्व बैंक को कुछ साधारण जमानतों पर भी ऋण देने की आज्ञा दे दी गई जिससे वह उस समय के सङ्कट में पड़े हुये बैंकों की सहायता कर सकें। किन्तु इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी और यह १९४८ में समाप्त हो गया। इसके बाद फिर यह उसी वर्ष बैंकिंग कम्पनियों के नियन्त्रण सम्बन्धी आदेश में सम्मिलित कर लिया गया। इसमें रिज़र्व बैंक को बैंकों की साधारण तथा किसी भी विशेष बैंक की उधार देने की नीति निर्धारित करने और ऋण का उद्देश्य, उन पर जमानत तथा ब्याज इत्यादि निश्चित करने का अधिकार भी दे दिया गया। साथ ही उसे निम्न अधिकार भी दे दिये गये :—

(१) बैंकों से उनके देने और पाउने की मासिक सूचना और उधार तथा विनियोग के किस्मों की छमाही सूचना मँगाने का अधिकार।

(२) बैंकों को उनके हिस्सों पर ऋण देने अथवा उनके सचालकों को अथवा उन फर्मों तथा निजू कम्पनियों को जिनमें कोई सचालक कोई अपना हित रखता हो, बिना जमानती ऋण देने की मनाही करने का अधिकार।

(३) प्रत्येक बैंक से भारतीय प्रान्तों में उसके देने का कम से कम ७५ प्रतिशत कुछ विशेष पाउनो में रखवाने का अधिकार।

(४) बैंको के एकीकरण के लिये इससे पूर्व आज्ञा प्राप्त करने का अधिकार।

(५) कुछ स्थितियों में बैंकों का इतिकर्ता नियुक्त होने का अधिकार।

१६४६ के विधान में उपर्युक्त बातों के साथ-साथ निम्न बातें भी सम्मिलित हैं :—

(१) भारतवर्ष में काम करने वाले सब बैंको के रिजर्व बैंक से प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का दायित्व।

(२) गैर सदस्य बैंको का उनकी माँग पर देय तथा एक निश्चित अवधि पर देय जमा की उतनी ही प्रतिशत नकदी रखने का जितनी सदस्य बैंको को रखनी पड़ती है और एक मासिक सूचना भेजने का दायित्व।

(३) सब बैंकों के निम्न दायित्व :—

(अ) उपर्युक्त विधान पास होने के दो वर्ष बाद अपनी माँग पर देय और एक निश्चित अवधि पर देय जमा का कम से कम पचमांश नकदी, सोने अथवा भाररहित स्वीकृत सिक्योरिटियों में रखने का दायित्व।

(ब) भारतवर्ष के प्रान्तों और उसके अन्तर्गत रियासतों में उनकी जमा का कम से कम ७५ प्रतिशत रखने का दायित्व।

(४) एक बैंक के संचालक दूसरे बैंक के संचालक न हों और न मैनेजिङ्ग एजेण्ट ही नियुक्त किये जायँ। Please see last chapter for the details & changes

---

अध्याय २१

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

द्वितीय महायुद्ध के समय यह अनुभव हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की उन्नति के लिये प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति आवश्यक है। कुछ राष्ट्र तो पहले ही से पिछड़े हुये थे, कुछ की दशा युद्ध काल में बिगड़ चुकी थी और शेष की युद्ध काल के बाद बिगड़ने की सम्भावना थी। प्रथम महायुद्ध के बाद संसार के देशों की जो स्थिति थी उसकी पुनरावृत्ति होने देना बुद्धिमानी नहीं थी।

जिन्हें आवश्यकता है वे इसी कारणवश उसे प्राप्त कर सकते हैं। बैंक गारण्टी की हुई रकम पर कम से कम १ प्रतिशत और अधिक से अधिक १½ प्रतिशत फीस ले सकता है। कर्ज लेने वाले को ऋण दाता को सूद भी देना पड़ता है।

बैंक ने मई १९४७ में पहले-पहल फ्रान्स को २५ करोड़ डालर का ऋण दिया। फिर बाद में २६ ३ करोड़ डालर का ऋण निदरलैण्ड्स, डेनमार्क, लक्जम्बर्ग और चाइल को मिलाकर दिया। इसके बाद तो यह बराबर दिये जा रहे हैं। इनकी ६½ वर्षों से ३० वर्षों तक के बीच में वापिसी की शर्त है और इन पर २½ से ३½ प्रतिशत तक का ब्याज है। साथ ही एक प्रतिशत का कमीशन है जो एक विशेष कोष में एकत्रित किया जा रहा है। लक्जमबर्ग का ऋण बेल्जियन फ्रैन्क और निदरलैण्ड्स का स्विस फ्रैन्क में था और अन्य ऋण प्राय. संयुक्त राष्ट्र के डालर में हैं। यूरोपीय देशों को पहले जो ऋण दिये गये थे वह उनकी युद्ध के कारण बिगड़ी हुई परिस्थिति ठीक करने के लिये दिये गये थे किन्तु बाद में उन्हें तथा अन्य देशों को भी-ये ऋण वहाँ की विद्युत् शक्ति, यातायात, कृषि और औद्योगिक विकास के लिये दिये गये हैं। भारतवर्ष भी अब तक इस प्रकार के दो ऋण ले चुका है।

बैंक ने संसार के प्रमुख द्रव्य बाजारों में कुछ ऋण भी लिये हैं। इनमें से प्रथम दो तो संयुक्त राष्ट्र के द्रव्य बाजार से लिये गये थे। फिर, अन्य बाजारों से विशेषत स्विस बाजार से लिये गये हैं।

बैंक एशियाई तथा अन्य पिछड़े हुये देशों की बड़ी सहायता कर सकता है।

अध्याय २२

देश का विभाजन और उसका बैंकिंग पर प्रभाव

१५ अगस्त १९४७ को देश का विभाजन हो गया। इसके साथ ही गवर्नर जनरल ने उस वर्ष का पाकिस्तान (द्रव्य प्रणाली और रिजर्व बैंक) आर्डर निकाला जिससे पाकिस्तान की करन्सी और बैंकिङ्ग प्रणाली के पृथक चलाने वाली मशीनरी स्थापित होने तक दोनों देशों में एक ही द्रव्य प्रणाली चलाने

अप्रैल १९४८ से रिजर्व बैंक ने पाकिस्तान सरकार के छपे हुए नोट पाकिस्तान में चलाना प्रारम्भ कर दिया था। इसी दिन से यहाँ पर एक रुपये के नोट तथा अन्य पाकिस्तानी सिक्के भी चलने लगे थे। ये सब सिक्के अब पाकिस्तान ही में विधानतः चालू हैं।

जुलाई १९४८ से स्टेट बैंक आफ पाकिस्तान बन गया। यह सरकार और हिस्सेदारों का मिला हुआ बैंक है। इसकी ३ करोड़ रु० की पूँजी में से ५१% पूँजी तो सरकार की है और शेष हिस्सेदारों की है। इसका प्रबन्ध दस सञ्चालकों के एक सञ्चालक मण्डल द्वारा किया जाता है, जिनमें से एक गवर्नर कहलाता है, छः सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं और तीन कराची, लाहौर तथा ढाका के स्थानीय मण्डलों की ओर से एक एक करके आते हैं। इसके भी रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ही की तरह के तीन स्थानीय मण्डल हैं। उसके दफ्तर कराची, लाहौर, ढाका चटगाँव और पेशावर में हैं। कराची और लाहौर में तो रिजर्व बैंक के पहले से ही दफ्तर थे। ढाका में रिजर्व बैंक ने पाकिस्तानी सरकार की प्रार्थना पर अप्रैल १९४८ से एक दफ्तर खोल लिया था। अतः, ये तीनों दफ्तर स्टेट बैंक आफ पाकिस्तान के दफ्तर बन गये। बाद में दो अन्य दफ्तर भी खुले। जुलाई १९४८ से यह बैंक पाकिस्तानी नोट निकाल और अन्य कार्य कर रहा है।

रिजर्व बैंक आफ इंडिया ने अप्रैल १९४८ से जून १९४८ तक में ५१·५७ करोड़ रुपयों के पाकिस्तानी नोट निकाले थे। अतः, स्टेट बैंक आफ पाकिस्तान की स्थापना पर यह सब नोट उक्त बैंक के दायित्व मान लिए गए और रिजर्व

बैंक नोट विभाग के इसी मूल्य के पाउने उसे दे दिए गए। दिए जाने वाले पाउनों मे ३ ३२ करोड रुपयों के एक एक रुपये के पाकिस्तानी नोट और सभी मुद्रायें भी थीं। भारत सरकार के पाकिस्तान में चलने वाले नोट तब से बराबर पाकिस्तान मे एकत्र करके रिजर्व बैंक को वापिस दिये और उनके स्थान पर उससे उसके अन्य पाउने लिए जा रहे हैं।

बैंकिंग विभाग के पाउनों में से भी लगभग १२० करोड़ रुपये के पाउने जो पाकिस्तानी सरकारो और बैंकों के उसके पास बैलन्स थे वे स्टेट बैंक आफ पाकिस्तान को हस्तान्तरित कर दिए गये। इनमे अधिकाश स्टर्लिङ्ग के रूप में थे।

पाकिस्तान स्थित बैंको का नियन्त्रण स्टेट बैंक आफ पाकिस्तान के हाथ मे है। उसके भी सदस्य तथा गैर सदस्य बैंक और उनके भी दायित्व तथा अधिकार हैं। यद्यपि वह बैंक भी रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ही की तरह काम करता है तो भी अभी हमारे पास उसके सम्बन्ध की पूरी सूचनायें नहीं हैं।

यहाँ पर देश के विभाजन के उपरान्त पजाब और दिल्ली मे जो हिन्दू-मुस्लिम दगे हुए उनसे बैंको की जो हानि हुई उसका भी सकेत कर देना आवश्यक मालूम पड़ता है। बैंको ने विभाजन के पहले ही पंजाब, इत्यादि से प्राय अपने बहुत से पाउने हटा दिए थे। वहाँ पर उन्होने अपनी लागतें भी कम लगा रक्खी थीं। जिनके प्रधान दफ्तर वहाँ थे उन्होने उन्हे दिल्ली हटा लिया था। किन्तु तो भी दगों का बडा बुरा प्रभाव पड़ा। लोगों की सम्पत्ति लुट गई। लाखा व्यक्ति भारत से पाकिस्तान और पाकिस्तान से भारत चले आये। उनकी अधिकाश सम्पत्ति वहीं रह गई। जिनकी बैंकों मे जमा थी उन्होंने तो वह दूसरे राज्य मे भी जाकर माँगी किन्तु जिनके ऊपर कर्ज था उनका पता ही नहीं लगा। कर्जदारों की सम्पत्ति लुट गई थी। ऐसी स्थिति म सचमुच बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो गई। किन्तु बैंको को मदद दी गई। जमा लौटाने के सम्बन्ध में उन्हें समय दिया गया। उन्हें ऋण भी दिया गया है। फिर शरणार्थियो की सम्पत्ति के सम्बन्ध में दोनों सरकारों के बीच म समझौते भी हो रहे हैं। जो हो, स्थिति का बहुत ही उचित ढङ्ग से मुकाबला किया गया।

भविष्य में भारत और पाकिस्तान के बीच में आर्थिक सहयोग आवश्यक होगा। दोनो में बैंकिङ्ग की एक ही सी स्थिति है वरन् पाकिस्तान को भारतीय बैंकों का सहारा और उनसे सबक लेना पड़ेगा।

—

अध्याय २३

दोष और भविष्य

पिछले अध्यायों में भारतीय बैंकिंग के क्रमिक विकास का दिग्दर्शन कराया गया है। अतः इस अध्याय में हम उसके दोष और भविष्य का अध्ययन करेंगे।

एक अच्छे संगठित द्रव्य बाजार की कमी—भारतवर्ष के द्रव्य बाजार में निम्न संस्थायें हैं :—रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया, इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया, सम्मिलित पूँजी के भारतीय बैंक, विनिमय विदेशी बैंक, साख सम्बन्धी सहकारी संस्थायें, भूमि-बन्धक बैंक, डाक दफ़्तर, निधि, चिट फन्ड, और ऋणदाताओं से लेकर अनेक प्रकार के देशी महाजन जिन्हें बैंकर्स भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ दिनों पहले तक सरकार भी काफी भाग लेती थी। निस्सन्देह उसकी नीति तो अब रिज़र्व बैंक के हाथ में है किन्तु आज भी उसके डाकघर हैं जो बैंकिंग का काफी काम करते हैं। यह बचत और लागत के लिए जो कुछ करते हैं, उसका अध्ययन तो हम कर चुके हैं। उसके अतिरिक्त वे द्रव्य इधर से उधर भेजने की और वी० पी० से इसकी वसूली करने की सुविधा भी देते हैं।

रिज़र्व बैंक की स्थापना के पहले इन सब के बीच में किसी प्रकार की साम्यता नहीं थी। उन्हें एक नेता की भी आवश्यकता थी। रिज़र्व बैंक की स्थापना से यह कठिनाइयाँ तो कुछ अंशों तक दूर हो गई हैं। उसका आधुनिक बैंकों पर पूर्ण नियन्त्रण है। इधर युद्ध काल में और विशेषतः १९४९ के बैंकिंग विधान के पास हो जाने के बाद से तो यह बहुत ही दृढ़ हो गया है। किन्तु इसके अतिरिक्त डाक दफ़्तर, चिट फंड, निधि और ऋणदाताओं सहित बहुत से देशी महाजन हैं जिनके ऊपर इसका बिल्कुल भी नियन्त्रण नहीं है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि द्रव्य का भारतीय बाजार दो संगठन मिलाकर बना है—एक आधुनिक बैंकों का और दूसरा देशी महाजनों का और इनमें से आधुनिक बैंकों का संगठन रिज़र्व बैंक के नियन्त्रण में है किन्तु देशी महाजन बिल्कुल स्वतन्त्रतापूर्वक काम करते हैं। जहाँ तक इनकी पारस्परिक साम्यता का प्रश्न है, वह भी आदर्शरूप में नहीं है।

यह दोष दूर करने के लिए पहले ही कुछ सुझाव रक्खे जा चुके हैं। इसमें

देशी महाजनों को रिजर्व बैंक से सम्बन्धित करना, और भिन्न-भिन्न वर्गों मे साम्यता उत्पन्न करना सम्मिलित हैं।

बिल बाजार न होना

यहाँ के द्रव्य बाजार का एक अन्य दोष बिल बाजार न होना है। इसके निम्न कारण हैं।

(१) भारतवर्ष के बैंक सरकारी साखपत्रों मे लागत लगाना अधिक पसद करते हैं। रिजर्व बैंक की सस्थापना के पहले उन्हें यह विश्वास ही नहीं था कि इम्पीरियल बैंक उनकी हुण्डियाँ डिस्काउण्ट कर देगा। उसने उनका कोई स्तर तो नहीं रक्खा था और किसी भी हुन्डी को स्तर के अनुसार नहीं है, कह करके डिस्काउण्ट करने से इनकार कर देता था। फिर बैंक स्वय भी उससे हुडियाँ डिस्काउण्ट कराने के स्थान पर सरकारी साख-पत्रो के अधिकार पर ऋण लेना अधिक पसंद करते थे क्योंकि हुण्डियों के भुनाने में उन्हें इस बात का डर रहता था कि इम्पीरियल बैंक उनके ग्राहकों का नाम जान जाने के बाद उनके प्रतिद्वन्द्वी होने के नाते कहीं लाभ न उठा ले। इसके अतिरिक्त यदि इम्पीरियल बैंक सरकारी साख पत्रों के आधार पर ऋण देना मना कर देता था अथवा वही इसके लिये इम्पीरियल बैंक के पास नहीं जाना चाहते थे तो इन्हें बाजार मे बेचा जा सकता था। हाँ, रिजर्व बैंक की सस्थापना से अब यह सब कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं, किन्तु पुरानी प्रथा तो चल ही रही है। ऐसा विशेषतः इसलिये है कि रिजर्व बैंक ऋण देने मे और बिल डिस्काउण्ट करने में एक ही दर चार्ज करता है। ऋण देने में डिस्काउण्ट करने की अपेक्षाकृत कुछ ऊँची दर चार्ज करने से डिस्काउण्ट करने का काम बढ सकता है। बैंक दर यहाँ पर केवल डिस्काउण्ट दर होना चाहिये।

सरकारी साख-पत्रों की लोकप्रियता का एक अन्य कारण उनके द्वारा काफी ऊँची आय मिलना भी था। किन्तु अब ऐसा नहीं है।

(२) माल के अधिकार पत्र चालू न होने के कारण यहाँ पर व्यापारिक बिलों और सहायक बिलों के बीच मे भेद करना असम्भव सा हो जाता है। इसके लिये गोदाम होने चाहिये और गोदामों की रसीदे हस्तातरित करके माल की बिक्री होनी चाहिये जिससे उनके सम्बध के जो बिल हों उनके सुबूत के लिये यही गोदामों की रसीदें रहे। ऐसा करने से व्यापारिक बिलों और सहायता के लिये किये गये बिलों में भेद किया जा सकेगा।

(३) नकद साख की प्रणाली चालू होने से भी बिलों की कमी हुई है। ऋण का यह रूप भी बैंक और ऋण लेने वाले दोनों की दृष्टि से अच्छा है। किन्तु बिलों के और अधिक लाभ हैं, अतः इनका नकद साख की अपेक्षा अधिक उपयोग में लाना चाहिये।

(४) पहले यह बिल इसलिये भी पसन्द नहीं किये जाते थे कि इन पर स्टाम्प ड्यूटी बहुत लगती थी, किन्तु अब तो यह दोष दूर कर दिया गया है।

(५) बिल तो विदेशी हैं। अतः, इनमें विदेशी भाषा का प्रयोग होने के कारण ये यहाँ पर अधिक लोकप्रिय हो ही नहीं सकते। हमारे यहाँ विदेशी भाषा जानने वाले लोग तो बहुत कम हैं। किन्तु हुण्डी तो यहाँ पर बहुत दिनों से चालू है। हाँ, इसकी इबारत इतनी कठिन है कि उसे याद रखना कुछ मुश्किल अवश्य है। उसे कुछ सादी बना देना चाहिये। फिर, इनके सम्बन्ध में अच्छा अधिकार देने वाले पुर्जों का विधान अवश्य लागू है, किन्तु स्थानीय चलन का भी अधिक महत्व है। अतः इनके भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न होने के कारण इनका सर्वथा एकीकरण हो जाना आवश्यक है।

(६) विदेशी व्यापार के कारण जो बिल उत्पन्न होते हैं वे प्रायः स्टर्लिङ्ग में होते हैं। यदि यह यहाँ की करंसी में हों तो यहाँ पर एक बिल बाजार बन जाय।

(७) यहाँ पर इंगलिस्तान की तरह पर बिलों पर स्वीकृति देने वाली कोठियाँ नहीं हैं। बैंक भी अपने ग्राहकों की ओर से बिल नहीं स्वीकार करते। यदि यह व्यवसाय बढ़ाया जाय तो भी यहाँ पर बिल बाजार अवश्य बन जाय।

(८) अन्य देशों में कृषि सम्बन्धी बिलों का भी प्रयोग होता है। इन्हें सम्भावित बिल (Anticipatory bills) कहते हैं, और यह अमेरिका में बहुत प्रयोग में लाये जाते हैं। अतः, यह यहाँ भी प्रयोग में आ सकते हैं। सहकारी गोदाम समितियाँ भी स्थापित की जा सकती हैं, जो कृषकों को उनका सदस्य होने पर उपज के ऊपर ऋण दे सकती हैं। इसके लिये ये समितियाँ उन पर (कृषकों पर) बिल कर सकती हैं। फिर, ये समितियाँ उन्हें जिले की सहकारी संस्था से और वे उन्हें सम्मिलित पूँजी वाले बैंकों से अथवा रिजर्व बैंक से भुना सकती हैं। जिस तरह से सहकारी समितियाँ बिलों का प्रयोग कर सकती हैं, उसी तरह से ऋण देने वाले महाजन भी उनका प्रयोग कर सकते हैं।

करन्सी की इकाई पर अविश्वास

भारतीयों का अपनी करन्सी की इकाई पर विश्वास नहीं है। जहाँ तक हो सकता है वह अपनी बचत सोने, चाँदी तथा भूमि की सम्पत्ति मे रखते हैं। इसके कई कारण हें। प्रथम तो उनका यह अनुभव है कि यहाँ की करन्सी का मूल्य मनमाना कर दिया जाता हे। देश के अन्दर तो यह परिवर्तित हो ही नहीं सकती और इसका मूल्य दिन पर दिन गिरता ही जाता है। फिर, यहाँ के भूमिपति बडी मान-मर्यादा की दृष्टि मे देखे जाते थे। इनका बडा प्रभाव है। हमारी स्त्रियों को भी गहनों का बडा शौक है। इसका एक आर्थिक कारण भी है। हमारे यहाँ विधवाओ को केवल उनका स्त्री धन छोडकर जिसमे केवल उनका गहना ही रहता है और किसी धन पर अधिकार नहीं है। बैंक बैलन्स और सब सास-पत्र मर्दों के ही होने हैं, स्त्रियों को उनका उत्तराधिकार नहीं मिलता।

किन्तु अब स्थिति बदल रही है। जमींदारी प्रथा नष्ट हो रही है। स्त्रियों को भी उत्तराधिकार दिया जाने वाला है। अत, स्थिति सुधरने की आशा है।

बैंकों पर अविश्वास

बैंको पर अविश्वास स्थाई और अस्थाई दोनों हो सकता है। पश्चिमीय देशो में भी अविश्वास है, किन्तु वह केवल सकटकाल के ही समय रहता है। भारतवर्ष मे वह स्थाई भी है और ऐसे समय मे भी हो जाता हे। हाँ, इसमें सदेह नहीं कि सकटकाल के लिये जो रक्षा के उपाय किये जाते हैं उनसे दैनिक रक्षा और दैनिक रक्षा के लिये जो उपाय किये जाते हैं, उनसे सकटकाल के समय की रक्षा होती है। किन्तु सुविधा के विचार से इनका अध्ययन अलग-अलग ही किया जाना चाहिये।

स्थाई अविश्वास तो बैंकों के लगातार फेल होने से उत्पन्न हो जाता है। कोई भी ऐसा वर्ष नहीं होता जब कुछ बैंक फेल न होते हों, किन्तु इनका यहाँ पर उतना अधिक महत्व नहीं है जितना उन देशों में है जहाँ की बैंकिंग प्रणाली बहुत उन्नत अवस्था को पहुँच चुकी है, अथवा बैंकिंग अथवा कम्पनी विधान अधिक सख्त है। सन् १६३६ के भारतीय कम्पनी विधान के सशोधन के पहले बैंक शब्द की कोई ऐसी परिभाषा नहीं थी कि वह केवल अच्छी संस्थाओं के नाम के साथ ही लग सकता। अत., बहुत सी सन्देहयुक्त सस्थाये भी बैंक कहलाती थीं और उनके फेल होने से बैंक का फेल होना समझा जाता था। तब से बैंक की परिभाषा बन गई है और उसकी पूँजी कम से कम

पन्ना। इसका मात्रा होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उनका इतना ही सुरक्षित कोष भी होना चाहिए। किन्तु पुराने [illegible] पैसे ही चल रहे हैं। [illegible] जो बैंक फेल हुये हैं उनकी जाँच करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि उनमें से अधिकांश इसी तरह के बैंक थे। अतः भविष्य में कम बैंक फेल होंगे, इस सम्बन्ध में [illegible] नहीं है। एक तो प्रायः नये बैंक ही फेल होते हैं। यदि कोई बैंक बहुत दिनों तक चल जाता है तो वह भी उसके अच्छे प्रबन्ध का प्रमाण हो जाता है। दूसरे, यह कि प्रायः थोड़ी ही पूँजी के [illegible] बैंक होते हैं और जब ऐसी आशा की जाती है कि सभी बैंकों की पूँजी और उनका सुरक्षित कोष एक लाख से कम न होगा तो उनका फेल होना भी कम हो जायगा।

अब हम यह देखेंगे कि प्रायः बैंक क्यों फेल हुए, जिससे इन्हें रोके जाने के लिए उपाय मिल जायें।

एक तो बैंक प्रायः कानून ढीले होने के कारण, जनता की अज्ञानता के कारण और बुरे तथा बेईमान प्रबन्धकों के कारण फेल हुये हैं। इसके जो बैंक शिकार हुये हैं उनमें पूना बैंक, पूना, अमृतसर नेशनल बैंक, अमृतसर; हिन्दुस्तान बैंक, मुलतान, शिवगम प्रथ्यर बैंक, मद्रास, पायनियर बैंक, बम्बई और क्रेडिट बैंक आफ इण्डिया जो क्रमशः १९२८, १९२३, १९१४, १९३२ १९१६ और १९१३ में फेल हुये थे विशेष तौर पर उल्लेखनीय हैं। क्रेडिट बैंक आफ इण्डिया के व्यवस्थापक ने अपनी नियुक्ति के समय संचालकों से अपनी बैंकिङ्ग और एकाउटेन्सी की अनभिज्ञता दिखलाते हुये एक मजबूत कमेटी बनाने की माँग रक्खी थी। बैंक फेल होने तक भी जैसा कि उसने स्वयं कहा था, उसने कुछ भी नहीं सीखा था।

यह कमी कानूनन दूर की जा सकती है जिसकी आवश्यकता यहाँ पर सन् १९१३-१४ के संकटकाल के समय से ही प्रतीत होने लगी थी। किन्तु यह केवल १९३६ में ही अंशतः अभी १९४९ ही में पूर्णतः पूरी हो सकी। नये विधान में विशेषतः इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि जनता बैंकों के अज्ञान तथा बेईमान संस्थापकों से बच सके। यदि संचालक अथवा व्यवस्थापक और आडीटर गलत बात कहते हैं तो कई परिस्थितियों में वह जुर्म करते हैं। फिर, उनके ऊपर द्रव्य के गलत उपयोग का, गलत तरीके पर रोक रखने का और अमानत में खयानत करने का जिसमें कोई काम करके अथवा न करके कर्तव्य विमूढ होने का अपराध भी सम्मिलित है, अपराध लग सकता है। गलत हिसाब रखने पर भी सजा देने का नियम रक्खा गया है।

दूसरे, बहुत से बैंक इसलिये भी फेल हुये हैं कि उन्होंने बैंकिङ्ग के कोष से उद्योग धन्धों को भी आर्थिक सहायता दी थी। इनमें से लाहौर के पिंडपिल बैंक और अमृतसर बैंक और टाटा इन्डस्ट्रियल बैंक के नाम जो क्रमशः सन् १६१३, १६१४ और १६२३ मे फेल हुये थे, विशेष उल्लेखनीय हैं। वस्तुत भारतवर्ष मे लोग जर्मनी और जापान के तरीके पर सम्मिलित बैंको के पक्ष मे हैं, किन्तु यहाँ पर यह इसलिये सम्भव नहीं है कि यहाँ की बैंकिङ्ग की प्रणाली अंग्रेजी बैंकिङ्ग प्रणाली के सदृश्य विकसित हुई है और उसकी यह विशेषता है कि व्यापारिक बैंकिङ्ग और औद्योगिक बैंकिङ्ग अलग-अलग ही रहें। हाँ, कुछ बड़े बैंक विशेष आशा से यह काम करे, तो कोई हर्ज नहीं है।

तीसरे, बहुत से बैंक इस कारण भी फेल हुये हैं कि उनके अफसरों ने सट्टेबाजी मे भाग लिया था। ऊपर के कुछ बैंक इसलिये भी फेल हुये थे, किन्तु इडियस स्पेशी बैंक के सन् १६१४ मे फेल होने का यही एक कारण था। बैंक के प्रारम्भ से ही इस बात की खबर थी कि बैंक सट्टेबाजी मे फॅसा हुआ था, किन्तु यह कहा जाता था कि यह गलत है और छिपाया जाता था। श्री चुन्नीलाल सरैय्या जो बैंक के व्यवस्था सचालक थे और जिनका नाम इससे सम्बन्धित था, बहुत ही चतुर व्यक्ति थे। वह ऊपरी सजावट मे होशियार थे और वर्ष के अन्त मे अच्छी बैलन्स शीट दिखला देते थे। किन्तु अन्त में एक साधारण हिस्सेदार ने जिससे इनकी वैयक्तिक शत्रुता कही जाती थी, इसके भग करने की प्रार्थना हाईकोर्ट में दी। पहले तो हिस्सेदारो और सचालकों ने इसका विरोध किया और सब ठीक मालूम पड़ने लगा, किन्तु फिर श्री चुन्नीलाल का यकायक हृदय की गति रुक जाने से देहान्त हो गया और सचालको ने स्वेच्छा से बैंक की प्रतिक्रिया करने के लिए प्रार्थना पत्र भेज दिया, बाद की जाँच से आरोप ठीक ही निकला।

चौथे और अन्तिम, प्राय. बैंक इस कारण भी फेल हुये हैं कि जनता का मत किसी न किसी समय उनके विरुद्ध हो गया। उन्हें तो अभाग्य का शिकार ही समझना चाहिये। इनमे से एक तो मेरठ का बैंक आफ अपर इंडिया था जिसकी रजिस्ट्री सन् १८६३ में हुई थी। यह सन १६१४ तक बराबर उन्नति दिखलाता रहा, किन्तु उस वर्ष यकायक फेल हो गया। इसके जमा करने वालों और हिस्सेदारों दोनों को पूरा रुपया मिला। दूसरा, शिमला का अलायंस बैंक था। सन् १८७४ में सस्थापित होकर यह सन् १६२३ तक काम करता रहा, किन्तु उस वर्ष फेल हो गया। इसे तो इस कारणवश बुरे दिन देखने पड़े कि

बोल्टन ब्रदर्स ने जो इसके लन्दन के आढ़तिया थे, इसके १५० लाख रुपये जो उनके ऊपर चाहिये थे, नहीं दिये। इसके एक दूसरे आढ़ती अर्थात् [illegible] इस्ट आफ इण्डिया की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। [illegible] ने अपनी सन् १९२० की रिपोर्ट में यह बात साफ कह दी थी। परन्तु, बोल्टन ब्रदर्स वाली खबर फैलते ही जमा निकलनी प्रारम्भ हो गई और बैंक बन्द हो गया। इस सम्बन्ध में ट्रावनकोर नेशनल क्विलन बैंक का भी फेल होना उल्लेखनीय है। इसने सन् १९३८ में भुगतान देना बन्द कर दिया। भुगतान के समय इसकी स्थिति वैसी ही थी जैसी उस समय थी जब दो वर्ष पहले ट्रावनकोर नेशनल बैंक और क्विलन बैंक दोनों एक हुये थे। इन दोनों बैंकों का पहले का इतिहास बहुत ही उज्ज्वल था। फिर, रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद इसका इस प्रकार फेल होना कुछ ठीक नहीं था और विशेषकर इसलिये कि यह उसका एक सदस्य बैंक था। रिजर्व बैंक ने इसकी सहायता क्यों नहीं की, यह तो पहले ही बताया जा चुका है। [illegible] भी फेल हो गया है। इसे सरकार ने जमा प्राप्त करने की मनाही कर दी थी। अतः जनता का इस पर से विश्वास उठ गया और वह जमा निकालने लगी और बैंक फेल हो गया। किन्तु अब तो रिजर्व बैंक प्रायः बैंकों की सहायता करता है। १९४६ के बंगाल के और फिर १९४७ के पंजाब के संकट के समय इसने बहुत से बैंक फेल होने से बचाये।

अब हम फिर बैंकों के प्रति जनता के अविश्वास के कारणों की ओर आते हैं। उनके लगातार फेल होने के साथ साथ इसके अन्य कारण भी हैं। एक तो एक अच्छा बैंकिंग विधान न होने से भी बड़ी हानि होती है। अच्छे बैंकिंग विधान से जनता का कई प्रकार से विश्वास बढ़ जाता है। प्रथम तो इसके कारण अच्छी व्यवस्था रहती है और शक्ति के साथ-साथ उसके दुरुपयोग की कम सम्भावना होती है। इस सम्बन्ध में इधर सन् १९३६ का कम्पनी विधान और १९४९ का बैंकिंग विधान पास करके जो कुछ भी किया गया है, उसका उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है। दूसरे, इससे हिसाब की ठीक विज्ञप्ति भी हो जाती है। भारतीय कम्पनी विधान में बैलन्स शीट का एक रूप दिया हुआ है, जिसके अनुसार सब कम्पनियों को अपनी बैलन्स शीट बनानी पड़ती है। हाँ, बैंकों को कुछ विशेष बातें दिखानी पड़ती हैं। किन्तु यह असंतोषजनक ही है। उनके लिए तो बैलन्स शीट का एक पृथक रूप ही होना चाहिये। ऊपर जिन विधानों का उल्लेख किया गया है, उन्होंने भी ऐसा न किया। हाँ, पुरानी बैलन्स-शीट में कुछ सुधार अवश्य कर दिये।

जब बैलन्स शीट मे कुछ सूचनाये नही रहतीं तो उसके कई प्रभाव पडते हैं। प्रथम तो जो बैंक अच्छे हैं उनकी अच्छी स्थिति का पता नहीं लगता। दूसरे, बुरे बैंकों के सम्बन्ध मे अनभिज्ञ जनता को कुछ नहीं मालूम हो पाता। तीसरे, उपयुक्त अक नहीं प्राप्त हो पाते। चौथे और अन्तिम यह है कि अन्तिम लेखो के सम्बन्ध मे कोई सदृश्यता न होने से तुलना करने मे कठिनाई पड़ती है। उपर्युक्त के अलावा बैकिङ्ग के कानून का यह ध्येय होता है कि उन्हे जब कठिनाइयाँ पड़े तब उन्हे वह दूर कर दे। वे जमा करने वाले की रक्षा करते हैं और यह कई प्रकार से हो सकती है। ऐसा इसलिए ही नही किया जाता कि इन लोगो की रक्षा का अधिकार अन्य व्यापारियों के लेनदारो की रक्षा के अधिकार से अधिक है, बल्कि इसलिए कि किसी बैंक के फेल होने से अन्य व्यापारियों पर भी बडा बुरा प्रभाव पड़ता है।

सकट के समय जो अविश्वास पैदा हो जाता है, उसे दूर करने के लिए बहुत से सुझाव रक्खे जा चुके हैं। प्रथम तो सरकार को उस समय बैंकों की सहायता करनी चाहिये। किन्तु भारत सरकार इस सम्बन्ध मे बराबर हिचकिचाती रहती थी। इसका मुख्य कारण यही था कि वह विदेशी थी। सन् १९१३-१४ के बैंकिङ्ग के सकटकाल मे यद्यपि जनता बहुत कुछ कहती रही, किन्तु इसने कुछ भी न किया। हॉ, उस समय वाइसराय ने यह अवश्य कहा था कि यदि कुछ करने की आवश्यकता पडी तो वह कुछ ही बैंको के सम्बन्ध में की जायगी और उसी समय के लिए होगी। सन् १९२३ मे जब अलायन्स बैंक ने भुगतान करना बन्द कर दिया तब उसने इम्पीरियल बैंक को इस बात का आदेश दिया कि वह उसका काम अपने हाथ मे ले ले और उसके चालू खातों और बचत खातों पर ५० प्रतिशत फौरन दे दे और इस तरह से उसके एक प्रधान कर्मचारी ने जो दस वर्ष पूर्व कहा था, उसे पूरा किया। जिन कारणों से यह किया गया था, वह भी बडे मार्के के थे। पहिले तो अर्थ सचिव ने यह कहा था कि यह इसलिए किया गया था कि अग्रेजी और भारतीय द्रव्य बाजारों मे उस समय जो अच्छी स्थिति थी वह वैसी ही बनी रहे, जिससे सरकार को ऋण लेने मे सुविधा रहे और साथ ही उसके अच्छे बजट के कारण जो अच्छा प्रभाव पड़ा था वह भी बना रहे। किन्तु बैंक के चालू और स्थायी खातो की जमा केवल ७ करोड़ रु० थी। अत, इतने का हित बचाकर उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति करने की बात बडी विचित्र थी। अत, यह बात समझ कर फिर उन्होंने यह कहा कि यह इसलिए किया गया था कि यह भारतीय अर्थ

और बैंकिंग के हित के लिए बहुत ही आवश्यक था और इससे अन्य अग्रे-न्तों को जो असुविधा होती, वह रुक गई। अतः, इस तरह से अनजाने में ट्रावनकोर सरकार की जिम्मेदारी बढ़ा दी। किन्तु वहाँ के लोगों ने दूसरी ही बात सोची। उनका यह ध्यान था कि यह ट्रावनकोर बैंक के अधिकांश ग्राहकों के ट्रावनकोर होने के कारण उनके हित की रक्षा के लिए किया जा रहा था। इस बात की परीक्षा का समय सन् १९३८ में ट्रावनकोर बैंक के फेल होने के समय आया, किन्तु इस सम्बन्ध में इसने कुछ नहीं किया। हाँ, यह कहा जा सकता है, उस समय तक स्थिति बहुत कुछ बदल गई थी। प्रान्तीय सरकारों के अधिकार बढ़ाये जा चुके थे। अतः, इस सम्बन्ध की जिम्मेदारी उनकी हो गई थी। इस सम्बन्ध में मद्रास सरकार ने जो कुछ किया वह प्रशंसनीय था। ट्रावनकोर बैंक की अधिकांश शाखायें उसी प्रान्त में थीं। अतः जो कुछ किया गया, वह स्वाभाविक ही था। जब बैंक के ऊपर सङ्कट आया तभी मद्रास सरकार ने रिज़र्व बैंक से सम्मति ली और इससे जाँच कराने के लिए कहा गया। किन्तु यह समय जाँच का नहीं था। फिर, प्रधान मंत्री ने जनता से शान्ति रखने की अपील की और कहा कि वह अफवाहों में विश्वास न करे। उन्होंने यह भी घोषित किया कि अन्य बैंकों की भी जाँच की जायगी और कोई गड़-बड़ी नहीं होगी। इसके दो महीने बाद उन्होंने यह विज्ञप्ति निकाली कि वहाँ के सदस्य बैंक की स्थिति बहुत अच्छी है और जिन लोगों ने रिज़र्व बैंक से सहायता ली थी, उन्होंने भी उसे वापिस कर दिया है और यदि आवश्यकता पड़ेगी तो रिज़र्व बैंक फिर उनकी सहायता करेगा। यह सचमुच बड़े मार्के की बात थी। किन्तु जब कोई ऐसा बैंक है कि जिसकी शाखायें सारे भारतवर्ष में फैली हुई हैं तब तो केन्द्रीय सरकार को बढ़ना पड़ेगा। सन् १९४६ में बंगाल में और १९४७ में पंजाब में जब बैंकों के ऊपर सङ्कट पड़ा तब इस सम्बन्ध में रिज़र्व बैंक और भारत सरकार ने जो कुछ किया, वह भविष्य के लिए आशा उत्पन्न करता है।

इसके अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक भी बहुत कुछ स्थिति सुधार सकता है। अब वह कहाँ तक ऐसा कर सकता है, इसके विषय में भी पहले ही बताया जा चुका है। पहले हमारे देश में कोई केन्द्रीय बैंक नहीं था। किन्तु यह कमी रिज़र्व बैंक की संस्थापन से दूर हो गई है। हाँ, जैसा कि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है, इस बैंक ने सन् १९३८ में ट्रावनकोर नेशनल एण्ड क्विलन बैंक की कुछ भी सहायता नहीं की। किन्तु १९४७ में पंजाब के सङ्कट काल में

इसने जो कुछ किया है उससे हम आशा करते हैं कि भविष्य मे यह बराबर बैंकों की मदद करतार हेगा।

तीसरे, पत्रों और जनता की सम्पत्ति का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। सन् १९३१ के सयुक्त राज्य के आर्थिक सकट के समय उन्होंने यहाँ के जमा करने वालों मे एक देश प्रेम की लहर पैदा करके, उनमे जो शात विश्वास पैदा कर दिया था, वह बहुत ही प्रशसनीय था। किन्तु इसके विपरीत सयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में इगलैण्ड के संकट के बाद जब सकट पड़ा तब वहाँ के पत्रो और जनता ने इसके विपरीत किया। भारतवर्ष मे भी यही बात होती थी। किस्तानी और अग्रेजी पत्र यहाँ के सम्मिलित पूँजी वाले बैंकों के विषय मे बराबर झूठी अफवाहें उडाते रहे हैं। एक समय था जब यह पजाब के मुख्य बैंक सस्थापक लाला हरिकिशनलाल के विरुद्ध ऐसा किया करते थे। फिर जनता यहाँ आसानी से घबड़ाई जा सकती है। सेन्ट्रल बैंक के शत्रुओं द्वारा उडाई अफवाहों के कारण उस पर बराबर आक्रमण होते रहे किन्तु वह उन्हे बराबर सँभालता रहा। किन्तु अब भविष्य में स्थिति सुधारने की आशा की जा सकती है।

अतिम बात यह है कि बैंक स्वय इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कर सकते हैं। उन्हें गम्भीर परिस्थिति के कारणों से बराबर अपनी रक्षा का उपाय करते रहना चाहिये और उसका प्रभाव कम कर देना चाहिये। यह वह अपने सम्बन्ध मे अधिक प्रकाशन करके कर सकते हैं। वे जमा करने वालों के प्रतिनिधियो को अपने संचालक मडल में लेकर उनमें विश्वास की मात्रा पैदा कर सकते हैं। चुनाव करने का अधिकार उन्हीं लोगों को दिया जा सकता है, जिनका एक औसतन न्यूनतम बैलन्स रहता है और ऐसे लोगों की सूची दो या तीन वर्षों में दुहराई जा सकती है।

अन्य प्रकार की बैंकिङ्ग की कमी

यहाँ के सम्मिलित पूँजी वाले बैंक केवल व्यापारिक बैंकिङ्ग करने के लिए ही सस्थापति किये गये हैं। हाँ, औद्योगिक बैंकिंग का काम करने के लिए भी कुछ बैंक सस्थापित किये गए हैं, किन्तु उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिल पाई है। कृषि के अर्थ की कठिनाइयां दूर करने के लिये सहकारिता निकाली गई है किन्तु यह सिद्धान्त उद्योग-धन्धों के लिए अर्थ देने के लिए नहीं अपनाया गया है। भारतीय बैंकों ने विनिमय व्यवसाय बिल्कुल छोड रक्खा है

जन., डाक इनें अग्गाने की बहुत आवश्यकता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि व्यापारिक बैंकिंग और कृषि बैंकिंग के व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के बैंकिंग के व्यवसाय पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया है।

अंग्रेजी प्रणाली की पूरी नकल

हमारी बैंकिंग अंग्रेजी प्रणाली की पूरी नकल है, जिसके फलस्वरूप सादगी का भारतीय आदर्श पूरी तरह से ठुकरा दिया गया है। इससे जो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई हैं उनका हम अध्ययन कर चुके हैं। यही कारण है कि इस देश में बैंकिंग गांवों में नहीं फैल सकी है।

विदेशी भाषा का प्रयोग

यहाँ पर बैंक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं। हम जानते हैं कि यहाँ के लोग पढ़े लिखे ही नहीं हैं, अंग्रेजी जानने की बात तो दूर रही। अतः, वे उनसे व्यापार नहीं कर पाते। अंग्रेजी भाषा के प्रयोग के कारण अंग्रेजी जानने वाले लोगों की नियुक्ति की आवश्यकता पड़ती है और उनकी संख्या बहुत कम होने के कारण, उनके चुनाव में बड़ी कठिनाई पड़ती है।

विदेशियों का प्रभाव

भारतीय बैंकिंग पर विदेशियों का प्रभाव था और उनकी वास्तविक सहानुभूति भारतीयों से नहीं था। उनका उद्देश्य तो यहाँ लाभ कमाना था और यहाँ के लोगों को लूटना था। ये लोग न तो यहाँ विश्वास ही उत्पन्न कर सके और न यहाँ की समस्याओं को ही सुलझा सके। फिर, यहाँ के लोगों के साथ कोई निकटतम सम्बन्ध भी नहीं स्थापित कर सके। किन्तु अब परिस्थिति बदल रही है।

लोगों की कम आय

यहाँ की बैंकिंग की स्थिति इसलिये भी अच्छी नहीं है कि यहाँ के लोगों की आय बहुत कम है। उसकी धीमी उन्नति का कारण जितनी यहाँ की गरीबी है, उतनी अन्य कोई बात नहीं है। जो लोग आयकर देते हैं उनकी संख्या और आय की औसत, जमा करने वालों की संख्या, और औसत जमा की जाँच करने पर यहाँ के उस क्षेत्र की संकीर्णता का अनुमान किया जा सकता है जिसमें बैंकों को काम करना है। बहुत से सुशिक्षित लोग और उच्चतम समाज में रहने वालों के भी बैंकों में हिसाब केवल इसलिये नहीं हैं कि वह उनमें

न्यूनतम बैलन्स नहीं रख सकते। फिर, ऐसा भी है कि यह बैङ्क न्यूनतम बैलन्स रखने का ऐसा नियम क्यों रखते हैं, जिससे बहुत से लोग उनसे लाभ नहीं उठा पाते हैं। किन्तु ऐसा इसलिये किया जाता है कि इससे उन सिद्धांतों का पालन होता है जिनका पालन होना बैंकिङ्ग की सफलता के विचार से बहुत ही आवश्यक है। बैङ्क इसीलिये न्यून बैलन्स निश्चित करते है कि उनके सदस्यों का एक न्यूनतम स्तर हो और उन्हें इतना लाभ भी हो सके कि वह उन्हें रखने का अपना खर्च पूरा कर लें।

बैंकिंग में शिक्षा की कमी

बैंकिङ्ग के सिद्धान्तों और प्रयोगों की शिक्षा पाये हुये भारतीयों की भी बहुत कमी है। १६ वी शताब्दी के अन्त तक व्यवसाय तथा बैंकिङ्ग की शिक्षा का तो यहां पर पूर्णरूप से अभाव ही था। इधर कुछ वर्षों से अवश्य इसकी व्यवस्था हो गई है किन्तु अभी तक जितनी सुविधायें दी जा चुकी हैं, लोग उनसे भी पूरा लाभ नहीं उठा रहे हैं। इसमें सफलता मिलने के लिये बैङ्कों और विश्वविद्यालयों मे सहयोग की बडी आवश्यकता है।

बैंकों के संगठन की आवश्यकता

बैंकों का संगठन बहुत ही आवश्यक है। इसके उद्देश्य बैंकिङ्ग के भिन्न-भिन्न वर्गों म अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना, उनकी समस्यायें सुलझाने के लिये उनके एकत्रित होने का प्रबन्ध करना, पारस्परिक प्रतिद्वन्दता कम करना, लेक्चरों और पढाई का प्रबन्ध करके बैङ्क के कर्मचारियों को शिक्षा देना, पुस्तकालय और वाचनालय रखना और पत्रिकायें, इत्यादि निकाल कर बैंकिंग सम्बन्धी साहित्य निकालना है। पश्चिमीय देशों मे इन्होंने अपने काम करने के ढङ्ग में बडी उन्नति की है और लोगों में सदाचार पैदा कर दिया है। ये आकस्मिक भय दूर करने मे बहुत ही सफल होते हैं। अत इसलिये भी इनकी इस देश में बहुत ही आवश्यकता है।

भविष्य

भारतीय बैङ्कों का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। देश मे अब अपनी सरकार है। रिजर्व बैङ्क राष्ट्रीय बैङ्क है। इम्पीरियल बैङ्क का राष्ट्रीयकरण यद्यपि अभी रुक गया है तो भी उसके विधान मे आवश्यक संशोधन होने वाले हैं। रिजर्व बैङ्क अब देश के हित मे काम करेगा। उसकी करन्सी और साख नीति इसी ध्येय से चलेगी। व्यापारिक बैङ्क अब उसके ऊपर अधिक निर्भर रह सकेंगे। उनके ऊपर उसका पूरा नियन्त्रण भी है। विदेशी विनिमय बैङ्क भी